अनुक्रमणिका/Index

01. अनुक्रमणिका /Index 01

02. क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 06/07

03. निर्णायक मण्डल 08

04. प्रवक्ता साथी 10

(Science / विज्ञान)

05. Metric Space and Fixed Point Property (Dr. D.K. Sagar) 12

06. Metric Space and Fixed Point Property (Dr. D.K. Sagar) 15

07. A Research Paper on 'A Survey of Virtual keyboard ' (Ushmita Nigam) 17

08. Some Ethnomedicinal Plants Used to Different Diseases by Local People of 20
Vidisha District of Madhya Pradesh (Dr. Sarita Ghanghat)

09. Uses of Ethno Medicinal Plants in Some Disease in Ganj Basoda Tehsil 22
(District - Vidisha) (Dr. Kanchan Vaidya)

10. Phenolic Compounds in Plant (Usha Sahu) 24

11. Aloe Vera And Its Medicinal And Traditional Uses 27
(Prof.Shailendra Sisodiya, Prof. B.K. Rawat)

12. भारत का राष्ट्रीय वृक्ष वट (Ficus Benghalensis)– लोक वनस्पतिक दृष्टिकोण (डॉ.शैल बाला सांधी) 30

13. Nutritional Value Of Fish Flesh (Meena Swamy) 32

14. Physico-chemical parameter of Yeshwant sagar reservoir Indore (M.P.) (Archana Sharma) 35

(Home Science / गृह विज्ञान)

15. Comparative Study Of Alienation And Different AspectsOf Self And 37
Self-Concept Of Adolescent Boys And Girls (Teena Pandya, Dr. Kantibhai S. Dedun)

16. बाल अपराध के कारको एवं उनके उपचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. भावना रमैया) 40

17. फास्ट फूड या जंक फूड से प्राप्त ऊर्जा एवं इसकी पारंपरिक भोज्य पदार्थ से तुलना 43
(डॉ. इमराना सिद्दकी, डॉ. फरहाना अली)

18. एक दृष्टि : घरेलू कार्यस्थल का पर्यावरण (श्रीमती प्रीति गुप्ता) 46

(Commerce & Management / वाणिज्य एवं प्रबंध)

19. Usage of Feedback Form in Hotel Industry (Vinod Kumar Singh Bhadauria) 47

20. Role Of State Civil Supplies Corporation In Public Distribution System In M.P. 49
(Dr. Iffat Khan)

21. Performance of Mining and Marketing of Rock Phosphate and Limestone by 51
Rajasthan State Mines & Minerals Limited (Harish Singh Nayak, Dr. P.R. Somani)
22. Hindrancs In Quality Management Overcome Barriers To Quality Management 54
(Dr. Ramesh Nagda, Reena Dutt Sharma)
23. Accounting Education And Research In India (Dr. Vimmi Behal, Dr. Anil Shivani) 56
24. Need For Foreign Universities In India (Dr. Anil Jain, Smt. Nidhi Saxena) 59
25. पंचवर्षीय योजनाओं में भारतीय विदेशी व्यापार-एक सर्वेक्षण (डॉ. अमर कुमार जैन) 61
26. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के माध्यम से कृषकों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास: एक विश्लेषण ... 65
(डॉ.अशोक वर्मा , डॉ. दिलीप पाटीदार , डॉ. के तावडे)
27. कृषि विकास एवं पर्यावरणीय सामंजस्य का बदलता स्वरूप:नरसिंहपुर जिले के विशेष संदर्भ में (डॉ. एस.के. उप्रेलिया) 67
28. जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित खरगोन के कोष निधि प्रावधानों की तथ्यात्मक समीक्षा (डॉ. सुनील मोरे) 69
29. एल.पी.जी. नीति का देवास जिले के संगठित क्षेत्र के औद्योगिक विकास पर प्रभाव एवं संभावनाएँ 71
(डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, डॉ. महेश शर्मा)
30. भारतीय कृषि क्षेत्र - स्थिति एवं सम्भावनाएँ (डॉ.सपना सोनी) 73
31. बैंकिंग एवं वित्त-व्यूह रचना एवं 21 वीं सदी में भारतीय बैंकिग के समक्ष चुनौतियाँ (डॉ. सारिका मिश्रा) 76
32. मानव संसाधन प्रबंधन का भविष्य और उभरती चुनौतियां वर्तमान परिप्रेक्ष्य में (डॉ. दिनेश कुमार चौधरी) 78
33. नीमच जिले में लिंग अनुपात में वृद्धि - एक शुभ संकेत (डॉ. एल.एन. शर्मा) 81
34. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा 'इंदौर संभाग' में कृषि विनियोग 2005 से 2010 : 84
एक विश्लेषण (डॉ. दिलीप पाटीदार, डॉ.आशीष गुप्ता)

(Economics / अर्थशास्त्र)

35. FDI In India's Retail Sector - Opportunities And Challenges (Dr. Deepali Behere) 87
36. Local Fund Audit: A Vision (Sandeep Kumar Laxkar, Dr.P.R.Somani) 89
37. Economic Growth on the basis of Gross Natural Product (Dr. Anand Tiwari) 91
38. संचार क्रांति एवं ग्रामीण बाजार का बदलता परिदृश्य (डॉ. प्रकाश चन्द्र रांका, डॉ. एल.एन. शर्मा) 92
39. वित्तीय – समावेशन में लघुवित्त की भूमिका (भारत में गठित स्व–सहायता समूहों के विशेष संदर्भ में) 94
(डॉ. कविता भदौरिया)
40. प्रो. अमर्त्य सेन का आर्थिक विषमता पर चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. प्रकाश चन्द्र रांका, रेखा मेहना) 98
41. जल संकट एवं जल संसाधन प्रबंधन - भारत के संदर्भ में (डॉ. शक्ति जैन) 101
42. भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्यागो की भूमिका का प्रभाव: विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. जयराम सोलंकी) 105
43. संचार माध्यम : बदलता परिदृष्य (डॉ. प्रीति श्रीवास्तव) 107
44. पर्यटन विकास की संभावनाऐं (कोटा जिले के विशेष सन्दर्भ में) (डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव) 109
45. जैविक खेती : वर्तमान आवश्यकता (डॉ. आशा साखी गुप्ता) 112
46. बैतूल जिले में कृषकों का जैविक खेती की ओर बढ़ता रूझान (सुरेखा यादव) 115

47. जनजातिय विकास में बदलते कृषि तकनीकी का अंगीकरण (डॉ. लक्ष्मी वास्केल, प्रो. गौरा मुवेल) 117

(Sociology / समाजशास्त्र)

48. Method Of Teaching: Lecture Method (Dr. Manoj Vankhede) 119

49. भारत में दलित महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध (डॉ. अनामिका प्रजापति) 121

50. मध्यप्रदेश सरकार के बेटी बचाओं अभियान के प्रभाव का अध्ययन (जागृति आर्य) 123

51. बदलता भारतीय समाज - उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में (डॉ.निशा जैन) 125

52. आधुनिकता की चकाचौंध में गुम होता भगोरिया पर्व (कमल सिंह मालवीय, प्रो. मीना मावी) 127

53. स्वामी विवेकानंद के शिक्षा विषयक विचार :(समग्र सामाजिक विकास के संदर्भ में) (डॉ. उमा लवानिया) 129

54. आधुनिक संदर्भ में महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम (मंजूलता नागरे) 131

55. 'डायन प्रथा' (विचकाफ्ट) : एक सामाजिक विश्लेषण (डॉ. परेश द्विवेदी) 133

56. भारतीय संस्कृति पर स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिता (प्रो. श्रीमती विजया वधवा) 137

(Political Seience / राजनीति विज्ञान)

57. मध्य प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिकाएँ (डॉ. जितेन्द्र पाटीदार) 138

58. भारतीय राजनीतिक दल प्रणाली और चुनाव सुधार (डॉ.अनिल दीक्षित) 141

59. सभापतियों की नेतृत्व क्षमता का मूल्यांकन : उदयपुर नगर परिषद् के सन्दर्भ में (लक्ष्मी कुँवर चुण्डावत) 143

(History / इतिहास)

60. सन्तमत एवं निमाड़ में संत परम्परा (डॉ. मधू सूदन चौब) 147

61. नरसिंहगढ़ के शैलचित्रों का संरक्षण (डॉ. ममता खोईया) 150

(Geography / भूगोल)

62. मेवाड़ के पर्यटन केन्द्र व चित्तौड़गढ़ में पर्यटकों के आगमन की प्रवृति : एक भौगोलिक विश्लेषण 151
(डॉ. ललित सिंह झाला, सुश्री कीर्ति राठौड़)

(Psychology / मनोविज्ञान)

63. Self Concept Of Engineering Students As Related With Personality Types 153
(Sunita Dhenwal, Prof. Preeti Mathur)

64. वैधानिक प्रावधान एवं महिला सशक्तिकरण (सुधा शाक्य) 154

65. युवा छात्र-छात्राओं में दहेज प्रथा के प्रति अभिवृत्ति (डॉ. ममता बर्मन) 157

(Drawing / चित्रकला)

66. भारतीय प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मानवाकृतियों का महत्व (डॉ. यतीन्द्र महोबे) 158

67. अभिज्ञानशाकुन्तलम् में चित्रकला के सन्दर्भ (डॉ. नीता तोमर) 161
68. भारतीय कला का प्रतीकात्मक स्वरूप (डॉ. नीता तोमर) 164
69. शैल चित्रों में रंगों का महत्व (डॉ. नीता तोमर) 166

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

70. The Role of Science in Literature with special reference to English Fiction 167
(Dr Rajkumari Sudhir)
71. Conservation Of Depleting Resources In India (V.M. Audichya) 169

(Hindi Literature / हिन्दी साहित्य)

72. आर्थिक शोषण का स्वरूप : प्रेमचंद का साहित्य और समाज (डॉ. संध्या टिकेकर) 171
73. गुजराती हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता एवं शिक्षण निष्पादन का अध्ययन (डॉ. लाल चंद पटेल) 173
74. निराला के काव्य में निहित प्रगतिशील चेतना-एक अध्ययन(डॉ.सुनीता यादव) 175
75. गुप्त जी के काव्य जय भारत में मानवतावाद (छोटे लाल गुप्ता) 177
76. आर्य संस्कृति का संवाहक महाकाव्य – उर्मिला (डॉ. गायत्री वाजपेयी) 179
77. जीवन वृत्तान्तीय आलोचना की अवधारणा (डॉ. मीनाक्षी खरे) 181
78. पर्यावरण जागरूता में बाल साहित्य का योगदान (आभा चौहान) 183
79. श्री कृष्ण सरल जी द्वारा रचित क्रांतिगंगा महाकाव्य- एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अप्रतिम स्मारक (डॉ. रेखा कौशल) 185
80. श्रीकांत वर्मा : एक कर्मठ साहित्यकार (डॉ. सरोज जैन) 187
81. दुष्यन्तकुमार के गजलों में सामाजिक बोध (प्रो. मनसाराम बघेल) 189
82. तुलसीदास का राजनीतिक चिन्तन (डॉ. मीना भावसार) 190
83. पर्यावरण : कसूरवार बदलती जीवन शैली (डॉ. रश्मि जैन) 191

(Sanskrit & Marathi / संस्कृत एवं मराठी)

84. भवभूतेः पाण्डित्यम् - वैदिक, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र के विशेष संदर्भ में (डॉ. बालकृष्ण प्रजापति) 193
85. नीतिशतक काव्य परम्पराया: विवेचनम् (डॉ.बाल कृष्ण प्रजापति) 196
86. रामायणानुप्राणितं संस्कृतनाट्यसाहित्यम् (पं.श्रेयस् श्रीधारशास्त्रिकोरान्न) 198
87. महाभारत से अनुप्राणित संस्कृत विदग्ध महाकाव्य (श्रेयस श्रीधर कोरान्न) 201
88. संत नामदेव - एक श्रेष्ठ समाज संघटक (डॉ. शैलजा साबले) 203
89. समर्थ रामदासांचे मनाचे श्लोक - मनाला सामर्थ्यशीलता देणारे, उत्तम साधन (डॉ. शैलजा साबले) 206

(Law/ विधि)

90. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम (विवेक नागर) 209

91. पर्यावरण प्रदूषण से, जैव समुदाय पर उत्पन्न संकट के निवाराणार्थ, संवैधानिक प्रावधान एवं न्याय निर्णय : एक विश्लेषण 212
(लीना अग्रवाल)
92. देह व्यापार को मजबूर बाँछडा समुदाय - नीमच जिले के विशेष संदर्भ में (विवेक नागर) 214
93. 'सूचना का अधिकार अधिनियम 2005' के क्रियान्वयन में समस्या - विधिक एवं न्यायिक विवेचन (विवेक नागर) 216

(Education / शिक्षा)

94. A Study of an Effectiveness of CLT Method of College Students' English Language Teaching 218
(Jaimini K. Surani)
95. Emotionally Intelligent Teachers "Need Of An Hour" (Dr. M.P. Gupta, Mrs. Rashmi Dadhich) 220
96. बालक-अभिभावक सम्बन्धों का बालक के समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन (दीपक पंचोली) 222
97. उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों तथा शैक्षिक उपलब्धि का एक अध्ययन (डॉ. बी.सी. शाह) 225
98. बी.एड. के प्रशिक्षार्थियों में मूल्यों का अध्ययन (डॉ. एल.एच. पटेल) 229
99. माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन (पंकज के. उपाध्याय) 231
100. राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के संदर्भ में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों ... 233
का समालोचनात्मक अध्ययन (डॉ. कमलेश झा, पंकज के. उपाध्याय)
101. पाठ्य-पुस्तक निर्धारण: विषय अध्यापकों की प्रतिक्रिया (रश्मि पाण्ड्या) 235

(Physical Education / शारीरिक शिक्षा)

102. Impact Of Handball Training On Strength Of Handball Players 237
(Dr. B.K. Choudhary, Paranveer Singh Chouhan)
103. Comparing Fitness Level of Boys From Higher And Lower Altitude Places 239
(Dr. Um Singh Rathore, Ramneek Jain)
104. Swimming Physiology And Coaching Practice: Bridging The Gap Between Theory 242
And Practice (Gagan Vyas, Dr. Seema Gurjar)

(Others / अन्य)

105. Stress and Health Management (Dr. Vimmi Behal, Dr. O.P. Sharma) 245
106. अलीराजपुर जिले के जनजातिय समाज पर दूरदर्शन का प्रभाव : एक अध्ययन (सबल सिंह ओहरिया) 246
107. पर्यावरणीय समस्या : लोगों का विस्थापन एवं पुनर्वास (कविता ठाकुर) 248
108. वैदिक धर्म और दार्शनिक चिंतन (डॉ. जगमोहन सिंह पूषाम) 250
109. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (डॉ. अशोक कुमार, डॉ. पुष्पांजलि आर्य) 253
110. अपराध के बदलते परिदृश्य (डॉ. मंजू गुप्ता) 255
111. आधुनिक समाज और मूल्यहीनता (डॉ. चारुलाता तिवारी) 257
112. Microwave-heat assisted pectin extraction and its advantages (Dr. Mahendra Singh Panwar) 259
113. Grid - Economic Optimized Resource Management: An Overview 261
(Priyanka Shaktawat,Dr. Manish Shrimali)
114. Determinethe Anxitey Level at School and College Handball Players (Dr. D.C. Maurya).....265
115. Swadeshi vs Globalisation (Dr. Amit Mehta) 267

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National) मानद्

(01) श्री अशोककुमार ..... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम
(02) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी ..... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल
(03) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
(04) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव ..... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत
(05) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. ..... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(06) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. ..... (पूर्व) संकायाध्यक्ष, वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(07) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे ..... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. संजय भयानी. ..... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत
(09) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम ..... अध्यक्ष, वाणिज्य शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ..... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत
(11) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा ..... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत
(12) प्रो. डॉ. संजय खरे ..... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत
(13) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय ..... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. अखिलेश जाधव ..... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत
(16) प्रो. डॉ. कमल जैन ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(17) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत
(18) प्रो.डॉ. वन्दना जैन ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(19) प्रो. डॉ. शिव कुमार दुबे ..... प्राध्यापक, भूगोल, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत
(20) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी ..... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत
(21) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव ..... अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत
(22) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
(23) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया ..... प्राध्यापक, वनस्पति टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत
(24) प्रो. डॉ. विवेक पटेल ..... प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत
(25) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी .... प्राध्यापक, वाणिज्य शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(26) प्रो. डॉ. पी.के. मिश्रा ..... प्राध्यापक ,प्राणी शास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैतूल (म.प्र.) भारत
(27) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य एवं प्रबंध महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत
(28) प्रो. डॉ. आर.पी. सहारीया ..... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय जे.एम.पी. महाविद्यालय तख्तपुर जिला,बिलासपुर (छ.ग.) भारत
(29) प्रो. डॉ. गायत्री वाजपेयी ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत
(30) प्रो. डॉ. अविनाश शेन्डरे ..... विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र, प्रगति कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, डोम्बीवली, मुम्बई (महाराष्ट्र) भारत
(31) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्वविद्याय, इंदौर (म.प्र.) भारत

****

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव..... प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत
(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत ..... निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत
(03) प्रो. डॉ. संजय जैन ..... नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत
(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी ..... प्राचार्य, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत
(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय..... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टा महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत
(06) प्रो. डॉ. अशोका श्रीवास्तव..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत
(07) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगौन (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर .... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा ..... प्राचार्य एवं संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेंधवा (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड ..... संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(11) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी..... अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत
(12) प्रो. डॉ. बी.के. मेहता ..... अध्यक्ष, रसायन एवं जैविक रसायन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.) भारत
(13) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल ..... अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. मंजु दुबे..... संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी ..... प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(16) प्रो. डॉ. के.एल. जाट ..... प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, भौतिकी विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

नवीन शोध संसार की ओर से हार्दिक बधाई

Dr. A.K. Chaudhary (Prof. of Psychology) Govt. Meera College, Udaipur (Raj.) receiving Best Paper Award in IAAP International Conference at Ahemdabad 2014

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

****** विज्ञान संकाय ******

गणित:- .... (1) प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता, संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकी:- .... (1) प्रो. डॉ. एन.के. डबकरा, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

(2) प्रो.डॉ. रवि कटारे, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञान:- .... (1) प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायन:-........................ (1) प्रो. डॉ. बी.के. दानगढ़, समन्वयक राष्ट्रीय इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, केन्द्र नीमच (म.प्र.)

वनस्पति:- .... (1) प्रो. डॉ. सुचिता जैन, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

(2) प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकी:- .... (1) प्रो.डॉ. आर.के. भट्ट, प्राचार्य, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)

(2) प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा, एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

(3) प्रो. डॉ. अमृता खत्री, माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकी:- .... (1) प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या, शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञान:- .... (1) प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी, शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायन:- .... (1) डॉ. कंचन डींगरा, शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्र:- .... (1) प्रो. डॉ. वी. कुलश्रेष्ठ, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञान:- .... (1) डॉ. एच.जी. वरूधकर, आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

****** वाणिज्य संकाय ******

वाणिज्य :- .... (1) प्रो. डॉ. पी.के. जैन, शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. बी.एस. मक्कड़, शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

****** प्रबंध संकाय ******

प्रबंध :- .... (1) प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी, अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. आनन्द तिवारी , शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

मानव संसाधन:- .... (1) प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी, पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

****** व्यवसाय प्रशासन संकाय ******

व्यवसाय प्रशासन:- .... (1) प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा , राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

****** विधि संकाय ******

विधि:- .... (1) प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा, शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

****** कला संकाय ******

अर्थशास्त्र:-..................... (1) प्रो. डॉ. पी.सी. रांका, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

(3) प्रो. डॉ. कमलेश श्रीवास्तव, विजयाराजे शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुरार, ग्वालियर (म.प्र.)

राजनीति:- .... (1) प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

(2) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव, शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)

समाजशास्त्र:- ..... **(1) प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. इन्दिरा बर्मन , शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)

हिन्दी:- ..... **(1) प्रो. डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा (प्रोक्टर),** विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन, अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(3) प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

अंग्रेजी:- ..... **(1) प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा**, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)

संस्कृत:- ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंजबासौदा जिला विदिशा (म.प्र.)

इतिहास:- ..... **(1) प्रो. डॉ. मदनलाल पंवार,** पूर्व प्राचार्य शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. नवीन गिडियन, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोल:- ..... **(1) प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डी.डी. विश्वकर्मा, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

दर्शनशास्त्र:- ..... **(1) प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

मनोविज्ञान:- ..... **(1) प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** प्राचार्य, शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. सरोज कोठारी, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकला:- ..... **(1) प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीत:- ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. श्रीपाद अरोणकर, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.)

**** गृह विज्ञान संकाय ****

आहार एवं पोषण विज्ञान:- .... **(1) प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) डॉ. मधु गोयल, स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) डॉ. संध्या वर्मा, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकास:- ..... **(1) प्रो.डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) प्रो.डॉ. आभा तिवारी, अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंध:- ... **(1) प्रो.डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई कन्या शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) प्रो.डॉ. नम्रता अरोरा, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

**** शिक्षा संकाय ****

शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर, प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

**** शारीरिक शिक्षा संकाय ****

शारीरिक शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

**** ग्रन्थालय विज्ञान संकाय ****

ग्रन्थालय विज्ञान ..... **(1) डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रवक्ता साथी (मानद)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया.....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा.....शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत .....ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर .....शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी .....शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डी.एस. फिरोजिया .....शासकीय महाविद्यालय, रामपुरा, जिला नीमच (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा .....कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला- नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ.पी.डी. ज्ञानानी.....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षीतिज पुरोहित .....जैन कला-वाणिज्य-विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार .....शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा .....शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक .....शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान.....शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ.गेंदालाल चौहान .....शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र .....शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन .....शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. अरूणा दुबे .....शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. आभा दीक्षित.....शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी.....शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी .....स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित.....शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय अग्रवाल.....शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. लता जैन .....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. कहकशा खान .....शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) प्रो. डॉ. सोनाली नरगुन्दे .....पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) डॉ. अदिति देसाई.....श्री अरविन्दो इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साईन्स, इन्दौर (म.प्र.)
(29) प्रो. डॉ. एम.डी. सोमानी .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) प्रो. डॉ. प्रीति भट्ट .....शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) प्रो. डॉ. संजय प्रसाद .....शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर .....सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. डॉ.सुनीलकुमार सिकरवार.....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. नीतिन साहारिया .....शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी .....शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गौंधी .....महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा.....श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ.ओमप्रकाश शर्मा .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्योपुर (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव .....शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे .....शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. ए.के. बरैया .....शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता.....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर .....शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. नटवरलाल गुप्ता .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

(48) प्रो. डॉ.रवींद्र कान्हेरे .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. मीरा जामोद .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(50) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला- सतना (म.प्र.)
(51) डॉ. राजेश कुमार .....शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला-सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(54) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश .....शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला-विदिशा (म.प्र.)
(55) प्रो. श्रीमती भारती खरे .....एस.एस.एल. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, विदिशा (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी .....शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. के.एल. साहू .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे.....शासकीय कन्या महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. रंजु गुप्ता .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर-मालवा (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी .....शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(61) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल.....शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(62) डॉ. सुरेश कुमार विमल.....शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. अमरकुमार जैन.....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. रश्मि दुबे .....शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. ए.के. जैन .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा.....शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव .....शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला .....शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया .....शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला-छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(71) प्रो.डॉ. विम्मी बहल.....शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला - शाजापुर (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल.....शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान .....शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला-शाजापुर (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा.....शासकीय महाविद्यालय, महूगंज, जिला- रीवा (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा .....शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. अमोल मांजरेकर .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी .....शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. इशरत खान .....शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर .....शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सिहोर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. रामचन्द्र चौहान .....पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)
(82) प्रो. डॉ. रेणु राजेश .....शासकीय नेहरु अग्रणी महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)
(83) प्रो. डॉ. अविनाश दुबे.....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)
(84) प्रो. डॉ. पी.पी. मिश्रा .....छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)
(85) प्रो. डॉ. राम अवेधश शर्मा .....एम.जे.एस. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)
(86) प्रो. डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री .....सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(87) प्रो. डॉ. समीर कुमार शुक्ला.....शासकीय चन्द्र विजय महाविद्यालय, डिण्डोरी (म.प्र.)
(88) प्रो. डॉ. अनूप परसाई.....शासकीय छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(89) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन.....इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(90) श्रीमती सुमन वशिष्ठ.....राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)
(91) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ .....राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(92) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख .....एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(93) प्रो. डॉ. कृष्णा पैन्सिया.....हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला- प्रतापगढ़ (राज.)
(94) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह .....केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(95) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल .....शोध सलाहकार, नई दिल्ली

Metric Space and Fixed Point Property

Dr. D.K. Sagar *

Abstract - In this paper we establish some fixed point theorems in 2-metric space more than one metric space and for more than on functions.**2000 Mathematics subject classification:** primary 47 H 10,Secondary 54 H 25
Keywords: Fixed point, metric space

1. Introduction - throughout this paper we use :

$$\phi: R^+ \to R^+, \quad \lim_{n \to \infty} \phi^n(t) = 0$$

Definition 1.1- A 2-metric on X is d mapping d from X*X*X to the set of non-negative real numbers that satisfied the following continuous.

(i) There exist points x, y, z such that $d(x, y, z) \neq 0$ and $d(x, z, y) = 0$ if at last two of three point are equal .

(ii) $d(x, y, z) = d(x, z, y) = d(y, z, x)$ x, y, z $\in$ X

(iii) $d(x, y, z) \leq d(x, y, z) + d(x, a, z) + d(x, y, z)$ x, y, z $\in$ X

The pair (X, d) is called a 2-metric space.

Definition 1.2 - A sequence $\{x_n\}$ in X is said to be a Cauchy sequence if $d(x_m, x_n, a) \to 0$ as m. n $\to$ A a in X. The sequence $\{x_n\}$ converges to $x \in X$ and x is the limit point of the sequence if

$$\lim_{n \to} d(x_n, x\, a) = 0$$

For each $a \in X$

Definition 1.3 - A 2-metric space in which every Cauchy sequence $\{x_n\}$ is convergent is called complete 2-metric space.

Theorem:

Let (X, d),(Y,) and (Z,) are three2 metric space. Let h is continuous mapping from X in Y. g is a continuous mapping from Y in to Z and f is d continuous mapping from Z in to X, which satisfy the following conditions.

1. $(fghx, fghx^1, fghx^{11}) \leq \phi$ [max {$d(x, x^1, x^{11})$
 $d(x, fghx^1, fghx^{11})$ $d(fghx^1, x^1, fghx^{11})$
 $d(fghx, fghx^1, fghx^{11})$ $\rho(hx, hx^1, hx^{11})$
 (ghx, ghx^1, ghx^{11})}]

2. $\rho(hfgy, hfgy^1, hfgy^{11})$
 $\leq \phi$ [max {$\rho(y, y^1, y^{11})$, $\rho(y, hfgy^1, hfgy^{11})$, $\rho(hfgy, y^1, hfgy^{11})$, $\rho(hfgy, hfgy^1, y^{11})$,
 $\sigma(hy, hy^1, hy^{11})$ $d(ghy, ghy^1, ghy^{11})$}]

And

3. $\sigma(hfgz, hfgz^1, hfgz^{11}) \leq \phi$[max{$\sigma(z, z^1, z^{11})$
 $\sigma(z, ghfz^1, ghfz^{11})$ $\sigma(ghfz^1, z^1, ghfz^{11})$
 $\sigma(ghfz, ghfz^1, z^{11})$ $d(fz, fz^1, fz^{11})$, $\rho(hfz, hfz^1, fhzx^{11})$}]
 x, x^1, x^{11} in X, y, y^1, y^{11} in Y and z, z^1, z^{11} in Z

Then

(i) fgh has a common fixed point u in X

(ii) hfg has a common fixed point v in Y and

(iii) ghf has a common fixed point w in Z.

Further

hu = v, gv = w and fw = u

Proof

Let x_0, y_0, z_0 and arbitrary point in X, Y and Z respectively such that

$x_1 = fz_1 = fgy_1 = fghx_0$
$y_1 = hx_0 = hfz_0 = hfgy_0$ and
$z_1 = gy_1 = ghx_1 = ghz_0$

Where $x_1 \in X$, $y \in Y$, $z_1 \in Z$

Let $\{x_n\}$, $\{y_n\}$ and $\{z_n\}$ are sequence in X,Y and Z respectively such that

$x_n = fz_n = fgy_n = fghx_{n-1,}$
$y_n = hx_{n-1} = hfz_{n-1} = hfgy_{n-1,}$ and
$z_n = gy_n = ghx_{n-1} = ghfz_{n-1}$

Where $h \in N$

Now, from the inequality (1) we get

$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p}) = d(fghx_{n-1}, fghx_n, fghx_{n+p-1})$
$\leq \phi$ [max {$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1})$
$d(x_{n-1}, fghx_n, fghx_{n+p-1})$, $d(fghx_{n-1}, x_n, fghx_{n+p-1})$
$d(fghx_{n-1}, fghx_n, x_{n+p-1})$, $d(fgx_{n-1}, hx_n, hx_{n+p-1})$
$\sigma(ghx_{n-1}, ghx_n, ghx_{n+p-1})$}]
$= \phi$ [max {$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1})$
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p})$, $d(x_n, x_n, x_{n+p})$
$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-1})$, $\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p})$,
$\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p})$}]
$= \phi$ [max {$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1})$
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p})$, $d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-1})$
$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p})$, $\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p})$ }] 2.1

* Shri Sitaram Jaju Govt. Girls College, Neemuch (M.P) INDIA

From inequality (2) we have

$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}) = \rho(hfgy_{n-1}, hfgy_n, hfgy_{n+p-1})$
$\leq \phi [\max \{\rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1}),$
$\rho(y_{n-1}, hfgy_n, hfgy_{n+p-1}), \rho(hfgfy_{n-1}, y_n, hfgy_{n+p-1}),$
$\rho(hfgy_{n-1}, hfgy_n, y_{n+p-1}), \sigma(gy_{n-1}, gy_n, gy_{n+p-1}),$
$d(fgy_{n-1}, fgy_n, fgy_{n+p-1})\}]$
$= \phi [\max \{\rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1})$
$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1})$
$\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1}),$
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p-1})\}]$ 2.2

And from inequality (3)

$\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p}) = \sigma(ghfz_{n-1}, ghfz_n, ghfz_{n+p-1})$
$\leq \phi [\max \{\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1}),$
$\sigma(z_{n-1}, ghfz_n, ghfz_{n+p-1}), = \sigma(ghfz_{n-1}, z_n, ghfz_{n+p-1}),$
$\sigma(ghfz_{n-1}, ghfz_n, z_{n+p-1}), d(fz_{n-1}, fz_n, fz_{n+p-1}),$
$\rho(hfz_{n-1}, hfz_n, hfz_{n+p-1})\}]$
$= \phi [\max \{\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1}), \sigma(z_{n-1}, z_{n+1}, z_{n+p}),$
$\sigma(z_n, Z_n, z_{n+p}), \sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p-1}),$
$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}), \rho(y_n, y_{n-1}, y_{n+p})\}]$
$\leq \phi [\max \{\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1}), \sigma(z_{n-1}, z_{n+1}, z_{n+p}),$
$\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p-1}), \sigma(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}),$
$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1})\}]$ 2.3

But

$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}) = d(fghx_{n-2}, fghx_{n-1}, fghx_{n+p-2})$
$\leq \phi [\max \{d\{x_{n-2}, x_{n-1}, x_{n+p-2}),$
$d(x_{n-2}, fghx_{n-1}, fghx_{n+p-2}), d(fghx_{n-2}, x_{n-1}, fghx_{n+p-2}),$
$d(fghx_{n-2}, fghx_{n-1}, x_{n+p-2}), \rho(hx_{n-2}, hx_{n-1}, hx_{n+p-2})$

$\sigma(ghx_{n-2}, ghxz_{n-1}, ghx_{n+p-2})\}]$
$\leq \phi [\max \{d(x_{n-2}, x_{n-1}, x_{n+p-2}),$
$d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1}), d(x_{n-1}, x_{n-1}, x_{n+p-1}),$
$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2}), \rho(y_{n-1}, y_{n-1}, y_{n+p-1})$
$\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1})\}]$
$\leq \phi [\max (d(x_{n-2}, x_{n-1}, x_{n+p-2}),$
$d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1}), d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}),$
$\rho(y_{n-2}, y_{n-1}, y_{n+p-2})$
$\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1})\}]$ 2.4

Similarly

$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p}), \leq \phi [\max \{d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1}),$
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p}), d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p}),$
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p-1}), \rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p})$
$\sigma(z_{n-1}, z_{n+1}, z_{n+p})\}]$ 2.5
$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p}), \leq \phi [\max\{d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}),$
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p}), d(x_n, x_n, x_{n+p-1}),$
$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}), \sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p})\}]$ 2.6
$\rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1}), \leq \phi [\max\{d(y_{n-2}, y_{n-1}, y_{n+p-2}),$
$d(y_{n-2}, y_n, y_{n+p}), \rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-2})$
$\sigma(z_{n-2}, z_{n-1}, z_{n+p-2}), d(x_{n-2}, x_{n-1}, x_{n+p-2})\}]$ 2.7

$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p}), \leq \phi [\max \{\rho(y_{n-2}, y_n, y_{n+p-1}),$
$\rho(y_{n-2}, y_{n+1}, y_{n+p}), \rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p})$
$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p}), \sigma(z_{n-2}, z_n, z_{n+p-1})$
$d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1})\}]$ 2.8

$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1}), \leq \phi [\max \{\rho(y_n, y_n, y_{n+p-2}),$
$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p-1}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-2})$
$\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-2}), d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2})\}]$ 2.9

$\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1}), \leq \phi [\max \{\sigma(z_{n-2}, y_{n+1}, z_{n+p-2}),$
$\sigma(z_{n-2}, z_n, z_{n+p-1}), \sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-2}),$
$d(x_{n-2}, x_{n-1}, x_{n+p-2}), \rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1})\}]$ 2.10

$\sigma(z_{n-1}, z_{n+1}, z_{n+p}), \leq \phi [\max \{\sigma(z_{n-2}, z_n, z_{n+p-1}),$
$\sigma(z_{n-2}, z_{n+1}, z_{n+p}), \sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p}),$
$\sigma(z_{n-1}, z_{n+1}, z_{n+p-1}), d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1}),$
$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p})\}]$ 2.11

And

$\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p-1}), \leq \phi [\max (\sigma(z_{n-1}, z_n, z_{n+p-1}),$
$\sigma(z_{n-1}, z_{n+1}, z_{n+p-1}), \sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p-2}),$
$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1})\}]$ 2.12

Substituting the values of (2.2), (2.3), (2.4), (2.5) and (2.6) in (2.1) and using (2.7), (2.8), (2.9), (2.10), (2.11) and (2.12) then we obtain.

$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p}) \leq \phi^2 [\max \{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma),$

$\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma), \sigma(z_\alpha, z_\beta, z_\gamma)\}]$ 2.13

$d(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}) \leq \phi^2 [\max \{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma),$

$\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma), \sigma(z_\alpha, z_\beta, z_\gamma)\}]$ 2.14

And

$\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p}) \leq \phi^2 [\max \{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma),$

$\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma), \sigma(z_\alpha, z_\beta, z_\gamma)\}]$ 2.15

Where

$n-2 \leq \alpha \leq n$, $n-1 \leq \beta \leq n+1$, and $n+p-2 \leq \gamma \leq n+p-1$

Continuing the above procedure we get

$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p}) \leq \phi^2 [\max \{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma),$

$\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma), \sigma(z_\alpha, z_\beta, z_\gamma)\}]$ 2.16

$d(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}) \leq \phi^2 [\max \{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma),$

$\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma), \sigma(z_\alpha, z_\beta, z_\gamma)\}]$ 2.17

$\sigma(z_n, z_{n+1}, z_{n+p}) \leq \phi^2 [\max \{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma),$

$\rho (y_\alpha, y_\beta, y_\gamma), \sigma (z_\alpha, z_\beta, z_\gamma)\}]$ 2.18

Using above result's we can easily show that $\{x_n\}$, $\{y_n\}$ and $\{z_n\}$ are Cauchy sequence in X, Y and Z respectively since X, Y and Z are complete 2-metric spaces, let $\{x_n\}$, $\{y_n\}$ and $\{z_n\}$ converge the point u, v and w in X, Y and Z respectively.
Since f, g and h are continuous, therefore we have

$\lim_{n \to} y_n = \lim_{n \to} hx_n = hu = v$

$\lim_{n \to} z_n = \lim_{n \to} gy_n = gv = w$
and
$\lim_{n \to} x_n = \lim_{n \to} fz_n = fw = u$

Since f , g and h are continuous, there product are also continuous.

i-e fgh, hfg and ghf are continuous
Therefore
$u = \lim_{n \to} fghx_{n-1} = fghu \lim_{n \to} x_{n-1} = fghu$

Similarly v = hfgv and w = ghfw.

Hence u, v and w the common fixed point of fgh, hfg and ghf respectively.

References -

1. R.K. Jain fixed point on three metric spaces. Bull Cal.Maths. Soc. 87 (1995), 463-466
2. B.E. Rhoade, A fixed point theorem for generalized metric spaces. Internet. J. Math. And Math.Sci. 19 (3) (1996), 457-460.

****
∞

Metric Space and Fixed Point Property

Dr. D.K. Sagar *

Abstract - In this paper we establish some fixed point theorems in 2-metric space more than one metric space and for more than on functions.**2000 Mathematics subject classification:** primary 47 H 10,Secondary 54 H 25
Keywords: Fixed point, metric space

1. Introduction - throughout this paper we use :

$$\phi: R^+ \to R^+, \quad \lim_{n \to} \phi^n(t) = 0$$

Definition 1.1- A 2-metric on X is d mapping d from X*X*X to the set of non-negative real numbers that satisfied the following continuous.

(i) There exist points x, y, z such that d (x, y, z) $\neq 0$ and d (x, z, y)= 0 if at last two of three point are equal .

(ii) d (x, y, z)= d (x, z, y)=d(y, z, x) x, y, z $\in$ X

(iii) d (x, y, z) $\leq$ d (x, y, z)+ d (x, a, z) + d (x, y, z) x, y, z $\in$ X

The pair (X, d) is called a 2-metric space.

Definition 1.2 - A sequence $\{x_n\}$ in X is said to be a Cauchy sequence if $d(x_m, x_n, a) \to 0$ as m. n $\to$ a in X. The sequence $\{x_n\}$ converges to x $\in$ X and x is the limit point of the sequence if

$$\lim_{n \to} d(x_n, x\ a) = 0$$

For each a $\in$ X

Definition 1.3- A 2-metric space in which every Cauchy sequence $\{x_n\}$ is convergent is called complete 2-metric space.

2. Main Results -

Theorem:

Let (X, d) and (Y, p) be two complete2-metric space. Let g be a continuous mapping of X in to Y and f is a continuous mapping of Y in to X satis fying the following conditions.

1. d (fgx, fgx^1, fgx^{11}) $\leq \phi$ [max (x, x^1, x^{11}) d (x, fgx^1, fgx^{11}) d (fgx^1, x^1, fgx^{11}) d (fgx, fgx^1, fgx^{11}) ρ (gx, gx^1, gx^{11})]
2. ρ (gfy, gfy^1, gfy^{11}) $\leq \phi$ [max {r (y, y^1, y^{11}),(y, gfy^1, gfy^{11}), ρ (gfy, gfy^1, gfy^{11}), ρ (gfy, gfy^1, y^{11}), d (fy, fy^1, fy^{11})}]

For all x, x^1, x^{11} $\in$ X and y, y^1, y^{11} $\in$ Y then

(a) fg has a common fixed point u in X

(b) gf has a common fixed point v in Y

Further

(c) fv = u and gu = v

Proof -

Let x_0, y_0 are arbitrary point in X and Y, respectively such that x_1=fy_1 = fgx_0 and y_1= gx_0 = gfy_0 where $x_1 \in$ X, $y_1 \in$ Y

Let $\{x_n\}$ and $\{y_n\}$ are two sequence in x and y such that

$x_n = fy_n = fgx_{n-1}$ and $y_n = gx_{n-1} = gfy_{n-1}$

now from in equality (1) we obtain

$$d(x_n, x_{n-1}, x_{n+p}) = d(fgx_{n-1}, fgx_n, fgx_{n+p-1})$$
$$\leq \phi [\max \{d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1})$$
$$d(x_{n-1}, fgx_n, fgx_{n+p-1}), d(fgx_{n-1}, x_n, fgx_{n+p-1})$$
$$d(fgx_{n-1}, fgx_n, fgx_{n+p-1}),$$
$$\rho(gx_{n-1}, gx_n, gx_{n+p-1})\}]$$
$$\leq \phi [\max \{d(x_{n-1}, x_n, xn_{+p-1})$$
$$d(x_{n-1}, x_{xn}, x_{n+p}), d(x_n, x_n, x_{n+p})$$
$$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-1}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p})\}] \quad 2.1$$

Again from the in equality

We get

$$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}), \rho(gfy_{n-1}, gfy_n, gfy_{n+p-1})$$
$$\leq \phi [\max \{\rho(y_{n-1}, y_n, yn_{+p-1}),$$
$$\rho(y_{n-1}, gfy_n, gy_{n+p-1}), \rho(gfy_{n-1}, y_n, gfy_{n+p-1}),$$
$$\rho(gfy_{n-1}, gfy_n, y_{n+p-1}), \rho(fy_{n-1}, fy_n, fy_{n+p-1})\}]$$
$$= \phi [\max \{\rho(y_{n-1}, y_n, yn_{+p-1})$$
$$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p}), \rho(y_n, y_n, y_{n+p})$$
$$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1}), \rho(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n-p})\}]$$
$$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}) = \phi [\max \{\rho(y_{n-1}, y_n, yn_{+p-1})$$
$$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1})$$
$$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p-1})\}] \quad 2.2$$

But

$$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}) = (fgx_{n-2}, fgx_{n-1}, fgx_{n+p-2})$$
$$\leq \phi [\max \{d(x_{n-2}, x_{n-1}, xn_{n+p-2}),$$
$$d(x_{n-2}, fgx_{n-1}, fgx_{n-2}), d(fgx_{n-2}, x_{n-1}, fgx_{n+p-2}),$$
$$d(fgx_{n-2}, fgx_{n-1}, x_{n+p-2}), \rho(gx_{n-2}, gx_{n-1}, gx_{n+p-2})\}]$$
$$= \phi [\max \{d(x_{n-2}, x_{n-1}, xn_{+p-2}),$$
$$d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1}), (x_{n-1}, x_{n-1}, x_{n+p-1}),$$
$$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2}), \rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1})\}]$$
$$d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-1}) \leq \phi[\max\{d(x_{n-2}, x_{n-1}, xn_{n+p-2}),$$
$$d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1}) d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2}),$$
$$\rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1})\}] \quad 2.3$$

* Shri Sitaram Jaju Govt. Girls College, Neemuch (M.P) INDIA

Similarly
$d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p}) \le \phi[\max\{d(x_{n-2}, x_n, xn_{+p-1}), d(x_{n-2}, x_{n+1}, x_{n+p}), d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p}), d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n+p-1}), \rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p})\}]$ 2.4

$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-1}) \le \phi[\max\{d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2}), d(x_{n-1}, x_{n+1}, x_{n-p}), d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-2}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1})\}]$ 2.5

$d(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1}) \le \phi[\max\{d(y_{n-2}, y_{n-1}\ yn_{+p-2}), \rho(y_{n-2}, y_n, y_{n+p-1}), \rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-1}), d(x_{n-2}, x_{n-1}, x_{n+p-2})\}]$ 2.6

$\rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p}) \le [\max\{\rho(y_{n-2}, y_n, y_{n+p-1}), \rho(y_{n-2}, y_{n+1}, y_{n+p}), \rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p}), \rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p-1}), d(x_{n-2}, x_n, x_{n+p-1})\}]$ 2.7

And
$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1}) \le \phi[\max\{\rho(y_{n-1}, y_n, y_{n+p-2}), \rho(y_{n-1}, y_{n+1}, y_{n+p-1}), \rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1}), d(x_{n-1}, x_n, x_{n+p-2})\}]$ 2.8

Substituting the value from (2.2), (2.3), (2.4) and (2.5) in (2.1) we obtain
$(x_n, x_{n+1}, x_{n+p}) \le \phi^2[\max_{\alpha,\beta,\gamma}\{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma), (\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma)\}]$ 2.9

Similarly substituting the value from (2.4), (2.6), (2.7) and (2.8) in (2.2) we get
$d(y_n, y_{n+1}, y_{n+p}) \le \phi^2[\max_{\alpha,\beta,\gamma}\{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma), (\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma)\}]$ 2.10

Where
$n-2 \le \alpha \le n$, $n-1 \le \beta \le n+1$ and $n+p \le \gamma \le n-1$
Continuing this process, it follows that
$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-1}) \le \phi^2[\max_{\alpha,\beta,\gamma}\{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma), (\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma)\}]$ 2.11

And
$d(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1}) \le \phi^2[\max\{d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma), (\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma)\}]$ 2.12

Where
$1 \le \alpha \le n,\ 2 \le \beta \le n+1,$ and $3 \le \gamma \le n+p$

Let $\{\max(d(x_\alpha, x_\beta, x_\gamma), (\rho(y_\alpha, y_\beta, y_\gamma)\} = \delta$
Then it follows from (2.11) and (2.12)
$d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p-1}) \le \phi^n \delta$ and 2.13

$\rho(y_n, y_{n+1}, y_{n+p-1}) \le \phi^n \delta$ 2.14
Now using the property (iv) we obtain

for $q \in N$
$d(x_n, x_{n+p}, x_{n+p+q}) \le d(x_n, x_{n+1}, x_{n+p+q}) + d(x_n, x_{n+p}, x_{n+1}) + d(x_{n+1}, x_{n+p}, x_{n+p+q})$
$\le 2\phi^n \delta + d(x_{n+1}, x_{n+p}, x_{n+p+q})$
$\le 2\phi^n \delta + d(x_{n+2}, x_{n+p+q}) + d(x_{n+1}, x_{n+p}, x_{n+2}) + d(x_{n+2}, x_{n+p}, x_{n+p+q})$
$\le 2\phi^n \delta + 2\phi^{n+1} \delta + d(x_{n+2}, x_{n+p}, x_{n+p+q})$
$\le 2\phi^n \delta + 2\phi^{n+1} \delta + 2\phi^{n+2} \delta + \ldots\ldots\ldots + d(x_{n+p-1}, x_{n+p}, x_{n+p+q})$
$\le 2\delta(\phi^n + \phi^{n+1} + \phi^{n+2} + \ldots\ldots\ldots + \phi^{n+p-2}) + d(x_{n+p-1}, x_{n+p}, x_{n+p+q})$

$\le 2\delta$

$$2\delta\left\{\frac{\phi^n}{(i-\phi)}\right\}\phi^{n+p-1}$$

$\to 0$ as $n \to$

Thus $\{x_n\}$ and $\{y_n\}$ are Cauchy sequence.
Since X and Y are complete 2-metric spaces,
$\sum_{i=n}^{\infty} \phi^{p+q} + \phi^{n+p-1}$
therefore, let $\{x_n\}$ and $\{y_n\}$ converge to the point's u and v respectively.
i-e $\lim_{n \to \infty}(x_n) = u = \lim_{n \to} fy_n = fv = u$
and
$\lim_{n \to}(y_n) = v = \lim_{n \to} gh_n = gu = v$
Since f and g are continuous, there product fg and gf are also continuous.

Therefore
$u = \lim_{n \to} fgx_{n-1} = fg \lim_{n \to} x_{n-1} = fgu$
i-e u is the common fixed point of fg
Similarly
$v = \lim_{n \to} gfy_{n-1} = fg \lim_{n \to} y_{n-1} = gfv$
i-e v is the common fixed point of gf

Hence fg has a common fixed point u in X and g has a common fixed point v in Y.

References -

1. R.K. Jain fixed point on three metric spaces. Bull Cal.Maths. Soc. 87 (1995), 463-466
2. B.E. Rhoade, A fixed point theorem for generalized metric spaces. Internet. J. Math. And Math.Sci. 19 (3) (1996), 457-460.

A Research Paper on 'A Survey of Virtual keyboard '

Ushmita Nigam *

Abstract - Computing is now not limited to desktops and laptops, it has found its way into mobile devices like palm tops and even cell phones. But what has not changed for the last 50 or so odd years is the input device, the good old QWERTY keyboard. Virtual Keyboard uses sensor technology and artificial intelligence to let users work on any surface as if it were a keyboard. Virtual Devices have developed a flashlight-size gadget that projects an image of a keyboard on any surface and lets people input data by typing on the image. The Virtual Keyboard uses light to project a full-sized computer keyboard onto almost any surface, and disappears when not in use. Used with Smart Phones and PDAs, the VKEY provides a practical way to do email, word processing and spreadsheet tasks, allowing the user to leave the laptop computer at home.

Introduction - The virtual keyboard technology is the latest development. The virtual keyboard technology uses sensor technology and artificial intelligence to let users work on any flat surface as if it were a keyboard. Virtual Keyboards lets you easily create multilingual text content on almost any existing platform and output it directly to PDAs or even web pages. Virtual Keyboard, being a small, handy, well-designed and easy to use application, turns into a perfect solution for cross platform text input. The main features are: platform-independent multilingual support for keyboard text input, built-in language layouts and settings, copy/paste etc. operations support just as in a regular text editor, no change in already existing system language settings, easy and user-friendly interface and design, and small file size. It then gives a description about the virtual keyboard technology and the various types of virtual keyboards in use. Finally the advantages, drawbacks and the applications are discussed.

History Of Virtual Keyboard -The physicist discovered laser rays and sensors of the same rays, which are getting more sophisticated and more powerful. If we put these two parts of science in one, we will have more than hundred products which are making our life easier, more successful and more secured. Products like this are IR, Bluetooth transmitters and receivers, optical mouse, LCD Projectors, Large Video Beams and the latest gadget of the technology called Virtual Laser Keyboard. This non-physical keyboard is implementing optics from physics and microcontrollers form electronics and programming. The main difference is that the Virtual Laser Keyboard physically is not present. An optical virtual keyboard has been invented by IBM engineers in 199

Qwerty Keyboard

Introduction -

QWERTY is the most common keyboard layout on English-language computer. It takes its name from the first six characters seen in the far left of the keyboard's top first row of letters.

Inside the keyboard -

The processor in a keyboard has to understand several things that are important to the utility of the keyboard, such as:

1. Position of the key in the **key matrix**.
2. The amount of **bounce** and how to filter it.
3. The speed at which to transmit the **typemastics**.

Fig3.1 The microprocessor and controller circuitry of a keyboard.

The key matrix is the grid of circuits below the keys. Pressing the key, bridges the gap in the circuit, allowing a tiny amount of current to flow through. The processor monitors the key matrix for signs of continuity at any point on the grid. When it finds a circuit that is losed, it compares the location of that circuit on the key matrix to the character map in its ROM. The character map is basically a comparison chart for the processor that tells it what the key at x,y coordinates in the key matrix represents. If more than one key is pressed at the same time, the processor checks to see if that combination of keys has a designation in the character map

Fig3.2 A look at the key matrix.

Keyboards rely on switches that cause a change in the current flowing through the circuits in the keyboard. When the key presses the key switch against the circuit, there is usually a small amount of vibration between the surfaces, known as **bounce**. The processor in a keyboard recognizes that you pressing the key repeatedly do not cause this very

* Lecturer (Computer Deptt.), P.G. College, Mandsaur (M.P) INDIA

rapid switching on and off. Therefore, it filters all of the tiny fluctuations out of the signal and treats it as a single key press. If you continue to hold down a key, the processor determines that you wish to send that character repeatedly to the computer. This is known as **typemastics**. typically ranging from 30 characters per second (cps) to as few as two cps.

Virtual Keyboard -Alternatives came in the form of handwriting recognition, speech recognition, abcd input etc. But they all lack the accuracy and convenience of a full-blown keyboard. Speech input has an added issue of privacy. Even folded keyboards for PDAs are yet to catch on. Thus a new generation of virtual input devices is now being paraded, which could drastically change the way we type. Virtual Keyboard uses sensor technology and artificial intelligence to let users work on any surface as if it were a keyboard. Virtual Devices have developed a flashlight-size gadget that projects an image of a keyboard on any surface and lets people input data by typing on the image. The device detects movement when fingers are pressed down. Those movements are measured and the device accurately determines the intended keystrokes and translates them into text. The Virtual Keyboard uses light to project a full-sized computer keyboard onto almost any surface, and disappears when not in use. The translation process also uses artificial intelligence. Once the keystroke has been decoded, it is sent to the portable device either by cable or via wireless.The report first gives an overview of the QWERTY keyboards and the difficulties arising from using them

Fig 4.1: Virtual keyboard used in PDA's

Working Of Virtual Keyboard

1.1 Diagram of working of VKB:

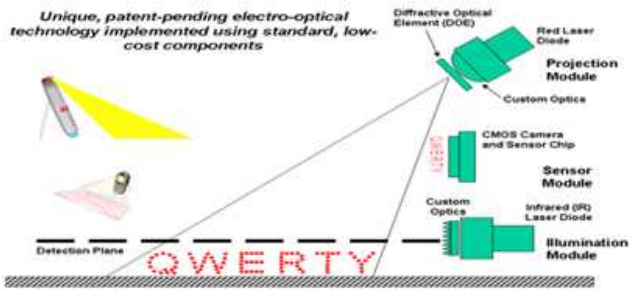

Fig5.1 Working of Virtual Keyboard

These are virtual keyboards that can be projected and touched on any surface. The keyboard watches your fingers move and translates that action into keystrokes in the device. Most systems can also function as a virtual mouse.

1.2 Virtual Keyboard Technology

This system comprises of three modules,

1.2.1 Sensor module:

Fig 5.2: Sensor Module

The Sensor Module serves as the eyes of the Keyboard Perception technology. The Sensor Module operates by locating the user's fingers in 3-D space and tracking the intended keystrokes.

1.2.2 IR-light source:

Fig 5.3: IR-light source

An invisible infra-red beam is projected above the virtual keyboard. Finger makes keystroke on virtual keyboard. This breaks infrared beam and infrared light is reflected back to projector. The Sensor chip in the sensor module determines where the infrared beam was broken. Detected co-ordinates determine actions or characters to be generated.

1.2.3 The pattern projector:

Fig 5.4: Pattern projector

The Pattern Projector or optional printed image presents the image of the keyboard of the system. This image can be projected on any flat surface. The projected image is that of a standard 'QWERTY' key-board, with all the keys and control functions as in the

2.3 Different Types

There are different types of virtual keyboards, manufactured by various companies which provide different levels of functionalities. The different types of virtual keyboards are:

2.3.1 Developer VKB

Fig 3.5: Developer VKB

Its full-size keyboard also can be projected onto any surface and uses laser technology to translate finger movements into letters. Working with Siemens Procurement Logistics Services Rechargeable batteries similar to those in cell phones power the compact unit. The keyboard is full size and the letters are in a standard format. As a Class 1 laser, the output power is below the level at which eye injury can occur.

2.3.2 Canesta

The Canesta Keyboard, which is a laser projected keyboard with which the same laser is also used to scan the projection field and extract 3D data. Hence, the user sees the projected keyboard, and the device "sees" the position of the fingers over the projected keys. They also have a chip set, *Electronic Perception Technology,* which they supply for 3rd parties to

develop products using the projection/scanning technology. Canesta appears to be the most advanced in this class of technology and the only one who is shipping product. They have a number of patents pending on their technology.

Fig 5.6: Canesta Keyboard

2.3.3 Sense board Technologies

The sensing transducer is neither a laser scanner nor a camera. Rather, it is a bracelet-like transducer that is worn on the hands which captures hand and finger motion. In fact, as demonstrated, the technology does not incorporate a projection component at all; rather, it relies on the user's ability to touch type, and then infers the virtual row and key being typed by sensing relative hand and finger movement. The system obviously could be augmented to aid non-touch typists,

Fig 5.7: Senseboard Technologies

2.3.4 Kitty

KITTY, a finger-mounted keyboard for data entry into PDA's, Pocket PC's and Wearable Computers which has been developed at the University of California in Irvine.

Fig 5.8: Kitty

Specifications

Keyboard Projection:

Light source Red diode laser
Keyboard layout 63 key
Keyboard size 95 x 95mm
Keyboard position 60mm from VKB unit
Required Projection surface Non-reflective, opaque flat surface

Keyboard Sensor:

Detection Rate Up to 400 characters per minute
Detection algorithm Multiple keystroke support
Effective keystroke Approximately 2mm
Operating surface Non-reflective, opaque flat surface
Visibility Any firm flat surface with no protrusions greater than 1mm

Bluetooth: Bluetooth SpecBluetooth v1.1 class 2 Range of Frequency2.4 GHz Spectrum Transmission range9m

Electrical: Power Source3.6V rechargeable lithium-ion battery Battery Capacity>120 minutes continuoustyping Charge MethodIncluded 100-240V AC WallAdapter

Dimensions: Approximately 35 x 92 x 25mm (1.38" x 3.6" x 1")

Advantages -1. It can be projected on any surface or you can type in the plain air.

2. It can be useful in places like operation theatres where low noise is essential.
3. The typing does not require a lot of force. So easing the strain on wrists and hands.
4. The Virtual Keyboard is not restricted to the QWERTY touch-typing paradigm, adjustments can be done to the software to fit other touch-typing paradigms as well.
5. No driver software necessary, It can be used as a plug and play device.
6. High battery life. The standard coin-sized lithium battery lasts about eight months before needing to be replaced.

Drawbacks -

1. Virtual keyboard is hard to get used to. Since it involves typing in thin air, it requires a little practice. Only people who are good at typing can use a virtual keyboard efficiently.
2. It is very costly ranging from 150 to 200 dollars.
3. The room in which the projected keyboard is used should not be very bright so that the keyboard is properly visible.

Applications -

1. High-tech and industrial Sectors
2. Used with Smart phones, PDAs, email, word processing and spreadsheet tasks.
3. Operation Theatres.
4. As computer/PDA input.
5. Gaming control.
6. TV remote control.

Conclusion - Projection key boards or virtual key boards claim to provide the convenience of compactness with the advantages of a full-blown QWERTY keyboard. The company's frustrated with trying to put information into a handheld but doesn't want to carry a notebook computer around.

Canesta appears to be the most advanced in this class of technology and the only one who is shipping product. Other products are KITTY, a finger-mounted keyboard for data entry into PDA's, Pocket PC's and Wearable Computers and KITTY, a finger-mounted keyboard for data entry into PDA's, Pocket PC's and Wearable Computers. Thus virtual keyboards will make typing easier, faster, and almost a pleasure.

References -

1. http://www.newscom.com/cgi-bin/prnh.html
2. http://www.canesta.com/
3. http://www.procams.org/
4. http://www.billbuxton.com/3state.html
5. http://www.smarttech.com/
6. http://www.3m.com/us/office/meeting/product_catalog/wd.html
7. http://www.wikipedia.org/
8. http://www.ehow.com/
9. http://www.bluetoothlaserkeyboard.net/virtual.html
10. https://www.virtual-laser-keyboard.com/order-form.asp
11. https://www.microsoft.com/vkb/
12. http://www.howstuffworks.com/
13. http://www.engineeringseminar.org/

Some Ethnomedicinal Plants Used to Different Diseases by Local People of Vidisha District of Madhy Pradesh

Dr.Sarita Ghanghat *

Abstract- plants have been used as a source medicines since ancient times . these medicines are safe and environment friendly. According to WHO about 80% of the world's population depends on traditional medicine for their primary health care . Currently the government of India. Realizing the value a mission of documenting the traditional knowledge. The present paper on 10 selected Ethno- medicinal plants (belonging to 8 families) of vidisha district, with correct botanical identification , Botanical names, Family,Local names, parts used in diseases, by tribal and rural population.
Key Words - Ethno-medicinal, Tribals, rural, Traditional medicine,Health care.

Introduction- For centuries plants have been an important source of drugs. In India medicinal plants have long been used to treat different kinds of disease. Today there is an increasing desire to unravel the role of ethno-medicinal studies in trapping the centuries old traditional flok knowledge as well as in searching new plant resources of food, drug etc.(jain,1987,1991).

People living in the developing countries rely quite effectively on traditional medicine for primary health care (Sullivan and shealy 1997;singh,2002). Indian tradition medicine is based on different system such as Ayurveda , Siddha and Unani used by various communities (Gadgil,1996).

Vidisha district is one of the most important and centrally located district of M.P. The total area of the district is about 7,433sq K.M. which lies between 23º21'and 24º22'N latitude and 77º15.30'and 78º18'E longitude forming eastern part of Malwa region. The forest cover is about two fifth of the total area in the district.(fig.1) Vidisha district is inhabited by tribals like Shariya, Bhil, Meena .The area is very rich in indigenous ethno-medicinal plants . These are collected by local inhabitant for the preparation of medicines. Presual of literature (jain 1995, ghangat and sahu 2006,) revealed that no specific study on ethno-medicinal uses of plants in vidisha district has been carried out.

Material And Methods - The ethno-botanical study was conducted in 2006-2007. extensive field trips were organized for collecting the plant species and data using an integrated approach of botanical collection, group discussion, interviews and questionnaires .Help of local medical practitioners was also taken . plants were identified by referring to Flora of Bhopal by Oommachan (1977) and Flora of M.P. from wikipedia .

Enumeration- In the following enumeration, plant names have been arranged alphabetically in disease wise.(Table-1,seen in next page)

Result and Discussion- The plant parts used for medical preparation were bark, flowers, rhizomes, root, leaves, seeds, and whole plants ,The paper present a brief account of the uses of various ethno-medicinal plants parts against the diseases, like skin diseases , jaundice, piles, bronchitis, diabetes, snakebite, diseases by the people of vidisha district.

Fig.1 Map(vidisha district)

Tribals in Madhya Pradesh

1.Chircita

2.Adusa

3.Satabar

* Department of Botany, Govt.S.G.S.P.G. College, Ganjbasoda (M.P) INDIA

4. Amaltas 5.Sarpgandha

6.Gular

Acknowledgment- The author express thanks to knowledgeable Persons who co- operated in sharing their knowledge at the time of study.

References -

1. Gudgil ,M ; 1996 Documentriy diversity : An experiment curr.ci ; 70 (1) : 36
2. Ghanghat,Sarita and Sahu, Brajesh (2006) Medicinal climbers of Vidisha District . I.J.Applied Life Science.,Vol 1,no 1,pp 24-25.
3. Jain. s. k. 1987. A manual of Ethnobotany. Scientific Publishers , Jodhpur , India.ISBN 8185046603
4 . Jain , s. k., 1991 Dictionary of Indian Flok medicine and Ethnobotany .Deep publication, New Delhi. ISBN : 8185622000.
5. Jain,S.K.(1995): Ethnobotanical studies around vidisha district . Ph-D Thesis. Barkatullah University, Bhopal.
6. Panda.T,2010.preliminary study of ethnomedicinal plant used of cure different diseases in coastal district of Orissa India 1(2) :67 -71
7. Rout ,S.D. Panda,T.,Mishra,N .,(2009) Ethno medicinal plants used to cure different diseases by Tribals of Mayurbhanj district of North Orissa .
8. Sahu, S.C., Dhal,N.K and Mohanty, R.C.,(2010) "Potential Medicinal Plants used by the Tribal of Deogarh District,Orissa ,India. Ethno med,4(1):53-61.
9. Sullivan,K.and C.N.Shealy ,1997 Complete Natural Home Remedies.Element Book Limited, Shaftsbury, U.K.
10. Oommachan, M. (1977): The flora of Bhopal J.K. jain Brothers, Bhopal .

S.No	Botanical Name	Family	Local Name	Used part of the plant
1	*Achyranthus aspera* L.	Amaranthaceae	Chircita	Leaves extract is externally applied to stop the bleeding of wounds.
2	Adohatoda vasicaNees.	Acanthaceeae	Basa or Adusa	Fresh leaf is taken orally is effective for skin disease.
3	Azadirachta indica A.juss.	Meliaceae	Neem	About 20 gm of Bark is boiled in 1 liter of water bath with the boiled water will care skin diseases.
4	Asparagus racemosus Willd.	Liliaceae	Satabar	Root poweder as a tonic.
5	Cassia fistula Linn.	Cacelpiniaceae	Amaltas	Leaves juice in skin diseases.
6	Ficus racemosa Linn.	Moraceace	Gular	Fresh juice of leaves is given with water for about 10 days to treat to gastro intestinal problems.
7	Ficus religiosa Linn.	Moraceae	Pipal	Bark 50 gm crushed with 5 gm curcuma longa powder is applied externally for skin
8	Rauvolfia serpentine L.kurz.	Apocynaceae	Sarpagandha	Leaf juice of tend or leaves is give on empty stomach pain.
9	Syzygium cumini L.	Myrtaceae	Jamun	½ teaspoon seed powder mixed with honey or gur is taken twice daily for 20-30 days from dibities problems.
10	Terminalia chebula Retz.	Combretaceae	Harra	Seed paste is applied on plies to stop bleeding and to get relief from pain.

Uses of Ethno Medicinal Plants in Some Disease in Ganj Basoda Tehsil (District - Vidisha)

Dr. Kanchan Vaidya *

Abstract - Present paper deals with 25 species. That are used by tribals people in cure Diabetes Ashhma and allergy, Arthritis, Cancer and Heart disease in Ganj Basoda Tehsil, Vidisha District (M.P.)

Key Words - Ethno Medicinal Plants, Tribals Disease, Ganj Basoda.

Introduction - The Use of Medicinal Plants for curing disease in human society is probably as old as man himself. Recently there has been a popular awareness in the study of medicinal plants. Traditional medicine has been used in some communities for thousands of years. Traditional medicine is the sum total of knowledge, skills and practices based on the theories, beliefs and experiences indigenous to different cultures that are used to maintain health, as well as to prevent diagnose improve or treat physical and mental illnesses. (Nehra 2014)

The revival of interest in natural drugs, Specially there drived from plants, started in the last few decades mainly because of the widespread belief that green medicine are healthier and safer than the synthetic ones.

Ganj Basoda Tehsil possesses enormous floristic and ethanic diversihes associated with its cultural heritage and indigenous knowledge about medicinal plants and their utilization to cure various human disease.

The present paper highlights some of the potential medicinal plants species that are used as traditional herbal remadies by the tribal saharia, Bhil, Mena and Banjara people of Ganj Basoda Tahsil (Vidisha) M.P.

Material and methods - We have made survey on 25 medicinal plants which used in different disease like diabetes, asthma and Allergy, Arthritis, Cancer, Heart Disease by tribal and rural people of Ganj Basoda (Vidisha Distt.) We have discussed by arranging meetings and dialogues with tribal and rural people, about medicinal value of different medicinal plants.The data of medicinal plants were recorded and compared according to standard procedures. The gathered information was cross – checked and present here.

Result and Discussion -

Medicinal Plants used in Diabetes - Now a days diabetes become a common human problem across the world specially in the rich and upper middle class with rich food habits and sedentary life associated with modern life styles. Diabetes is a silent killer and if not under control can damage all body organs like heart liver, brain, kidneys.

Tinospora cardifolia, Azadirecta Indica, Aegle marmelos, syzygium cuminii have been traditionally used in India for treatment of diabetes mellitus (Rana 1994) *Allium cepa* (onion) is the common spice was recognized as an effective herbal drug for the treatment diabetes during ancient egyption times it has been experimentally proved to have blood sugar lowering properties Brassica oleracea (cabbage) and *lactuca sativa* (leltuce) also have hypoglycaemic as well as hyperglycaemic principles in them the dried seed of *trifolium alerandrinum* (Clover) has been reported to have hypoghycaemic effects that are clinically comparable to those of the synthetic drugs 'tolbutamide' and acetoheseanxamide' (Ayensu 1984).

The chemical gymnernic acid found in the leaves of *gymnema Sylvester* rejuvenates the bela cells of the pancreas to produce indigenous insulin in diabetic rates (chakarborty 1988) Gupta, et al 1967 reported on indigenous insulin secretion and glucose uptake in diabetic rales by the stem juce of *Tinospora cardifolia.*

Medicinal Plants used in Ashma and Allergy - Ashthma and allergy diseare have become very common all over the world. This is mainly due to some allergens in the environment which may be natural or man made in the rural and tribal areas of India have been using *Adhatoda vasica* (Adusa) *Glycyrrhiza glabra* (Mulathy), *Piper nigrum* (Kalimirch), *Zingiber officinalis* (Zinger) *Ocimum scinctum* (Tulsi) *withania somnifera* (Ashvagandha) C*alotropis procera* (Aak) for preparation of drugs agains asthma. The ash from the flowers and milky later of calotropis was found to be very effective (Nehra 2014)

Medicinal Plants Used in Arthritis - Now a days maximum people phase a serious problem is arthiritis. Arthiritis become a common human problem all over the world, but especially among the affluent societies and after have a crippling effect in old age. In the rural and tripes regions of Vidisha distt people being using *withania somnifera* (Ashwagandha), *Metha arvensis* for treatment of all body pains including.

Medicinal Plants used in cancer - Now a days many people fight from a seviour disease cancer. Cancer associated with modern living and lifestyle for which modern medicine has very little to offer. The real answer lies with the revival of traditional herbal medicine and search for more biochemical component which can abnormally growing cells and tissues in the human body.

* **Guest Faculty (Botany) Govt. S.G.S. P.G. College, Ganj Basoda, Vidisha (M.P) INDIA**

Catharanthus roseus (Syn Vinca rosea) provide the valuable weapons vincristine' and vinblastin to fight leukaernia in children. More plants from the traditional medicines of Vidisha District have come to light have great potential for combalting cancer. These are W*ithania somnifera, Argemone maxicana Bahunia purpurea*, (Chowdhary 1988) reported chemical compounds withanolide-D' and withaferin-A' from the leaves of Withania somniferous which have significant anti-tumor activity in vivo against sarcoma 180 cells in mice they also inhabit RNA synthesis in them.

Plants used in Heart Disease - Heart disease become a very common problem in humans *Terminalia arjuna, Terminalia chebula, callotropies procera , Aegle marmelos* and *Ocimum sanctum* have been used traditionally in Vidisha District for treatment of all kinds of heart disease. Some of them have gained a great reputation as heart stimulants and for increasing cardiac outflow.

Treminalia arjuna and O*cimum sanctum* have gained importance in the treatment of ischernic heart disease. The cardiac output increases without offecting the heart rate or rhythm (VHAI 1998).A herbal drug Encording prepared from the plant found in vidisha district *Thevetia nerifolia*. Is being used in insufficiency of the heart amond other topical plants *Terminalia chebula* is a cardiotonic and has anti- hypertensive principles.

Conclusion - These useful medicinal plants need protection more cultivation in the present context. So that the tribal people may be benefited and our valuable india flora may also survive.

References -

1. Ayensu, E.S. 'Medicinal Plant research in the arab studies, Third congress of the Arab Biologist Amman, University of Jordddan 1984.
2. Bhattacharjee, S.K. and De, L.C. (2005) Medicinal herbs and flowers; Aavishkar pub, jaipur (Raj)
3. Chakraborty - T. Indigenous drugs on the development of modern medicin, paper at the national symposium on Development of Indigenous Drugs in India, New Delhi, April 8-10, 1988.
4. Chowdhary, J.R. 'Anti-Cancer agents from the Indian medicinal plants; paper at the national symposium on Development of Indigenous Drugs in India, New Delhi, April 8-10, 1988.
5. Gupta, S.S. (1967), Anti diabetic effects of *Tinospora Cordifolia*, part I' Indian. J. Med. Res. 55; 733-745.
6. Nehra, S., (2014), 'Plant derive drugs and herbal medicines in healthcare' in herbal folk medicine pointer pub., New Delhi.
7. Prajapati, N.D., Purohit, S.S., Sharma, A.K. and kumar, T., (2007) A hand book of Medicinal plants, A complete source Book, Agrobios (India)
8. Rana, T.S. 'Some reports on the indigenous herbal remedies for diabetes mellitus from india' IV ICE Lucknow, November 17-12, 1994.
9. Shukl, P. (2008), Medicinal Plants of India Pointer Pub. Jaipur (Raj)
10. VHAI, (1998), Medicinal Plants of India New Delhi, Voluntary Health. Association of India.

****

Phenolic Compounds in Plant

Usha Sahu *

Abstract - phenolics are another large class of secondary metabolites. It is derived from phenylalanine. It synthesized primarily through the Shikimic acid pathway and the Acetic acid pathway. Plant phenolics may be divided into performed and induced phenolics. It categorized into common, phyto-alexin and phenol oxidizing enzyme. The role of plant phenolics in resistance against fungi is more dynamic. The accumulation of phenolics and phyto-alexin is considered as a major defense mechanism. The phenol oxidizing enzymes acts as fungi toxic substance in the host plants. An important aspect of determining the role of phyto-alexin in resistance is their temporal and spatial distribution after pathogen attack. Phenolic acids, flavonoids and tannins are well known potential antioxidant. Phenolics compounds usually possess different anti-oxidant activity potentials.

Keywords - Phenolic, common, phyto-alexin and phenol oxidizing enzyme, the role of phyto-alexin in defense

Introduction - Plant produce a high diversity of natural products or secondary metabolites with a prominent function in the protection against predators and microbial pathogens on the basis of their toxic nature and repellence to herbivores and microbes and some of which are involved in defense against abiotic stress and also important for the communication of the plants with other organisms and are insignificant for growth and developmental processes.[9] Plant secondary metabolites are divided into 3 main categories that are Tarpens, Phenolic compound and nitrogen containing secondary metabolites. The number and variety of Phenolic compound found in plants is quite large and include the anthocyanins, leuco- anthocyanin , anthoxanthines, glycosides, sugar esters of Phenolic acid, counarin derivatives and several other. Plants need Phenolic compounds for pigmentation, growth, reproduction, resistance to pathogens and for many other functions.[2] Several classes of phenolics have been categorized on the basis of their basic skeleton: C_6, C_6-C_1, C_6-C_2, $(C_6$-C_3-$C_6)_n$ etc.. Generally the role of Phenolic compounds in defense in related to their antibiotic, anti-nutritional or unpalatable properties.[6] Besides their involvement in plant – animal and/ or plant – microorganism relationships. Flavonoids are one of the largest classes of phenolics.

Phenolic Compound : - Phenolics are another large class of secondary metabolites produced by plants to defend themselves against pathogen. The most abundant classes of secondary Phenolic compound in plant are derived from phenylalanine via elimination of an ammonia molecules to form annamic acid. Generally the Phenolic compounds are synthesized primarily through the shikimic acid pathway and the acetic acid pathway.[1] Phenolics usually accumulate in the central vacuoles of guard cells and epidermal cells as well as sub-epidermal cells of leaves and shoots. Some phenolics are found covalently linked to plant cell wall; other occurs in waxes or on the external surface of plant organs.

Plant phenolics are normally soluble in polar organic solvents. Most Phenolic glycosides are water soluble but the corresponding aglycones are usually less so. Some phenolics are solubilized in sodium hydroxide (NaOH) and sodium carbonate (Na_2CO_3) but in alkaline medium their oxidation is enhanced and therefore treatment with alkaline solvents should either be performed under N2 or preferably avoided. Phenolics with only few hydroxyl groups are soluble in ether, chloroform, ethyl acetate, methanol and ethanol. Methanol, ethanol, water and alcohol water mixture are most commonly used for dissolving Phenolic compounds for analytical purpose.[5]

All Phenolic compounds exhibits intense absorption in the UV region of the spectrum and those that are coloured absorbed strongly in the visible region as well. Each class of Phenolic compounds has distinctive absorption characteristics. Example – phenols and Phenolic acid in the range of 250 – 290 nm; cinnamic acid derivative in the range of 290 – 330nm.

Some of the Phenolic compound; taking part in defense of plants; are found both in healthy as well as in diseased plants. Plant phenolis may be divided in two classes:

1. **Performed phenolics** that are synthesized during the normal development of the plant tissues.
2. **Induced phenolics** that are synthesized by plants in response to physical injury, infection or when stressed by suitable elicitors such as heavy metal salts, UV irradiation, temperature etc.. Induced phenolics may also be constitutively synthesized but additionally their synthesis is often enhanced under biotic or abiotic stress.[8]

These Phenolic compounds can be categorized into simple or common and phyto-alexin.

· Common Phenolic Compound: - The Phenolic compounds which are toxic to pathogens are produced at a faster rate after infection in a resistant variety. Example:-

* **Asst. Prof. of Botany, Govt. Auto. P.G. Girls College of Excellence, Sagar (M.P.) INDIA**

1. Chlorogenic acid in potato attacked by *Ceratocystis fimbriata.*
2. Caffeic acid and Umbelliferon are found in sweet potato infected with the fungus *Ceratocystis fimbriata.*
3. Orthodiphenols and scopoletin are found in potato affected by *Phytophthora infestans.*
4. In date palm tree roots, cell wall found hydroxyl benzoic acid and sinapic acid increase 11 – 12 times as much in cultivars resistant to *Fusarium* than they did in susceptible cultivars.

There are several examples of constitutive phenolics acting as feeding deterrent for herbivores and inhibitors of enzymes.

- **Phyto-alexins-** The Phenolic compound which are not presented in healthy plants but are produced upon stimulation of a plant by a pathogen or by a mechanical or chemical injury known as phyto-alexins. Phyto-alexins are "**isoflavonoids"**. They are toxic antimicrobial substance produced in appreciable amounts in plant only after stimulation by various types of phyto-pathogenic micro-organism. They can also fungi-toxic substance. Most known phyto-alexins are toxic to and inhibit the growth of fungi pathogenic to plants but some are also toxic to bacteria, nematodes and other organisms. More than 300 chemicals with phyto-alexins like properties have been isolated from plant belonging to more than 30 families. Some of the better studied phyto-alexins include: -

1. **Ipomeamarone** is produced in sweet potato affected with the fungus *Ceratocystis fimbriata.* It has been synthesized through the acetate pathway. It acts as an inhibitor of electron transport and energy transfer reactions.
2. **Orchinol** is produced by orchids upon infection by the fungus *Rhizoctonia repens* and other mycorrhizal fungi. This is a strong fungitoxic substance against the mycelial growth of R. *repens.*
3. **Hircinol** is a derivative of Orchinol. It also has phyto-alexin like action. It also inhibits the growth of certain mycorrhizal fungi.
4. **Rishitin** has been isolated from resistant potato tubers infected with late blight fungus *Phytophthora infestans.* It possesses plant growth and fungal growth retarding properties and also has been isolated from potato leaves.
5. **Isocoumarin** is produced in the roots of carrot infected by the fungus *Ceratocystis fimbriata.* It inhibits the growth of this fungus in culture.
6. **Pisatin** is produced in pea pods with the infection of severa fungi. It has been isolated from the endocarp of attached pea pods inoculated with a non-pathogenic fungus *Monilinia fructicola or Ascochyta pisi.* It is a weak antibiotic with board spectrum. Production of pisatin is reduced at high temperature or anaerobic storage.
7. **Phaseolin** is similar to pisatin in function and chemistry. It is fungicidal at high concentration and fungistatic at low concentration against *Scerotinia fructigena.*

   Some other phyto-alexins are **Glyceolin** in s oybean, alfalfa & clover; **Camelexin** in *Arabidopsis thaliana;* **Gossypol** in cotton and **Capsidiol** in pepper; **Medicarpin** in alfafa.[4]

- Phenol Oxidizing Enzyme: - The most common enzyme found both in healthy and diseased plants are the phenol oxidizing enzymes such as Phenolases etc. They oxidize several Phenolic compounds in the presence of oxygen and result in the formation of complicated poly-phenols such flavonoids, tannins, lignins etc. on the removal of hydrogen they form various oxidation products of Phenolic compounds, the quinines, which are pigmented and held responsible for browning or discolouration of plant tissue.

The importance of poly- phenol oxidase activity in disease resistance probably stems from its property to oxidize Phenolic compounds to quinines which are often more toxic to micro-organism than the origin phenol. A complex interaction occurs during fruit ripening in which levels of lipoxygenase increase and breakdown diene, a compound that is present in young, immature fruit and is toxic to fungi. These events normally result in infection of the ripening fruit. In some fruit, however elicitors from non-pathogenic fungi stimulate production of Phenolic compound epicatechin which inhibits decreases degradation of the antifungal diene, thereby preventing decay of the ripening fruit by anthrcnose fungi. Another phenol oxidase enzyme "Peroxidase" is not only anti-microbial in itself and release highly reactive for Phenolic compounds into lignin like substance. These substances are then deposited in cell walls and papillae and interfere with the further growth and development of the pathogens[1]. The phenol oxidizing enzymes acts as fungi-toxic substance in the host plants. They such as phenolonidases, peroxidase and other may be responsible for increasing the resistance in several host plant. Active oxygen species may also be involved in host defense reactions through the oxidation of Phenolic compounds into more toxic quinines and also lignin like compounds.

Mechanism - The role of plant phenolics in resistance against fungi is more dynamic than their role against insects. Many Phenolic compounds inhibit hyphae development or they bind the enzymes released by the fungus during cell invasion. Many Phenolic compounds are potent inhibitors of many hydrolytic enzymes of plant pathogens. Lignification is a mechanism for disease resistant in plant. Lignin provides an excellent physical barrier against pathogen attack. During defense lignin or lignin like Phenolic compound accumulation was shown to occur in a variety of plant microbe interactions. An important aspect of determining the role of phyto-alexins in resistance is their temporal and spatial distribution after pathogen attack. In most cases the phyto-alexin are localized in the tissue beneath or very close to, the site of fungal or bacterial infection. The difference between susceptible and

resistance plants appears to be related to the rapidly of the host response including phyto-alexin induction. Phyto-alexin disrupt pathogen metabolism or cellular structure but are often pathogen specific in their toxicity.

The accumulation of phenolics and phyto-alexins such as **Medicarpin and Maackiain** is considered as a major defense mechanism frequently observed and well characterized in chickpea. Phyto-alexin is antimicrobial or fungi toxic substances produced by host pathogen interaction. Several fungi produce **â- Glycosidase** or to liberate the same from plant tissue. This production released fungicidal Phenolic substance that involved in defense mechanism. Most phyto-alexin elicitors are generally high molecular weight substances that are constituents of the fungal cell wall such as **Glucans, Chitosan, Glycoproteins and Polysaccharides.** The elicitor molecules are released from the fungal cell wall by host plant enzyme. Most such elicitors are non-specific they are present in both compatible and incompatible races of the pathogen. **Furanocoumarins** are Phenolic compounds produced by a wide variety of plants in response to pathogen or herbivore attack. They are activated by ultraviolet light and can be highly toxic to certain vertebrate and invertebrate herbivores due to their integration into DNA which contributes to rapid cell death.

Tannins are toxic to insects because they bind to salivary proteins and digestive enzymes including trypsin and chymotrypsin resulting in protein inactivation. Phenolics compounds usually possess different anti-oxidant activity potentials because of their Phenolic hydroxyl groups which can act as a hydrogen or electron donor. Phenolic acids, flavonoids and tannins are well known potential antioxidants.

Conclusion:- Plant phenolics are toxic for fungi pathogen and herbivores. It is produced not only in diseased tissues but also healthy tissues. It have also key role as the major red, blue and purple pigments as antioxidant and metal chelators as signaling agents both above and below ground between pant and other organisms and as UV light screen. Most of the pre-infectional secondary metabolites are significantly induced like phenolics and the division between constitutive and induced defense metabolites are not clear.

References-

1. Mehrotra R.S. “Plant Pathology” Defense Mechanism in Plant pp 169-170.
2. Pandey B.P. “Plant Pathology: Pathogen and Plant Disease” Defense Mechanism pp 84-86.
3. Agrios George N. “Plant Pathology” 5th edition Defense through production of secondary metabolites: phenolics pp 233-235.
4. Cumagun Christian Joseph R. “Plant Pathology” Novel Elicitors induce Defense Responses in Cut flower pp 85-113.
5. Attanzio V.,Lattanzio V.M.T. and Cardinali A. “Phytochemistry: Advance in research” 2006 Role of Phenolics in the resistance Mechanisms of Plants against Fungal Pathogens and Insects pp 23-67.
6. Freeman B.C. and Beattie G.A. 2008 An Overview of Plant Defenses Against Pathogens and Herbivores “ The Plant Health Instructor” (journal)
7. Li Jie Wen et al “Phenolic Compounds and Antioxidant Activities of *Liriope muscari* Molecules 2012,17,1797 – 1808 (journal)
8. Bennett N. Richard and Wallsgrove M. Roger Tansley Review No. 72 “Secondary Metabolities in Plant Defense Mechanisms” New Phytol (1994) 127, 617-633.
9. Mazid M, Khan TA, Mohammad F “Role of Secondary Metabolites in Defense Mechanisms of Plants” Biology and Medicine, 3(2) Special Issue 232- 249, 2011.

****

Aloe Vera And Its Medicinal And Traditional Uses

Prof. Shailendra Sisodiya * Prof. B.K. Rawat * *

Abstract - Safe drinking water remains inaccessible for about 1.2 billion people in world. About half the population in developing world, at any given time, is suffering with waterborne diseases due to biological contamination of drinking water. Unsafe water slows down economic and social development. Ill health in poor people caused by unsafe water further perpetuates poverty. Water purification is an ancient practice. Hindu and ancient Sanskrit writing recommend water treatment, such as filtration, boiling and straining. Cause and type of contamination is important for choice of water treatment process, system and technology to be used because there are various technologies which cater to the different needs of water purification The object of treatment is to make use of combination of physical, chemical and biological process to remove contaminants from water so as to make it fit for use. Along with technologies many devices are available in market to obtain safe water for consumption.

Key Words : Safe drinking water, Treatment technologies, Conventional methods, Solar energy

Introduction - Aloe vera is a succulent plant species that is found only in cultivation, having no naturally occurring populations, although closely related aloes do occur in northern Africa. The species is frequently cited as being used in herbal medicine since the beginning of the first century AD. Extracts from A. vera are widely used in the cosmetics and alternative medicine industries, being marketed as variously having rejuvenating, healing, or soothing properties. There is, however, little scientific evidence of the effectiveness or safety of Aloe vera extracts for either cosmetic or medicinal purposes, and what positive evidence is available is frequently contradicted by other studies.

Description - Aloe vera is a stemless or very short-stemmed succulent plant growing to 60–100 cm (24–39 in) tall, spreading by offsets. The leaves are thick and fleshy, green to grey-green, with some varieties showing white flecks on their upper and lower stem surfaces. The margin of the leaf is serrated and has small white teeth. The flowers are produced in summer on a spike up to 90 cm (35 in) tall, each flower being pendulous, with a yellow tubular corolla 2–3 cm (0.8–1.2 in) long. Like other Aloe species, Aloe vera forms arbuscular mycorrhiza, a symbiosis that allows the plant better access to mineral nutrients in soil.

Aloe vera leaves contain phytochemicals under study for possible bioactivity, such as acetylated mannans, polymannans, anthraquinone C-glycosides, anthrones, anthraquinones, such as emodin, and various lectins.

Aloeveera Taxonomy and etymology - The species has a number of synonyms: A. barbadensis Mill., Aloe indica Royle, Aloe perfoliata L. var. vera and A. vulgaris Lam. Common names include Chinese Aloe, Indian Aloe, True Aloe, Barbados Aloe, Burn Aloe, First Aid Plant. The species epithet vera means “true” or “genuine”. Some literature identifies the white-spotted form of Aloe vera as Aloe vera var. chinensis, however, the species varies widely with regard to leaf spots and it has been suggested that the spotted form of Aloe vera may be conspecific with A. massawana.The species was first described by Carl Linnaeus in 1753 as Aloe perfoliata var. vera, and was described again in 1768 by Nicolaas Laurens Burman as Aloe vera in Flora Indica on 6 April and by Philip Miller as Aloe barbadensis some ten days after Burman in the Gardener’s Dictionary.

Techniques based on DNA comparison suggest Aloe vera is relatively closely related to Aloe perryi, a species endemic to Yemen. Similar techniques, using chloroplast DNA sequence comparison and ISSR profiling have also suggested it is closely related to Aloe forbesii, Aloe inermis, Aloe scobinifolia, Aloe sinkatana, and Aloe striata. With the exception of the South African species A. striata, these Aloe species are native to Socotra (Yemen), Somalia, and Sudan. The lack of obvious natural populations of the species has led some authors to suggest Aloe vera may be of hybrid origin.

Distribution and Cultivation - The natural range of A. vera is unclear, as the species has been widely cultivated throughout the world. Naturalised stands of the species occur in the southern half of the Arabian Peninsula, through North Africa (Morocco, Mauritania, Egypt), as well as Sudan and neighbouring countries, along with the Canary, Cape Verde, and Madeira Islands. This distribution is somewhat similar to the one of Euphorbia balsamifera, Pistacia atlantica, and a few others, suggesting that a dry sclerophyll forest once covered large areas, but has been dramatically reduced due to desertification in the Sahara, leaving these few patches isolated. Several closely related (or sometimes identical) species can be found on the two extreme sides of the Sahara: dragon trees (Dracaena) and Aeonium being two of the most representative examples.

*** Head of the Department Botany * * Head of the Department Zoology, Govt. P.G. College Sendhwa, Distt. Badwani (M.P.) INDIA**

The species was introduced to China and various parts of southern Europe in the 17th century. The species is widely naturalised elsewhere, occurring in temperate and tropical regions of Australia, Barbados, Belize, Nigeria, Paraguay, Mexico and the US States of Florida, Arizona and Texas.The actual species' distribution has been suggested to be the result of human cultivation.

Aloe vera has been widely grown as an ornamental plant. The species is popular with modern gardeners as a putatively medicinal plant and for its interesting flowers, form, and succulence. This succulence enables the species to survive in areas of low natural rainfall, making it ideal for rockeries and other low water-use gardens. The species is hardy in zones 8–11, although it is intolerant of very heavy frost or snow. The species is relatively resistant to most insect pests, though spider mites, mealy bugs, scale insects, and aphid species may cause a decline in plant health.In pots, the species requires well-drained, sandy potting soil and bright, sunny conditions; however, Aloe plants can burn under too much sun or shrivel when the pot does not drain the rain. The use of a good-quality commercial propagation mix or packaged "cacti and succulent mix" is recommended, as they allow good drainage. Terra cotta pots are preferable as they are porous. Potted plants should be allowed to completely dry prior to rewatering. When potted, aloes become crowded with "pups" growing from the sides of the "mother plant", they should be divided and repotted to allow room for further growth and help prevent pest infestations. During winter, Aloe vera may become dormant, during which little moisture is required. In areas that receive frost or snow, the species is best kept indoors or in heated glasshouses. Large-scale agricultural production of Aloe vera is undertaken in Australia, Bangladesh, Cuba, the Dominican Republic, China, Mexico, India, Jamaica, Kenya, Tanzania and South Africa,[along with the USA to supply the cosmetics industry with Aloe vera gel.

This plant has gained the Royal Horticultural Society's Award of Garden Merit.Aloe vera gel being used to make a dessert.

Uses - 6000 year old stone carvings in Egypt contain images of the plant, which they referred to as the "plant of immortality". It was given as a burial gift to deceased pharaohs.

Preparations made from Aloe vera are often referred to as "aloe vera".Scientific evidence for the cosmetic and therapeutic effectiveness of aloe vera is limited and when present is frequently contradictory.Despite this, the cosmetic and alternative medicine industries regularly make claims regarding the soothing, moisturizing, and healing properties of aloe vera commercially advertised mainly for skin conditions such as sunburns, cold sores and frostbite. Aloe vera gel is also used commercially as an ingredient in yogurts, beverages, and some desserts, although at certain doses, its toxic properties could be severe whether ingested or topically applied. The same is true for aloe latex, which was taken orally for conditions ranging from glaucoma to multiple sclerosis until the FDA required manufacturers to discontinue its use. Other uses for extracts of Aloe vera include the dilution of semen for the artificial fertilization of sheep, as a fresh food preservative, or for water conservation in small farms. It has also been suggested that biofuels could be obtained from Aloe vera seeds. Aloe is also used as a food substance, possibly for its gelling properties.

Traditional medicine - Early records of Aloe vera use appear in the Ebers Papyrus from the 16th century BC, in both Dioscorides' De Materia Medica and Pliny the Elder's Natural History written in the mid-first century AD along with the Juliana Anicia Codex produced in 512 AD. The species is used widely in the traditional herbal medicine of many countries. Aloe vera, called kathalai in Ayurvedic medicine, is used as a multipurpose skin treatment. This may be partly due to the presence of saponin, a chemical compound that acts as an antimicrobial agent.

Dietary supplement - Aloin, a compound found in the exudate of some Aloe species, was the common ingredient in over-the-counter (OTC) laxative products in the United States until 2002 when the Food and Drug Administration banned it because the companies manufacturing it failed to provide the necessary safety data. Aloe vera has potential toxicity, with side effects occurring at some dose levels both when ingested or applied topically. Although toxicity may be less when aloin is removed by processing, Aloe vera that contains aloin in excess amounts may induce side effects. A two-year National Toxicology Program (NTP) study on oral consumption of nondecolorized whole leaf extract of Aloe vera found evidence of carcinogenic activity in male and female rats. The NTP says more information is needed to determine the potential risks to humans.

Aloe vera juice is marketed to support the health of the digestive system, but there is neither scientific evidence nor regulatory approval to support this claim. The extracts and quantities typically used for such purposes appear to be dose-dependent for toxic effects.

Commodities - Aloe vera is used on facial tissues where it is promoted as a moisturiser and anti-irritant to reduce chafing of the nose. Cosmetic companies commonly add sap or other derivatives from Aloe vera to products such as makeup, tissues, moisturizers, soaps, sunscreens, incense, shaving cream, or shampoos. A review of academic literature notes that its inclusion in many hygiene products is due to its "moisturizing emollient effect".

Toxicity - In 2011, the NTP carried out a series of short- and long-term carcinogenicity studies of a nondecolorized whole leaf extract of Aloe barbadensis miller (Aloe vera) in rats and mice, in which the extracts were fed to the rodents in drinking water. The studies found "clear evidence of carcinogenic activity" in the rats, but "no evidence of carcinogenic activity" in the mice. Both the mice and rats had increased amounts of noncancerous lesions in various tissues. The NTP believes further studies of oral preparations of aloe are important, as are studies of the oral exposure of humans to aloe; topical preparations are still considered safe.Oral ingestion of Aloe vera may also cause diarrhea, which in turn can lead to

electrolyte imbalance, kidney dysfunction, dry mouth, headache, and nausea, while topical application may induce contact dermatitis, erythema, or phototoxicity.

Research into medical uses - Two 2009 reviews of clinical studies determined that all were too small and faulty to allow strong conclusions to be drawn from them, but concluded, "there is some preliminary evidence to suggest that oral administration of aloe vera might be effective in reducing blood glucose in diabetic patients and in lowering blood lipid levels in hyperlipidaemia. The topical application of aloe vera does not seem to prevent radiation-induced skin damage. It might be useful as a treatment for genital herpes and psoriasis.

The evidence regarding wound healing is contradictory. More and better trial data are needed to define the clinical effectiveness of this popular herbal remedy more precisely." One of the reviews found that Aloe has not been proven to offer protection for humans from sunburn, suntan, or other damage from the sun.2007 review of aloe vera's use in burns concluded, "cumulative evidence tends to support that aloe vera might be an effective interventions used in burn wound healing for ûrst- to second-degree burns. Further, well-designed trials with sufûcient details of the contents of aloe vera products should be carried out to determine the effectiveness of aloe vera." Topical application of aloe vera may also be effective for genital herpes and psoriasis.

References -

1 . Akinyele BO, Odiyi AC (2007). "Comparative study of the vegetative morphology and the existing taxonomic status of Aloe vera L.". Journal of Plant Sciences .
2. Ernst E (2000). "Adverse effects of herbal drugs in dermatology". Br J Dermatol.
3. Marshall JM (1990). "Aloe vera gel: what is the evidence?". Pharm J .
4. Boudreau MD, Beland FA (2006). "An Evaluation of the Biological and Toxicological Properties of Aloe Barbadensis (Miller), Aloe Vera". Journal of Environmental Science and Health Part .
5 . Vogler BK, Ernst E (Oct 1999). "Aloe vera: a systematic review of its clinical effectiveness". Br J Gen Pract 49 (447): 823–8. PMC 1313538. Retrieved 6 March 2013.
6. Yates A. (2002) Yates Garden Guide. Harper Collins Australia
7. Random House Australia Botanica's Pocket Gardening Encyclopedia for Australian Gardeners Random House Publishers, Australia
8. Gong M, Wang F, Chen Y (January 2002). "[Study on application of arbuscular-mycorrhizas in growing seedings of Aloe vera.
9. King GK, Yates KM, Greenlee PG, et al. (1995). "The effect of Acemannan Immunostimulant in combination with surgery and radiation therapy on spontaneous canine and feline fibrosarcomas". Journal of the American Animal Hospital Association.
10. Eshun, K.; He, Q. (2004). "Aloe Vera: A Valuable Ingredient for the Food, Pharmaceutical and Cosmetic Industries—A Review". Critical Reviews in Food Science and Nutrition .
11. "Aloe vera, African flowering plants database". Conservatoire et Jardin botaniques de la Ville de Genève. Retrieved 2008-06-20.
12. "Taxon: Aloe vera (L.) Burm. f.". Germplasm Resources Information Network, United States Department of Agriculture. Retrieved 2008-07-16.
13. Ombrello, T. "Aloe vera". Archived from the original on 5 July 2008. Retrieved 2008-06-21.
14. Liao Z, Chen M, Tan F, Sun X, Tang K (2004). "Microprogagation of endangered Chinese aloe". Plant Cell, Tissue and Organ Culture .
15. Jamir T. T., Sharma H. K., Dolui A. K. (1999). "Folklore medicinal plants of Nagaland, India".
16. Wang H, Li F, Wang T, et al. (September 2004). "[Determination of aloin content in callus of Aloe vera var. chinensis
17. Gao W, Xiao P (November 1997). "[Peroxidase an 18.Lyons G. "The Definitive Aloe vera, vera?". Huntington Botanic Gardens. Archived from the original on 25 July 2008. Retrieved 2008-07-11.
18. d soluble protein in the leaves of Aloe vera L. var. chinensis (Haw.)Berger]". Zhongguo Zhong yao za zhi = Zhongguo zhongyao zazhi = China journal of Chinese materia medica .

****

भारत का राष्ट्रीय वृक्ष वट (Ficus Benghalensis) — लोक वनस्पतिक दृष्टिकोण

डॉ.शैल बाला सांधी *

शोध सारांश – वट या बरगद भारत का राष्ट्रीय वृक्ष है। लोक वानस्पतिक दृष्टि से वट वृक्ष धार्मिक महत्व के साथ-साथ औषधीय गुणों के रूप में भी अत्याधिक उपयोगी है। इस वृक्ष के विभिन्न भाग जड़, तना, पत्ती, छाल एवं फल आदि का उपयोग आयुर्वेदिक, होम्योपैथी एवं यूनानी पद्धति में पारंपरिक औषधि के रूप में डिसेन्ट्री, डायरिया, मधुमेह, त्वचा रोगों के लिये तथा वमन आदि के उपचार के लिये किया जाता है। वट में एंटीइंफ्लेमेटरी, एंटीआक्सीडेंट, एंटीपायरेटिक तथा एंटीडायबेटिक गुण पाए जाते है। औषधीय महत्ता के साथ-साथ हिन्दू धर्म में इसे अत्यंत ही पवित्र एवं पूजनीय माना गया है।

शब्द कुंजी – वट, एंटी इंफ्लेमेटरी, एंटी आक्सीडेंट, एंटीपायरेटिक, एंटीडाईबिटिक

प्रस्तावना – विश्व स्वास्थ्य संगठन द्धारा लगभग 20 हजार पौधों की जातियों का औषधीय पौधे के रूप में उपयोग किया जाता है। भारत में 2500 पादप जातियों का उपयोग देशी एवं आयुर्वेदिक दवाईयों के रूप में उपयोग किया जाता है।[1] आयुर्वेदिक पारंपरिक औषधीय एवं धार्मिक महत्ता को देखते हुए वट वृक्ष को भारत में लोक वानस्पतिक महत्वपूर्ण पौधा माना गया है ।

वट या बरगद के वृक्ष का वानस्पतिक नाम फाइकस बेंगेलेंसिस (एल) है। यह मोरेसी कुल के अन्तर्गत् आता है। वट को अंग्रेजी में 'बनयन ट्री' कहते है। हिन्दी में इसे बर, बरगद वट या बट कहते है। संस्कृत में इसे वट:, बंगाली में वॉट, गुजराती में वड़ तथा तमिल में वडा कहा जाता है।

वट वृक्ष के विभिन्न अंगों का उपयोग त्वचा रोग, रक्तशोधक, सूजन, डायरिया, डिसेन्ट्री, मधुमेह, ल्यूकोरिया, कफ, पित्तनाशक, अस्थमा, बबासीर, अल्सर एवं गठिया आदि रोगों के उपचार के लिये किया जाता है।[2-3]

बरगद या वट का वृक्ष घने पत्तों वाला छायादार वृक्ष है। यह भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है। पर्यावरण की दृष्टि से भी यह वृक्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है इसकी जड़े मिट्टी को पकड़े रखती है और पत्तियाँ हवा को शुद्ध करती है।

वर्गीकरण–

वानस्पतिक नाम		**फाइकस बेंगेलेंसिस (एल)**
		FICUS BENGHALENSIS(L)
जगत	–	पादप
उप जगत	–	ट्रेकियोबायोन्टा
वर्ग	–	मेग्नोलियोंफाइटा
क्लास	–	मेग्नोलियोप्सिडा
गण	–	अर्टिकेल्स
कुल	–	मोरेसी
वंश	–	फाइकस
जाति	–	बेंगेलेंसिस

संरचना – वट या बरगद एक विशाल और चिरजीवी, बहुत बड़े क्षेत्र में फैलने वाला वृक्ष है। इसकी ऊँचाई 20 मीटर से 30 मीटर तक हो सकती है। इसकी बड़ी-बड़ी मोटी शाखाओं से जड़े निकलती है जिन्हें जटाएँ या स्तम्भमूल कहते है। ये जटाएँ धीरे-धीरे भूमि के अंदर पहुँच जाती है और उसी में जम जाती है। लंबे समय बाद ये तने के समान कठोर और मजबूत हो जाती है। तथा वृक्ष का बोझ उठाने लायक हो जाती है।[4]

पत्तियाँ– इनकी पत्तियाँ चौड़ी, गोलाकार तथा चिकनी होती है। पत्ती की लम्बाई 10सेमी. से 20 से.मी. तथा चौड़ाई 5से.मी. से 13 से.मी. तक होती है। इनका रंग गहरा हरा होता है।

फल– इस वृक्ष के फल अंजीर के समान छोटे-छोटे होते है। इनमें डंठल नहीं होता है । बरगद का फल एक विशेष प्रकार का पुष्पक्रम होता है। जो गोल आकार लेकर फल बनाता है। इसके फल के अंदर बहुत छोटे-छोटे कीट होते है। ये कीट एक पुष्प से दूसरे पुष्प में घुसते है जिससे पुष्प के नर, मादा क्षेत्र एक दूसरे से संपर्क में आते है, तथा परागण क्रिया को पूर्ण करते है।

रासायनिक संगठन– वट में विभिन्न प्रकार के रासायनिक तत्व पाए जाते है। इनकी छाल एवं कली में मिल्की लेटेक्स (आक्षीर) टेनिन एवं वेक्स पाया जाता है। छाल में हायपोग्लाइसोमिम ग्लूकोसाइड पाया जाता है। इसके अलावा ल्यूको एंथोसायनिन, ल्यूकोपिलर गोनिडिन, ल्यूकोरमेनोसाइड ग्लूकोसाइड, डेल्फीडिन, रेम्नोसाइड, एवं कीटोन्स पाए जाते है। जो की एंटी डायबेटिक प्रभाव को प्रदर्शित करते है तथा मधुमेह के लिये उपयोगी होता है। पत्तियों में क्रूड प्रोटीन, क्रूड फाइबर, रूटीन, फ्रिडलीन, टेनिन, सेपोनिन एवं बीटा सिस्टोस्टिराल पाया जाता है। इनके वृक्ष में सफेद चिपचिपा रस निकलता है जिसे आक्षीर या लेटेक्स कहते है, इसमें रेजिन, एल्ब्यूमिन, सिरीन, शर्करा एवं मैलिक एसिड होता है।[5-6]

औषिधीय गुण- पारंपरिक दवाओं के रूप में– वृक्ष के विभिन्न भागों का उपयोग पारंपरिक औषिधियों के रूप में किया जाता है। जैसे पत्तियों का उपयोग रक्तशोधक के रूप में अल्सर में तथा जले हुए स्थान पर लगाने के लिये एवं फुंसी में पुल्टिस के रूप में होता है। छाल के काढ़े का उपयोग डिसेन्ट्री एवं डायरिया में किया जाता है तथा इसे उबाल कर इसके काढ़े को पीने से डायबिटिज का उपचार होता है। जड़ों का उपयोग गोनोरिया, सिफलिस आदि बीमारी के लिये पारंपरिक औषधी के रूप में किया जाता है। इसके लेटेक्स / दूध को गठिया या सूजन में लगाया जाता हैं तथा फटी हुई एड़ियों में इसका दूध लगाने से फायदा होता है।[7]

Pharmacognostic Properties–

1. एंटीथेलमिन्टिक प्रभाव– इस वृक्ष के रस एंटीथेलमिन्टिक सक्रियता के प्रभाव को प्रदर्शित करते है जो कृमि आदि को नष्ट करने का कार्य करते है। इनके रस में फीनोलिक, टेनिनस, सेपोनिन्स, म्यूलीलेज एवं

*सहायक प्राध्यापक (वनस्पतिशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मी बाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

एल्केलायड आदि पादप रासायनिक तत्व पाए जाते है जो कृमि का नाश करते है।[8]

2. एंटीडायबेटिक प्रभाव– इनके छाल में पाए जाने वाले रासायनिक तत्व रक्त में उपस्थित शर्करा को कम करके एंटीटायबेटिक प्रभाव को प्रदर्शित करते है। इनकी छाल रक्त में कोलस्ट्राल को कम करती है। एल.डी.एल. के स्तर को कम करके एच.डी.एल. अच्छे कोलेस्ट्राल के स्तर को रक्त में बढ़ाती है जिससे रक्त में कोलेस्ट्राल का स्तर सही रहता है।[9]
3. एंटीबेक्टीरियल प्रभाव– वट वृक्ष का रस एंटी बेक्टीरियल प्रभावी होता है। ये बैक्टीरिया की 5 विभिन्न जातियाँ जैसे बेसीलस सबटिलीस, स्टेफाइलोकोकस, सालमोनेला, प्रोटियस, तथा स्यूडोमोनास आदि बैक्टीरिया जो आंतो से संबंधित रोग उत्पन्न करते है इनके प्रभाव को कम करते है तथा पेट से संबंधी रोगों के उपचार में उपयोगी होते है।[10]
4. एंटी आक्सीडेंट प्रभाव– इसके वृक्ष में प्रायोगिक निरीक्षण से जड़, तना, एवं छाल में एंटी आक्सीडेंट तत्वों की उपस्थिति को प्रमाणित किया गया है।[11]
5. एंटी पायरेटिक एवं एनालगेसिक प्रभाव– इस वृक्ष के छाल के रस को ज्वरनाशक माना गया है। इसके रस को ज्वर से पीड़ित रोगी को देने से ज्वर को कम किया जाता है।[13]
6. एंटी इंफ्लेमेटरी प्रभाव– वट में विभिन्न भागों के रस में एंटी इंफ्लेमेटरी प्रभाव को वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया गया है। इसमें उपस्थित फ्लेवेनायड तत्व इसके एंटीइंफ्लेमेटरी प्रभाव को प्रदर्शित करता है।[12]

वट वृक्ष का धार्मिक महत्व– भारत में हिन्दू धर्म में इस वृक्ष को अत्यंत ही पवित्र एवं पूजनीय माना गया है। कहा जाता है कि यह पेड़ त्रिमूर्ति का प्रतीक है। इसकी छाल में विष्णु, जड़ों में ब्रम्हा तथा शाखाओं में शिव का वास है।[14]

मूले ब्रम्हा त्वचा विष्णु शाखा शंकर मेव च,
पत्रे–पत्रे सर्वदेवायाम् वृक्ष राज्ञो नमोस्तुते।

वामनपुराण के अनुसार वनस्पति की व्युत्पत्ति में अश्विन मास में विष्णु की नाभि से जब कमल प्रकट हुआ, तब अन्य देवों से भी विभिन्न वृक्ष उत्पन्न हुए, उसी समय यक्षों के राजा 'मणि भ्रद' से वट का वृक्ष उत्पन्न हुआ। इसी कारण से पुराणों में इस वृक्ष को यक्षवास, यक्षतरू, यक्षावारूक नामों से भी पुकारा जाता है।[15] हिन्दू धर्म में इसे विशेष स्थान देकर इसकी रक्षा की कामना की गई है। हिन्दू कथाओं के अनुसार सावित्री ने इसी वृक्ष के नीचे अपने मृत पति सत्यवान के जीवन को वापिस लाने में सफल हुई थी, तभी से वट सावित्री की पूजा में आज भी भारतीय महिलायें वट वृक्ष की पूजा करती है तथा व्रत रखकर अपने पति की दीर्घायु की कामना करती है।

भारत के हर प्रदेश में एक न एक प्रसिद्ध वट वृक्ष है किन्तु प्रयाग का अक्षयवट, अवंतिका का सिद्ध वट, नासिक का पंचवट, गया का बौधिवृक्ष, वृंदावन का वंशीवट पर आश्रित श्रद्धा के केन्द्रों में वट पूजा की परम्परा सदियों पुरानी है। यह वृक्ष न केवल औषिधीय महत्व रखता है बल्कि आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक दृष्टिकोण से लोक वानस्पतिक महत्व को बढ़ाता है, यही कारण है कि हिन्दू धर्म में यह वृक्ष अमरत्व का प्रतीक है तथा भारत का राष्ट्रीय वृक्ष है।[14]

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Prakash V., Indian medicinal plants current status, Ethnobotany, 10,112-121, 1998.
2. The wealth of India, A dictionary of Indian raw material and industrial products., CSIR IV, 24-26, 1999.
3. Chopra R. N., Nagar S. L., Chopra I. C., Glossary of Indian medicinal plants, CSIR, II, 1956.
4. Kitikar K R, Basu B.D, Indian medicinal plants, international book distributors and publishers, Dehradun , India, III, 2018,2313,2312, 2005.
5. Sankar S. and Nair A. G. R. I., Sterols and Flavonols of Ficus *bergalensis*, Phytochemistry, 9 (12), 2583-84, 2001.
6. Kumar R. V., Augusti K. T., Insulin sparing action of a leucocynidin derivative isolated from F*icus bengalensis* Linn. Indian Journal of Biochemistry and Biophysics 31, 73-76, 1994.
7. Dev S., Prine Ayurvedic plant Drugs, Anamaya Publishers New Delhi 237-240, 2006.
8. Aswar M., Aswar V., Watkar B., Vyas M., Wagh A., Gujar K. N., Anthelmintic activity of *ficus bengalensis*, IJGP, 2, 3, 2008.
9. Singh R. K., Mehta S., Jaiswal D., Rai P. K., and Watal G., Antidiabetic effect of *Ficus bengalensis* aerial roots in experimental animals, Journal of Ethnopharmacology, 123, 110-114, 2009.
10. Parekh J., Darshan J., and Sumitra C., Efficacy of aqueous and methanol extracts of some medicinal plants for potential antibacterial activity, Turk J. Biol., 29, 203-211, 2005.
11. Gupta V. K., and Sharma S. K., In vitro antixoidant activities of aqueous extract of *Ficus bengalenesis* L., Int. J. Biol. Chem., 4, 134-140, 2010.
12. Patil V. V., Pimrikar R. B., Patil V. R., Pharmacognostical studies and evaluation of anti-inflammatory activity of *Ficus bengalnesis* Linn, Pharmacognosy, 1, 49-53, 2009.
13. Patil V. V., Bhanagales S. C., Narkhede S. B, Jawle N. M , Patil V. R., Analgesic and antipyretic activities of *Ficus bengalenesis* Bank, International Journal of Pharmaceutical Research, 2, 2, 2010.
14. सिन्हा राकेश कुमार रवि– **गाथा वट वृक्ष की,** अभिव्यक्ति team abhi@abhivyaktihindi.org.
15. बरगद– भारत डिस्कवरी प्रस्तुति (Internet)

****

Nutritional Value Of Fish Flesh

Meena Swamy *

Introduction - Our diet influences our health throughout our entire life. Nutrition and diet have a major impact on growth and development in the foetal, infant, child and youth years. Fish is one of the most nutritional food and important source of protein for humans. It is a very healthy meat for the heart, is low in fat, and is full of nutrients. "Fish provides a good source of high quality protein and contains many vitamins and minerals.Research over the past few decades has shown that the nutrients and minerals in fish, and particularly the omega 3 fatty acids found in pelagic fishes, are heart-friendly and can make improvements in brain development and reproduction. This has highlighted the role for fish in the functionality of the human body. Now a day fish cosider as a "Recipe for a Healthier Diet".

Consumption Of Fish - According to FAO statistics-

- Countries may be classified on the basis of their per capita consumption of fish as follows:-

Very high (20 kg or more)

- Iceland
- Norway
- Sweden
- Burma
- Japan
- Phillipines

High (10kg-20kg)

- Belgium
- Denmark
- England
- Holland
- Portugal
- Germany
- Spain
- South Korea…etc

Medium (5kg-10kg)

- Finland
- Greece
- France
- Italy
- Canada
- USA
- Australia……etc.

Low (below 5 kg)

- Ireland
- Austria
- Mexico
- India
- Switzerland
- Turkey
- Central and South America

Fish As A Unique Food - Fish flesh is an important source for vital nutrients such as proteins, vitamin D, vitamin B12, selenium and iodine. It also has a favourable fatty acid composition. Fatty fish and cod liver oil are the most important sources of long-chain polyunsaturated omega-3 fatty acids and vitamin D, and is favourable with respect to both cardiovascular diseases and foetal development.

The main beneficial health effects of eating fish flesh are linked to the omega-3 fatty acids. Fatty fish is a good source of two important omega-3 fatty acids: Eicosapentaenoic acid (EPA) and Docosahexaenoic acid (DHA).

These polyunsaturated and long-chain fatty acids are key building blocks in the cell membranes of fish, shellfish and marine mammals, while plants and land animals generally have poor production of these fatty acids. It is, therefore, important to consume sufficient quantities of these fatty acids through ones diet.

Nutritional Content Of Fish Flesh - Biochemical comp. of raw fish,-The principle biochemical contents of fish flesh are

Biochemical contents	Percentage
Protein	12 to 24%
Fat	
Water	55%-83%
Minerals	1% to 2%
Vitamins	
Enzymes	

High in proteins – low in carbohydrates

Proteins, fat and carbohydrates are the energy sources in the food we consume. Fish contains mainly proteins and fat and has a very low content of carbohydrates. It contains 12 to 24 % protein, depending on the species. Fish protein contains all the essential amino acids, which means that fish may be used as the sole source of protein. Protein occurs in fish are Myosin, Myogen, Myoalbumin and Globulin and also content all intra cellular components of muscle fibre, Collagen and connective tissue fibres, Phospho-protein and nucleo-protein.

Flesh is rich in proteins and fat. It contains A and D vitamins, Phosphorus and several minerals.

"Besides the protein, there are a number of non protein nitrogenous components"

- **Fish oils** - These are chiefly triglyceride esters of fatty acids combined with small amounts of free fatty acids, some vitamins, sterols, hydrocarbons, phosphor-lipids and colour substances.
- **Minerals-** These constitute 1% to 2% of fish flesh composition. The bulk is concentrated in fish bones.

The principle minerals are Ca, Mg, K, Na, P, Fe, S, Cl, Cu, Mn, I, Br etc.

Non protein components- Peptides

- Free amino acids (histidine).
- Creatine, histamine, uric acid, glycine, nucleic acids.

Fat - Depending upon the fat content,the fish may be classified as -

- Fish is seen as a particularly good protein source as it contains little saturated fat.

* Asst Prof. of Zoology , Govt. Auto. P. G. College, Chhindwara (M.P) INDIA

- Oils or fat (Fat content more than 8 %)
- Average fat (Fat content 1%-8%)
- Lean (Fat content less than 1%)

Depot fat- The principle sites of the depot fats are muscles,head tissues,milt,liver,skeletal tissue,sub cutaneous connective tissue and viscera.

- Liver in fish is the main site with large deposits.
- Brain shows the highest concentration of fat and heart the lowest.
- Liver and kidney rank intermediate.
- The fat content of fish flesh is a factor that detrmines the quality of the fish and hence price.

Economic Value Of Fish - Fishes are economically very important to man. It serves as an important item of food and provides many important bye-product also.

Fish as food - Fish have been used as good food to man. The flesh of fish has a good taste and flavour. A good fish meal has low fat and salt content and less then 10% moisture. Much of the flesh can be digested easily as compared to beef and poultry meet by man.

Fish meal - Many fishes are dressed and cooked. Then they are dried. Fishes are made into fine powder. This is called fish meal. It is used by weak and convalsent people and also used as food in poultry, pigs and cattle.

Fish Sausage and Soup - Fish sausage is prepared from fish meat. The meat is mixed with salt, sugar and spices to improve taste and flavour.

Fish Oil - From the liver of the many fishes oil is extracted. It is one of the most important by product of fish industry. Large amount of unrefined oil of fishes is used for making paints, pesticides, soaps, medicines etc.

A. **Cod liver oil** - It is extracted from the cod fishes.

B. **Shark liver oil** - It is extracted from the liver of the shark. These oils contain A and D vitamins.

Table I Typical fat content of fish

Species	Fat (per cent)
Cod	0.1-0.9
Hake	0.4-1.0
Halibut	0.5-9.6
Plaice	1.1-3.6
Herring	0.4-30.0
Mackerel	1.0-35.0

Fish skin & Leather - Skin is treated, dried and tanned to prepare leather, which is used for making shoes, bags, suitcase and other ornamental articles.

Fish Manure - Fishes are simply dried in the sun and are ground forming the manure for the fields. It is also the bye product of curing yards and oil extracting plants.

Fish silage - This is a good animal food and is either liquid od semi-solid product of a high nutritive value.

Fish Flour and Biscuits - Fish flour is a high quality fishmeal. It is mixed with wheat flour and baked to manufacture biscuits.

Artificial Pearl - Artificial pearls are prepared from hollow glass beads, which are polished with material prepared from the scrapping of the silvery covering of the scales of some fish species.

Medicines and disease control - Fishes such as Gambusia affinis, Trichogaster, Esomus, and Barbus etc. are used to control mosquito larvae. As these fishes eagerly feed on mosquito larvae, they are transmitted and distributed to the pond, lakes and water reservoirs so that diseases like malaria can be controlled.

For Preparing Insulin - Pancreas of sharks and other large sized fishes is used as a raw material for preparing insulin.

Vitamins - Fish provides vitamins A,B and D.

- Liver is particularly rich in vitamin B12 and B complex, vitamin A and D.
- Vitamin A and D occur more in inner organs of the body.
- Vitamin B occur more in liver,eyes,skin,kidney and intestine.
- Eels and prawns are rich in vitamin A whereas mackerel in vitamin D.

Vitamin Content of Fist and Shellfish (TableSee the)

Nutritional value of raw fish - The nutritional value of fish meat is comparable and even higher than that of the meat of cattle, beef, pig, lamb, sheep and poultry.

- Fish flesh provides an excellent source of all essentials amino acids needed in human diet.
- Fish protein is also highly nutritious as child food and it is easly tolerated by infants.
- The digestability of fish flesh is in the order of 96%,fairly high as compared to the beef and poultry
- Fish is an effective supplementary food where diet is principaly plant oriented,cereal and rice based.

Nutritional value of preserved fish - The nutritive value of preserved and processed fish and fishery products is generally lower than that of raw fish

This is due to loss of some nutritive value during various stages and processes of fish preservation, handling and preparation.

Comperative Chart of Content of Fish and other food material - (Table See)

Comperative Chart of Content of Fish and other food material -

References -

1. Hand book of the freshwater fishes of India by C.R. Bevan.
2. Fish handling and processing by Burbess.
3. Biology, culture and production of India by N.M. Charka Basti.
4. The study of fishes by Gunther.
5. An introduction of fishes by S.S. Khanna.
6. Indian fisheries by Qureshi and Qureshi.
7. Fish culture By S.N. Vadapalli.
8. www.wikipedia.co.in

Vitamin Content of Fish and shellfish
(per 100g raw edible portion unless otherwise specified)

Type of Seafood	Vitamin A mcg	Vitamin D mcg	Vitamin E mg	Vitamin B1 mg	Vitamin B2 mg	Vitamin B6 mg	Vitamin B12 mcg
Cod	2	tr	0.44	0.04	0.05	0.18	1
Hoddock	tr	tr	0.39	0.04	0.07	0.39	1
Plaice	tr	tr	n	0.20	0.19	0.22	1
Herring	44	19	0.76	0.01	0.26	0.44	13
Mockerel	45	8.2	0.43	0.14	0.29	0.41	8
Tuna	26	7.2	n	0.10	0.13	0.38	4
Salmon	13	5.9	1.91	0.23	0.13	0.75	4
Trout (Rainbow)	49	10.6	0.71	0.20	0.11	0.34	5
Oyster	75	1	0.85	0.15	0.19	0.16	17
Mussel	n	tr	0.74	0.02	0.35	0.08	19
Lobster (boiled)	tr	tr	1.47	0.08	0.05	0.08	3
Crob (boiled)	tr	tr	n	0.07	0.86	0.16	tr
Prawn	tr	tr	2.85	0.04	0.12	0.05	7

Comperative Chart of Content of Fish and other food material -

Food Group (gm)	Calories	Protein (gm)	Fat (gm)	Carbohydrate (mg)	Callcium (mg)	Iron (mg)	VitaminA (I U)
Milk	100-35	4.0	7-8.5	5	210	Low	100
Grains	340	6.0	2.0	73	50	6	30
Rice (unripe)	350	7.0	0.5	80	10	3	4
Wheat (Flour)	350	12.0	1.5	71	40	30	50
Beans	340	23.0	1.5	59	140	6	140
Groundnut	610	19.0	51.0	18	320	10	60
Potato	80	2.0	0.5	17	60	1	340
Green	50	4.0	1.0	52	90	15	7500
Vegetables Fruits	70	1.0	0.5	15	30	2	470
Meet	140	21.0	5.0	-	50	2	470
Fish	30	19.0	19.0	2	240	4	100
Egg	30	13.0	13.0	low	60	3	1200

****

Physico-chemical parameter of Yeshwant sagar reservoir Indore (M.P.)

Archana Sharma *

Abstract - Yeshwant sagar reservoir is near to 30 kilometer Indore city. The main purpose of Yeshwant sagar reservoir is fish culture ,irrigation, drinking water supply to Indore township agariculture and also for domestic purpose . The study is carried out for a period of twelve month during acadamic year of 2013.The parameter such as water temperature, pH, Total alkalinity, Dissolved oxygen ,Total hardness and Phosphorus.

Key words - Yeshwant sagar reservoir , Physico.chemical perameter,Limnology.

Introduction -The water bodies of India includes a large number of river, ponds, dams, ipoundment and lakes. The reserverine system ,have different envionmental compact to reservoir. Idealy the quality of water should be assessed on the basis of physico-chemical and biological parametersin order to provide the complete spectrum of information for the purpose of fisheries management.

Yeshwant sagar reervoir is located near Indore city. It is an important fresh water reservoir of Indore.It is manmade shallow type reservoir.It was constructed by then Maharaja Rao Holkar statestate in 1936. Therefore it is popularly spoken as Yeshwant sagar reservoir.Itis perennial impoundment built on river Gambhir , a tributary of Chambal river .The reservoir is meant for supply of water to Indore city.Yeshwant sagar reservoir is major source for irrigation, water supply nd fish production. It is shallow reservoir with lot of submerged weeds and various of fishes. The catchment area of the reservoir is about140 square kilometer. Physico-chemical study of Yeshwant sga reservoir show high positive corrlations amongs factors.

Material and Methods - Yeshwant sagar reservoir is an drinking water body having a total length of about 14.04 (km), a catchment area 140 square kilometer, grass storage capacity 500 million qube feet.It is located 30 kilometer, Indore-Depalpur road.For the purpose of study, the water samples were collected from the reservoir in the morning hours(from 7 am to 12 am) on monthly basis . Four study site namely study site 1,2,3 and 4 are selected for study.The temperature were recorded at the time of sampling ,on the spot using centigrate thermometer,turbidity by secchi disc methods,pH was measured with standered pH meter. Other parameter were estimated by the procedure given by APHA(1989).

Result and Discussion - The physico-chemical characteristics of reservoir are greatly releted with the life condition of reservoir there goes on an inricate pattern of environmental factors themselves interact in varing manner from season to season. Therefore , it is necessary to study the physico-chemical characteristics of reservoir water for a better understanding of the relationship between the fishes and water quality.

Water temperature - Water temperature play an important role in thermal stratification which have some effect on chemical and biological activities of aquatic media like dissolved oxygen,carbon oxide, water, and air temperature go more or less hand inhand .It ranged from 19.20°c to 38.20°c . The minimum value was recorded during the month of January and the maximum during June.

Turbidity -Turbidity of natural water is due to suspended inorganic and organic substance such as slit, clay ,planktonic organism etc.Penetration of sunlight and reduces photosynthesis activity. Productivity of pond depends upon it. The turbidity of water is mainly depend upon the particulate matter in the water it was observed.

The turbidity of water is mainly depend upon the particulate matter in the water it was observed minimum 23 NTU monthly of May and maximum 55NTU was recorded in month of July.

pH -pH is the scales of intensity of acidity of and alkanity of water and measures the concentration of H± ions ,most of the biological process and biological reactions as pH dependent. Swingle (1967) states that water having a pH range of 6.5 to 9.0 as recorded before day break are most suitable for reservoir culture and those having pH values of more than 9.5 (alkaline) as unsuitable . The pH recorded ranged in Yeshwnt sagar reservoir from 7.2 to 9.1 . Minimum value was observed in the month of Febuary and maximun in month of June and July.

Total Alkalinity -The total alkalinity of water is significant for biological activity of water is the capacity to neutralize a strong acid and is characterized by the presence of hydroxyl ion . Acidic water is danger for fish growth , the reservoir should have alkalinity so that the acids can be neutralized and fish production is possible . The alkalinity might be due to the high pH or it may be caused by cations of Ca,Mg, Na, K, NH and Fe combined either as CO3 or bicarbonate as hydroxides. Alikunhi (1957) in the highly productive water alkalinity reach to over 100 ppm and according Schaperlaus (1933) most productive water is that which titrates 200 to

* Guest Assistant Professor (Zoology) Govt.college, Niwali - Barwani (M.P) INDIA

500 ppm aquivalent Calsium carbonate. The total alkalinity values at Yeshwant sager reservoir were found to be inthe range of 91mg/l to 251mg/l. Ganeshan (1989) observed total alkalinity ranged between 72.00 to 360mg/l in khan and Kshipra river.

Dissolved oxygen -Do is one of the important parameter in water quality assesment . Its presence is essential ti maintain the higher from of biological life in the water . There are two main source of Do in water ie diffusion from air and photosynthetic activity is a biological function brough about by autotrapohs.

In present study ,value of Do ranged from 6.1mg/l to 9.2mg/l Sreenivasan (1964) reported Do range from 9.0 mg/l to 10 mg/l in Aliyar and Amaravaty reservoir . 6.00 to 8.2 respectively. Choubey(1990) studies on Gandhi sagar observed Do ranged 7.4 to 10.5mg/l.Yeshwant sagar reservoir was much favorable for the growth and the maintenance of fish.

Total Hardness - The term hardness is frequently used an assessment of the quality of water supplies . The hardness is governed by the contents of Calcium and Magnesium salts largely combined with carbonates and bicorbonates led to temporary hardness. The hardness is accompanied withSulphates ,Chloride and other an-ions of the minerals constitute permanent hardness.

In present study , value of total hardness ranged from71 mg/l to 98 mg/l. Choubey (1990) has reported the total hardness between 70 mg/l to 108 mg/l.Pathak (2004) has reported hardness value from 150 to 233 mg/l inVirla reservoir (Khargone) MP.

Phosphorus - It varied from 0.1mg/l to 0.9mg/l phosphorus occure in both organic and inorganic forms and vital role in the aquatic system. Netural water, phosphorus occurs mostly as phosphate. The major sources of phosphorus and other in the aquatic ecosystem are the rocks or soil , decomposing organic material and agricultural run-off. Sreenivasion (1970 a) reported phosphate in traces in south Indian reservoir Madras . Choubey (1990) reported phosphate range from 0.01 mg/l to 0.18mg/l at Gandhi sagar reservoir.

Conclusion -The water of Yeshwant sagar reservoir is found to be more suitable for fish culture and drinking purpose . The water is productive having maximum alkalinity 91 mg/l to 251mg/l also ,less than 8 pH, Do and hardness of water is 6.1mg/l to 9.2 mg/l and 71mg/l to 98 mg/l, phosphorus ranged observed 0.1 mg/l to 0.9 mg/l.Which is the suitable condition for fish growth. Hence ,Yeshwant sagar reservoir having large area for catchment can be utilized for the production of fish and drinking water supply.

Acknowledgement -The author thankful to the Dr. L.K.Mudgal, Govt.P.G.College .Moti Tabela,Indore for his invaluable guidance , constant encouragement and inspiration though the study period of this work.

References -

1. Alikunhi 1957:Fish culturein India , F.M Bull. Indian count . Agri Res -20:144 p.
2. APHA 1995:Standerd methods for Fithe examination of water and waste water , American Public Health Association, 19th Edn.
3. Choubey, U. 1990:Studies on physico-chemical and biological parameter of Gandhi Sagar , Mandsaur district (M.P)
4. A ph.D thesis, Vikram University.Ujjain.
5. Ganeshan, V.Effect of sewage and industrial Effluents on water quality of river Khan,Kshipra and the reproductive Biology of fishes.
6. A ph.D thesis, Vikram University, Ujjain (MP).
7. Lind, O.T.1979 :Handbook of common methods in limnology . The C.V.mosby Co. 2nd. edn. st.Loues, Massori, 199pp.
8. Pathak, S.K.2004:Limnology of tropical impoundment -A comparative study of major reservoir (Madras state) ,India Schewiz, Z. Hydrol. Beikhauserverlong Basel, 32:405-417.
9. Swingle, H.S. 1967:Standardiazation of chemical analysis for water and pond mud . FAO fish leaflet, wash, (311):260 p.
10. UnnikComparative Comparative limnology of several reservoir ofcentral India. Hydrobiol,70 (6) 845-856.
11. Wagh, N.S.1988:Hydrobiological Hydrobiological parameter of Harsul dam in relation to pollution,ph.D thesis, Dr. BAM University, Aurangabad.
12. Welch1953 :Limnological methods. Mcgraw Hill Book Co. New York.

****

Comparative Study Of Alienation And Different Aspects Of Self And Self-Concept Of Adolescent Boys And Girls

Teena Pandya* **Dr. Kantibhai S. Dedun** **

Abstract-The present study is undertaken to access the relationship between alienation and different aspects of self and self-concept for boys and girls. The present study is conducted on 200 IX grade students' 100 boys and 100 girls from Hindi medium co-educational government school of Ahmedabad, based on the R.B.S.E. pattern which had constituted the sample of the present study. The rating scale devised by Pratibha Deo was used to define the self-concept of an individual. While alienation among the subjects was measures by 'Alienation Scale' developed by R.R. Sharma (1988). The results indicate the significant relationship of self concept and alienation.

Introduction - Adolescence is a time of active destruction, construction, reconstruction a period in which past, present and future are rewoven and strung together on the threads of fantasies and wishes that do not necessarily follow the laws of linear chronology, with it have combined several current developments that make the study of adolescents relevant today.

Throughout the 20th century, the concept of alienation has received substantial attention in the social sciences. Since its introduction by Hegel and Marx, this concept has been defined in a variety of ways that reflect the various disciplines and specific views of researchers who study it. Alienation has been described as a life style characterized by a syndrome of attitudes and feelings of distrust, cynicism, pessimism and a view of people as uncaring and emotionally distant. Loneliness enters into crucial period of development and critical experiences in childhood and reaches full significant in adolescence when an increasing urgency of social identification is manifested as an escape from this phenomenon.

Sharma (1988) refers to alienation as an extraordinary variety of psycho-social disorders including loss anxiety states, despair, depersonalization, powerlessness, meaninglessness, isolation and loss of beliefs and values. According to Stokols (1975) behaviour such as failure to participate in work group activities adopting extremist causes, protests are characterized as alienation. It can be viewed as a form of dissatisfaction resulting from one's perceived association with negative values, persons, group of culture. Rokach (1997) described alienation as pervasive social problem, viewed largely as a unidimensional experience compromising of five clearly distinguished factors:

- Emotional Distress
- Social Inadequacy
- Alienation Growth
- Interpersonal Isolation
- Self-isolation

An adolescent characterized alienated when he becomes discouraged by his own feelings of incompetence. He adjusts to his feelings of inadequacy by dropping out of the race. Dropping out of the quest for achievement lead him to justify his decision to give up his goals by developing feelings of contempt. Mechanization and meaningless pursuit of education may be viewed as necessarily contributing to a state of alienation among adolescents. Thus alienation may be defined as a feeling of estrangement from one's society and culture. The values and norms seem meaningless to the alienated person and this contributes to the feeling of loneliness and frustration.

Self-concept is the cognitive or thinking aspect of self (related to one's self-image) and generally refers to "the totality of a complex, organized, and dynamic system of learned beliefs, attitudes and opinions that each person holds to be true about his or her personal existence."

In educational setting, self-esteem and unidimensional perspectives of self-concept are not as useful as the multidimensional perspective to self-concept. This same conclusion also applies when assessing anti-social behaviour, physical performance, mental health, personality factors and well-being.

Self-concept is a person's sense of identity. The set of beliefs about what he\she is like as an individual (Break well; 1992, Hattie; 1992). Self-concept is an organized collection of belief and self-perception about oneself (Baron and Byrne, 2000). Self-concept is the totality of an individual's thoughts and feelings having reference to himself\herself as an object (Hawkins et. al., 1998).

Basic assumption of self-concept are written here, as it is well known concept that many of the successes and failures that people experience in many areas of life are closely related to the ways that they have learned to view themselves and their relationships with others. It is also becoming clear that self-concept has at least three major qualities of interest to counselors: (1) it is learned, (2) it is organized, and (3) it is dynamic. Each of these qualities, with corollaries follow.

Self-concept is learned, as far as we know, no one is born with self-concept. It gradually emerges in early months of life and are shaped and reshaped through repeated

* Research Scholar, Pacific University, Paher, Udaipur (Raj.) INDIA ** Associate Professor, College of Education, Daramali (Gujarat) INDIA

perceived experiences, particularly with significant others.

Objectives - To ascertain the relationship between alienation and different aspects of self and self-concept for boys and girls.

Hypotheses - The hypotheses are given below:

1. Different aspects of self and self-concept will be significantly correlated with alienation for boys and girls.
2. There will be significant difference in alienation between subjects score high and low on dimension of self.
3. There will be significant effect of self-concept and gender on alienation.

Methodology - The present study is conducted on 200 IX grade students' 100 boys and 100 girls from Hindi medium grant-in-aid schools of Ahemdabad, which had constituted the sample of the present study. The rating scale devised by Pratibha Deo was used to define the self-concept of an individual. Alienation among the subjects was measures by 'Alienation Scale' developed by R.R. Sharma (1988) this is a standardized tool to measure 'Student Alienation'. The data was collected from the respondents on the various variables under study at their respective schools. The test was administrated in group.

Results & Discussion

Table- 1.1
Correlation of Alienation with Dimensions of Self & Self-Concept for boys, girls & total.

	Alienation		
Dimensions of Self	Boys	Girls	Total
Perceived Self	0.010	0.016	-0.047
Ideal Self	-0.000	0.006	-0.056
Social Self	0.018	0.038	-0.072
Self-concept	-0.054	0.019	0.001

Results & Discussion Table- 1.1 (See the last page)

Table 1.3 (A)
Mean scores of Alienation

		Self- Concept	
Groups		Positive	Negative
		Mean	mean
Gender	Boys	21.02	30.82
	Girls	20.72	36.02

Table 1.3 (B)
2X2 factorial analysis of variance for alienation

Source of Variation	Sum of Squares	df	Mean Square	F-Ratio
Gender	813.944	1	813.944	7.803**
Self	7992.924	1	7992.924	76.629**
2-Way Interactions	722.947	1	722.947	6.931**
Residual	20444.023	196	104.306	
Total	29472.795	199	148.104	

** Significant at .01 level

Finding shows that dimensions of self and self-concept of boys, girls and total sample have insignificant correlation with Alienation (Table- 1.1)

Thus, the hypothesis "Different aspects of self and self-concept is significantly correlated with alienation for boys and girls" is partially proved. This hypothesis is found true for total sample (boys & girls) but not confirmed for boys and girls separately.

Table 1.2 infers that boys having high perceived self, ideal self & social self scores (Group 1) have significantly low alienation scores than the boys having low perceived self, ideal self & social self scores (Group 2) which are having high alienation scores. (t= 6.61, p<.01), (t= 5.86, p<.01), (t= 4.35, p<.01) The results are similar for girls. (t= 3.85, p<.01), (t= 4.56, p<.01), (t= 6.15, p<.01)

Thus, the hypothesis "*There will be significant difference in alienation between subjects score high and low on dimension of self" is proved for boys and girls.*

Table 1.3 (A) infers that girls have more alienation mean scores in comparison to boys similarly subject with negative self-concept scored high on alienation.

Table 1.3 (B) interprets the main effect of Gender and Self-concept and their interaction were found to have significant upon Alienation (F= 7.8, p<.01), (F= 76.62, p<.01), (F= 6.93, p<.1)

Therefore, the hypothesis *"There will be significant effect of self-concept and gender on alienation"* is partially proved.

Adolescent alienation from society is a serious issue confronting many developing and developed nations. It is represented by the worthless relationship between the adolescent and their family, society, school, peers or self. It is characterized by lacking in sense of belongingness with feeling of cut off from family, friends or school. It is considered as non-affirmative aspect of young people's lives, associated with behaviours such as violence, school failure and involvement in other forms of deviant behaviour. Whilst the alienation of adolescents affects them in their home and social life, it is the effected by their self that is the particular concern of this study. Formation of Self- concept is complex phenomenon as it is one of the most private unique and special characteristics the person possess, the self concept is also a fundamental dependent of self which is further dependent on social creation, a byproduct of social interactions and social manifestations.

Society is delicately balanced between the need to maintain a dependable social order and the need to preserve independence of action for individual. In complex society individuals have various possibilities for reacting to conditions to achieve favorable out come for themselves.

The person with negative self-concept has a feeling of rejection. The need to belong is basic and powerful motivation the social self-exclusion is a direct blockage that thwarts this motivation. To feel rejected or excluded is thus to experience frustration and experience alienation.

In a nutshell it can be said that boys with high self system have a feeling of positiveness in the life while the

boys with a low self system have always a feeling of estrangement from one's society and culture.

The finding reveal that the significant gender effect on alienation. The girls were found to scored high on alienation in comparison to boys. This may be due to the girls who have low self often have the feeling of aloneness while facing the tremendous power and complexities of social system as they lack in the power game due to the man dominated society. They have to face a multidimensional rushing impressions and unable to handle them emotionally which detach them more and more. They have the less feeling of social values to guide her in different situations.They are odds with their culture and even with people close to them with the feeling of absolutely alone. It can be summarized that girl with weaker self-system experiences that they are called unfulfilled and unproductive for the social upliftment. They are alienated from the decision making process certainly the empowerment is required for these girls. This view is supported by studies of Burke, 1997 and Stolp, 2000, Edingtion and Gardner, 1998 they supported the notion that significant effect of gender on alienation.

The results indicate that there is a significant effect of self on alienation. Because they feel they have no control over what is happening to them, are unable to make choices, and feel that school ignores their interests in favor of the school's rules and policies. They may also feel that they have a lack of immediacy, they did not feel that school was meeting their needs right now, and they seem unable to connect what is happening to them right now with their future. They have the perception that there was a lot of fighting at the school, intolerance, and that there was one group of students in particular, who were classified as trouble makers, they are really tough to manage even by the authorities. They have lack of feeling that school was worth persevering for them and helps them in shaping their careers.

The interaction effect is found significant for alienation. This may be due to that the alone the gender or the category of self may or may not affect the alienation but when taken together has its significant effect over alienation.

References -

1. Baron, R.A., Byrne, D. (2000). Social Psychology (Ninth adition) Pearson Education Pte. Ltd., India.
2. Break well, G.M. (1992). Social psychology of identity and self-concept. NY academic press.
3. Burke, B. (1997). The Problem of Generations, Daedalus, 91, Win.
4. Edington, R. P. and Gardner, T. H. (1998). A comparison of alienation between adolescent boys and girls in secondary school. International Journal of Sociological Research. Vol-6, No. 14.
5. Hattie, J. A. and Break Well (1992). Self-Concept. New Jersey: Laurence Erlbaum.
6. Hawkins, L. W. (1998). Self-concept: 1998. American Psychologist, 34, 859-865.
7. Prathiba Deo, (1987). Self-concept list. National Psychological Corporation Agra.
8. Sharma, R.R. (1988). Activism and Alienation in Psychosocial Perspective National Psychological Corporation Bhargava Bhawan, 4/230, Kacheri Ghat, Agra-282004. P.R., 16-23.
9. Stokols, D. (1975) Towards a Psychological Theory of Alienation, Psychological Review, 82.
10. Stolp, D. G. (2000). Alienation and student orientation in the contemporary University, Dissertation Abstracts International- A, 4904- A.

Table 1.2
Mean, S.D. & t-value of alienation in different groups for boys & girls.

Dimensions	Gender	Variable	Groups	Mean	S.D.	t –value
Alienation	Boys	Perceived Self	Group 1	27.78	04.66	06.61**
			Group 2	34.74	05.81	
		Ideal Self	Group 1	24.02	06.99	05.86**
			Group 2	31.78	06.22	
		Social Self	Group 1	24.62	08.72	04.35**
			Group 2	32.86	10.15	
	Girls	Perceived Self	Group 1	30.20	09.86	03.85**
			Group 2	23.22	08.18	
		Ideal Self	Group 1	24.08	10.59	04.56**
			Group 2	33.46	09.38	
		Social Self	Group 1	23.44	09.35	06.15**
			Group 2	33.62	07.04	

** Significant at .01 level

बाल अपराध के कारको एवं उनके उपचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. भावना रमैया *

शोध सारांश – आज बच्चो की मानसिकता बहुत संकुचित हो गई है वह बहुजन हिताय के स्थान पर स्वहिताय की बात करते है। आज बच्चों में स्वार्थ, घृणा, हिंसा, नफरत एवं पलायन प्रवृत्ति का बोलबाला है। भारत में कुछ वर्षो में बाल–अपराधो में तेजी से वृद्धि हो रही है जो आंकड़े हमारे समक्ष आ रहे है, वो चौका देने वाले है। सन् 1951 में केवल 12000 बच्चों ने अपराध किए थे, वही आज बच्चों के द्वारा किए जाने वाले अपराधो की संख्या बढ़कर 1.27 लाख से अधिक हो गई है। भारत के गृह मंत्रालय से प्रकाशित एक रिपोर्ट से स्पष्ट होता है कि पिछले 10 वर्षो में जहां लड़को के द्वारा किए बाल अपराध में 10.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, वही लड़कियों में बाल अपराध 21.6 प्रतिशत बढ़ गए है। बाल अधिनियम 1960 के अनुसार 7 से 16 वर्ष के लड़को तथा 7 से 18 वर्ष की आयु लड़कियो के द्वारा किए जाने वाले कानून विरोधी व्यवहार बाल अपराध के अन्तर्गत आते है। 1981 में भारत में बाल अपराधो का प्रतिशत 4.4 था जो 1987 में घट कर 3.7 प्रतिशत हो गया। 1988 में 1.7 प्रतिशत तथा 1991 में 0.8 प्रतिशत पाया गया। 1991 में सबसे अधिक बाल अपराध महाराष्ट्र में हुए थे। शहरो में बम्बई बाल अपराधियों की मात्रा 1991 में सबसे आगे है। लिंग के आधार पर देखा जाए तो लड़कियों की सहभागिता अपराधो मे बढ़ती जा रही है। साक्षर बालकों की तुलना में निरक्षर बालकों में यह प्रतिशत अधिक है। 1990 में बाल अपराधियों पर किये गये अध्ययन से यह पता चला कि बाल अपराधियो द्वारा किए गए अपराधों में 321 हत्याएं, 185 अपहरण, 96 डकैतियों, 147 लूट मार तथा 9,155 चोरी से संबंधित अपराध थे। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि ऐसे अपराध करने वालों की उम्र 7 से 21 वर्ष थी। सर्वेक्षण से यह भी प्रकट हुआ है कि शहरो में 17 प्रतिशत की तुलना में गांवो में 7 से 21 वर्ष के वयः समूह वाली कुल किशोर जनसंख्या के 11 प्रतिशत बालको द्वारा अपराधी कार्य किये गये थे। जहां तक की बात कहे तो आनुवांशिक कारक, शारीरिक कारक, पारिवारिक कारक, मनोवैज्ञानिक कारक, सामाजिक कारक, सांस्कृतिक कारक, नगरीकरण इसमें सहायक है एवं उपचारो में मनोवैज्ञानिक विधियां एवं वैधानिक विधियां अधिनियम बाल न्यायालय और सुधार गृह आदि शामिल है। इसका समाधान केवल शासन के प्रयासो द्वारा सम्भव नही होगा इसके लिए परिवार, समाज के वृद्ध तथा युवावर्ग, समाजसेवी संस्थाओं तथा शासकीय प्रयासों का मिलाजुला योगदान आवश्यक है।

शब्द कुंजी – बाल अपराध कारक, उपचार – मनोवैज्ञानिक विधियां, वैधानिक विधियां, बाल न्यायालय, बोस्टल स्कूल, किशोर बंदी गृह, सुधार गृह, पोषण गृह, फोस्टर होम, प्रमाणित स्कूल, उत्तर रक्षा संस्थाएं।

प्रस्तावना – प्रत्येक देश तथा समाज की अपनी नीतियां, रीतियां तथा परम्परायें होती है। इनका पालन समाज के सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य होता है चाहे सदस्य के रूप में प्रौढ़ व्यक्ति हो या बालक। बालकों में अनुभवो तथा परिपक्वता की कमी होने के कारण शरारती होना एक सामान्य लक्षण है। किन्तु ये शरारते एवं नटखटपन जब ऐसी सीमाओं का उल्लंघन करने लगता है। जिससे सामाजिक मर्यादाओं तथा कानूनो का उल्लंघन होने लगता है तब इस स्थिति को बाल–अपराध की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान समय में बच्चो का स्वभाव सृजनात्मक कम विध्वंसात्मक अधिक हो गया है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि कोई भी राष्ट्र महान नहीं बन सकता जब तक उसमें निवास करने वाले लोगों की विचारधारा एवं कार्य संकुचित होंगे। आज बच्चो की मानसिकता बहुत संकुचित हो गई है वह बहुजन हिताय के स्थान पर स्वहिताय की बात करते है। आज बच्चो में स्वार्थ, घृणा, हिंसा, नफरत एवं पलायन प्रवृत्ति का बोलबाला है। भारत में कुछ वर्षो में बाल–अपराधो में तेजी से वृद्धि हो रही है जो आंकड़े हमारे समक्ष आ रहे है, वो चौंका देने वाले है। सन 1951 में केवल 12000 बच्चो ने अपराध किए थे, वही आज बच्चों के द्वारा किए जाने वाले अपराधो की संख्या बढ़कर 1.27 लाख से अधिक हो गई है। भारत के गृह मंत्रालय से प्रकाशित एक रिपोर्ट से स्पष्ट होता है कि पिछले 10 वर्षो में जहां लड़को के द्वारा किए बाल अपराध में 10.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, वही लड़कियों में बाल अपराध 21.6 प्रतिशत बढ़ गए है। बाल अधिनियम 1960 के अनुसार 7 से 16 वर्ष के लड़को तथा 7 से 18 वर्ष की आयु लड़कियों के द्वारा किए जाने वाले कानून विरोधी व्यवहार बाल अपराध के अन्तर्गत आते है। 1857 में भारत Reformatory School Act जिसके अनुसार 15 वर्ष तक के बालकों के समाज विरोधी कार्य को बाल अपराध माना जाता है।

1990 में बाल अपराधियों पर किये गये अध्ययन से यह पता चला कि बाल अपराधियों द्वारा किए गए अपराधो में 321 हत्याएं, 185 अपहरण, 96 डकैतियो, 147 लूटमार तथा 9,155 चोरी से संबंधित अपराध थे। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि ऐसे अपराध करने वालो की उम्र 7 से 21 वर्ष से थी। भारत में बाल अपराध की समस्या एक गंभीर समस्या है। इस संबंध में जे.सी. दत्त ने कहा है भारत में बाल–अपराध बड़ी तीव्र गति के साथ एक गंभीर संकट होता जा रहा है।

सर्वेक्षण से यह भी प्रकट हुआ है कि शहरो में 17 प्रतिशत की तुलना में गांवो में 7 से 21 वर्ष के वयः समूह वाली कुल किशोर जनसंख्या के 11 प्रतिशत बालको द्वारा अपराधी कार्य किये गये है।

बाल अपराध की परिभाषा –

न्यूमेयर के अनुसार – बाल अपराध को परिभाषित करते हुए 'Juvenile Deliquency in modern society' में लिखा है। अतः बाल अपराध का अर्थ समाज विरोधी व्यवहार का कोई प्रकार है। वह व्यक्तिगत तथा

* सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला सागर (म.प्र.) भारत

सामाजिक विघटन का समावेश करता है। इसमें एक निर्धारित आयु से कम आयु का वह व्यक्ति होता है जो समाज विरोधी कार्य करता है तथा कानून की दृष्टि से अपराधी होता है।

बाल अपराध का कारक –

1. **आनुवंशिक कारक** – मनोवैज्ञानिको का मत है कि व्यक्तियों में अपराधिक प्रवृत्ति जन्म से ही पाई जाती है। इनके अनुसार अपराधियों के कुछ विशेष शारीरिक तथा मानसिक लक्षण होते है। इटैलियन सम्प्रदाय के प्रमुख Cesare Lombrasso एवं उनके शिष्य मितताप के अतिरिक्त Maundsley, Dugdate आदि ने अपराध का कारण वंशानुक्रम माना है। इस संदर्भ में Valentine का यह मत उद्धरित करना यहां अनुपयुक्त होगा आपराधिक प्रवृत्तियो में आनुवांशिक लक्षणों द्वारा ही प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

2. **शारीरिक कारक** – बालको में शारीरिक दोष एवं अस्वस्थ शरीर के चलते यह समस्या देखी जाती है। वह अपने हम उम्र बालको की तुलना में स्वयं को कमजोर एवं पिछड़ा मानता है साथ ही सामाजिक अपमान का सामना भी करना पड़ता है। जिससे उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। जिसमें वह आपराधिक कार्यो को करने लगता है। (Hootan Mamshabt, Gillian and Gillian)

3. **पारिवारिक कारक** – बाल अपराध के संदर्भ में किये गये अध्ययनों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है।

1. Johnson ने देखा कि 52 प्रतिशत अपराधी बालक ऐसे परिवार के थे जिनका वातावरण ठीक नहीं था।
2. Healy and Bronner ने अमेरिका बोस्टन एवं शिकागो नगरों के 4000 अपराधी बालकों का अध्ययन किया और 2000 अपराधी बालकों को भग्न परिवार से संबंध पाया।
3. Elliot ने अपने अध्ययन में अनैतिक परिवारों की 67 प्रतिशत लड़कियों में तथा Burt ने 54 प्रतिशत लड़कों में आपराधिक प्रवृत्तियों को प्राप्त किया।
4. Glueck ने अपने अध्ययन में यह परिणाम प्राप्त किया 66 अपराधी बालक ऐसे परिवारों के थे जिसकी दैनिक आवश्यकतायें पूरी नहीं हो पाती थी। Valentine ने अत्याधिक निर्धन परिवारों से बाल अपराध को प्राप्त किए।
5. Madinnus & Johnson का मत है कि पिता की मृत्यु के कारण अपराधी प्रवृत्तियों पाई जाती है।
6. सौतेले माता–पिता के अनुपयुक्त व्यवहार, अशिक्षित माता–पिता द्वारा बच्चों को उपयुक्त निर्देशन की कमी परिवार के सदस्यों द्वारा अनैतिक कार्य, बच्चों को अधिक लाड–प्यार मिलना।

4. **मनोवैज्ञानिक कारक** – निम्न बौद्धिक योग्यता (valentine, Burt, Healy, Goring, sutherland, Goddard) अवरूद्ध इच्छा (Mc Dougal) निराशा (Hurlock) संवेगात्मक असंतुलन (Healy and Bronner) अवस्था विशेष (Stanley Hall), भावना ग्रंथियां, समायोजन दोष, दुर्बल, अहं, मनोस्नायुविकृति, स्वभावगत अस्थिरता आदि को बाल अपराध का कारण माना जाता है।

5. **सामाजिक कारक –**

1. Shaw & Mackey ने अपने अध्ययनों में 25 नगरों के बाल अपराधियों का अध्ययन करके या परिणाम प्राप्त किया कि गंदी बस्तियो में बाल अपराध की दर सबसे अधिक थी।
2. Bagot ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि मनोरंजन का उपयुक्त साधन न होने से बालकों में बाल अपराध की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।
3. Glueck ने अपने अध्ययनों में 500 अपराधी बालकों में 95 प्रतिशत को शराबियों, जुआरियों तथा गुण्डो का मित्र पाया।
4. स्कूल का वातावरण उपयुक्त न होना।

6. **सम्प्रेषण से संबंधित कारक –**

हमारे समाज में विज्ञान और तकनीकी के विकास के परिणाम स्वरूप अनेक प्रकार के संवाद वाहन के साधन उपलब्ध

7. **सांस्कृतिक कारक** – नदी और तट पर आबाद मुण्डुगूमर जनजाति के लोग अत्यंत आक्रामक थे। पुरूष तथा महिलाएं सभी झगड़ालू और प्रभुत्व आकांक्षी थे।

8. **नगरीकरण** – नगरीकरण के कारण गंदी बस्तियों का फैलाव व्यवसायों एवं उद्योगों उद्योग धंधो में विभिन्नता, व्यक्तिवादिता ख़र्चीला जीवन, पारिवारिक अस्थिरता, एकाकी परिवार प्रतिस्पर्धा, बालश्रम माताओं का काम पर जाना, मादक पदार्थो का सेवन, संबंधो की अस्थिरता इत्यादित कारण बाल अपराध को जन्म दे रहे है।

बाल अपराध का उपचार –

1. **मनोवैज्ञानिक विधियां –**

(अ) मनोविश्लेषण – इस विधि का प्रयोग करने में मनोविश्लेषक अपराधी बालक के अचेतन मन का अध्ययन करता है। वह इन इच्छाओं तथा संवेगो का पता लगाता है कि जिनका दमन कर दिया गया था। उनके आधार पर यह जानने का प्रयास करता है कि बालक के अपराधी बनने का क्या कारण हो सकता है।

(ब) खेल चिकित्सा – जब बालको को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का अवसर नहीं प्राप्त होता है तो उनमें असामाजिक अवैधानिक एवं अनैतिक कार्यो को करने के लिए उत्तेजना प्राप्त होती है। अतः इस बात का प्रयास करना चाहिए कि उनको रचनात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का सुअवसर प्राप्त हो।

इस चिकित्सा द्वारा संवेगात्मक असंतुलन वाले व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले बाल अपराधों को समाप्त किया जा सकता है। (Medinnus And Johnson)

(स) मनोअभिनय : इस विधि का सर्वप्रथम उपयोग 1946 में किया इनके अनुसार इस अभिनय विधि में बालक को एक काल्पनिक भूमिका का अभिनय करने के लिए कहा जाता है। जिससे वह अपने संवेगो को प्रकट कर सके। अभिनय करते समय बालको के संवेगो, विचारो तथा तनावों की स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्ति होती है। मनोअभिनय के पश्चात बालक शांति एवं संतुष्टि अनुभव करता है, परिणाम स्वरूप उसके व्यवहार में संतुलन पाया जाता है।

(द) अंगुली चित्रण – मनोवैज्ञानिक अंगुली चित्रण द्वारा भी मनोवैज्ञानिक उपचार करते है। इसमें बालक लाल, पीले, हरे, नीले रंगो का प्रयोग करके अंगुलियो के द्वारा एक कोरे कागज पर पेन्टिंग करता है। ऐसा करने से संवेगात्मक तनावों की अभिव्यक्ति होती है।

2. **वैधानिक विधियां – अधिनियम –** बच्चों के सुधार तथा इनको समाज के लिए उपयोगी बनाने हेतु नवम्बर 1986 में बाल अवचारी न्याय विधेयक लोकसभा में पारित किया गया। इस कानून को 1 जुलाई 1987 से सभी राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशो में लागू कर दिया गया। इस कानून के अनुसार सभी बाल अपराधियो के जेल दंड को समाप्त करके बाल ग्रहों में उनके सुधार की व्यवस्था की गई।

बाल न्यायालय की स्थापना – भारत में सन 1960 में बाल अधिनियम के अन्तर्गत बाल न्याय की स्थापना देश के सभी राज्यों में कर दी गई।

रिमांड होम तथा सम्प्रेषणों गृहों की स्थापना – बाल अपराध को कम करने के लिए रिमांड होम तथा सम्प्रेषण गृहों की स्थापना की गई। यहां बालक को तब तक रखा जाता है। जब तक की न्यायालय की कार्यवाही पूर्ण नहीं हो जाती। रिमांड होम तथा सम्प्रेषण गृहों का वातावरण एवं परिवार जैसा होता है तथा इस परिवार में प्रोबेशन अधिकारी परिवार के मुखिया की भूमिका निभाता है। रिमांड होम में बच्चों की शिक्षा मनोरंजन एवं खेलकूद का प्रबंध रहता है।

बोस्टल स्कूल – भारत में 1962 में तमिलनाडु में बोस्टल स्कूल की स्थापना से अच्छे परिणाम प्राप्त होने के कारण अन्य राज्यो बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा मध्यप्रदेश में इनकी स्थापना की गई। वर्तमान में देश में 9 राज्यो में ये स्कूल सफलतापूर्वक संचालित है। इन स्कूलो में बच्चो को मुक्त वातावरण में रखकर आत्मनियंत्रण एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाता है।

किशोरबंदी गृहों की स्थापना – वयस्क अपराधियो के सत्संग एवं संपर्क से बचाने के लिए किशो बंदी ग्रह की स्थापना की गई। यहां शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था रहती है।

सुधार गृह एवं सुधार विद्यालय की स्थापना – किशोर सुधार गृह एवं वयस्क सुधार गृह यह गृह एक्ट सन 1897 में भारत में बना था जिनका नाम Reformetory school act था। जिनके आधार पर यह गृह बना था बच्चों को किशोर सुधार गृह में रखा जाता है। इन गृहो में भिन्न-भिन्न प्रकार से उद्योगो से संबंधित प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रवीक्षण/प्रोबेशन – उत्तर प्रदेश फरस्ट आफेन्डर्स प्रोबेशन एक्ट पास हुआ इसके अनुसार 18 वर्ष से कम आयु के अपराधी को न्यायालय न भेजकर प्रोबेशन अधिकारी के पास भेजा जाता है। जो बालक की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

पोषण गृह – पोषण गृहो में दस वर्ष से कम आयु के बाल अपराधियों को रखा जाता है। जिन्हे प्रमाणित स्कूल में नही रखा जा सकता। भारत में इस समय 36 पोषण गृह कार्य कर रहे है। माता-पिता के परित्याग, तलाक, कैद या मृत्यु के कारण कम आयु के आवारा बच्चों के पोषण गृह में रखकर सुधार किया जाता है।

फोस्टर होम – न्यायालयो की अनुमति से बाल अपराधी को किसी सम्मानित परिवार को जो उस बालक की जिम्मेदारी वहन करने का इच्छुक व तैयार हो, सौंपा जा सकता है। वहां वह बिल्कुल घर के वातावरण में अन्य हम उम्र बच्चो के साथ पलता है। उस परिवार के मुखिया, उसके फोस्टर माता-पिता कहलाते है।

प्रमाणित स्कूल – बाल अधिनियम के अनुसार बम्बई, आंध्रप्रदेश, केरल, उत्तरप्रदेश, पंजाब, दिल्ली एवं पश्चिम बंगाल में प्रमाणित स्कूलो की स्थापना की गई है। इन स्कूलो में साधारण शिक्षा के साथ-साथ औद्योगिक प्रशिक्षण (जैसे बढई गिरी, दरी बुनना, कढाई बुनाई, कपड़े धोना, जिल्दशाजी, मधुपालन, कढाई, संगीत, राजगिरी एवं कृषि संबंधी प्रशिक्षण) की व्यवस्था होती है।

उत्तर रक्षा संस्थाएं – उसे दंड की बची हुई अवधी के लिये उत्तर रक्षा संस्थाओ में भेज दिया जाता है। जहां पर उन्हें कताई बुनाई कपड़ा सिलाई, टोकरी बनाना, लकड़ी का काम, कालीन बनाना इत्यादि प्रशिक्षण दिया जाता है। परिवार, विद्यालय एवं समाज द्वारा निवारण – शासन द्वारा किया गया प्रयास तो द्वितीयक कार्य है किन्तु परिवार, विद्यालय एवं समाज की इसे सुधारने में अग्रणीय भूमिका होना चाहिए।

निष्कर्ष – बाल अपराध की अवधारणा, कारको एवं उपचारो का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के उपरांत यह निष्कर्ष निकलता है कि यह एक गम्भीर समस्या है जिसका निवारण समय रहते आवश्यक है। क्योंकि इसकी जड़े समाज रूपी जमीन मे जम गई तो सम्पूर्ण समाज, सम्पूर्ण राष्ट्र विकराल रूप धारण कर लेगा। इसमें सरकार का प्रयास जरूरी है। इस प्रकार इसका समाधान केवल शासन के प्रयासो द्वारा सम्भव नहीं होगा। इसके लिये परिवार, समाज के वृद्ध तथा युवावर्ग, समाजसेवी संस्थाओं तथा शासकीय प्रयासो का मिलाजुला योगदान आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. उदयवीर सक्सेना (1989) – बाल मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा
2. पंडित श्रीराम शर्मा 1998 – राष्ट्रसमर्थ अखण्ड ज्योति आचार्य वाडमय सशक्त कैसे बने संस्थान मथुरा
3. श्रीमती आर.के. शर्मा (2001) – शैक्षिक मनोविज्ञान राधाप्रकाशन मंदिर आगरा
4. डॉ. रामजी श्रीवास्तव (2002) – आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान मोती बाबा बनारसी दास
5. डॉ. गणेश पाण्डेय (2003) – भारतीय सामाजिक समस्यायें राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली ISBN-81.7487.253.1
6. डॉ. धर्मवीर महाजन, डॉ. कमलेश महाजन (2007) – भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं विवेक प्रकाशन, दिल्ली
7. डॉ. शशि प्रभा 2008 मानव विकास परिचय शिवा प्रकाशन
8. अह ! जिन्दगी विशेषांक 2011
9. रिसर्च जनरल ऑफ सोशल एण्ड लाईफ साइन्स (8ISSN-0973-3914) (जून 2014)
10. युवा देश आई.बी.सी.एन.एस.यू.आई ऑनलाईन पत्रिका में मनोज झुनझुनवाला का लेख 2.8.2012

****

फास्ट फूड या जंक फूड से प्राप्त ऊर्जा एवं इसकी पारंपरिक भोज्य पदार्थ से तुलना

डॉ. इमराना सिद्दकी * डॉ. फरहाना अली **

शोध सारांश – जंक फूड और फास्ट फूड में उन सभी भोज्य पदार्थों तथा पेय पदार्थों को शामिल कर सकते हैं जिनमें उच्च वसा, शर्करा, कैलोरी तथा नमक होता है। इन भोज्य पदार्थों का पोषण मान (Nutritionvalue) कम होता है। इनके अधिक सेवन से वर्तमान में बच्चों एवं युवाओं में स्वास्थ्य संबंधी कई बीमारियाँ जैसे मधुमेह, रक्तचाप, हाइपरटेंशन, डिप्रेशन, मोटापा उत्पन्न हो रही है।

इस परियोजना को तैयार करने के लिए एन.टी.पी.सी कोरबा में स्थित स्कूलों–दिल्ली पब्लिक स्कूल शासकीय उच्चतर माध्यमिक शाला, केन्द्रीय विद्यालय का चयन किया गया। एन.टी.पी.सी बस्ती तथा सी.एस.ई.बी. बस्ती के लोगों एवँ बच्चों से जानकारी एकत्र की गई। इस परियोजना को चुनने का मुख्य लक्ष्य यह है कि वर्तमान समय में कम उम्र में बच्चों में होने वाली बीमारियाँ। इसका प्रमुख कारण है फास्ट फूड तथा जंक फूड का तेजी से बढ़ता चलन इस परियोजना के द्वारा हमने जंक फूड से प्राप्त ऊर्जा, शरीर पर इन भोज्य पदार्थों का प्रभाव एवं पारम्परिक भोज्य पदार्थों से इनकी तुलना का अध्ययन किया है। जंक फूड से होने वाले दुष्परिणामों को दूर करने क सुझाव ढूँढने का प्रयास किया है।

चयनित बच्चों एवं युवाओं में ऐसे बच्चे जोकि जंक फूड आवश्यकता से अधिक खाते हैं उनका स्वास्थ्य परीक्षण करने पर पता चला कि इन बच्चों का वजन उनकी आयुनुसार अधिक है , इन बच्चों में ऊर्जा की कमी है जिससे इनके कार्य करने की क्षमता कम हैं। युवाओं में बढ़ता गुस्सा, चिड़चिड़ापन और बात–बात पर होने वाली बेचैनी इस जंक फूड से ही है। इसके विपरीत वे बच्चे जोकि जंक फूड का उपयोग कम करते हैं या नहीं करते है उनका शरीर अपेक्षाकृत स्वास्थ रहता है। पारंपरिक भोज्य पदार्थ जैसे इडली, डोसा, सलाद, पसंद करने वाले बच्चों में स्वास्थ्य संबंधी जटिलताएँ नहीं पाई गईं।

प्रस्तावना – वर्तमान में बच्चों की जीवन शैली में परिवर्तन आया है जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। भारत जैसे देश में जहाँ वर्ष 2003 में फास्ट फूड की सालाना खपत 41000 करोड़ रूपए थी जो वर्ष 2011 में बढ़कर 92000 करोड़ रूपए हो गई। इसका कारण बच्चों तथा युवाओं में फास्ट फूड के प्रति बढ़ती दीवानगी है।

फास्ट तथा जंक फूड का तीखा स्वाद, तेज नमक, उच्च वसा तथा शर्करा युवाओं को बहुत पसंद हैं। टी.वी. पर दिखाए जाने वाले आकर्षक विज्ञापन बच्चों तथा युवाओं को जंक फूड की तरफ आकर्षिक करते हैं। हमने इस परियोजना के द्वारा बच्चों तथा युवाओं को वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा का अध्ययन किया।

फास्ट फूड जैसे चाउमीन तथा मैगी से प्रतिदिन प्राप्त होने वाली कैलोरी ऊर्जा तथा पारम्परिक खाद्य पदार्थ जैसे इडली, डोसा, पकोड़े, पोहा उपमा से प्राप्त होने वाली कैलोरी ऊर्जा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। कोरबा जिले के एन.टी.पी.सी. कालोनी में स्थित विद्यालयों जैसे शासकीय उच्चतर माध्यमिक शाला, दिल्ली पब्लिक स्कूल तथा केन्द्रीय विद्यालय का चयन किया गया। इन विद्यालयों मे सामान्य तथा निम्न वर्ग तथा समृद्ध वर्ग के बच्चे अध्ययनरत हैं। इन बच्चों की खाने की आदतों का अध्ययन किया।

कार्यविधि – इस परियोजना के अन्तर्गत हमने कोरबा जिले के एन.टी.पी.सी. आवासीय परिसर में स्थित विद्यायलों– शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, दिल्ली पब्लिक स्कूल, केन्द्रीय विद्यालय, किराना दुकानों, केन्टीनों का चुनाव किया। इन विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों की खाने की आदतों का अध्ययन किया। फास्ट फूड तथा जंक फूड को अधिक पसंद करने वाले तथा इनका अधिक उपयोग करने वाले बच्चों का चयन किया। इन बच्चों की कार्य करने की क्षमता, वजन, तथा स्वास्थ्य संबंधी अन्य जानकारियाँ ज्ञात की गई । प्रश्नावली के माध्यम से नाश्ता में ली जाने वाली खाद्य सामग्रियों, प्रतिदिन सेवन की जा रही फास्ट फूड की मात्रा, बच्चों का वजन, स्वास्थ्य संबंधी जटिलताओं का अध्ययन किया गया।

यह परियोजना चुनने का कारण – हमने इस परियोजना पर ही कार्य क्यों किया इसके कई कारण हैं–

1. दिल्ली पब्लिक स्कूल में पढ़ने वाले समृद्ध परिवारों के बच्चों के बढ़ते वजन का अध्ययन करने हेतु
2. बच्चों तथा युवाओं की भोजन संबंधी आदतों में परिवर्तन का अध्ययन करने हेतु
3. खान–पान में बदलाव से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने हेतु
4. फास्ट फूड तथा जंक फूड का शरीर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करने हेतु
5. पारम्परिक भारतीय भोज्य पदार्थों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का मान ज्ञात करने हेतु
6. फास्ट फूड तथा जंक फूड के दुष्परिणामों से बचने के उपाय ढूँढने हेतु

सर्वेक्षण एवं प्रयोग – चयनित विद्यायलों, कैन्टीनों, रेस्टोरेंट तथा दुकानों में सर्वेक्षण हेतु जो मुख्य तथ्य ज्ञात किए गए वे निम्नानुसार हैं–

1. विद्यालय में निर्धारित आयु से अधिक वजन वाले बच्चों की संख्या,कारण
2. फास्ट फूड तथा जंक फूड अधिक मात्रा में खाने वाले बच्चों में स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं जैसे डायबिटीज, उच्च रक्त दाब, हाइपरटेंशन, मोटापा इत्यादि का पता लगाया।
3. प्रश्नावली के माध्यम से बच्चों की फास्ट फूड के संबंध में कितनी जानकारी है पता लगाने के लिए।

*** सहायक प्राध्यापक, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत ** प्राचार्य, शासकीय माध्यमिक विद्यालय, स्याहीमुदी, कोरबा, (छ.ग.) भारत**

4. कैटीनों में प्रतिदिन पारम्परिक भारतीय भोज्य पदार्थों की तुलना में जंक फूड तथा फास्ट फूड की खपत का पता लगाया।
5. किराना स्टोर्स में जंक फूड की बिक्री का पता लगाया।
6 चिकित्सकों से फास्ट फूड तथा जंक फूड से शरीर पर पड़ने वाले दुष्परिणामों का पता लगाया।
7. फास्ट फूड/जंक फूड तथा पारम्परिक भारतीय फूड की तुलनात्मक कैलोरी मान ज्ञात किया गया।

आँकड़ों का विश्लेषण– इस परियोजना को पूर्ण करने पर हमारे दल को कई जानकारियाँ प्राप्त हुई जो इस प्रकार हैं–

सारणी – (1) में पुरूष, नारी तथा बच्चों को प्रतिदिन कितनी कैलोरी ऊर्जा चाहिए यह दिया गया है। सारणी से स्पष्ट है कि बच्चों एवं युवाओं को आयु के अनुसार अलग–अलग मात्रा में कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता है।

सारणी (2) में प्रति घण्टा सामान्य क्रियाओं के दौरान कितनी कैलोरी ऊर्जा आवश्यक है यह दिया गया है। आँकडों से स्पष्ट है कि सामान्य क्रियाओं जैसे सोने, बैठने, चलने, खेलने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

सारणी (3) में युवाओं एवँ बच्चों को अपना वजन संतुलित रखने के लिए कितनी कैलोरी चाहिए, यह दिखाया गया है। इन आँकड़ो से स्पष्ट है कि निश्चित आयु वर्ग को निष्चित कैलोरी ऊर्जा की आवष्यकता होती है। यह ऊर्जा उन्हें उनके द्वारा लिए जाने वाले भोज्य पदार्थों से प्राप्त होती है। यदि पोषक पदार्थों युक्त संतुलित आहार लिया जाएगा तो उन्हें पूर्ण कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होगी जोकि शारीरिक वृद्धि में सहायक होगी।

सारणी (4) में महिलाओं एवं पुरूषों की लम्बाई के अनुसार वजन दिया गया है।

सारणी (5) में पारम्परिक भारतीय भोज्य पदार्थों में उपस्थित पोषक तत्व, उनकी प्रतिशत मात्रा तथा कैलोरी दी गई है। सारणी से स्पष्ट है कि भारतीय खाद्य पदार्थों जैसे डोसा, पोहा, इडली, उत्पम में सभी पोषक तत्व निर्धारित मात्रा में उपलब्ध हैं। इनकी कैलोरी मान भी उच्च है।

सारणी (6) में कुछ पारम्परिक खाद्य पदार्थों के कैलोरी मान दिए गए हैं। इडली, डोसा, ढोकला, फलों का रस जैसे खाद्य पदार्थों से शरीर को सभी आवश्यक तत्व प्राप्त होते हैं। शरीर को निश्चित कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है।

भारतीय खाने में दालें, चना, मटर हरी सब्जियाँ गेहूँ, कंद, फल, मसाले, गिरी, तेल वाले बीज, मछली, दूध, दूध के उत्पाद आदि सम्मिलित हैं। ये सभी तत्व शरीर के लिए आवश्यक विटामिनों जैसे विटामिन A, B, C, तथा D, खनिजों जैसे लोहा, मैग्नीशियम, जिंक, कॉपर, सोडियम और पोटैशियम की पूर्ति करते हैं जो शरीर को मजबूत तथा स्वास्थ रखते है।

सारणी (7) में फास्ट फूड तथा जंक फूड मैगी, चाऊमीन, पोटैटो चिप्स, कोल्ड ड्रिक्स) की कैलोरी वेल्यु दी गई है। सारणी देखने पर पता चलता है कि इन खाद्य पदार्थों में शरीर के लिए आवश्यक तत्व निर्धारित मात्रा में नहीं हैं।

सारणी (8) में सर्वेक्षण से प्राप्त उन बच्चों के आँकड़े दिए गए हैं जिनका वजन उनकी आयु मान से अधिक है। सर्वे से स्पष्ट है कि ये बच्चे फास्ट फूड खाने के शौकीन हैं। उनके शरीर में स्वास्थ्य संबंधी जटिलताएँ भी पाई गई। चिकित्सकों के विचारों के अनुसार फास्ट फूड/जंक फूड का ज्यादा सेवन करने वाले बच्चों में डायबिटीज होने का खतरा अधिक होता है। इसके विपरीत जिन बच्चों ने पारम्परिक खाद्य पदार्थों को अपनाया उनका शरीर स्वस्थ तथा मजबूत है।

शासकीय उच्च.मा.वि. के 1–2 प्रतिशत छात्रों का वजन सामान्य से अधिक पाया गया। चूंकि इस विद्यालय में सामान्य तथा निम्न वर्ग के छात्र अध्ययनरत हैं अत: फास्ट फूड तथा जंक फूड पर अधिक पैसे खर्च नहीं कर सकते।

दिल्ली पब्लिक स्कूल के 25 प्रतिशत छात्रों का वजन सामान्य से अधिक पाया गया। इस विद्यालय के 50 प्रतिशत बच्चे अपने टिफिन में फास्ट तथा जंक फूड लाते हैं। चूंकि इस विद्यालय में समृद्ध परिवारों के बच्चे अध्ययनरत हैं अत: ये फास्ट फूड पर अधिक पैसे खर्च करते है। केन्द्रीय विद्यालय के 18 प्रतिशत बच्चों का वजन अधिक पाया गया। वहाँ पारम्परिक खाद्य पदार्थों के प्रति छात्रों की रूचि बढ़ाने के लिए कुछ तरीके अपनाए जा रहे हैं।

निष्कर्ष– इस परियोजना को पूर्ण करते हुए हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचे वह इस प्रकार है–

- चयनित आवासीय परिसर के 40 प्रतिशत लोग सप्ताह में एक बार घर के बाहर खाना पसंद करते हैं। 60 प्रतिशत बच्चे एवं युवा खाने में चाऊमीन तथा मैगी खाना पसंद करते हैं। इण्डियन कॉफी हाउस तथा फास्ट फूड सेन्टरों से प्राप्त आँकड़ों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रतिदिन लगभग 150 लोग यहाँ फास्ट फूड खाने आते है।
- चिकित्सकों के विचार से बच्चों की सेहत के लिए फास्ट फूड हानिकारक है। वर्तमान में कम उम्र के बच्चों में डायबिटीज, उच्च रक्त चाप, चिड़चिड़ापन, मोटापा जैसी बीमारियाँ ज्यादा हो रही है।
- इसके विपरीत परम्परिक खाद्य पदार्थों का सेवन करने वाले बच्चों के आँकड़ो से यह निष्कर्ष निकला कि पारम्परिक भोज्य पदार्थों में सभी पोषक तत्व होने के कारण इन बच्चों का स्वास्थ्य बेहतर है।

समस्याओं के समाधान के विभिन्न प्रयास– सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट हो गया कि फास्ट फूड तथा जंक फूड का कैलोरी मान बहुत अधिक होता है। इन भोज्य पदार्थों में पाई जाने वाली वसा, शर्करा, तथा नमक की उच्च मात्रा बच्चों में कई बीमारियों को जन्म दे रही है। हमारे शारीरिक विकास में सहायक है।

फास्ट फूड से होने वाली समस्याओं के समाधान हेतु कई प्रयास किए जाने चाहिए–

1. बच्चों को सलाद, फल तथा सब्जियाँ खाने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
2. स्वास्थ्यवर्धक कार्बनिक भोज्य पदार्थों जैसे अंकुरित दालें को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
3. फास्ट फूड/जंक फूड के पैकेट पर डॉक्टरों द्वारा चेतावनी लिखी होना चाहिए।
4. T.V. Radio[a junk food के विज्ञापनों पर प्रतिबंध लगाना चाहिए।

सारणी 1

प्रतिदिन आवश्यक कैलोरी की मात्रा

बच्चों (आयु समूह 11, 12 तथा 19)

(कैलोरी / दिन)

कार्य का प्रकार	लड़कियों के लिए	लड़कों के लिए
हल्का कार्य	1700–1800	2100–2500
सामान्य कार्य	2000–2200	2500–2900
क्रियाशील कार्य	2300–2600	2800–3400
अधिक क्रियाशील कार्य	2800–3000	3300–4000

सारणी–2

कार्य	कैलोरी/घंटा
सोना	55
खाना	85
शाँति से बैठना	84
खड़े रहना	100
गृह कार्य	60+
साइकिल चलाना	450+
दौड़ना	700+
लिखना	114
ताश खेलना	116

सारणी –3

बच्चों को वजन संतुलित रखने हेतु आवश्यक कैलोरी

आयु	कैलोरी मान
0–5	655 कैलोरी
5–12	855 कैलोरी
1–3	1300 कैलोरी
4–6	1800 कैलोरी
7–10	1800–2000 कैलोरी

सारणी–4

शरीर की ऊँचाई व संबंधऊँचाई	महिला (वजन) किलोग्राम	पुरूष वजन (वजन) किलोग्राम
410'	49–54	
50'	51–57	
51'	52–58	
52'	53–59	59–63
53'	54–61	60–64
55'	57–63	62–67
56'		63–68
510'		68–73
511'		69–75
60'		71–77

सारणी–5

पांरपरिक भारतीय खानोंमें कैलोरीतत्व	इडली	मसाला	डोसाउत्तपम	पोहा
कैल्सियम	3.3%	3.9%	5.5%	1%
कैलोरी	7.85%	10.4%	15.8%	7.0%
कार्बोहाइड्रेट	10.5%	13.17%	17.2%	0.73%
वसा	0.91%	7.64%	15.8%	3.27%
लोहा	20%	13.75%	26.25%	52.5%
विटामिन B3	17.5%	2.5%	31.25%	25%
प्रोटीन	11.96%	5.36%	13.93%	5%
विटामिन B2	0.14%	0.17%	0.18%	0.04%
विटामिन B1	0.25%	0.34%	0.36%	0.18%

सारणी –6 कैलोरी चार्ट

सामग्री	मात्रा	कैलोरी मान
इडली	1	100
डोसा (सादा)	1	120
डोसा (मसाला)	1	250
साँभर	1	कप150
उबला अंडा	1	80
कटलेट	1	75
ताजा फलों का रस	1	कप 120
ढोकला	1	49.27

सारणी 7

फास्ट फूड/जंक फूड का कैलोरी मानतत्व	मैगी (100 ग्राम)	चाऊमीन (1 कप)	पोटैटो चिप्स (35.4ह)	साप्ट ड्रिंक (1 कैन)
वसा	24.0%	23.17%	20%	0%
सोडियम	48.0%	47.2%	7%	1%
कार्बोहाइड्रेट	20%	30.89%	6%	12%
प्रोटीन	22%	20.46%	4%	–
कोलेस्ट्रॉल	7.3%	3.1%	–	–
विटामिन	–	–	–	–
कैल्सियम	–	–	–	1%
लोहा	–	–	1%	1%
कैलोरी	440	407	190	140

कैलोरी की आवश्यक मात्रा

वसा–33% कार्बोहाइड्रेट–56.9% प्रोटीन–10.1%

सारणी –8

बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन विद्यालय	सामान्य से अधिक वज़न	टिफिन में फास्ट फूड लाने वाल	कारण
शा.उ.मा.विद्यालय NTPC,जमनीपाली	2%	11%	1. सामान्य वर्ग के बच्चे अध्ययनरत 2. मध्यान भोजन की सुविधा
दिल्ली पब्लिक स्कूल	25%	50%	1. समृद्ध परिवारों के बच्चे अध्ययनरत 2. आधुनिक जीवनशैली 3. आलसीपन
केन्द्रीय विद्यालय	18%	43%	1. समृद्ध बच्चे 2. जीवन शैली में बदलाव 3. पालकों का आलसीपन

संदर्भ ग्रंथ सूची :– 1. समाचार पत्रों की कतरनें, दैनिक भास्कर, हरिभूमि। 2. गाँव के लोगों से प्राप्त सर्वे रिपोर्ट के आधार पर। 3. Internet.

एक दृष्टि : घरेलू कार्यस्थल का पर्यावरण

श्रीमती प्रीति गुप्ता *

प्रस्तावना – पर्यावरण एक व्यापक शब्द है। पर्यावरण का तात्पर्य समूचे भौतिकी एवं जैविक विश्व से है; जिसमें जीवधारी रहते है , बढ़ते है और अपनी स्वाभाविक प्रवृतियों का विकास करते है। वस्तुत: पर्यावरण वह बाहरी शक्ति है , जो मनुष्य को प्रभावित करती है। कोई भी मनुष्य सर्वथा एकल व निष्काम रहकर सुखद जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। मनुष्य की अधिकांश उर्जा अपने पर्यावरण की स्थितियों के प्रति अनुकुलित होने में ही व्यय होती है। घर के अन्दर का पर्यावरण उसमें रहने वाले व्यक्तियों की कार्यकुशलता बढ़ाने तथा विश्राम व अवकाश का आनंद प्रदान करने में सहायक होता है।

गृहिणी के शारीरिक–मानसिक स्वास्थ्य , उसके कार्य सम्बन्धी मनोभावों , उसके काम के उत्पादन में घरेलू कार्य स्थल के पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। सुव्यवस्थित कार्यस्थल जहाँ भ्रान्ति ,कुण्ठा और व्यर्थता की अनुभुतियों से बचाता है ; वहीं गृहिणी की सुरक्षा और कार्यकुशलता को बढाता है। कार्यस्थल का रंग , डिज़ाइन, क्षेत्रफल, उँचाई व सजावट सुखद होनी चाहिये। रसोईघर का क्षेत्रफल सौ वर्गफीट एवं शयनकक्ष, अतिथिकक्ष का क्षेत्रफल एक सौ पचास वर्गफीट से कम न हो। रसोईघर में उत्तेजक रंगों का प्रयोग हो ताकि खाना बनाने वाला सक्रिय बना रहे ; बच्चों के कमरें प्रसन्नतापूर्ण ,चमकीले रंगयुक्त हो ; शयनकक्ष शांत मंद रंग के आरामदायक डिज़ाइन के हो। स्नानघर में अधिक रंगों का प्रयोग थकान उत्पन्न करता है। स्नानघर में हरे–नीले जल के समान रंगों का प्रयोग ताजगी उत्पन्न करता है। कमरे में प्रवेश करने वाली सूर्य–प्रकाश की मात्रा व कमरे के आकार को ध्यान में रखकर ही रंग–निर्धारण करना चाहिए।अगर कमरे का आकार बड़ा है व सूर्य–प्रकाश पर्याप्त मात्रा में आता है तो गहरे रंगों का प्रयोग करना चाहिए एवं कमरे का आकार छोटा है व सूर्य–प्रकाश कम मात्रा में आता है तो हल्के रंगों का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार संपूर्ण दीवार मे शीशे की खिड़कियाँ कार्यस्थल को विस्तार प्रदान करती है।

कार्यस्थल का प्रकाश कार्यकर्ता की आँखों व कार्य के अनुरूप हो। कार्यस्थल की वायु को धूल,पराग कणों,अप्रिय गन्धों व प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए उपयुक्त तापमान ,आद्रता तथा संवातन प्रदान करने वाले उपकरणों का प्रयोग आवश्यक है ,जिससे ऐसी वायु मिल सके जो अच्छा स्वास्थ्य, आराम तथा कार्य संपादन में सहायक हो। मच्छर, मक्खी, कीड़ों से अवरोधन हेतु खिड़की, दरवाजे पर जाली लगी हो। साथ ही कार्यस्थल की सजावट, कार्यकर्ता के वस्त्र , चप्पल आदि भी कार्य अवरोधक नहीं होने चाहिए।

कार्यस्थल पर बहुत समय तक कर्कश ,अप्रिय शोर भावात्मक बैचेनी ,थकावट तथा कार्य संपादन में कमी की प्रवृति उत्पन्न करता है। यद्यपि समग्र अप्रिय शोर समाप्त नहीं किये जा सकते; तथापि उन्हें कम किया जा सकता है। घर के चारों ओर पेड़ झाड़िया लगाकर बाहरी शोर कुछ हद तक कम किया जा सकता है ,जबकि आतंरिक शोर गलीचों, परदों तथा कमरे के साज सामानो विशेष रूप से जब वे कपड़े की बनावट के बने हो ; कम किया जा सकता है। घरेलू कार्यो को सरल एवं तीव्र बनाकर कार्यकर्ता की समय व शक्ति बचाने में घरेलू उपकरणों का विशेष योगदान है। घरेलू कार्यो में तुष्टीकरण को उच्चतम सीमा तक बढ़ाने में इन उपकरणों का अच्छी दशा में होने के साथ ही उनका उचित स्थापन भी अनिवार्य है। इन उपकरणों के प्रचलन का शोर प्रतिस्कंदी चटाई रखकर कम किया जा सकता है।

नल की टोंटिया , जिनमें से जल टपकता हो ; पंखे, जो आवाज करते हो ; दरवाजे, जो चूँ–चूँ की आवाज करते हो , की मरम्मत तुरंत करना आवश्यक है। कार्यकर्ता की व्यक्तिगत आदतें चुपचाप या शोर करके काम करने की प्रवृति भी घरेलू पर्यावरण को प्रभावित करती है। जबकि कार्य करते समय बजने वाला शांत संगीत कार्य संपादन की मनोरंजकता बढ़ा सकता है तथा थकान के अनुभव को कम करने में सहायक हो सकता है ; जिससे अधिक कार्य सम्पादित हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भट्ट डॉ. पुरषोत्तम, 2004 , पर्यावरण चेतना, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल पेज न. 1
2. लुइ जेनिसन पिट , 1986 , घरेलू उपकरण , हरयाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ पेज न. 743–746

* सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय , उज्जैन (म.प्र.) भारत

Usage of Feedback Form in Hotel Industry

Vinod Kumar Singh Bhadauria *

Abstract - Feedback forms are used widely in hotel industry to know the response of customers towards the services provided by the hotels. It is a tool which is helpful in catering to the needs of customers and raise the standard of hotels by providing customized services. As feedback forms are so useful it has been considered appropriate to study the usage of feedback form in 3 star or above hotels and below 3 star hotels. A comparative study of these two group of hotels has been conducted at Udaipur, Jaipur & Jodhpur. To know whether feedback forms are filled in the hotels, to know whether the feedback are analyzed and to know whether feedback is considered while decision making; a thorough research has been done.

Key Words - Feedback form, 3 star or above hotels, Below 3 star hotels**,** Feedback form analysis, Feedback forms in decision making.

Introduction - A feedback form is composed of questions on issues that you want feedback on from your customers. It may have open ended, close ended, true/ false, multiple choice questions so that the customers can put their own feedback comments. The importance of a feedback form is that it shows your customers that you are interested in their comments. This is a chance to let hoteliers know what customers think about the hotel.

Information collected from the Feedback Form should be held in strict confidence and used for the sole purpose of improving the quality of service provided by the hotel.

To study whether the hotels in Udaipur, Jaipur & Jodhpur are using feedback forms a research was conducted with the following objectives:

1. To know whether feedback forms are filled in the hotels.
2. To know whether the feedback are analyzed.
3. To know whether feedback is considered while decision making.

10 three star or above hotels and 10 below three star hotels of Udaipur, Jaipur & Jodhpur were studied to meet the research objectives.

Sample design

	Udaipur	Jaipur	Jodhpur	Total
3 star or above	10	10	10	30
Below 3 star	10	10	10	30
Total	20	20	20	**60**

The following hypotheses were framed to fulfill the research objectives:

H_1 All the hotels get the feedback forms filled and there is no significant difference between 3 star or above hotels and below 3 star hotels.

H_2 All the hotels analyze the filled feedback forms and there is no significant difference between 3 star or above hotels and below 3 star hotels.

H_3 All the hotels use feedback form and there is no significant difference in the usage of feedback form while decision making between 3 star or above hotels and below 3 star hotels.

Research Analysis & Findings -

1. Collected data revealed that feedback forms are filled in 86.67% three star or above hotels while in below three star hotels just 30% are such where feedback forms are filled.

Category	Feedback Forms are Filled
3 Star or above hotels	86.67%
Below 3 Star hotels	30%

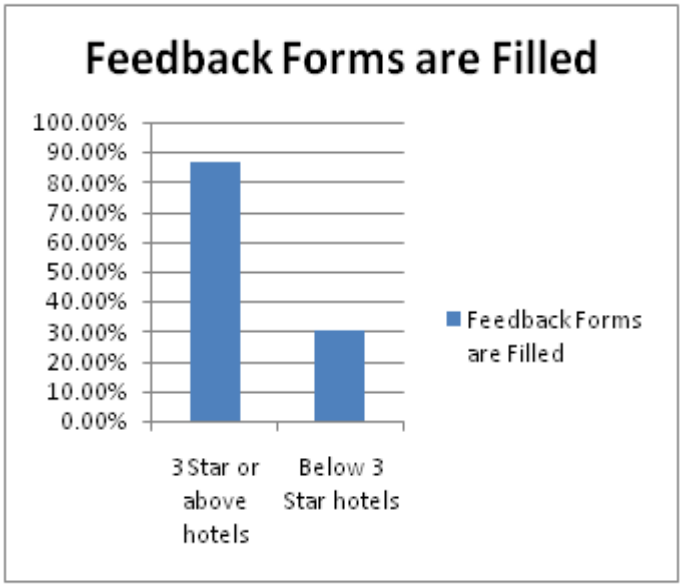

The critical value of Z for level of significance .05 is 1.96. Since the computed value of Z = 5.44 is higher than critical value. The difference is significant. Thus H_1 is rejected and it is concluded that there is significant difference in filling

* **Director, Pacific Institute of Hotel Management, Udaipur (Raj.) INDIA**

of feedback form between 3 star or above hotels and below 3 star hotels.

Particulars	3 Star or above Hotels	Below 3 star hotels
Proportion (p)	.8667	.3
Sample Size	30	30
Calculated value of z	5.44	

2. Collected data revealed that feedback forms are analysed in 70% three star or above hotels while in below three star hotels just 16.67% are such where feedback forms are analysed.

Category	**Feedback Forms are Analysed**
3 Star or above hotels	70%
Below 3 Star hotels	16.67%

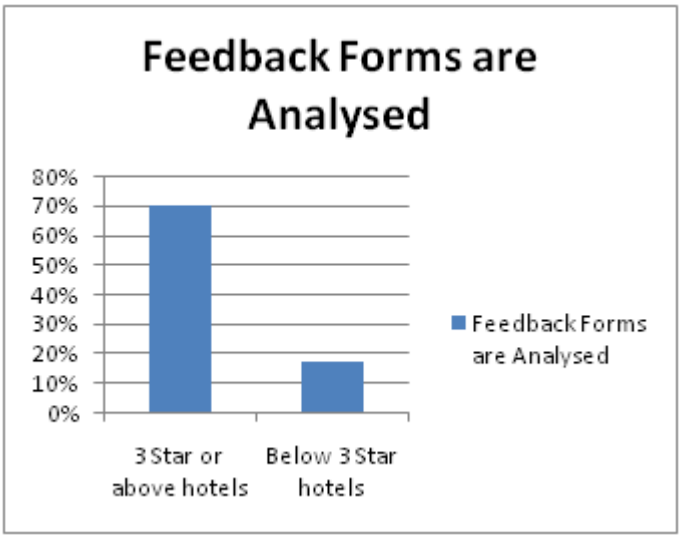

Particulars	3 Star or above Hotels	Below 3 star hotels
Proportion (p)	.7	.1667
Sample Size	30	30
Calculated value of z	4.946	

The critical value of Z for level of significance .05 is 1.96. Since the computed value of Z = 4.946 is higher than critical value. The difference is significant. Thus H_2 is rejected and it is concluded that there is significant difference in analysis of feedback form between 3 star or above hotels and below 3 star hotels.

3. Collected data revealed that feedback forms are considered while decision making in 63.33% three star or above hotels while in below three star hotels just 10% are such where feedback forms are considered while decision making.

Category	**Feedback Forms are Considered While Decision Making**
3 Star or above hotels	63.33%
Below 3 Star hotels	10%

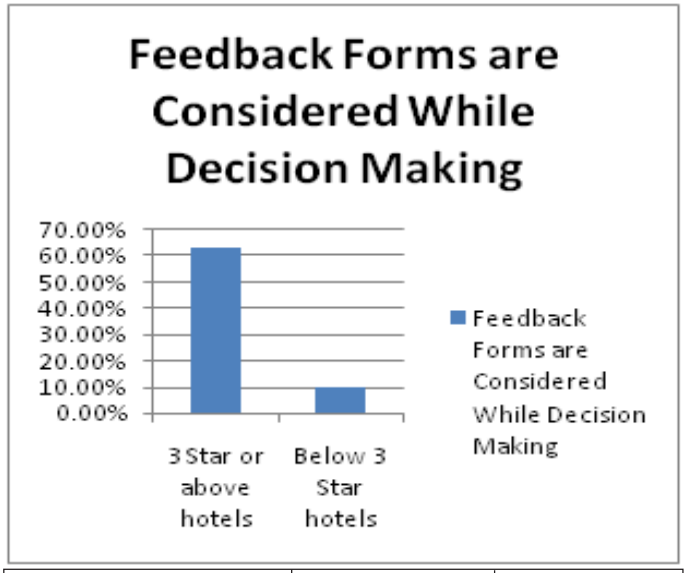

Particulars	3 Star or above Hotels	Below 3 star hotels
Proportion (p)	.6333	.10
Sample Size	30	30
Calculated value of z	5.146	

The critical value of Z for level of significance .05 is 1.96. Since the computed value of Z = 5.146 is higher than critical value. The difference is significant. Thus H_3 is rejected and it is concluded that there is significant difference in the usage of feedback form while decision making between 3 star or above hotels and below 3 star hotels.

Conclusion - 3 star or above hotels give more emphasis on filling feedback form, its analysis and usage while decision making than below 3 star hotels. It clearly shows that they are more customer oriented and that's why they serve better and earn money & fame both.

Reference -

1. Banqueting And Catering Management, R.K. Arora ISBN 8131310191, 9788131310199
2. Encyclopaedia of Hotel And Hospitality Management Textbook Of Food And Beverage Services R. K. Arora ISBN: 8131310418, 9788131310410
3. Hotel Management U. K. Singh / J. M. Dewan ISBN: 8131305279, 9788131305270
4. Principles of Hotel Menagement V. Prakesh Kainthola ISBN: 8189645226, 9788189645229
5. Marketing for Hospitality and Tourism: Pearson New International Edition 6th, Philip Kotler, John Bowen , James Makens Jul 2013, ISBN13: 9781292020037
6. Introduction to Hospitality: Pearson New International Edition John Walker 2013, ISBN13: 9781292020068
7. Hospitality Management: An Introduction Tim Knowles 1998, ISBN13: 9780582312715
8. Research Methods for Leisure and Tourism A.J. Veal, Financial Times Prentice Hall 2011 ISBN 13: 9780273717508 ISBN 10: 0273717502

Role Of State Civil Supplies Corporation In Public Distribution System In M.P.

Dr. Iffat Khan *

Introduction - Food Security to poor is provided through efficient Public Distribution System. 50 Percent of Madhya Pradesh Population is below Poverty line. The percentage of scheduled caste and scheduled tribes population are 12.6% and 16.8% respectively. One of the important problems of agriculture in Madhya Pradesh is relating to marketing of agricultural products. Below poverty line (BPL) and destitute population cannot afford high prices of food grains. Public Distribution system make available essential commodities to the poor at affordable prices. On the other hand PDS is helping farmers by providing profitable food grains. Food corporation of India and M.P. state civil supplies corporation purchases food grains from farmers .

M.P. State Civil Supplies Corporation was established on 3rd April, 1974 Public Distribution of wheat, Rice, Sugar, Edible oil was entrusted to M.P. state Civil supplies Corporation on 2nd October 1985. From January 1986 it started the work of distribution of essential commodities including Kerosene in Tribal areas of M.P. through 20 mobile vehicles.

Research Methodology - The study tests the hypothesis that food security to provide through efficient Public Distribution system. Below Poverty line Population cannot afford high prices of essential commodities. Data relating to M.P. State civil supplies corporation and Food corporation of India were collected from annual reports. Views of farmers were taken with the help of questionaire. Views of public were taken through personal interviews on role of fair price shop.

Procurement Of Foodgrains - M.P. State Civil Supplies Corporation is the main agency for foodgrain procurement in Madhya Pradesh. Under the price support scheme procurement of wheat and paddy is done by MPSCSC.It is helping farmers in getting reasonable price of their products. MPSCSC is the main agency for procurement of wheat,paddy and coarse grains.Registration of farmers who want to sell their products to F.C.I.,M.P.Civil Supplies Corporation is compulsory.

Under price support system MPSCSC procured 1637 crore wheat in the year 2008-09 increased to 3590 crores in 2010-11 and 10971 crores in 2012-13.Procurement of wheat under PPS increased 6 tons in the last five years i.e.2008-09 to 2012-13 as is clear from the following table.

Table No. 1 - Procurement of Wheat by MPSCSC,2008-09 to 2012-13

(Rs. In crores)

Year	Wheat PSS	Wheat
2008-09	1637	114
2009-10	2185	513
2010-11	3590	129
2011-12	6247	239
2012-13	10971	3

Source: Annual Plan 2008-09 to 2012-13 MPSCSC.

Under price support system MPSCSC procured 75 crores rice in the year 2008-09 increased to 413 crore in the year 2012-13. Procurement of Rice under PPS increased about 6 times during 2008-09 to 2012-13 as is clear from the following table:

Table No.2 - Procurement of Rice by MPSCSC 2008-09 to 2012-13

(Rs. In crores)

Year	Rice PSS	Rice	Paddy
2008-09	75	106	62
2009-10	213	36	109
2010-11	301	118	271
2011-12	563	87	548
2012-13	413	01	849

Source: Annual Plan 2008-09 to 2012-13 MPSCSC.

Public Distribution System - Public Distribution System make available essential commodities – Rice, Wheat, Sugar, Kerosene, Iodine salt under different schemes of the Government like BPL, APL for the benefit of the weaker section of society at affordable prices. Under PDS in M.P. wheat and rice are lifted from Food Corporation of India base depot according to allotment. Wheat and rice also procured under Price support system by MPSCSC. Wheat and rice are transported to 189 issue centres of MPSCSC for Storage. As per delivery order it is sold to lead/link societies.

Bpl & Apl Yojna - Below poverty line families are provided wheat and rice at reduced rates. Sale of wheat under BPL Scheme in the year 2008-09 was 144087 M. tons increased to 8509989 M. tons in 2012-13. Sale of rice under BPL Scheme in the year 2008-09 was 130104 M. ons increased to 508975 M. tons in 2012-13. Sale of wheat and Rice

*Guest Faculty (Commerce) Govt. M.L.B. College, Bhopal(M.P) INDIA

increased 4 times during 2008-09 to 2012-13 as is clear from the following table -

Table No.3 - Sale of Wheat and Rice under BPl Scheme 2008-09 to 2012-13

(Rs. In M.tons)

Year	Wheat	Rice
2008-09	144087	130104
2009-10	1206416	127109
2010-11	1171105	369589
2011-12	5325981	382350
2012-13	8509989	508975

Source: Annual Plan 2008-09 to 2012-13 MPSCSC.

Mid Day Meal Yojna - Under Mid-Day meal Yojana wheat and rice are lifted from base depot of Food Corporation of India as per allotment and make available to schools. Govt. of India provides grants to food Corporation of Indiato provide good quality of Wheat and Rice to MPSCSC. Mid day meal Yojna was started from 2 October 1995 from 297 tribal blocks. This scheme has been extended in all Govt. Schools. Following table shows distribution of wheat and rice for 2008-09 to 2012-13.

Table No.4 - MID DAY MEAL Distribution of Wheat and Rice By MPSCSC , 2008-09 to 2012-13

(Rs. In M.tons)

Year	Wheat	Rice
2008-09	160088	41910
2009-10	155617	41910
2010-11	146439	52061
2011-12	157213	55205
2012-13	136724	710451

Source: Annual Plan 2008-09 to 2012-13 MPSCSC.

Turn Over Of MPSCSC - Performance of M.P. Civil supplies Corporation is evident from its turnover. In the year 2006-07 its turnover was Rs. 899.02 crores, increased to Rs. 8402 crores in the year 2011-12 as show below : -

Table No.5 - M.P. State Civil Supplies Turnover 2006-07 to 2011-12

(Rs. In Crores)

Year	Turnover
2006-07	899.02
2007-08	897.43
2008-09	2332.67
2009-10	3200.96
2010-11	4805.12
2011-12	8403.00

Source: Annual Plan of MPSCSC 2006-07 to 2011-12.

The above table shows effective role of MPSCSC in Public Distribution System in M.P.

Levy Sugar - MPSCSC lifts sugar from sugar factories of U.P. and Maharastra as per allocation by Government of India and transport through its supply centres to lead cooperative societies. Lead cooperative societies send levy sugar to fair price shops. MPSCSC lifted 102071 M. tons sugar and sold 103020 M. tons in 2008-09. In the year 2012-13 lifting and sale oif levy sugar increased to 161658 and 149321 M. tons respectively.

Fair Price Shops- Fair price shops are the last link in Public Distribution system in Madhya Pradesh. In order to remove short coming of fiar pricre shops from march 1992. Its operation and functioning has been given to Sahakari Institutions, In urban areas a Co-operative society is allotted only one fair price shop. But in rural areas there is no restriction on the number of fair price shops run by cooperative society. Over 20,000 fair price shops spread across M.P. Ration card holders take their ration supply from fair price shops.

Public Distribution System was completely manual. It was not in a position to cope up with information regarding short supply of essential commodities, Government of India for enhancing efficiency and improving Public Distribution System adopted e- Governance program. In the year 2012-13 procurement of food grains was computerize 2316 procurement agencies have been provided computers and hardware. Effective monitoring in equitable distribution of essential commodities to fair price shop has improved PDS in Madhya Pradesh. It has brought transparency in Public Distribution system. This system can be adopted in other states of our country and also in under developed countries when the Government runs subsidized scheme for weaker sections.

From 1st March 2014 food security has come into force in Madhya Pradesh. 5.46 Crores population of M.P. i.e. 67% of population will be covered under food security . Govt. of India will provide wheat and rice at Rs.3 and Rs. 4 respectively. Wheat, Rice and Salt will be sold at the rate of Rs. 1/-per kg. margin will be borne by State Government. Success of food security and PDS depends on elimination of bogus ration cards and adoption of electronic ration cards.

References -

1. Azam, K.M. -Public Intervention in Agriculture Marketing.
2. Dhokalia & khurana -Public Distribution System, 1979.
3. Kotler , Philip - Marketing Management, 2006
4. Kothari, C.R. - Research Methodology IIed.
5. Navani, N.P. - Towards food for All- ideas for New Public distribution, 1995
6. Taimni, K.K. - Studies in Retailing consumer Cooperation & Public Distribution System ,1975
7. Townsend, J.C. -Introduction to Experimental Methods, 1953

Performance of Mining and Marketing of Rock Phosphate and Limestone by Rajasthan State Mines & Minerals Limited

Harish Singh Nayak * **Dr. P.R. Somani** * *

Introduction - Rajasthan State Mines & Minerals Limited incorporated as Government Company in December 1974 is involved in mining and marketing of Rock Phosphate, Gypsum, Limestone, Lignite and other minerals. The Company has four mineral based Strategic Business Units and Profit Centre (SBU&PC) at Udaipur, Bikaner, Jodhpur and Jaipur engaged in mining and marketing of Rock Phosphate, Gypsum, Limestone and Lignite respectively. The Company is mining 87 *per cent* of the total Rock Phosphate production in the country and fulfils 19 *per cent* of total demand of Rock Phosphate and balance 81 *per cent* demand *per cent* respectively of the total revenue earned by the Company during 2004-09. is fulfilled by imported Rock Phosphate. Rock Phosphate and Limestone had contributed almost 59 and 12. The main objective of the Company is to procure, purchase, take on lease or otherwise acquire and deal with any mines, mining rights and concessions, prospecting and development rights at any place and to acquire by purchase or otherwise land containing mineral of all descriptions and any interest therein and to explore, work exercise, develop and turn to account the same.

Objectives - Performance audit of mining and marketing of Rock Phosphate and Limestone by the Company was carried out to evaluate and assess that:

- the mining activities have been carried out as per the mandate and mining policy of Government of Rajasthan (GOR)/Government of India (GOI)
- production of minerals has been done keeping in view the market demand, capacity utilisation and in cost effective manner
- the Company was able to market the mineral effectively keeping in view the demand and competition with imported mineral in the country
- the contracts for mining and transportation of mineral were awarded in an economic and efficient manner
- funds were arranged in an economical manner and utilised properly to achieve maximum return and
- there was an effective and efficient internal control and monitoring mechanism.

Methodology - The following methodology for scrutiny of records was adopted:

- Scrutiny of Board Agenda and Minutes
- Review of mineral rules and regulations
- Checking correctness of assessment of demand of minerals excavated
- Adherence to mining activity with reference to mining plan and actual mining
- Ascertaining capacity utilisation of departmental plant & machinery
- Comparing contractual mining vis a vis departmental mining
- Efficacy of contracts for excavation and transportation~
- Review of sale pricing policy and marketing policy~ and
- Internal check/ internal control system, manpower and fund management system.

Planning and statutory compliance - The Company's planning was not adequate as it failed to prepare long term plan and the mining schemes were also faulty. The company did not comply with the statutory requirements viz; obtaining environment clearance, preparation of mine plan, operating mines under minor mineral category despite being covered under major mineral, delay in reclamation of excavated mine area. The Company had to close down its mining operations at eight mines since May 2004 due to non compliance of the statutory requirements. Resultantly, the Company incurred idle expenditure of ' 62.46 crore on these closed mines towards land tax and dead rent. Non converting the Limestone mines under major mineral resulted in avoidable payment of premium charges amounting to ' 66.49 lakh on transferring the same in its name. The status of the mines/ mine leases under SBU&PC- Rock Phosphate and Limestone were as under:

(See Table in next page)

Production of minerals - The production performance of the Company was at variance with both Mine Plan (MP) and Annual Plan (AP). The quantity of ore (Rock Phosphate) excavated during 2004-09 ranged between 85 and 110 *per cent* whereas the quantity of over burden removed ranged between 86 and 123 *per cent* of quantity projected in the AP. The excavation targets fixed for contractors for SMS grade Limestone were not commensurate with the MP/AP projections. The Limestone produced by the Company at Gotan was 12.68 *per cent* of the total production despite the fact that it had 43.58 *per cent* of total lease area.

The Company could not utilise the heavy earth moving machines (HEMMs) optimally in excavation of mineral due

* Research Scholar, Pacific University , Udaipur (Raj.) * * Ex HOD, Department of Accountancy, B.N.P.G. College, Udaipur (Raj.) INDIA

to high number of breakdowns which resulted in loss of production of 4.17 lakh MT during 2004-09. Despite having sufficient quantity of low grade ore, the crusher plant was not utilised optimally. Consequently, the Industrial Beneficiation Plant (IBP) could not be utilised to its installed capacity. The crushing and screening plant at SBU&PC-Limestone also remained idle. As a result the Company was deprived of revenue of ' 23.16 crore. It was observed that:

- The actual excavation was at variance with both MP as well as AP. The quantity of ore (Rock Phosphate) excavated during the period under review ranged between 85 and 110 *per cent* whereas the quantity of OB removed ranged between 86 and 123 *per cent* of quantity projected in the AP. The grade wise excavation of high grade ore varied between 89 (2008-09) and 115 (2004-05 & 2007-08) *per cent* and 82 (2008-09) and 113 (2005-06) *per cent* in respect of Low grade of AP projections.
- AP did not conform to the approved MP *i.e.* AP only gave grade wise quantities to be excavated and did not specify cross section wise and level wise excavation to be carried out in respect of Limestone mines. Further no detailed AP was prepared for Rock Phosphate mine for the year 2007-08 and 2008-09. As a result, scientific extraction of the ore could not be vouchsafed. Comparison of actual excavated quantity with the available reserves also could not be done for the same reason.
- Mining scheme prepared for the years 2008-13 in respect of Rock Phosphate did not mention cross section wise excavation of over burden and further the deviation for mining scheme for the period 2003-08 was not mentioned cross section wise in respect of ore and overburden.SBU&PC (Limestone)
- The excavation targets fixed for contractors for SMS grade Limestone excavated mineral were not commensurate with the MP/AP projections. Further the AP fixed more than the targets were also more than the environment clearance projection.Thus quantity mentioned the Company also violated environment clearance Conditions in environment clearance projections.The production at Gotan was not commensurate with the size of mine lease held by the Company. The Company's production at Gotan was 12.68 *per cent* of the total production as against 43.58 *per cent* of total lease area allotted by DMG. Further, with reference to total increase of 16.28 lakh MT production at Gotan during 2006-09,the share of the Company's production was only 2.46 lakh MT.The Government stated (November 2010) that the Company generally adhered to the approved scheme of mining but the variations took place on account of specific requirements of ore, based on the demand and also restrictive nature in certain areas, due to water logging and other considerations. The reply is not acceptable as the Company was toprepare scheme of mining, mentioning the cross section wise excavation of mineral and the APs should have been based on approved mining scheme and deviationsshould be approved by the competent authority.

Contract Management - The contract management of the Company was deficient in award of contracts and their execution. The Company ignoring the defects noticed during inspection/trial run of the excavator accepted the supply. The Company awarded repair and maintenance contract without obtaining competitive bids**.** The Company did not include any penal provision in the contract awarded for determining load limits in wagons due to which the Company failed to recover penalty from the transporters for overloading and got involved in unnecessary litigation resulting in payment of ' 6.84 crore as penalty charges to Railways.

Marketing/sales Management - There was no documented sales policy at SBU&PC Rock Phosphate and Limestone. Due to non-review of sale price in comparison to effective increase in cost led to loss of revenue of '60.23 crore. The losses of the SBU&PC-Limestone (Gotan) were exceptionally high in 2007-08. The Company also failed to recover ' 46.27 crore towards Mineral Right Cess imposed retrospectively by the State Government from the consumers.

Financial Management - The SBU&PC- Limestone in violation of the guidelines kept the funds with the unit without any use. The Company did not utilise the corpus fund and adopted other methods for financial assurance. The Company issued (June 2003) guidelines for operation of each SBU&PC which *inter alia* provided that all payments and remittances initially deposited with the SBU&PC would be transferred to the Corporate office on the same day. For day-to-day functioning, the SBU&PC required to send their funds requirement with a detailed weekly break to the Finance and Accounts Division were of the Corporate Office at least one week before the beginning of the month. It was also provided that the SBU&PC would also have a cash credit limit available with it to meet the contingent requirements. As per State Government directives, the surplus fund with the company was to be deposited monthly in Personal Deposit Account (PD Account) *i.e.* an account with Government treasury.

Management Manpower - The company did not have any structured manpower policy. The manpower deployed at SBU&PC- Limestone was excess whereas SBU&PC- Rock phosphate was facing shortage of manpower. The consultant appointed to assess the requirement of manpower at each SBU&PC after amalgamation of the Company with RSMDC suggested (March 2003) manpower of 110 executives and 949 workmen for SBU&PC Rock Phosphate and 93 executives (combined for proposed SBU&PC Gypsum and Limestone) and 110 workmen exclusively for limestone mines.

We noticed that there was a shortage of manpower (38 to 70 workmen) at SBU&PC (Rock Phosphate) during the year 2007-09 due to which the shift for crushing of HGO plant had been cancelled number of times. It was also noticed

that the manpower at SBU&PC (Limestone) was in excess (41 to 35 workmen) in 2007-09, the Company, however, did not initiate any action to rationalise the manpower deployed at various SBU&PC.

Conclusion and Recommendation - The Company's planning was inadequate as it failed to prepare long term plan. The mining schemes were also faulty as it did not specify cross section- wise and level-wise excavation to be carried out in respect of Limestone mines. The Company also did not comply with the statutory requirement viz~ obtaining environment clearance, preparation of mine plan, operating mines under minor mineral despite covered under major mineral, delay in reclamation of excavated mine area. The production performance of the Company was at variance with both Mine Plan and Annual Plan. Despite having sufficient market demand of limestone and wide mine area, the production of Limestone was not commensurate with the demand. The reclamation of excavated area was not done as per EIA/EMP plans at Limestone mines. Delay in obtaining environment clearance and surrendering the mine leases for inoperative mines resulted in idle expenditure of ' 62.46 crore. The Company could not utilise the heavy earth moving machines optimally in excavation of mineral. Non-utilisation of the crusher plant optimally, the performance of the Industrial Beneficiation

Plant was affected substantially. There was no documented sales policy at SBU&PC Rock Phosphate and Limestone. The price of saleable minerals was also not calculated as per the procedure prescribed in the manual. Absence of structured manpower study resulted in deployment of excess manpower at SBU&PC (Limestone) and short manpower at SBU&PC (Rock phosphate).

References -

1. Khan,Z., Arora, R.K. (1975) : public Enterprises in India, Associated, New Delhi
2. Memorandum and Articles of Association of State Enterprises, Rajasthan.
3. Ministry of Finance, Bureau of Public Enterprises, Annual Reports on the Working of Industrial and Commercial Undertaking of the Rajasthan Government.
4. Mishra, R.K.(1988) : Performance Evaluation of Public Enterprises in India, Institute of Public Enterprises Journal Hyderabad, oct-Dec.
5. Public Enterprises Profile 4995-96 to0 1999-00, Bureau of Public Enterprises , State Enterprises Department Jaipur, Rajasthan.
6. Verma, M.M.,Agarwal, R.K. (1988) : Management of Public Enterprises.
7. Administrative Reforms Commission Reports of Study team on Financial Administration, (1967).
8. Annual Reports of the State Enterprises under Industries Department, Rajasthan.
9. Annual Reports on the functioning of various administrative Ministries in the Rajasthan

Sl.No.	Mineral and Name of mine	Area in hectare	Mineable reserves as on 01 April 2009 (in lakh MT)	Status of mine
Roc k Phosphate				
1	Jhamarkotra	1370.369	223.98	Operative
2	Badagaon	215.600	0.35	Non-operative
3	Kanpur	379.490	7.99	Non-operative
4	Kharbaria ka Guda	105.590	0.64	Non-operative
5	Dakan Kotra	159.770	6.10	Non-operative
Lim estone				
6	Sanu-I	1000.000	213.00	Operative
7	Sanu –II	998.400	230.20	Operative
8	Gotan-I	938.230	56.80	Operative
9	Basani	2084.100	97.00	Operative
Fluo rspar				
10	Tavidar	600.000	2.94	Non-operative
11	Karara	150.000	1.55	Non-operative
12	Lakhawas-I	225.000	0.93	Non-operative
13	Lakhawas-II	100.000	0.56	Non-operative

Hindrancs In Quality Management Overcome Barriers To Quality Management

Dr. Ramesh Nagda * Reena Dutt Sharma **

Abstract - "The manager's job is to create an environment in which excellent work man ship flows from wise human resource development and deployment." D. Wood

Organizational systems developed for quality improvements were in the beginning of the 21st century one of the highest ranked priorities for management. In general a system can be defined as "a specific methodology for organizing activities in order to achieve a purpose". This involves directing flows of work, information, money, people, materials and equipment.

A quality management system (QMS) can be defined as "a set of interrelated or interacting elements to establish policy and objectives and to achieve those objectives to direct and control an organization with regard to quality". The different QMSs aim to improve quality and organizational efficiency whether it is through cost reductions, eliminating defects or waste, improving processes and procedures, changing the organizational culture, or adding quality control as a top priority. The different methodologies can be combined and intertwined in order to facilitate the strive for total quality management, or they can be used as stand-alone tools in order to improve specific processes and procedures.

Implementing a QMS is not dependent on the specific size of the organization but is argued to be applicable to organizations regardless of size, however smaller companies are more likely to have problems implementing quality systems due to a lack of time and resources required.

Introduction - When quality management systems first arrived it was intended for production and manufacturing industries but has over time developed further, and is today suitable for other industries such as the service industry. QMSs are today more about creating quality thinking within the whole organization and across business channels rather than just eliminating defects or unsatisfactory quality levels in products. Hence it can be said that QMSs are no longer specific to any industry or sector but can be applied to all organizations.

The main focus within quality management systems research has been on how organizations can implement a QMS, to the best abilities, and what results they can expect. However we believe that there is a gap regarding the problems and barriers inherent with an implementation of a QMS and specifically how organizations can prepare themselves for them. Few researchers have studied the problems and barriers in implementing a QMS, prior to the implementation, and only focused on the identifying the problems after the organizations had started working with a QMS. There is a ten-step approach can be applied:-

A TEN-STEP APPROACH to creating Quality calls for the manager to:-

1. show,
2. involve people,
3. take a long – term approach,
4. start small,
5. focus on teamwork,
6. train thoroughly,
7. use problem-solving processes,
8. communicate,
9. encourage employees and
10. try different approaches.

These 10 steps emerged from any company's experiences in human resource management consulting and training. And what is the basis for the need?

Consider it from the perspective of employees in a number of client companies who talked with me recently about barriers to quality. A foreman said, "they provide poor equipment and expect precision work. I used to tell them about it what's expected and required.

Top priority. Quality becomes a top priority when we focus on the "people issues." People count, whether on your payroll or providing it. Quality improvement processes. Will simply be programs instead of a way of life, until people are actively involved at all levels in the organization.

Barriers -Companies face at least six barriers to quality improvement:

1. **A proper definition.** Three prevalent definitions of quality:-Quality is a process, not a program. While programs-or training-provide tools,to implement the process, there is the, activity will become an end in itself.

   Joseph Jordan defines quality as fitness for use, Phillip Crosby defines quality as conformance to requirements, and W. Edwards Deming defines quality as a consistent and predictable degree of uniformity. One must set upon a single definition. A suggested

* Principal, The Nobles T.T.college, Kherwara, Udaipur (Raj.) INDIA
** Research Scholar, Pacific University (PAHER) Udaipur (Raj.) INDIA

definition would be corifoT7TlO.TtloCtcustomer requirements, real or perceived.

2. **Focus on 8 quick fix.** Management is under constant pressure to find and fix problems quickly, with immediate results. This leads to treating symptoms instead of solving problems.
   Management must provide a long-term focus and look towards the future. Some companies report that it takes three to five. years to attain organizational focus on quality and problem solution.
3. **Who's responsible? :-** The focus is generally on "who's responsible" for something rather than "what happened," and "how can we prevent this problem from occurring in the future?" Management's immediate response was, "who was on shift that day; who shipped it?" The response was "Who can we blame?" rather than "What happened, how did it happen, what system allowed this to happen and how can we prevent it in the future?" Many organizations operate on what we call the "Thermodynamic Theory" of management: "There is only so much heat to go around. So the more that I can shift to someone else, the less I have to absorb." In other words, the focus is on who's responsible, not how to fix the real problem and prevent future ones.
4. **Wh8t ..**:- know and don't know. This barrier includes what' we know and don't know about people, equipment, processes, products, and services. It is important for employees and managers to realize what we know as well as what we don't know. Training must provide employees with the of is a opportunity to really do their job and have pride must! Managers must learn what is known and what is unknown. This will allow them to plan the right training. Management workmanship.
5. **Failing to fix problem.-** People issues, management vs. leadership, processes, procedures, and systems can all cause problems. Many times we treat symptoms and overlook problems. The manager's role is to find and fix problems. Actually, problem pm;entionis an even greater role. Employees need to be trained in a problem-solving process that can translate into solutions for many types of problems.
6. **Numbera, numbera, numbera:-** When we focus only on the numbers, we forget the emotions and hearts of the employees. Nelson has said that the most important figures in any company are unknown and unknowable. Deming has translated, "He who runs a company on figures alone will have neither company nor figures." Sound statistical methods can help convert data into meaningful information.**.....1 for me**" syndrome. In many C9mpanies, politics and the desire to"look good" override the decision-making process. This is generally a symptom of fear of losing a job, " symphonize deeper problem: lack of teamwork. . Deming calls this "driving out fear so that looking bad" or allowing someone else to get ahead of you. This can every one can work for the company."

Overcoming Barriers - Barriers to quality take on many shapes and forms. In general, they involve poor human resource development and deployment.. So to implement a quality approach, management must create ways for employees to "buy in" to corporate goals-that is, genuinely have a part of the "action."

Problem statement

1. Data collection
2. Analysis
3. Planning
4. Developing alternatives
5. Comparing alternatives
6. Choosing the best solution
7. Planning for implementation
8. Implementing the necessary steps 'to take corrective and preventive action.

Literature Review - Quality Assurance in Elementary Education Purpose - To reveal what are the teacher's and administration perceptions in the setting of elementary schools regarding the adoption of total Quality Management principles in school and It can serve two major purposes: Improvement and Accountability.

Tool and Technique - Self – review report, Site Visits, Surveys (questionnaires, interviews etc.), Performance indicators.

Conclusion - Numerous analysts seem to agree that the impact of quality assurance systems on teaching and learning is difficult to assess and is thus in need of further research.

References -

1. Department of education, training and youth Affairs (2000), The Australian Higher Education Quality Assurance Framework, Occasional Paper Series, Australia.
2. Higher Education Funding Council For England (2001) Reducing costs and building partnerships for better accountability in the Higher Education Sector, London, PA Consulting Group.
3. Ministry of Education, Science and Culture, Iceland (2003) Higher Education External Review: Guidelines for Self – Evaluation, Quality Assurance Authority of New – Zealand (1999) Proposals for the Structure and Implementation of a Quality Regime for Tertiary Education.
4. The International Encyclopedia of Indian Education Vol-II (L-2) J.S. Rajput.
5. National Curriculum Framework, New Delhi, NCERT (2005).

Accounting Education And Research In India

Dr. Vimmi Behal * Dr. Anil Shivani **

Abstract - This paper issues of accounting education and research in India have been discussed the view of changing economic environment of the Indian business and industry. The environment for accounting education has totally changed and new challenges in this regard. the information technology and the globalization of markets are the two major factors impacting various changes in the accounting education . Commerce and accounting education is taking slowly a professional approach. The accounting research at the doctoral level in India is quite scanty. There is also a lack of interface between the accounting researchers and the business and industry. Hence the accounting educators and accounting professionals should find out the ways and means of resturcting the accounting education.
Keywords - Commerce education , globalization , liberalization , online education , E- commerce , ICWA , ICAI , ICSI, technology .

Introduction - In the liberalized economic scenario in India in particular and all over the world in general, the business and industry is exposed to many challenge like cut throat competition, technological up gradation ,quality and cost consciousness, outsourcing and new combinations of the means of production. The result of these challenges, the owners of business enterprises have lot of expectations from the accounting professionals and they are expected to be equipped with lot of skill and immense ability to perform accounting and managerial decision making jobs. The accountancy colleges and universities have also started realizing that there is an urgent need for updating the accountancy curriculum with the present day requirement of business and industry.

Accounting Education in certain developed countries has undergone a paradigm shift in changing the global economic environment. The developing new challenges have emerged. Hence the accounting education and profession should not be neglected in this scenario. The information technology and the Globalization of markets are the primary factors requiring various changes in the accounting education and research. In this paper the emerging issues of accounting education and research is based on the secondary data collected from various government publication, professional institutes, universities and colleges in the country.

Acconting Education Is Retrospection - Accounting is an art of recording, classifying and summarizing in terms of money transaction or the events of a financial character and interpretation of the result thereof. The different economic system has tremendous influence on the accounting process. Therefore the evolution of accounting is a product of its socio-economic environment. The special committee of Research program of the American Institute of certified public Accounts (AICPA) recognized the importance of environment from which the accounting postomlates are derived. The committee stated that accounting postulates necessarily are derived from the economic and political environment and from the modes of thoughts and customs of all segments of the business community.The earliest treatise on accounting was given by Luca paciol who happens to be the first person to bring out a book on the double entry system of book keeping brought about 500 years back in 1494 in Italy. Like many other countries, the Indian system of accounting is also based on the double entry system of book keeping (Batra, 1997)

The different socio-economic environment in different countries of world have given birth to different Generally accepted Accounting principles (GAAP) at the national level thus crating barriers for the international harmonization of the accounting principles and standards. Recently the contemporary and human resource accounting have emerged and are getting due recognition in the business world.

The commerce and business education in India was started in the year 1886 with the establishment of the first commercial school in madras, Calcutta in 1895 and 1903 respectively. At university level, commerce education had its beginning in 1913 when a college of commerce and economics was established in Bombay. There are few college and universities on the eve of independence in 1947 to impart the commerce and business education.

Now almost all the universities in the country have their own department of commerce (Agarwal, 1999). The professional bodies like The institute of charted Accountants of India, The Institute of cost works accounts of India and the institute of company secretaries of India have much more important role of play in imparting accounting education in India on the professional front. A study by Rehman and saha(1996) pointed out that the number of accounting researches in comparison

* Guest Prof. (Commerce Department) ** H.O.D. (Commerce Department) Atal Bihari Vajpayee Hindi Vishwavidyalaya, Bhopal (M.P) INDIA

to researches conducted in other allied areas of commerce or business studies in India is far less.

Accounting Education In India - Accounting education in India is imparted at senior secondary level in schools at undergraduate level in colleges and at master level in universities as a segment of commerce stream. The colleges and universities act as feeling institutions for the professional institutes Like ICWA, ICSI, ICAI, and ICFAI. The professional accounting students who complete their final examination of ICAI and ICWA are only accorded the status of a professional accountant. The quality of professionals produced by these institutions is quite good but the number of students passing out is not good enough to meet the increasing requirements of Indian business and industry. Keeping in view the emerging challenges, there is growing need for restructuring the accounting education and research to meet the present day needs of business in the liberalized economic environment . In the college cadre institutions in India, however B.Com is a specialized program which provides commerce education at under graduate's level, whereas M.Com education at the post graduate level is meant primarily for a teaching career.

It is being felt that the present accounting education system in India has failed to keep pace with the requirement of the fast changing business world. The most commerce graduates go in for professional qualification in accounting, financial management, company secretary, taxation and law etc. and that those who do not they usually seek accounting and finance jobs in business industry and in the public sector. The many universities in India have gone in for specialization in Accounting and finance. At the post graduate level, M.Com program with specialization in Accounting finance management, Banking, Taxation and international finance etc is largely being offered by various universities.

A glance sat the accounting education in India indicates that the accounting education has suffered from ad-hocism remain fragmented, lacks co-ordination between industry and accountancy, academia,lack practical applicability and is in the dire need for updating its course curriculum.

As for as teaching aids and methodology is concerned, till date accounting education has been imparted through class room lectures and the numerical problems. To make the teaching of accounting more effective, it is better if the teaching aids like projectors, case studies project and market surveys, role playing group discussion and audio video techniques are followed for teaching of accounting in various colleges and universities in the country.

Accounting Research In India - Accounting to Tricker,R.(1979) accounting research is " the search of answer to questions that widen and deepen existing Knowledge in the subject." Research is however a systematic investigation carried out in order to expend the frontiers of human Knowledge. Accounting research may also be viewed with a similar analogy and can be stated as an organized activity the purpose of which is to expend the horizons of Knowledge in accounting theory and practice.

The purpose of accounting is to generate and communicate useful information about the events of business enterprises. Accounting Research however should serve a very useful purpose in determining that how accounting principals should be adjusted to suit the changing business environment.

A study by Rehman and saha (1996) pointed out that the number of accounting researches in comparison to the research conducted in various allied areas of commerce and management is quit less. The number of researches in the field of working capital management have been conducted and the researches on accounting conducted in India however covered the following areas viz, cash flow Accounting, financial reporting, Harmonization of accounting standerds, inflation accounting, social Accounting, social Audit, value added Accounting and financial statements etc.The accounting researches at the doctoral level in India are still scanty on the whole. One of the reasons of this state of affairs is the lack of interface between the accounting academia and industry. Hence efforts need to be made also on this front to improve the picture in this regard.

The importance of accounting has been well recognized in the conduct of economic activates globally. It also includes the advanced stage of internationalization of the accountancy Profession. Hence accounting educators, researchers and the professionals must find out the ways and means to meet this challenge.

It is suggested that the following steps should be taken to improve the state of accounting research and profession in India.

1. Efforts should be made to create a conducive environment in which the interaction between the universities, academic institutions, professional institutes and industries could be possible.
2. There should be separate Accounting departments in the universities and colleges to promote the accounting research.
3. Accounting research should be made much more purposeful so as to meet the requirements of various professional institutions.
4. The teaching methodologies in accounting at the university and institute level should be changed in order to strengthen the computational and conceptual skill of the scholars in the field.

Implications Of Study - The domain of accounting is though back seated in economics, statics and law but of late it has emerged as a separate field of study, with the information technology revaluation, it requires integration with computers and communication technology. The accounting specialists for the international market gear themselves to gain an in-depth Knowledge of econometrics, research methodology international economics, international trade, international finance and e-commerce so as to sub serve the accounting profession more effectively. Hence it is almost

desirable that the accounting researchers and the professional must gear themselves up to meet the challenges of changes and come up to the expectations of the society.

There is a need for purposeful relationship between universities and stator professional institutes like ICAI, ICSI and ICWA. These bodies should take the challenge of improvement of standers of accounting education and research and ensuring a code of conduct for its members so as to make accounting education more useful to meet the requirements of fast changing business world in this region.

The developments of global accounting standards is another emerging issue in the present day accounting world. There is also an urgent need for the global curriculum in Accounting for various schools of accounting and commerce in the country so as to pave the way for true globalization and liberalization of the economy of the economy. The problem of accounting education also affect the accounting research. Most of the researchers in Accounting are applied in nature. The various emerging market economic with particular reference to India so as to bring a paradiam shift in the growth of business and industry in the region.

Conclusion - In a growing economy, much of the expansion takes place in service sector which particularly requires the types of skills and knowledge that our courses offers. The much needed practical bias also can be brought in with the developments in information technology, and with the help of color television, video cassettes and computers. Our market is vast and their requirements are varied, hence it is to provided for varied courses and not one straight jacket, the changes are very fast and courses must keep pace with the changes. Therefore one should adopt the changing environment.

References-

1. Issues in Accounting Education.
2. Grover, R.K.(1998) Accounting education, need for professional approach by universities, Indian journal of commerce, Vol 51,No.1.
3. Agarwal N.L.(1999) Commerce education-vision 21 century-The Indian of commerce Voi.52,No.4.
4. Khandelwal,N.M (2000) Accounting education for new millennium, Indian Journal of accounting,Vol VXXX1.
5. Gowda J. made (1996) doctoral research in commerce and management with special reference to accounting research. vol x no.2 .
6. Rehman ARM and saha , AB (1996) accounting research in changing environment and the trend of accounting research in India
7. Tricker, R.I " research in accounting and potential. Accounting purpose, process and potential. Accounting and business research.
8. Issues in accounting education spring pg. 95-97.

****

Need For Foreign Universities In India

Dr. Anil Jain * Smt. Nidhi Saxena **

Abstract -The purpose of this paper is to identify Quality is essentially determined by the knowledge that the higher education and research institutions impart both in terms of knowledge and also the training provided to its students. Creation of knowledge takes place mainly in higher education institutions. This knowledge later gets converted to commodity or technology for the market place. From that point of view, creation of knowledge may not become a prime factor for the foreign universities. They are more likely to treat this as a financial Endeavour. This can be seen in our industries and commercial activities that are now responsible for growth in GDP Real knowledge contribution on a global scale comes essentially from foreign countries and a few of our eminent institutions, and our GDP growth is more due to our service industries using knowledge growth of the developed countries and not due to original contribution.

Introduction -The Union Cabinet has approved the Foreign Educational Institution (Regulation of Entry and Operation) Bill, 2010 which is to be tabled before the Parliament. Arguments generally given in favour of foreign universities is that the best universities of the West will start quality programmes in higher education in the emerging areas in India. We already have different types of universities and university level institutions; Central Universities, state universities, private universities, deemed universities and a number of institutions which are collaborating with western universities and giving a degree of foreign universities. In addition, we also have institutions of eminence like NITs, IITs, IIMs, IIScRs, IISc and so on which are providing opportunities for excellent education and research. To the existing scenario, the Government would like to add foreign universities. In what way will the addition of foreign universities enhance the quality of higher education and in what way will it contribute to economic wellbeing.

As it is, there is a craze for foreign degree and some institutions cash on it: an institution that collaborates with a foreign institution normally charges heavily in the range of Rs 10 to 12 lakh a year for a degree like MBA. This collaboration means a few teachers from abroad give one or two courses to an Indian institution and the institution is not bound by any regulations of higher education in the country. If by an Act of Parliament, an Indian institution in collaboration with a foreign university is permitted to give foreign degree it could encourage the prevalent practice. If, independently, a foreign university of repute establishes a campus in India, certainly it would attract people who can afford, denying the opportunity to the less fortunate people. Another important factor cannot be ignored; learning in a foreign country in their university has a definite advantage in terms of ambience, cultural environment and provides an international mix to the student as students from different countries will be studying in the same institution. Whereas, when a foreign university sets up a campus in India, it will be more of a subsidiary and naturally of a lower standing. It is not clear whether foreign universities will be judged by the same yardstick or an international yardstick will be evolved to evaluate both the Indian and foreign institutions. Quite often the employment market by itself does not determine quality. Given this background, it is possible that we learn more about how to do better in the arena of higher education if the foreign universities Bill is put to public debate and taken up at a later stage with relevant modifications. That way the country would be benefited rather than be harmed.

Define Education -Education can be defined as the art or process of imparting skill and knowledge. The word Education means “to educe”. Education can be either formal or informal. The success of education lies in harnessing the latent potential of an individual. Formal education on the other hand, is a deliberate effort by a person to learn the skills and techniques considered important for a particular job or activity. Here we are concerned about formal education. Formal education can bring in a lot of specialization.

The profit motive -A foreign university cannot repatriate money that it makes in India. And any university seeking entry to India must be accredited by bodies in its home country. “Quality control is key and we will build the safeguard mechanism with each of the universities,” a second official in the HRD ministry said. The two HRD ministry officials said enough changes have been made to make it attractive for foreign universities to enter India. The India campus will function as a branch campus of the parent, rather than as an independent campus. The universities will offer the same degree they are offering in their parent campus. And the ministry has reduced the deposit universities have to maintain with the ministry (and which they will forfeit in case of any violation) from Rs.50 crore to Rs.25 crore.

*** Asst. Professor of Commerce,Govt. R. V. College, Manasa,Distt. Neemuch (M.P.) INDIA**
**** Research Scholar ,Vikram University, Ujjain (M.P.) INDIA**

Why welcome foreigners?

Minister Sibal seems to have several goals for permitting foreign universities to enter the Indian market. The foreigners are expected to provide the much needed capacity and new ideas on higher education management, curriculum, teaching methods, and research. It is hoped that they will bring investment. Top-class foreign universities are anticipated to add prestige to India's postsecondary system. All of these assumptions are at the very least questionable. While foreign transplants elsewhere in the world have provided some additional access, they have not dramatically increased student numbers. Almost all branch campuses are small and limited in scope and field. In the Persian Gulf, Vietnam, and Malaysia, where foreign branch campuses have been active, student access has been only modestly affected by them. Branch campuses are typically fairly small and almost always specialized in fields that are inexpensive to offer and have a ready clientele such as business studies, technology, and hospitality management.

Few branch campuses bring much in the way of academic innovation. Typically, they use tried and true management, curriculum, and teaching methods. The branches frequently have little autonomy from their home university and are, thus, tightly controlled from abroad. While some of the ideas brought to India may be useful, not much can be expected.

Objectives of the study -The Present Paper is basically concerned with the following objective :-

India has universities of every hue and calibre. By bringing in foreign universities, will it enhance the quality of higher education and contribute to economic well-being of the country are seminal questions.

Research Methodology -The Indian varsities interested in foreign collaboration should have received the highest accreditation grade from the National Assessment and Accreditation Council (NAAC) and the National Board of Accreditation (NBA) to become eligible for a tie-up with a foreign institution. The degrees will be awarded by the Indian universities for their acceptability in India. UGC has also mandated that institutes failing to abide by the guidelines would be penalized. The proposed move creates a qualitative barrier in the form of accreditation or ranking in such collaborations. Foreign universities interested in setting up campus in India will have to wait longer as UGC has put this plan on hold. The plan to allow foreign institutions deemed as universities or private universities under State laws has also been shelved.

Description Research -The government has decided to allow foreign universities to operate independently in India, set up campuses and offer degrees without having a local partner—a move that finally opens the gates for foreign educational institutions seeking to establish a presence in the country. To foreign universities, the move presents an opportunity to tap a country with a population of 1.2 billion. To Indians (at least those who can afford it), it is an opportunity to receive quality education without leaving India (and without paying in dollars). And to India, it could mean significant foreign direct investment. Companies registered under Section 25 of India's Companies Act cannot distribute profit or dividends to members, which means that the foreign universities cannot repatriate money—a constraint that was criticized by at least one expert. Several foreign universities have been keen to enter India to tap a higher educational market that is worth Rs.46,200 crore and expanding by 18% every year, according to *40 million by 2020*, a report from audit and consulting firm EY. They have been constrained by the need to do so through partnerships.

Observations & Learning's -As students passed from these foreign Universities could not manage their Institutions (Organizations) from financial disaster how our students are going to be benefitted. This is truly going to be a move that will change the face of India. Consider the case when foreign companies entered India for Business, they completely changed the face of Indian IT industry though we had Infosys, Patni and other Indian Companies in India at that time. These foreign Software Companies offerered lucrative pay packages and set the benchmarks for All the Indian companies as well and today we can see that job in Software industry is dream for almost all Indians. Similarly as these universities will enter India, these will set benchmarks for almost all Institutes in India and out of competition Indian institutes will be forced to raise their standards to survive. So let us welcome this change with open arms.

Conclusion -India's higher education needs are significant. The country needs more enrolment capacity at the bottom of the system as well as more places at its small elite sector at the top. The system needs systemic reform. Furthermore, fresh breeze from abroad might help to galvanize local thinking. Yet, it is impossible for foreigners to solve or even make a visible dent in India's higher education system. Foreign institutions, once they realize the challenges of the Indian environment, are unlikely to jump in a big way. Some may wish to test the waters. Many others will be deterred by the conditions put into place by the Indian authorities and the uncertainties of the local situation.

References -

1. http://en.wikipedia.org/wiki/education-in-india Indian Education Services- A Hot opportunity (CS-00493).
2. The ailments of the Indian Education System Amrita Jain, October 12, 2009.
3. The Chronicle of Higher Education June 2009.
4. The Impact of Foreign Study: The Indian Experience, Amar Kumar Singh.
5. Major steps to revamp Indian Education system on anvil : Sibal.
6. A profile of the Indian Education System.

पंचवर्षीय योजनाओं में भारतीय विदेशी व्यापार-एक सर्वेक्षण

डॉ. अमर कुमार जैन *

शोध सारांश – व्यापार किसी भी राष्ट्र की आन्तरिक एवं बाह्य आर्थिक व्यवस्था का प्रमुख अवयव होता है साथ ही राष्ट्रीय आय की वृद्धि एवं सुदृणीकरण में भी इसका प्रमुख योगदान होता है। व्यापार के कारण ही किसी देश में उत्पादन एवं उत्पादित माल के विक्रय की नीति का निर्माण किया जाता है साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से पूंजी निर्माण का कारण भी व्यापार ही होता है। जब इस व्यापार की दिशा आन्तरिक सीमा को तोड़कर अन्य देशो से मिल जाती है तो यह विदेशी व्यापार बन जाता हे। विदेशी व्यापार के कारण ही विश्व ग्राम में किसी देश की पहचान स्थापित होती है। प्रत्येक देश चाहता है कि वह अधिक से अधिक निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित करे। विदेशी मुद्रा वास्तव में देश के आर्थिक सुदृणीकरण का सूचक होती है इसे देखकर किसी भी देश के आर्थिक विकास के ढाँचे की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

प्रस्तावना – भारत का विदेशी व्यापार का इतिहास काफी प्राचीन है मुगल काल में अंग्रजों व पुर्तगालियो के साथ व्यापार के स्पष्ट प्रमाण हमारे पास विधमान है, तत्कालीन समय में देश की विदेश नीति का निर्धारण इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था के उन्नयन की दृष्टि से किया जाता था तथा विदेश नीति का प्रमुख बिंदु यहाँ की श्रेष्ठ वस्तुओं को कम लागत में दोहन कर इंग्लैण्ड पहुँचाना होता था। स्वतंत्रता के पश्चात् आर्थिक नीति को बदलकर स्वावलम्बन की नीति पर कार्य आरम्भ किया गया तथा व्यापार नीति को नई सोच व विस्तार प्रदान किया गया। अध्ययन सुविधा की दृष्टि से हम इस शोध आलेख को स्वतंत्रता के पश्चात से वर्ष 1990 तक तथा वर्ष 1991 से अब तक दो भागो में विभाजित करके देखेगे। स्वतंत्रता प्राप्ति वर्ष 1947 के पूर्व भारत बिट्रिश सरकार का एक उपनिवेश होने के कारण विदेशी व्यापार पर इसकी छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इस समय इग्लैण्ड सहित अन्य व्यापारिक देशो को खाद्य पदार्थ, सूती धागा सहित अन्य कच्चे पदार्थ का निर्यात कर उसके बदले मंहगे दामो पर निर्मित या तैयार माल का आयात करता था। इन देशो का इसके पीछे उद्देश्य स्पष्ट था अधिकतम लाभ कमाकर भारत को आर्थिक रूप से पिछडेपन व गुलामी की स्थिति में बनाए रखना। औधोगीकरण की योजना का कोई सूत्रपात अंग्रेजी शासन की अवधि में भारत में नहीं दिया गया जिसका स्पष्ट प्रभाव स्वतंत्रता के बाद में कई दशको तक देखने को मिला।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने व्यापार के उपनिवेशगत ढाँचे को प्रथम प्रयास में ही बदलकर औधोगिक विकास का रास्ता चुना जिसके लिए कारखानो की स्थापना की तथा कारखानो की स्थापना के लिए आवश्यक मशीनरी तथा कलपुर्जो का आयात विकासात्मक आयात की दृष्टि से किया गया। भारत ने विकासात्मक आयात के अतिरिक्त जीर्णोद्धार आयात [Miantenance imports] के अन्तर्गत आवश्यक कलपुर्जो व वस्तुओ का आयात किया परिणामत: आयात में वृद्धि व निर्यात में कमी से प्रारम्भिक वर्षो में भारत का व्यापार शेष प्रतिकूल हो गया था जिसके कारण विदेशी ऋण की मात्रा में वृद्धि हो गई। भारत में अधिक जनसंख्या के कारण खाद्य अतिरेक की स्थिति बन ही नही पायी परिणामस्वरूप व्यापार शेष प्रतिकूल ही बना रहा। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओ में भारत के विदेशी व्यापार को हम निम्न सारिणी से समझने का प्रयास करेगे।

सारिणी 1 : 1990 से पूर्व पंचवर्षीय योजनाओं में भारतीय विदेशी व्यापार की स्थिति *(करोड़ो में)*

क्रं.	योजना अवधि	निर्यात	वार्षिक औसत	आयत	वार्षिक औसत	व्यापार शेष	वार्षिक औसत
1	प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-52 से 1955-56)	3109	622	3651	730	-542	-108
2	द्वितीय पंचवर्षीय (1956-1961)	3063	613	5402	1080	-2339	-467
3	तृतीय पंचवर्षीय (1961-66)	3735	747	6119	1224	-2384	-477
4	वार्षिक योजनाए (1966-1969)	3708	1236	5775	1925	-2067	-689
5	चतुर्थ पंचवर्षीय (1969-1974)	9049	1810	9862	1972	-813	-162
6	पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-1978)	17922	4480	22880	5220	-4958	-740
7	1978-79	5726	-	6814	-	-1088	-
8	1979-80	6418	-	9142	-	-2724	-
9	छठवी पंचवर्षीय योजना (1980-1985)	44834	8967	73415	14683	-28581	-5390
10	सातवी पंचवर्षीय योजना (1985-1990)	86910	17382	125561	25112	-38651	-7730

Source :- RBI Bulletin July 2004

उपयुक्त सारिणी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में औसत वार्षिक व्यापार घाटा 108 करोड़ रूपया था जिसका मुख्य कारण नए उद्योगों को गति प्रदान करने के लिए बड़ी मात्रा में स्थायी पूंजीगत वस्तुओं का आयात किया गया था, साथ ही इस अवधि में निर्यात भी संतोषजनक नहीं था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना अवधि में इस्पात कारखानों की स्थापना, नई रेल लाइन का विस्तार एवं नवीनीकरण तथा 805 करोड़

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कला एवं वाणिज्य अग्रणी महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

रूपयों के खाद्यान्न आयात ने औसत व्यापार शेष के घाटे में 467 करोड़ तक पहुंचा दिया सम्पूर्ण योजना अवधि में 2339 करोड़ रू. का व्यापार शेष प्रतिकूल रहा। इस योजना में प्रथम योजना की तुलना में वार्षिक व्यापार शेष 432 प्रतिशत प्रतिकूल रहा। तृतीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में चीन व पाकिस्तान से युद्ध लडे गए, जिसके कारण पूरी अर्थव्यवस्था ही तहस-नहस हो गयी रक्षा व खाद्यान्न में भारी आयात ने व्यापार शेष में प्रतिकूलता 477 करोड़ रू. वार्षिक तक बढ़ा दी। दो युद्धों ने देश के आर्थिक ढ़ाँचे को विकृत कर दिया, जिसके कारण चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के स्थान पर पहली बार 3 एक-एक वर्षीय योजनाओं को अपनाया गया। 1966 में भारतीय रूपये का 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया। खराब मौसम तथा उदार आयात नीति के समग्र प्रभाव ने 1967-68 में 788 करोड रू. का प्रतिकूल व्यापार शेष बनाया लेकिन अगले वर्ष निर्यात में वृद्धि ने इसे 373 करोड रूपये तक ही सीमित रखा, साथ ही समय अनुकूल आने पर वर्ष 1969 से पुन: चतुर्थ पंचवर्षीय योजना को शुरू किया गया।

इस योजना अवधि की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि वर्ष 1972-73 में पहली बार व्यापार शेष 104 करोड़ रूपये से अनुकूल हुआ, इस अनुकूलता का कारण आयात पर प्रतिबंधात्मक उपाय के साथ निर्यात में संतोषजनक वृद्धि रही। अगले वर्ष 1973-74 में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मूल्य वृद्धि ने पेट्रोलियम उत्पादों, इस्पात व अन्य धातुओं, यूरिया तथा उर्वरकों की कीमतो में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी परिणामस्वरूप व्यापारशेष पुन: 432 करोड़ से प्रतिकूल हो गया। संक्षेप में कहें तो यह योजना अभी तक की सभी योजनाओं में श्रेष्ठ थी। पूर्व के वर्षों में पेट्रोलियम उत्पादों में तेजी का रूख पांचवी पंचवर्षीय योजना अवधि में भी कायम रहा है, हॉ इस पंचवर्षीय योजना की प्रमुख विशेषता यह रही कि योजना के प्रत्येक वर्ष निर्यात में वृद्धि हुई तथा जहॉ प्रारंभिक वर्ष में यह 3329 करोड़ रूपया का निर्यात करने में सफल रहा, वही 1977-78 में 5404 करोड़ रूपये का निर्यात किया गया, लेकिन इस वर्ष व्यापार शेष 621 करोड़ रूपये से प्रतिकूल रहा।

छठवीं पंचवर्षीय योजना में राजनीतिक उठा-पटक, के दौर से उभरकर एक नयी तस्वीर बनाने का दायित्व इस सरकार पर था, योजना के प्रारंभिक वर्ष 1980-81 में जहाँ व्यापारशेष 5838 करोड़ रूपये से प्रतिकूल था, वही योजना के अंतिम वर्ष में इस में कमी आई और यह 5390 करोड़ रूपये से प्रतिकूल रहा। सातवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभिक वर्ष 1985-86 में कुल 10895 करोड़ रूपये का निर्यात किया गया, लेकिन यह इस वर्ष के आयात की तुलना में 8763 करोड़ रूपये कम था, योजना अवधि में कुल 38651 करोड़ रूपये का व्यापार प्रतिकूल बना रहा, जो चिंताजनक था। इस योजना में राजनीतिक उठा-पटक का दौर जारी रहा तथा एक समय विदेशी मुद्रा के प्रबंधन के लिए सरकार को स्वर्ण तक विश्व बैंक में जमा कर विदेशी मुद्रा को देश में लाना पड़ा था।

सारिणी 2: 1990-91 के पश्चात् भारत का विदेशी व्यापार की स्थिति

वर्ष		करोड़ रूपए	
	निर्यात	आयात	व्यापार शेष
1990-91	32,558	43,193	-10,635
1991-92	44,042	47,851	-3,809
1992-93	53,688	63,375	-9,687
1993-94	69,751	73,101	-3,350
1994-95	82,674	89,971	-7,297
1995-96	106,353	1,22,678	-16,325
1996-97	118,817	1,38,920	-20,103
वार्षिक औसत (1992-93-1996-97)			
	86,257	97,609	-11,352
1997-98	130,101	1,54,176	-24,076
1998-99	139,753	178,322	-38,579
1999-00	159,561	215,236	-55,675
2000-01	203,571	230,873	-27,302
2001-02	209,018	245,200	-36,182
वार्षिक औसत (1997-98-2002-02)			
	168,401	204,764	-36,363
2002-03	2,55,137	297,206	-42,069
2003-04	2,93,637	359,108	-65,741
2004-05	3,75,340	501,065	-125,725
2005-06	4,65,748	6,95,412	-2,29,664
2006-07	5,71,779	8,40,506	-2,68,727
2007-08	6,55,864	10,12,312	-3,56,448
2008-09	8,40,755	13,74,436	-5,33,680
2009-10	8,45,534	13,63,796	-5,18,202
2010-11	11,39,500	17,35,100	-5,95,600
2011-12	14,82,500	23,94,600	9,12,100

स्रोत:- भारत 2013 प्रकाशन विभाग- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ. 125

सारिणी क्रमांक-2 का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है, कि भारत में जनसंख्या वृद्धि तथा अनुत्पादक उत्पादों में व्गत स्थिति होने के कारण केवल 1972-73 को छोडकर हमेशा व्यापार शेष में प्रतिकूलता की स्थिति बनी रही उदारीकरण लागू होने के प्रथम वर्ष 1991-92 में व्यापार शेष में 3809 करोड़ की प्रतिकूलता बनी रही तथा अगले वर्ष यह स्थिति और गंभीर हो गयी जब उदार आयात विकासात्मक नीति के कारण व्यापार शेष 9687 करोड़ तक प्रतिकूल हो गया इस वर्ष निर्यात में हालाकि 21.9 प्रतिशत वृद्धि हुई लेकिन दूसरी ओर आयात में वृद्धि से व्यापार शेष प्रतिकूल ही रहा। आंकलन की दृष्टि से यह वर्ष पूर्व वर्ष भी तुलना में अच्छा रहा। इस वर्ष जहां निर्यात में 29.92 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी वहाँ आयात में केवल 15.35 प्रतिशत की वृद्धि दृष्टिगत हो रही जिसके कारण व्यापार शेष घटकर 3350 करोड़ रुपये हो गया। वर्ष 1995-96 में व्यापार शेष 16325 करोड़ रुपये तक प्रतिकूल हो गया। वर्ष 2000-01 में जहाँ निर्यात में 27.08 प्रतिशत वृद्धि हुई वही आयात में मात्र 7.12 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस वर्ष व्यापार शेष में 27302 करोड़ की प्रतिकूलता रही लेकिन यह गत वर्ष की तुलना में 28665 करोड़ रु. कम थी इस दृष्टि से यह वर्ष भुगतान सन्तुलन में उपलब्धि वाला रहा वर्ष 2001-02 से 2003-04 तक प्रतिकूलता बढ़कर कुल 65741 करोड़ तक जा पहुंची। वर्ष 2002-03 में निर्यात आयात का प्रतिशत 83.4 प्रतिशत तक हो गया। छठवीं पंचवर्षीय योजना पर पांचवी पंचवर्षीय योजना में प्रभाव परिलक्षित हो रहा था। जनता सरकार की उदार आर्थिक नीति ने व्यापार शेष के घाटे को चिन्ताजनक बना दिया।

वर्ष 2004-05 में गतवर्ष 2003-04 की तुलना में 59984 करोड़ रुपये अधिक प्रतिकूलता व्यापार शेष में देखी गयी जो निसंदेह चिन्तनीय था। 2008-09 में वैश्विक मंदी के कारण वस्तुगत निर्यातों व आयातों में वृद्धि दर में अत्यधिक गिरावट दर्ज की गयी गिरावट का यह दौर अक्टूबर 2009 व दिसम्बर 2009 तक जारी रहा, लेकिन 2009-10 में आयातों में

वृद्धि ऋणात्मक ही रही। 2010-11 में 35.17 प्रतिशत की निर्यात वृद्धि हुई जो सम्मानजनक थी जूट, काजू हस्तशिल्प, रत्न व आभूषण, साफ्टवेयर तथा रसायनों के निर्यात में यह लक्ष्य पाया गया। इस वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में आयात भी 23.45 प्रतिशत बढ़ा तथा व्यापार शेष 518202 करोड़ रु तक प्रतिकूल हो गया। वर्ष 2011-12 में निर्यात में 28.3 तथा आयात में 39.3 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी परिणाम स्वरुप व्यापार शेष रिकार्ड 912100 करोड़ रु से प्रतिकूल रहा।

भारत का व्यापार शेष निरन्तर प्रतिकूल जा रहा है जो निश्चय ही चिन्ता का विषय है। भुगतान सन्तुलन के लिए हमें निर्यात नीति में सुधार की आवश्यकता है जबकि उदार आयात नीति को कठोर बनाने की लेकिन इस उदारीकरण को दौर में यह कैसे संभव होगा यह एक विचारणीय एवं ज्वलन प्रश्न है? जिसका उत्तार भविष्य में विदेशी व्यापार प्रबंधन की नीति पर निर्भर करेगा।

सारिणी 3 : भारतीय निर्यात का क्षेत्रवार विवरण

क्रमांक	क्षेत्र	2000-01	2005-06	2011-12	2012-13 (अप्रैल-नवम्बर)
1	यूरोप	25.9	24.2	19	18.7
2	अफ्रीका	5.3	6.8	8.1	9.6
3	अमेरिका	24.7	20.7	16.4	19.5
4	एशिया	37.4	46.9	50.0	50.4
5	सी.आई एस व पूर्वोत्तर तट	2.3	1.2	1.0	1.3

Source:-Economics Servey 2012-13 Government of India Ministry of Finance February 2013 P.131

उपर्युक्त सारिणी का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि 2000-01 से 2011-12 तक की अवधि में जहॉ यूरोप व अमेरिका महाद्वीप में भारतीय में क्रमश: गिरावट दर्ज की गयी वही यह प्रतिशत एशिया व अफ्रीका महाद्वीप में निर्यात की भागीदारी में उत्तरोत्तर प्रगति दर्ज करा रहा है। वर्ष 2000-01 में यूरोप में भारतीय निर्यात का हिस्सा 25.9 था जो वर्ष 2011-12 में घटकर 19 प्रतिशत रह गया अर्थात् 6.9 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी इसी प्रकार अमेरिका महाद्वीप में जहाँ भारतीय निर्यात की भागेदारी 24.7 प्रतिशत थी वह 2011-12 में घटकर 16.4 प्रतिशत हो गयी इसमें भी 8.30 प्रतिशत की कमी आई।

एशिया महाद्वीप में भारतीय निर्यात की भागेदारी में वर्ष 2000-01 की तुलना में वर्ष 2011-12 में 12.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी तथा इसी अवधि में अफ्रीका महाद्वीप में यह वृद्धि 2.8 प्रतिशत रही। उपरोक्त सारिणी से यह भी स्पष्ट होता है कि निर्यात व्यापार में भारत की भागीदारी अमेरिका व यूरोप से कम होकर एशिया व अफ्रीका में विस्तार पा रही है।

सारिणी 5 : प्रमुख भारतीय वस्तुओं का निर्यात

क्रं.	वस्तुएं	अप्रैल-मार्च 2011	अप्रैल-मार्च 2012 (विगत)	प्रतिशत वृद्धि
1	खेती	6,154,47	5,672,50	40.91
2	कृषि संबंधी उत्पाद	81,593,29	1,497,51	62.32
3	समुद्री उत्पाद	11,529,69	16,588,18	43.87
4	अयस्क और खनिज	46,343,52	39,072,84	-15.70
5	चमड़ा	17,167,67	22,947,68	33.67
6	जवाहरात, गहने	167,845,69	224,762,11	33.91
7	खेलकूद का सामान	726.60	998.27	37.39
8	रसायन और संबंधित उत्पाद	141,083,10	189,593,39	34.38
9	इंजीनियरिंग सामान	272,589,54	278,082,12	2.01
10	इलेक्ट्रॉनिक सामान	40,792,21	43,237,85	6.00
11	परियोजना सामान	298.05	209.74	-29.63
12	वस्त्र	102,082,66	130,072,79	27.42
13	हस्तशिल्प	1,504,49	1,118.94	-25.63
14	कालीन	4,463,22	4,052,04	-9.21
15	कपास	12,979,92	21.623,06	66.59
16	पेट्रोलियम उत्पाद	188,443,22	265,818,71	44.06
17	अवर्गीकृत उत्पाद	47,044,63	79,982,77	70.01

स्त्रोत:- *भारत 2013 प्रकाशन विभाग- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ. 127*

उपरोक्त सारिणी में 2011 एवं 2012 के प्रमुख भारतीय निर्यातक वस्तुओं को दर्शाया गया है। उपरोक्त अवधि में इन वस्तुओं में जहाँ अवर्गीकृत वस्तुओं तथा कपास में उल्लेखनीय वृद्धि क्रमश: 70.01 व 66.59 प्रतिशत दर्ज की गयी है, वहीं दूसरी ओर, अयस्क और खनिज में 15.70 प्रतिशत, परियोजना सामान में 29.63 प्रतिशत, हस्तशिल्प वस्तुओं में 25.63 प्रतिशत, कालीन 9.21 प्रतिशत की कमी परिलक्षित हो रही है जो चिन्ताजनक है।

सारिणी 6 : प्रमुख भारतीय वस्तुओं का आयात

क्रं.	वस्तुएं	अप्रैल-मार्च 2011	अप्रैल-मार्च 2012 (विगत)	प्रतिशत वृद्धि
1	उर्वरक	32,632,06	55,178,71	69.09
2	खाद्य तेल	29,860,40	46,242.22	54.86
3	अलौह धातु	18,590.22	23,405.95	25.90
4	धातुमय अयस्क व उत्पाद	44,216.59	64,124.05	45.02
5	लौह, स्टील	47,275.36	57,433.83	21.49
6	पेट्रोलियम कच्चे तेल एवं उत्पाद मोती, कीमती और अर्द्ध कीमती पत्थर	482,281.69	742,762.47	54.01
7	तंत्र	188,549,34	248,352.98	31.72
8	कोयला, कोक और कोयले की ईट	44,669.93	83,412.78	86.73
9	कार्बनिक और अकार्बनिक खनिज	69,349.76	90,827,60	30.97
10	रासायनिक उत्पाद	13,278.07	16,609.71	25.09
11	व्यावसायिक वाद्य यंत्र	19,200.00	25,263.97	31.58
12	बिजली का सामान	121,017.19	156,357.17	29.20
13	सोना चांदी	193,562.30	293,929.80	51.85
14	कम्प्यूटर व मौलिक उपकरण	5,147,08	7,819,48	51.92

स्त्रोत:- *भारत 2013 प्रकाशन विभाग- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ. 127-128*

वृद्धि ऋणात्मक ही रही। 2010-11 में 35.17 प्रतिशत की निर्यात वृद्धि हुई जो सम्मानजनक थी जूट, काजू हस्तशिल्प, रत्न व आभूषण, साफ्टवेयर तथा रसायनों के निर्यात में यह लक्ष्य पाया गया। इस वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में आयात भी 23.45 प्रतिशत बढ़ा तथा व्यापार शेष 518202 करोड़ रु तक प्रतिकूल हो गया। वर्ष 2011-12 में निर्यात में 28.3 तथा आयात में 39.3 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी परिणाम स्वरुप व्यापार शेष रिकार्ड 912100 करोड़ रु से प्रतिकूल रहा।

भारत का व्यापार शेष निरन्तर प्रतिकूल जा रहा है जो निश्चय ही चिन्ता का विषय है। भुगतान सन्तुलन के लिए हमें निर्यात नीति में सुधार की आवश्यकता है जबकि उदार आयात नीति को कठोर बनाने की लेकिन इस उदारीकरण को दौर में यह कैसे संभव होगा यह एक विचारणीय एवं ज्वलन प्रश्न है? जिसका उत्तार भविष्य में विदेशी व्यापार प्रबंधन की नीति पर निर्भर करेगा।

सारिणी 3 : भारतीय निर्यात का क्षेत्रवार विवरण

क्रमांक	क्षेत्र	2000-01	2005-06	2011-12	2012-13 (अप्रैल-नवम्बर)
1	यूरोप	25.9	24.2	19	18.7
2	अफ्रीका	5.3	6.8	8.1	9.6
3	अमेरिका	24.7	20.7	16.4	19.5
4	एशिया	37.4	46.9	50.0	50.4
5	सी.आई एस व पूर्वोत्तर तट	2.3	1.2	1.0	1.3

Source:-Economics Servey 2012-13 Government of India Ministry of Finance February 2013 P.131

उपर्युक्त सारिणी का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि 2000-01 से 2011-12 तक की अवधि में जहॉ यूरोप व अमेरिका महाद्वीप में भारतीय में क्रमश: गिरावट दर्ज की गयी वही यह प्रतिशत एशिया व अफ्रीका महाद्वीप में निर्यात की भागीदारी में उत्तरोत्तर प्रगति दर्ज करा रहा है। वर्ष 2000-01 में यूरोप में भारतीय निर्यात का हिस्सा 25.9 था जो वर्ष 2011-12 में घटकर 19 प्रतिशत रह गया अर्थात् 6.9 प्रतिशत की कमी दर्ज की गयी इसी प्रकार अमेरिका महाद्वीप में जहाँ भारतीय निर्यात की भागेदारी 24.7 प्रतिशत थी वह 2011-12 में घटकर 16.4 प्रतिशत हो गयी इसमें भी 8.30 प्रतिशत की कमी आई।

एशिया महाद्वीप में भारतीय निर्यात की भागेदारी में वर्ष 2000-01 की तुलना में वर्ष 2011-12 में 12.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी तथा इसी अवधि में अफ्रीका महाद्वीप में यह वृद्धि 2.8 प्रतिशत रही। उपरोक्त सारिणी से यह भी स्पष्ट होता है कि निर्यात व्यापार में भारत की भागीदारी अमेरिका व यूरोप से कम होकर एशिया व अफ्रीका में विस्तार पा रही है।

सारिणी 5 : प्रमुख भारतीय वस्तुओं का निर्यात

क्रं.	वस्तुएं	अप्रैल-मार्च 2011	अप्रैल-मार्च 2012 (विगत)	प्रतिशत वृद्धि
1	खेती	6,154,47	5,672,50	40.91
2	कृषि संबंधी उत्पाद	81,593,29	1,497,51	62.32
3	समुद्री उत्पाद	11,529,69	16,588,18	43.87
4	अयस्क और खनिज	46,343,52	39,072,84	-15.70
5	चमड़ा	17,167,67	22,947,68	33.67
6	जवाहरात, गहने	167,845,69	224,762,11	33.91
7	खेलकूद का सामान	726.60	998.27	37.39
8	रसायन और संबंधित उत्पाद	141,083,10	189,593,39	34.38
9	इंजीनियरिंग सामान	272,589,54	278,082,12	2.01
10	इलेक्ट्रॉनिक सामान	40,792,21	43,237,85	6.00
11	परियोजना सामान	298.05	209.74	-29.63
12	वस्त्र	102,082,66	130,072,79	27.42
13	हस्तशिल्प	1,504,49	1,118.94	-25.63
14	कालीन	4,463,22	4,052,04	-9.21
15	कपास	12,979,92	21.623,06	66.59
16	पेट्रोलियम उत्पाद	188,443,22	265,818,71	44.06
17	अवर्गीकृत उत्पाद	47,044,63	79,982,77	70.01

स्त्रोत:- *भारत 2013 प्रकाशन विभाग- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ. 127*

उपरोक्त सारिणी में 2011 एवं 2012 के प्रमुख भारतीय निर्यातक वस्तुओं को दर्शाया गया है। उपरोक्त अवधि में इन वस्तुओं में जहाँ अवर्गीकृत वस्तुओं तथा कपास में उल्लेखनीय वृद्धि क्रमश: 70.01 व 66.59 प्रतिशत दर्ज की गयी है, वहीं दूसरी ओर, अयस्क और खनिज में 15.70 प्रतिशत, परियोजना सामान में 29.63 प्रतिशत, हस्तशिल्प वस्तुओं में 25.63 प्रतिशत, कालीन 9.21 प्रतिशत की कमी परिलक्षित हो रही है जो चिन्ताजनक है।

सारिणी 6 : प्रमुख भारतीय वस्तुओं का आयात

क्रं.	वस्तुएं	अप्रैल-मार्च 2011	अप्रैल-मार्च 2012 (विगत)	प्रतिशत वृद्धि
1	उर्वरक	32,632,06	55,178,71	69.09
2	खाद्य तेल	29,860,40	46,242.22	54.86
3	अलौह धातु	18,590.22	23,405.95	25.90
4	धातुमय अयस्क व उत्पाद	44,216.59	64,124.05	45.02
5	लौह, स्टील	47,275.36	57,433.83	21.49
6	पेट्रोलियम कच्चे तेल एवं उत्पाद मोती, कीमती और अर्द्ध कीमती पत्थर	482,281.69	742,762.47	54.01
7	तंत्र	188,549,34	248,352.98	31.72
8	कोयला, कोक और कोयले की ईट	44,669.93	83,412.78	86.73
9	कार्बनिक और अकार्बनिक खनिज	69,349.76	90,827,60	30.97
10	रासायनिक उत्पाद	13,278.07	16,609.71	25.09
11	व्यावसायिक वाद्य यंत्र	19,200.00	25,263.97	31.58
12	बिजली का सामान	121,017.19	156,357.17	29.20
13	सोना चांदी	193,562.30	293,929.80	51.85
14	कम्प्यूटर व मौलिक उपकरण	5,147,08	7,819,48	51.92

स्त्रोत:- *भारत 2013 प्रकाशन विभाग- सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृ. 127-128*

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के माध्यम से कृषकों का आर्थिक एवं सामाजिक विकास: एक विश्लेषण

डॉ.अशोक वर्मा * डॉ. दिलीप पाटीदार * * डॉ. के तावडे * * *

प्रस्तावना – यह सत्य एवं प्रमाणिक है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है इन्ही विशेषताओं से मध्यप्रदेश भी परिपूर्ण है। जिसकी लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। एवं राष्ट्रीय आय का लगभग 30 प्रतिशत कृषि तथा उससे जुड़े उद्योगों से प्राप्त होता है। मनुष्य ने जब से खेती करना प्रारंभ किया है तबसे लेकर वर्तमान तक किसान की 'माता' कहीं जाने वाली 'कृषि भूमि' प्राकृतिक एवं मानवीय क्रियाओं से समायोजन कर के व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताओं भोजन, कपड़ा आदि की पूर्ति के साथ ही स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक, सम्मानजनक एवं आरामदायक सुविधाओं की पूर्ति भी करती आ रही है। कृषि आधारित एवं संचालित पशुपालन, भेड़पालन, उद्योग, व्यापार आदि रोजगार एवं आय मूलक स्त्रोत भी सर्वविदित है।

इस प्रकार हमने मान तो लिया की कृषि हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है लेकिन क्या हम इसके विकास एवं सुरक्षा का पुख्ता बंदोबस्त कर पाये? नहीं क्योंकि आज भी हमारी खेती मानसून एवं परम्परागत विधियों पर निर्भर है। लगभग २० प्रतिशत खेत बिना बारिश के बंजर बन जाते है, वित्तीय व्यवस्था के अंस्थागत स्त्रोतों के ब्याज रूपी जाल में उलझकर किसान कंगाल हो जाता है, सुखा, अकाल, अतिवृष्टि एवं अन्य भौगोलिक विपत्तियों के साथ ही नकली

खाद, बीज, जैसी मानवीय व्यवस्थाएँ देश की कृषि अर्थव्यवस्था को चौपट कर रही है। इन परिस्थितियों में हमारे विकास कदमों को आधार कैसे मिलता। 1951 से ही हम कृषि विकास की दिशा में कदम बढ़ा रहे है। लेकिन आज भी हम कृषि उत्पादों की वृद्धि में सहायक सिंचाई के पर्याप्त साधन, उन्नत खाद एवं बीज, आधुनिक कृषि उपकरण एवं कृषि कार्य हेतु वैज्ञानिक विधियों के उपयोग के साथ ही अन्य कृषि संबंधी कार्यो हेतु किसानों को आवश्यक दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति लक्ष्य अनुसार संस्थागत रूप से नहीं कर पाये है।

इसी दिशा में एक प्रयास भारत सरकार द्वारा वर्ष 1929 से भूमि विकास बैंक (वास्तविक स्थापना) वर्तमान राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के माध्यम से किया जा रहा है। इस बैंक की स्थापना किसानों को महाजनों एवं साहुकारों के चंगुल से मुक्त कराने के साथ ही उनको भूमि सुधार, सिचाई संसाधन एवं कृषि सहायक आवश्यक एवं आधुनिक संसाधनों की व्यवस्था हेतु दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने के लिए की गई थी।

मध्यप्रदेश में भूमि विकास बैंक की स्थापना एवं विकास – 1 नवम्बर 1956 को नये मध्यप्रदेश गठन के समय यद्यपि प्रदेश में महाकौशल क्षेत्र में दीर्घकालीन कृषि साख की व्यवस्था थी, परन्तु उसका स्वरूप आज जैसा नहीं था। सन् 1935 में सीपी एण्ड बरार में जो सहकारी भूमि बंधक बैंक बने थे, उनमें से सिर्फ रामपुर, जबलपूर, निरसिंहपूर, और खण्डवा ही अपना अस्तित्व बनाएँ रखे थे। महाकौशल क्षेत्र में इन 4 बैंकों के अतिरिक्त 12 केन्द्रीय सहकारी बैकों के माध्यम से दीर्घकालीन ऋण वितरित हो रहा था, परन्तु दीर्घकालीन साख के लिए अलग से राज्य स्तरीय बैंक नहीं था। राज्य सहकारी बैंक अपनी दीर्घकालीन कृषि साख के द्वारा इस कार्य की व्यवस्था करता था। नये मध्यप्रदेश में विलय होने वाले अन्य क्षेत्रों मध्यभारत, विध्यप्रदेश, भोपाल तथा सिरोंज में दीर्घकालीन ऋण की न तो व्यवस्था थी न इसके लिए कोई संगठन अथवा संस्था मौजूद थी। महाकौशल क्षेत्र में कार्यरत दीर्घावधि साख संस्थाओं के संचालन हेतु मध्य प्रान्त एवं बरार राज्य में वर्ष 1937 से भूमि बंधक बैंक अधिनियम प्रभावशील था।

नये मध्यप्रदेश के गठन के उपरान्त कृषि विकास हेतु दीर्घकालीन कृषि साख की सुचारू व्यवस्था पर जोर दिया गया तथा दीर्घकालीन कृषि साख के लिए स्तरीय बैंक की स्थापना के प्रयास वर्ष 1958-59 से प्रारंभ हुये मध्यप्रदेश सहकारी बैंक द्वारा जो कि अपनी एक शाखा के माध्यम से इस कार्य को देख रहा था, पंजीयक, सहकारी संस्थाओं को प्रस्तावित उपनियम तथा गठन की योजना प्रस्तुत की गई। इसके परिणामस्वरूप 21 मार्च, 1961 को मध्यप्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक मर्यादित, जबलपुर का पंजीयन हुआ, जिसने 1 अगस्त, 1961 से कार्य करना प्रारंभ किया। राज्य स्तरीय बैंक बनने के बाद प्रत्येक क्षेत्र में दीर्घकालीन साख की व्यवस्था कायम करने के लिए प्रयास किए गए। फलस्वरूप 1961-1962 में 13, 1962-63 में 15, 1963-64 में 04, 1968-69 में 11, 1975-76 में 2 जिला स्तरीय भूमि बंधकमध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक स्थापित किये गये। वर्तमान में मध्यप्रदेश में 38 जिला बैंक (50 जिलों) में कार्यरत है।

भू-बंधक बैंकिग का प्रसार वास्तव में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गठित ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1954) के प्रतिवेदन के क्रियान्वयन से प्रारंभ होता है। समिति में प्रथम द्रष्टया एक अलग दीर्घावधि सहकारी साख ढांचकी आवश्यकता को पहचाना और प्रत्येक राज्य में भूमि बंधक बैंक के गठन की अभिस्तावना की। समिति ने भूमि बंधक बैकों द्वारा मात्र ऋण विमोचन हेतु साख उपलब्ध कराने के स्थान पर उत्पाद प्रचलित हेतु विनियोजन साख उपलब्ध कराने की अनुशंसा की। इसी समय पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक नियोजन आने से भूमि बंधक बैंकों की ऋण वितरण संभावनायें कॉफी परिवर्तित हुई और इन्हें उत्पादी प्रयोजन हेतु दीर्घावधि विनियोजन साख उपलब्ध कराने का कार्य सौंपा गया। इसी दिशा में मध्यप्रदेश को ऑपरेटिव्ह लैण्ड मार्गेज बैंक अधिनियम 1937 में संशोधन करके कृषक समाज और उपभोक्ताओं की खुशहाली में वृद्धि करने हेतु भूमि विकास बैंक अधिनियम 1952 प्रभावशील हुआ। वर्ष 1959 में 14 व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व कृषि के लिए दीर्घावधि साख उपलब्ध कराने हेतु भूमि बंधक बैंक एक मात्र संस्थागत स्त्रोतव्यवस्था थी। कृषि पुनर्वित्त निगम 1962, कृषि पुनर्वित्त एवं विकास निगम 1978 एवं अंतत: कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) 1982 के गठन के फलस्वरूप योजनान्तर्गत ऋण पर अधिक जोर दिया गया। नाबार्ड द्वारा बैंक कों वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराये जाते है। दीर्घावधि सहकारी साख ढ़ाँचा अब न केवल कृषि से संबंधित विनियोजन साख उपलब्ध करा रहा है वरन् कृषि से संबंधित सहायक प्रयोजन जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, भेड़ पालन आदि अन्य उदेद्श्यों हेतु भी कृषकों की आय बढ़ाने हेतु ऋण उपलब्ध करा रहा है और अधिक विविधीकरण की दिशा में बैंकों द्वारा गैर कृषि ऋण वितरण की शुरूआत वर्ष 1987-88 में की गई जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में ग्रामीण दस्तकार, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग शामिल है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कृषि और ग्रामीण विकास हेतु संस्थागत साख की

* संकायाध्यक्ष (डीन), देवी अहिल्या विश्वविद्यालय एवं प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेन्धवा ** सहा.प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, निवाली ***सहा.प्राध्यापक (रसायन) शासकीय महाविद्यालय, निवाली (म.प्र.) भारत

व्यवस्था के पुनरीक्षण हेतु गठित समिति (शिवराम समिति 1981) द्वारा यह उल्लेख किया गया कि भूमि विकास बैंक सदैव मात्र भूमि पर आधारित ऋण प्रणाली लागू नहीं रख सकते, जब तक गैर भूमि पर आधारित ऋण वितरण प्रारंभ नहीं करते एवं उन्हें अब ग्रामीण विकास बैंक बनना होगा। इसी के परिणामस्वरूप विधेयक क्रमांक 221999 मध्यप्रदेश राजपत्र असाधारणदिनांक 09 जुलाई, 1999 पृष्ठ संख्या 1015-1019(25) लाया गया जिसे अधिनियम क्रमांक 202000 के रूप में राष्ट्रपति की 5 जुलाई, 2000 को स्वीकृति मिलने पर कानून बन गया और इसे राज्य सरकार ने अधिसूचना द्वारा प्रवृत्तकिया। इस प्रकार मध्यप्रदेश सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम 1999 बन गया। इसी के तहत 2 अक्टूबर, 1999 को भूमि विकास बैंक का नाम जिला सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक कर दिया गया। यह सभी जिलों में कार्यरत है जो अपनी लगभग 390 शाखाओं के माध्यम से राज्य में दीर्घकालीन कृषि सहकारी साख उपलब्ध करा रही है।

मध्यप्रदेश में राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थिति– मध्यप्रदेश की पुख्ता पहचान का आधार कृषि क्षेत्र की दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा राज्य में 38 जिला बैकों के माध्यम से संचालित लगभग 390 शाखाओं के सहयोग से किया जा रहा है। 31, अक्टूबर 2000 को विभाजन के पूर्व राज्य में 45 जिला बैंक कार्यरत् थे किन्तु वर्तमान में 38 जिला बैंक ही 50 जिलों में वित्तीय समाधान हेतु संचालित है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि बैंक प्रशासन द्वारा वर्ष 1998 एवं बाद में निर्मित जिलों में जिला मुख्यालय पर संचालित शाखाओं को, जिला बैंक घोषित नहीं किया है वरन् शाखा रूप में ही माना है। इसी कारण वर्तमान में मध्यप्रदेश में बड़वानी, श्योपुर, कटनी, डिण्डोरी, उमरिया, हरदा, नीमच, बुरहानपुर, अशोकनगर, अनूपपुर, अलीराजपुर एवं सिंगरौली जिला मुख्यालय पर कार्यरत् बैंक शाखा रूप में ही कार्य कर रही हैं। मध्यप्रदेश में 10 संभागों में संचालित जिला बैंकों की स्थिति को आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

तालिका क्रमांक 01

क्र.	संभाग	जिला बैंक
1.	चम्बल	भिण्ड, मुरैना
2.	ग्वालियर	ग्वालियर, गुना, दतिया, शिवपुरी
3.	उज्जैन	उज्जैन, देवास, शाजापुर, रतलाम, मंदसौर
4.	इंदौर	इंदौर, खण्डवा, खरगोन, झाबुआ, धार
5.	भोपाल	भोपाल, सिहोर, रायसेन, विदिशा, राजगढ़
6.	नर्मदापुरम	बैतुल, होशंगाबाद
7.	सागर	सागर, दमोह, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़
8.	जबलपूर	जबलपूर, बालाघाट, नरसिंहपुर, सिवनी, छिन्दवाड़ा, मण्डला
9.	रीवा	रीवा, सतना, सीधी
10.	शहडोल	शहडोल

स्त्रोत :– मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, भोपाल।

उपर्युक्त तालिका क्रमांक 01 से स्पष्ट होता है कि जबलपूर संभाग में सबसे अधिक 9 जिला बैंक कार्यरत् है। जबकि सबसे कम शहडोल संभाग में मात्र 01 जिला बैंक कार्यरत है। अत: प्रशासन द्वारा क्षेत्रिय स्थिति, कृषि जनसंख्या एवं मॉग अनुसार जिला बैंकों एवं शाखाओं को बढ़ाएँ जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष – बैंक द्वारा किए गए दीर्घकालीन विनियोग का सकारात्मक प्रभाव राज्य में आसानी से अनुभव किया जा सकता है। किसानों के जीवन स्तर में वृद्धि के साथ उनका आर्थिक एवं सामाजिक विकास स्पष्ट रूप सें दिखाई देता है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी की बैंक ने मप्र में कृषि एवं किसानों को पुख्ता पहचान दिलाने में सार्थक एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन क्या मध्यप्रदेश में कृषि विकास की संभावनाए समाप्त हो गई या बैंक द्वारा अपनी स्थापना का लक्ष्य प्राप्त कर लिया? नहीं , क्योंकि आज भी किसान वर्ग का एक बडा भाग बैंक की ओर दीर्घकालीन वित्त की पूर्ति हेतु याचक दृष्टि सें देख रहा है। लेकिन बैंक इन ऋण मांगों को अस्वीकार कर रही है। इसके पीछे प्रमुख कारण शासन की नीतियॉ है जिन्होंने बैंक कों पंगु बना दिया है। नाबार्ड द्वारा बैंक को लक्ष्यानुसार वसूली नहीं करने पर ऋण वितरण हेतु वित्तीय संसाधन उपलब्ध नही कराये जाते है। परिणामस्वरूप ऋण वितरण न होने से बैंक एवं किसानों के मध्य विवाद बढते जा रहे हैं।

इस संबंध में बैंक का तर्क हैं कि किसान समय पर ऋण भुगतान नहीं करते जबकि किसान नकली बीज , खाद, दवाई एवं प्रकृति के प्रकोप से शेष बची फसल को दलालों , मध्यस्थों एवं साहुकारों के चंगुल से नहीं बचा पा रहे है और कुछ बचता है तो वह सामाजिक परम्पराओं की भेंट चढ़ जाता हैं। किसान फिर कंगाल ही रह जाता है जो अपने परिवार की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाने और संस्थागत तथा असंस्थागत ऋणों को न चुका पाने के कारण अपमानित होकर आत्महत्या जैसी त्रासदी को गले लगा रहे हैं।

क्या हम आज इतने कमजोर और स्वार्थी हो गए हैं कि हमारे कर्णधार किसान को मानक जीवन स्तर प्रदान नहीं कर सकते जबकी मेहनत और त्याग तो किसान का ही है। यह हम किस दिशा में जा रहे हैं ? क्या हमारे जीवन में दाल रोटी की कोई अहमियत नही है। इन सवालों को सदियों से पुछा जा रहा हैं लेकिन जवाब जानते हुए भी सभी जिम्मेदार अनुत्तरित है। 'जब जागों तब सवेरा' शब्दों कों प्रयोग में लाया जावे तो कृषि एवं किसान विकास का प्रयास आज से ही प्रारंभ किया जा सकता हैं जो हमारे अन्नदाता एवं हमारे भविष्य को सुरक्षित एवं सुखी करेगा।

सुझाव – शासन द्वारा इसी दिशा में भूमि एवं किसान विकास के उद्देश्य से स्थापित मध्य प्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक को किसानो को पुन: दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने के लिए सक्षम बनाए जाने का प्रयास अतिशीघ्र किया जाना चाहिए जिससे की किसान अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिंति में सुधार करने के साथ ही देश के विकास में अपनी नींव मजबूत कर सके। बैंक को पुन: सक्षम बनानें हेतु कुछ सुझावों कों प्रयोग में लाया जा सकता हैं जो अग्रलिखित है–

- आर्थिक समस्याओंविपन्नताओं के समाधान हेतु शासन द्वारा बैंक कों एक वित्तीय पैकेज दिया जाना चाहिए।
- शासन द्वारा क्षेत्र में किसानों की वास्तविक उत्पादन एवं आय स्थिति के अनुसार ही बैंक की वसूली राशि निर्धारित की जानी चाहिए ताकि किसान उस किश्त को आसानी से चुका सके और बैंक एवं स्वयं के विकास मे योगदान दे सकें।
- बैंक को पूर्ण बैंक का दर्जा दिया जाना चाहिए ताकि बैंक बैकिंग सेवाएँ उपलब्ध कराने के साथ ही क्षेत्रिय विकास में बचत एवं विनियोग की प्रोत्साहित कर सकें।
- शासन,नाबार्ड एवं बैंक प्रशासन द्वारा अपने नियमकानून में समायोजन करते हुए बैंक के संगठनात्मक दोषों को दूर करने एवं बैंक के सभी स्तरों पर आवश्यक अधिकार एवं आर्थिक, आधुनिक एवं मानवीय संसाधन उपलब्ध कराना चाहिए ताकि बैंक के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम 1966 एवं 1999
2. विकास विभाग, मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, भोपाल।
3. डॉ.राधेश्याम द्विवेदी, कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम।
4. डॉ.बी.एस.माथुर, सहकारिता: देश–विदेश।
5. नाबार्ड , ग्रामीण विकास पत्रिका।
6. आर.डी.सक्सेना, मप्र.सहकारी सोसायटी निर्वाचन विधि निर्देशिका।

कृषि विकास एवं पर्यावरणीय सामंजस्य का बदलता स्वरूप:नरसिंहपुर जिले के विशेष संदर्भ में

डॉ. एस.के. उप्रेलिया *

प्रस्तावना – जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण, नगरीयकरण एव कृषि विकास में हो रहे तीव्र विस्तार के कारण भूमि उपयोग, जल एवं वनस्पति पर दवाब बढ़ता जा रहा है। वन संसाधनों के अंधाधुंध विदोहन के फलस्वरुप मृदा अपरदन के कारण अधिकाधिक भूमि बंजर भूमि में परिवर्तित होती जा रही है। नगरों एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकलने वाले मलजल के तालाबों, झीलों एवं नदियों में विर्सजन के कारण धरातलीय जल का प्रदूषण इतना अधिक बढ़ता जा रहा है कि कई स्थानों पर जल न केवल पीने के लिये अनुपयुक्त है, वरन् सिंचाई एवं पषुओं के उपयोग के लिये भी हानिकारक हो गया है। भारत में पर्यावरण अवनयन के कारणों में तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या को सबसे मुख्य कारण माना जाता है, क्योंकि निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण देश के सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। वास्तव में औद्योगिक विस्तार , नगरीकरण, कृषि में विस्तार तथा विकास , यातायात तथा संचार के साधनों में वृद्धि आदि जनसंख्या वृद्धि के परिणाम हैं। मानव समुदाय को भुखमरी एवं प्राकृतिक आपदाओं से बचाने के लिये वैज्ञानिक तकनीकों एवं उन्नत प्रौद्योगिकी का विकास करना पड़ा है परिणाम स्वरुप जनसंख्या में वृद्धि दर की अपेक्षा प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन की दर बढ़ती जा रही है जिस कारण कई कीमती तथा अनवीकरण वाले संसाधनों का आभाव होता जा रहा है।

अध्ययन क्षेत्र– देश के हृदय स्थल मध्यप्रदेश के दक्षिण मध्य में नरसिंहपुर जिला पुण्य सलिला नर्मदा के कछार में 22°40'उत्तरी अक्षांश से 23°15'उत्तरी अक्षांश तथा 78°38'पूर्वी देशांश से 79°38' पूर्वी देशांश के बीच कर्क रेखा के दक्षिणी भाग में अपनी स्थिति रखता है, जिले का कुल क्षेफ़फल 5133 वर्ग किमी0 है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार जिले में 1091854 लोग निवास करते हैं जिसमें 568810 पुरुष तथा 523044 महिलायें सम्मलित हैं। नर्मदा नदी इस जिले के बीचों–बीच पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है। यहां की जलवायु उष्ण कटिबंधीय मानसूनी है जिसमें महाद्वीपीय जलवायु का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखलायी पड़ता है जिसमें शीतकाल सामान्य ठंडा तथा ग्रीष्म काल में मई जून के महीने अत्यधिक गर्म होते हैं। वर्षा ऋतु में दक्षिण पश्चिम मानसूनों से लगभग 120 से0मी0 वर्षा होती है। प्रशासकीय दृष्टि से यह जिला पांच तहसीलों एवं छ: विकास खण्डों में विभाजित है। सम्पूर्ण जिले में काली मिट्टी का विस्तार पाया जाता है। नदियों की घाटियों में पीली कांप मिट्टी पायी जाती है। कृषि के लिये उपयुक्त मिट्टी एवं सिंचाई की सुविधा के कारण कृषि करना यहां के निवासियों का मुख्य व्यवसाय है। कृषि तथा कृषि आधारित उद्योग यहां की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार हैं। यहां खाद्यान्न फसलों की खेती प्रमुखता से की जाती है इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यवसायिक फसलों के क्षेत्रफल में भी अत्यधिक वृद्धि की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में जिले की जनसंख्या में हो रही त्रीव वृद्धि के फलस्वरुप लोगों की खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कृषि क्षेत्र में किये गये विभिन्न आधुनिक कृषि विकास संबंधी प्रयासों का जलवायु दशाओं में संभावित प्रभावों को उजागर करने का प्रयास किया गया है जिससे जन जागृति लाकर कृषि–पर्यारण की संमपोषित अवधारणा को मजबूत किया जा सके।

नरसिंहपुर जिले की जनसंख्या सन् 1951 से 2011

वर्ष	जनसंख्या	जनसंख्या की वृद्धि%
1951	334951	1.22
1961	412406	21.66
1971	519290	25.91
1981	650445	25.25
1991	785496	20.76
2001	957646	21.92
2011	1091854	14.04

स्रोत –नरसिंहपुर जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 1999 एवं 2009

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि सन् 1951 की तुलना में सन् 2011 की जनसंख्या में लगभग तीन गुना वृद्धि परिलक्षित होती है।

निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या की उदर पूर्ति के लिये खाद्यान्नों की मांग (सीमित कृषि भूमि के अन्तर्गत) निरंतर बढ़ रही है जिसकी पूर्ति के लिए कृषि विकास के लिये अनेक प्रयास किये जा रहे हैं जैसे–

भूमि उपयोग में परिवर्तन (जैसे– वन विनाश) करके कृषि भूमि में विस्तार –कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिये किये गये सतत् प्रयास के अन्तर्गत सन् 1994–95 से कृषि भूमि में भारी विस्तार हुआ है। उल्लेखनीय है कि तालिका में 136207 हैक्टे. भाग को वन के अन्तर्गत दिखाया गया है जो वास्तविकता से बहुत दूर है। सन् 1994–95 से लेकर सन् 2008– 2009 तक कृषि भूमि में लगातार वृद्धि हुई है जिसकी पूर्ति वनों के विनाश द्वारा ही हुई है। निम्न तालिका में भूमि उपयोग संवंधी तथ्यों को उजागर किया गया है।

नरसिंहपुर जिले में भूमि उपयोग सन्1994–95 से 2008–09 (तालिका पीछे देखें)

सिंचित क्षेत्र तथा सिंचाई साधनों में वृद्धि करके– कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु कृषि भूमि में विस्तार के साथ–साथ सिंचाई के साधनों एवं सिंचित भूमि में भी निरन्तर वृद्धि हुई है। इसके अन्तर्गत सिंचाई के परम्परागत साधनों के स्थान पर नहरों के विकास पर अत्यधिक जोर दिया गया है। नहरों द्वारा अनियंत्रित सिंचाई के कारण भूमि में क्षारीयकरण तथा अम्लीयकरण की समस्या उत्पन्न हुई है जिससे विस्तृत बंजर भूमि में परिवर्तित हो रही है।

कृषि रसायनों (रासायनिक उर्वरक, कीट तथा जैव नाशक) के उपयोग में वृद्धि –कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिये विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरकों तथा फसलों को रोगों एवं कीटों से बचाने के लिये कीट नाशको के उत्पादन तथा उपयोग में वृद्धि हुई है जिस कारण एक ओर भूमिगत जल में इनकी सान्द्रता बढ़ी है तो दूसरी ओर इनके निरन्तर अत्याधिक उपयोग के कारण मिट्टी की उर्वरकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। निम्न तालिका में रासायनिक खादों के

*सहायक प्राध्यापक, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

उपयोग संवंधी आंकड़ों को दर्शाया गया है।

आंकड़ो का अवलोकन करने से स्पष्ट है कि उत्पादन में वृद्धि करने के लिये रासायनिक खादों के प्रयोग में निरन्तर वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरुप कृषि उत्पाद में गुणात्मक वृद्धि हुई किन्तु रासायनिक खादों के अनियंत्रित उपयोग के कारण भूमिगत जल में इनकी सान्द्रता बढ़ रही है फलस्वरुप भूमिगत जल प्रदूषित हो रहा है जिस कारण जल जनित विभिन्न प्रकार की बीमारियों का प्रकोप बढ़ रहा है। कृषि विकास द्वारा भले ही खाद्यान्न समस्या से मुक्ति मिल गयी है, परन्तु इससे कई भयावह पर्यावरणीय समस्यायें उत्पन्न हो गयीं हैं। यह सत्य है कि बढ़ती जनसंख्या की भूख मिटाने के लिये कृषि क्षेत्र में विकास करना आवश्यक है परन्तु यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस विकास के चलते पर्यावरणीय समस्या इस सीमा तक न बढ़ जाये कि मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाये। प्रस्तुत शोध पत्र मे नरसिंहपुर जिले में कृषि विकास के फलस्वरुप पर्यावरण में हो रहे परिवर्तनों को उजागर करने का प्रयास किया गया है जिससे कृषि विकास के साथ -साथ पर्यावरण के प्रति जन जागृति लायी जाकर पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को नियंत्रित किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जिला गजेटियर नरसिंहपुर
2. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 1999 एवं 2009
3. पर्यावरण भूगोल- सविन्द्र सिंह प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद-2004
4. पर्यावरण भूगोल-हरीश कुमार खत्री-2012
5. पर्यावरण अध्ययन एवं प्रवधन डॉ.लोकेश श्रीवास्तवशारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद-2012

नरसिंहपुर जिले में भूमि उपयोग सन् 1994-95 से 2008-09

वर्ष	भौगोलिक क्षेत्र	वन क्षेत्र	कृषि के लिये जो भूमि उपलब्ध नहीं है	अन्य अकृष्य भूमि जिसमें पड़ती भूमि शामिल नहीं है	कृषि योग्य भूमि	पड़ती भूमि	निरा बोया गया क्षेत्र
1994-95	513651	136207	23636	23869	10294	12200	374172
1995-96	513651	136207	23957	23869	10317	10947	394548
1996-97	513651	136207	24038	23869	10609	11138	402344
1997-98	513651	136207	24055	28706	10609	10827	409210
2006-07	513651	136207	25712	28615	14622	9238	388415
2007-08	513651	136207	25712	28511	14622	9043	388361
2008-09	513651	136207	25712	28607	14622	9043	388361

स्रोत -नरसिंहपुर जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 1999 एवं 2009

नरसिंहपुर जिले में सिंचाई के विभिन्न साधन तथा सिंचित क्षेत्र सन् 1994-95 से 2008-09(सिंचित क्षेत्र हेक्टे0 में)

वर्ष	नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र	नलकूप द्वारा सिंचित क्षेत्र	कुओं द्वारा सिचित क्षेत्र.	अन्य साधनों द्वारा सिर्चित क्षेत्र	समस्त स्रोतों से कुल सिचित क्षेत्र	शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोये क्षेत्र से प्रतिशत
1994-95	2124	36101	83284	11492	133075	34.95
1995-96	2404	42309	86474	10718	141905	35.34
1996-97	2046	53234	76059	10798	145200	35.32
1997-98	2230	60736	74930	15299	153195	36.81
2006-07	1095	77210	92766	7350	178489	57
2007-08	1095	77413	92975	7357	178503	57
2008-09	1095	77413	92975	7378	185110	57

स्रोत -नरसिंहपुर जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 1999 एवं 2009

उन्नत कृषि के अन्तर्गत क्षेत्र एवं मात्रा

वर्ष	उन्नत बीज		रासायनिक खाद्य		पौध संरक्षण		तरल दवा		बीजोपचार	
	क्षेत्र	मात्रा (क्वि.)	क्षेत्र	मात्रा (क्वि.)	क्षेत्र	मात्रा (क्वि.)	क्षेत्र	मात्रा (क्वि.)	क्षेत्र	मात्रा (क्वि.)
2006-07	11850	9134	39900	37459	31710	785	6120	4610	8250	23.15
2007-08	11973	9212	39819	38212	31978	798	6378	4795	8378	24.11
2008-09	11895	9245	39975	38307	31995	793	6452	4799	8382	24.23

स्रोत -नरसिंहपुर जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 1999 एवं 2009

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित खरगोन के कोष निधि प्रावधानों की तथ्यात्मक समीक्षा

डॉ. सुनील मोरे *

प्रस्तावना – खरगोन जिला भारत देश के मध्यप्रदेश राज्य के दक्षिणी पश्चिमी सीमा पर स्थित है। पश्चिमी निमाड़ के तौर पर जाना जाने वाले इस जिले के उत्तर में धार, इंदौर व देवास दक्षिण में महाराष्ट्र, पूर्व में खण्ड़वा, बुरहानपुर तथा पश्चिम में बड़वानी है। नर्मदाघाटी के लगभग मध्य भाग में स्थित इस जिले के उत्तर में विंध्याचल तथा दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत श्रेणियां है।

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन पश्चिम निमाड़ के खरगोन व बड़वानी जिलें के अन्तर्गत कार्यरत् है। खरगोन जिलें में 9 विकासखण्ड तथा 9 तहसील है। आदिवासी बाहुल्य जिला खरगोन में जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित खरगोन 16 दिसम्बर 1949 को पंजीकृत हुई थी। वर्तमान में बैंक की कुल 66 शाखाऐं तथा 9 विस्तार शाखाऐं कार्यरत् है।

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम की संशोधित धारा 42 के अनुसार राज्य सहकारी बैंकों को अनुसूचित बैंकों की श्रेणी प्रदान की गई हैं। अब इन बैंकों को वे सभी सुविधायें एवं लाभ प्राप्त हो सकेंगे जो अनुसूचित बैंकों को प्राप्त होते हैं। इन सुविधाओं के अनुसार अब राज्य सहकारी बैंक स्थानीय, प्रन्यासों तथा शैक्षणिक संस्थाओं से निक्षेप प्राप्त कर सकेंगे तथा सरकारी ठेका कार्यों के लिए बैंक प्रत्याभूति योजना अधीन उनके द्वारा सरकारी विभागों को दी गई गारन्टी मान्य होगी। अनुसूचित बैंकों की श्रेणी में आ जाने पर अब राज्य सहकारी बैंकों को अपने कुल दायित्वों का 3 प्रतिशत भाग राशि–प्रेषण योजना के अधीन रिजर्व बैंक के पास जमा कराना होगा, जबकि पहले इनको अपने माँग एवं अवधि दायित्वों का क्रमश: 2.5 प्रतिशत और 1 प्रतिशत जमा कराना होता था। कुल दायित्वों की गणना करते समय राज्य सरकार एवं समितियों से प्राप्त संचय कोष की राशि को सम्मिलित नहीं किया जायेगा। धारा 18 के अनुसार सभी सहकारी बैंकों को रिजर्व बैंक से उदार शर्तों पर ऋण सुविधाएँ प्राप्त होंगी।

रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित कोष निधि के प्रावधान–

- **नकद कोष व्यवस्था –** धारा 44 के अनुसार प्रत्येक सहकारी साख संस्था को स्वयं के पास या रिजर्व बैंक के पास चालू खाते में या केन्द्रीय सरकार द्वारा नामांकित बैंक के पास अपनी कुल जमाओं का 15 प्रतिशत या उससे अधिक जो भी रिजर्व बैंक निर्धारित करे, नकद रुप में रखना होगा। सहकारी साख संस्थाओं को प्रत्येक दूसरे माह की 15 तारीख तक एवं विवरणी रिजर्व बैंक को भेजनी होगी, जिसमें माह के प्रत्येक शुक्रवार के दिन माँग तथा सावधि जमा राशि का उल्लेख होगा।
- **तरल सम्पत्ति –** बैंकिंग (नियमन) अधिनियम में सहकारी संस्थाओं से सम्बन्धित संशोधन लागू करने के पश्चात् यह व्यवस्था की गई है कि रिजर्व बैंक अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार रखी गई नकद राशि (15 प्रतिशत) के अतिरिक्त इन संस्थाओं को अपने पास कुल जमाओं के 30 प्रतिशत या उससे अधिक जो भी रिजर्व बैंक निर्धारित करें, नकद रुप में रखना आवश्यक है।

तालिका क्र. 01

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की रक्षित निधि

क्र.	वर्ष	रक्षित निधि (राशि लाखों में)
1.	2005	328.54
2.	2006	474.00
3.	2007	622.95
4.	2008	667.93
5.	2009	728.11
6.	2010	836.19
7.	2011	988.25
8.	2012	1,189.74

स्त्रोत: जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की रक्षित निधि में सन् 2005 की तुलना में सन् 2013 में 1073.73 लाख रु. (326.82 प्रतिशत) की वृद्धि हुई हैं।

तालिका क्र. 02

जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की कृषि साख स्थायीकरण निधि

क्र.	वर्ष	कृषि साख स्थायीकरण निधि(राशि लाखों में)
1.	2005	219.52
2.	2006	313.38
3.	2007	407.75
4.	2008	493.74
5.	2009	475.85
6.	2010	540.69
7.	2011	631.93
8.	2012	752.83
9.	2013	880.34

स्त्रोत: जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन

इस तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की कृषि साख स्थायीकरण निधि में सन् 2005 की तुलना में सन् 2013 में 660.82 लाख रु. (301.02 प्रतिशत) की वृद्धि हुई हैं।

*विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, अंजड़ (म.प्र.) भारत

तालिका क्र. 03
जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की भवन निधि

क्र.	वर्ष	भवन निधि (राशि लाखों में)
1.	2005	118.88
2.	2006	118.88
3.	2007	138.88
4.	2008	155.18
5.	2009	185.46
6.	2010	230.18
7.	2011	273.88
8.	2012	273.88
9.	2013	308.88

स्त्रोत: जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की भवन निधि में सन् 2005 की तुलना में सन् 2013 में 190 लाख रु. (159.82 प्रतिशत) की वृद्धि हुई हैं।

तालिका क्र. 04
जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की संदिग्ध डूबत ऋण कोष

क्र.	वर्ष	संदिग्ध डूबत ऋण कोष (राशि लाखों में)
1.	2005	1189.88
2.	2006	1,597.39
3.	2007	2,247.39
4.	2008	2,897.39
5.	2009	3,247.39
6.	2010	3,417.39
7.	2011	3,542.55
8.	2012	3,542.55
9.	2013	4,041.11

स्त्रोत: जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की संदिग्ध डूबत ऋण कोष में सन् 2005 की तुलना में सन् 2013 में 2851.23 लाख रु. (239.62 प्रतिशत) की वृद्धि हुई हैं।

तालिका क्र. 05
जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की संदिग्ध डूबत ब्याज कोष

क्र.	वर्ष	संदिग्ध डूबत ब्याज कोष (राशि लाखों में)
1.	2005	1,267.35
2.	2006	1,267.35
3.	2007	1,267.35
4.	2008	1,741.43
5.	2009	3,143.74
6.	2010	3,143.74
7.	2011	3,318.74
8.	2012	4,469.43
9.	2013	4,469.43

स्त्रोत: जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की संदिग्ध डूबत ब्याज कोष में सन् 2005 की तुलना में सन् 2013 में 3202.08 लाख रु. (252.65 प्रतिशत) की वृद्धि हुई हैं।

तालिका क्र. 06
जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की अन्य निधियां

क्र.	वर्ष	अन्य निधियां (राशि लाखों में)
1.	2005	633.37
2.	2006	1178.90
3.	2007	1,598.16
4.	2008	2,099.72
5.	2009	2,582.49
6.	2010	3,041.64
7.	2011	3,701.29
8.	2012	3,619.57
9.	2013	5,555.70

स्त्रोत: जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन की अन्य निधियां में सन् 2005 की तुलना में सन् 2013 में 4922.33 लाख रु. (777.16 प्रतिशत) की वृद्धि हुई हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मध्यप्रदेश संदर्भ 2012 : म.प्र. जनसंपर्क का प्रकाशन, बाणगंगा, भोपाल
2. अग्रवाल, माथुर, गुप्ता : सहकारी चिन्तन एवं ग्रामीण विकास, रमेश बुक डिपों, जयपुर
3. जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित, खरगोन पुस्तिका
4. विकिपीडिया एक मुक्त ज्ञानकोष

एल.पी.जी. नीति का देवास जिले के संगठित क्षेत्र के औद्योगिक विकास पर प्रभाव एवं संभावनाएँ

डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा * डॉ. महेश शर्मा **

प्रस्तावना –इतिहास मानव सभ्यता के घटनाक्रम का लेखा है। अद्भुत घटनाएँ घटी जिनकी पूर्ण यथार्थता प्रमणित होना अब संभव नहीं, भारत के हृदय–स्थल मालवा में अनेक ऐतिहासिक उथल–पुथल हुए, भूगोल तो वही रहा, लेकिन इतिहास बदला। प्राचिन बसाहटों में आर्थिक एवं औद्योगिक विकास ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् 1991 को भारत सरकार द्वारा घोषित एल.पी.जी. (उदारीकरण, नीजिकरण एवं वैश्वीकरण) की नीति ने देवास जिले के संगठित क्षेत्र के औद्योगिक विकास को प्रभावित किया है, इस जिले को सन् 1972 से केन्द्र एवं राज्य सरकार ने अ श्रेणी का पिछड़ा जिला घोषित किया है तथा सन् 1991 की एल.पी.जी. नीति ने इस जिले के संगठित क्षेत्र में औद्योगिक विकास को और गति दी है जो निम्न तलिका से स्पष्ट है :–

(तालिका–पीछे देखें)

तालिका से स्पष्ट होता है कि एल.पी.जी.नीति के पश्चात् देवास जिले में संगठित क्षेत्र में 37 संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलों की स्थापना हुई, इसमें से सर्वाधिक 10 स्कन्ध प्रमण्डल सोया तेल एवं सोया उत्पाद से संबंधित है, सोया उद्योग समूह में कुल 202.36 करोड़ का विनियोजन किया गया तथ इस उद्योग समूह ने 8998 लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाया है, इस उद्योग समूह में 2013 तक कुल विनियोजन का 41.05 प्रतिशत भाग विनियोजित किया गया तथा कुल रोजगार का 34.59 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया, जो सर्वाधिक है। इंजिनियरिंग उद्योग समूह में कुल 8 सयुक्त स्बंन्ध प्रमण्डलो में 81.25 करोड रूपये का विनियोजन किया गया तथा 2584 लोगो को रोजगार उपलब्ध कराया गया, इस उद्योग समूह में 2013 तक के कुल विनियोजन का 16.66 प्रतिशत विनियोजन किया गया तथा कुल रोजगार का 9.23 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया, इसी प्रकार सवेक्षित अवधि मे देवास जिले मे सूती मिश्रित तथा ऊनी कपडा उद्योग की 09 कम्पनियां भी स्थापित की गई। इस उद्योग समुह मे कुल विनियोजन का 74.68 करोड रूपये तथा 5161 लोगो को रोजगार उपलब्ध करवाया हैं, जो कुल विनियोजन का 15.32 प्रतिशत तथा कुल रोजगार का 19.84प्रतिशत है। इसी प्रकार देवास जिले में 1991 से 2013 के मध्य चमडा एवं चमडे के सामान उत्पाद की 02 कम्पनियाँ स्थापित की गई, जिनमें लगभग 20.94 करोड रूपये का विनियोजन किया गया जो कुल विनियोजन का 4.29 प्रतिशत हैं, तथा इन कम्पनियो में 1859 लोगो को रोजगार उपलब्ध कराया गया है, जो कुल रोजगार का का 7.15 प्रतिशत प्रतिशत हैं, देवास जिले में इस अवधि में एक रसायन उद्योग की भी स्थापना 10.93 करोड की पूंजी से की गई जिसमें लगभग 850 लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ। इस कम्पनी का कुल विनियोजन का 2.24 प्रतिशत विनियोजन किया गया तथा कुल रोजगर का 3.27 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध करवाया गया इसी तरह देवास जिले में सर्वेक्षित अवधि में टाईल्स एवं सिनेटरी वेयर्स की भी 03 स्कन्ध कम्पनियों की स्थापना हुई है। इन कम्पनियों में 64.03 करोड़ रू. का विनियोजन तथा 2878 लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाया गया है इस उद्योग में कुल विनियोजन का 13.14 प्रतिशत है तथ कुल उपलब्ध रोजगार का 11.05 प्रतिशत है। इसी प्रकार देवास जिले में सर्वेक्षित अवधि में सिगरेट फिल्टर, लोहा, औषधी एवं पवन ऊर्जा उत्पाद से संबंधित 04 संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलों की स्थापना की गई है इन कम्पनियों में 33.37 करोड़ रूपये का विनियोजन तथा 3689 लोगों के रोजगर उपलब्ध करवाया गया है जो कुल विनियोन का 6.85 प्रतिशत तथा कुल उपलब्ध रोजगार का 14.17 प्रतिशत है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एल.पी.जी. नीति से 2013 तक देवास जिले में विभिन्न 07 उद्योग समूह में कुल 487.56 करोड़ का विनियोजन कया गया तथा इनमें लगभग 26010 लोगों को रोजगार प्रदान कया गया है।

शोध निष्कर्ष – उपर्युक्त अध्ययन से निम्न शोध निष्कर्ष प्राप्त होते है:–

1. एल.पी.जी. नीति का देवास जिले के संगठित क्षेत्र के औद्योगिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव हुआ है।
2. एल.पी.जी. नीति के पश्चात् देवास जिले के संगठित क्षैत्र में सर्वाधिक 10 कम्पयिों की स्थापना की गई है क्योंकि मालवा क्षेत्र में सर्वाधिक मात्रा में सोयाबीन का उत्पादन किया जाता है।
3. सर्वेक्षित अवधि में देवास जिले में सभी तरह के उद्योग समूह का विकास हुआ है।
4. सर्वेक्षित अवधि में विभिन्न उद्योग समूहों में 487.56 करोड़ रूपये का विनियोजन किया गया जो सरकार की एल.पी.जी. नीति की सफलता का अंग है।
5. सर्वेक्षित अवधि में इस क्षेत्र में कुल 26010 लोगों को रोजगार उपलब्ध करवाया गया है, जो सरकार की बेरोजगारी पर नियंत्रण करने की नीति की सफलता का द्योतक है।
6. देवास जिले में औद्योगिक आधारभूत सुविधाओं की पर्याप्तता नहीं है। यदि सरकार इन पर सकारात्मक नीति क्रियान्वित करती है तो भविष्य में औद्येगिक विकास और तेज गति से हो सकता है।

अत: एल.पी.जी. नीति के पश्चात् देवास जले के संगठित क्षेत्र में औद्येगिक विकास की गति संतोषजनक रही है। सरकार को औद्योगिक विकास हेतु ओर सकरात्मक नीति अपनाना चाहिए, जिससे प्रदेश एवं देश

* अतिथि विद्वान, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर मालवा (म.प्र.) भारत ** प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

के सभी क्षेत्रों में संगठित एवं असंगठित क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों का विकास किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Establishment of Labour in M.P. 2014 Publish by Labour Commission, Bhopal
2. म.प्र. स्वर्ण जयंति 2011 देवास जिले में उद्योगो की संभावना एवं सुविधाएँ।
3. देवास जिला सांख्यिकी पत्रिका, प्रकाशक जिला सांख्यिकी अधिकारी, देवास।
4. जिला उद्योग केन्द्र देवास से प्राप्त प्रतिवेदन।
5. देवास जिला एसोसिएशन ऑफ इन्डस्ट्रीज से प्राप्त प्रतिवेदन।

तालिका

क्र	विवरण	इकाईयों की संख्या	विनियोजन		उपलब्ध रोजगार	रोजगार प्रतिशत
			राशि(करोड़ रूपये में)	प्रतिशत		
1.	सोया तेल एवं सोया उत्पाद	10	202.36	41.50	8998	34.59
2.	इंजीनियरिंग	08	81.25	16.66	2584	9.93
3.	सूती, मिश्रित एवं ऊनी कपड़ा	09	74.68	15.32	5161	19.84
4.	चमड़ा एवं चमड़े का सामान	02	20.94	4.29	1859	7.15
5.	रसायन	01	10.93	2.24	850	3.27
6.	टाईल्स एवं सेनेटरी	03	64.03	13.14	2878	11.05
7.	सिगरेट फिल्टर, लोहा, औषधी एवं पवन ऊर्जा	04	33.37	6.85	3689	14.17
	योग	37	487.56	100	26010	100

****

भारतीय कृषि क्षेत्र - स्थिति एवं सम्भावनाएँ

डॉ.सपना सोनी *

शोध सारांश – भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र के योगदान औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र की तुलना में परिवर्तित दिखाई देता है, जो अर्थव्यवस्था की उन्नत अवस्था को दर्शाता है। किन्तु बहुसंख्यक कार्यशील जनसंख्या का कृषि क्षेत्र में संलग्न होने से आय वितरण को संतुलित करने हेतु सह कृषि क्षेत्र के विकास एवं कृषि पदार्थो के निर्यात की महत्ती आवश्यकता है।

प्रस्तावना – वृहद कृषि क्षेत्र देश में प्राथमिक क्षेत्र की रीढ़ है। देश की कुल श्रमशक्ति का लगभग 58.2 प्रतिशत भाग, कृषि एवं कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों से ही अपना जीवकोपार्जन कर रहा है। कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर देश, के सकल घरेलु-उत्पाद (प्राथमिक क्षेत्र) में इसके योगदान को निर्धारित करती है। देश के सकल घरेलु-उत्पाद में चालू मूल्यों पर कृषि क्षेत्र का योगदान 2004-05 में 19 प्रतिशत, 2005 में 18.3 प्रतिशत, 2006-07 में 17.4 प्रतिशत, 2007-08 में 16.8 प्रतिशत, 2008-09 में 15.8 प्रतिशत, 2009-10 में 14.7 प्रतिशत, 2010-11 में 14.5 प्रतिशत, 2011-12 में 14.00 प्रतिशत, 2012-13 में 13.8 प्रतिशत रहा है। अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का घटता प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक (औद्योगिक क्षेत्र) एवं तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) के बढलते हुए योगदान को दर्शाता है। विकास की प्रक्रिया में कृषि क्षेत्र (प्राथमिक क्षेत्र) का घटता रूझान स्वाभाविक है किन्तु इस क्षेत्र में बहुसंख्यक कार्यशील जनसंख्या का संलग्न होना आय-वितरण की दृष्टि से चिन्तनीय है।

रोजगार की दृष्टि से देश में कृषि क्षेत्र से न केवल 52 प्रतिशत लोगों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ है जबकि 6.2 प्रतिशत लोग कृषि प्रदार्थो के व्यापार, परिवहन, प्रसंस्करण आदि में लगकर अपनी आजीविका कमाते है। कृषि क्षेत्र, रोजगार-सजृन का प्रमुख साधन है लगभग 115.5 मिलियन कृषक परिवारों की आजीविका का माध्यम है। यद्यपि देश में 1951 में कार्यकारी जनसंख्या 69.5 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या कृषि क्षेत्र के लगी हुई थी, जो 1991 व 2011 में घटकर क्रमश: 66.9 प्रतिशत तथा 58.2 प्रतिशत जनसंख्या की इस क्षेत्र पर निर्भर है। किन्तु देश की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण कृषि में लगी हुई वास्तविक जनसंख्या में बहुत बढ़ोत्तरी हुई है। जबकि कृषि में प्रयुक्त भूमि में कोई विशेष वृद्धि परिलक्षित नहीं हुई है। अकुशल कृषि मजदूरों की कृषि क्षेत्र पर निर्भरता से जहाँ एक ओर सीमान्त उत्पादकता में कमी आई है, वहीं दूसरी ओर अल्प रोजगार, छद्म बेरोजगारी जैसी समस्याऐं भी पैदा हो गई। जो देश की बेराजगारी में दिन-प्रतिदिन वृद्धि कर रही है। छद्म बेराजगारी की इस समस्याँ को कृषि सहायक-क्षेत्र, जैसे पशुपालन, दूग्ध उद्योग, ऊन-उद्योग, रेशम-उद्योग, मधुमख्खी-पालन, कुक्कुट-पालन, मत्स्यपालन, सामाजिक वानिकी आदि का समुचित विकास कर बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।

9 वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास दर की औसत वार्षिकी 2.5 प्रतिशत, तथा 10 वीं पंचवर्षीय योजना में 2.4 प्रतिशत थी, किन्तु कृषि के बेहतर प्रावधान के कारण 11 वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि कृषि तथा सहबद्ध क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि लक्ष्य 4 प्रतिशत के विरूद्ध 3.6 प्रतिशत की रही। यह उपलब्धि पिछली योजना की तुलना में पर्याप्त से अधिक रही है। यह लक्ष्य किसानों की सहायता, खाद्य प्रबन्धन हेतु उपयुक्त एवं सामयिक नीतिगत हस्तक्षेपों, मानसून सम्बन्धी पूर्व भविष्यवाणियों की विश्वसनीयता में सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण पहलों के माध्यम से हासिल हो पाया है।

बहुविधि फसल, उपज में सुधार तथा फसलों के क्षेत्र में परिवर्तन दीर्घावधि के लिए उत्पादन में वृद्धि की सफलता का रहस्य है। विगत छ: दशकों में प्रमुख कृषि फसलों की उपज की दृष्टि से देशीय स्तर पर समग्र रूप से अधिक वृद्धि देखने में आई है। जो अग्र तालिका क्र. 01 से स्पष्ट है।

तालिका क्रमांक - 01

तालिका क्र. 01 विश्लेषण से स्पष्ट है कि गेहुँ, चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि मोटे अनाजों की उपज में मुंगफली, सरसो, सोयाबीन, चाय, काफी की अपेक्षाकृत कम वृद्धि दर्ज हुई है। जबकि अखाद्यान्न फसलों कॉटन, जूट में अत्यधिक वृद्धि परलक्षित दिखाई देती है। यद्यपि उपज के स्तरों के वृद्धि (बाद की अवधियों में (1991-92 से 2011-12) पर्याप्त संतुलित हो गई है।) जनसंख्या की विकास दर को देखते हुए खाद्य की मांग में बढोत्तरी एक स्वाभाविक सहवर्ती क्रिया है, इसके बावजूद आय-स्तरों में बदलाव एवं लोगों की प्राथमिकताओं ने भी विभिन्न खाद्य-उत्पादों में वृद्धि को सम्भव बनाया है। यही नहीं कृषि सहबद्ध उत्पाद, मुख्यत: फल सब्जियों, दुग्ध, मांस, अण्डा, मछली जैसे खाद्य उत्पादन एवं उपभोग में भी अपेक्षित कृषि परलक्षित दर्ज हुई हैं। इस सहायक क्षेत्र का उत्कृष्ट भविष्य तथा अतीत रहा है। यह खेतिहर मजदूरों, लघु एवं सीमान्त किसानों जैसे दूर्बल वर्गो की आय बढ़ोत्तरी में सहायक सिद्ध हो रहा है। देश में पशुधन मालिकों की निम्न आर्थिक स्थिति के कारण अधिकांश पशुओं का पालन-पोषण अनुकूलतम स्थितियों में नहीं हो पाता है। इन कठिनाईयों के बावजूद भारत विश्व का सर्वाधिक दूग्ध उत्पन्न करने वाला देश है।

चाय उत्पादन में भी भारत, विश्व में सबसे बड़ा उत्पादक एवं उपभोक्ता देश है। काफी उत्पादन में भारत का छटा स्थान है तथा प्राकृतिक रबर में चौथा स्थान प्राप्त है। औद्योगिक विकास की दृष्टि से कृषि का विशेष महत्व है। अनेक उद्योगों को कृषि क्षेत्र से ही कच्चा माल मिलता है, साथ ही अनेक औद्योगिक वस्तुओं (कृषि उपकरण, टैक्टर, उर्वरक, कीटनाशक) का कृषि क्षेत्र में उपयोग किया जाता है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि सम्भव हो पाती है। किन्तु वर्तमान में कृषि भूमि के औद्योगिक एवं आवसीय उपभोग में वृद्धि

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (वाणिज्य) शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

होने से खाद्य उत्पादन में समस्या पुन: उत्पन्न होते दिखाई देने लगी है। अत: कृषि भूमि के उपयोग परिवर्तन को प्रतिबन्धित किये जाने की आवश्यकता है।

भारत के निर्यातों में भी कृषि क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि पदार्थो के निर्यात से देश, बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का अर्जन करता है। कृषि एवं सम्बद्ध पदार्थो के निर्यातों में मुख्यत: चाय, काफी, गेहुँ, तम्बाकु, मसाले, काजू, नट, खली, फल, सब्जियों, समुद्री उत्पादों एवं कपास, चीनी संसाधित खाद्य, पॉल्टरी एवं डेयरी उत्पाद शामिल है।सन् 1995-96 में देश के सकल निर्यात में कृषि की हिस्सेदारी 19.2 प्रतिशत, 2002-03 में 12.8 प्रतिशत, 2005-06 में 10.2 प्रतिशत एवं 2011-12 में 10 प्रतिशत के लगभग है। विश्व में भारत दूध, दलहन, जूट के उत्पादन में प्रथम स्थान पर और चावल, गेहुँ, मूंगफली, सब्जियों फलो एवं कपास उत्पादन में दुसरे स्थान पर तथा मसालों, रोपण फसलों, पशुधन, मात्स्यिकी तथा कुकूट पालन के क्षेत्र में अग्रणी उत्पादनकर्ता है। निर्यात की दृष्टि से प्रतिशत के आधार पर कृषि क्षेत्र का योगदान घटा है। किन्तु मात्रात्मक मूल्यों की दृष्टि से कृषि निर्यात में वृद्धि हुई है। जो भविष्य में भी कृषि निर्यात के महत्व में वृद्धि प्रदान करेगा।

इन कृषि पदार्थो का निर्यात, देश की व्यापारिक नीति, खाद्य सुरक्षा का सुनिश्चिय तथा घरेलु उपलब्धता को ध्यान में रखकर किसानों की आय बढ़ाने एवं निर्यात बाजारों के निर्माण सम्बन्धी उद्देश्यों से शासित रहता है। सितम्बर 2011 से सरकार ने गेहुँ, बासमती चावल, तथा कपास को मुक्त सामान्य लाईसेंस के अन्तर्गत रखा है। भारत विश्व में, कृषि उत्पादों के 15 अग्रणी निर्यातकों में से है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सांख्यिकी 2011 के अनुसार भारत के कृषि निर्यात 23.2 मिलियन अमरीकी डालर है तथा भारत का कृषि आयात 17.5 विलीयन अमरीकी डालर है। भारत विश्व में खाद्य तेल के बड़े उत्पादनकर्ताओं में से एक है फिर भी पचास प्रतिशत घरेलु जरूरत को आयात से पूरा किया जाता है। जिसमें क्रुड पाम आयल (सी.पी.ओ.) तथा आरबीडी पायोलीन लगभग 77 प्रतिशत और सोयाबीन 12 प्रतिशत आयात होता है।

देश में विभिन्न कृषि उत्पाद की मांग के अनुरूप विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फसलों में भावी घरेलु उत्पादन संवर्धन अशंशोधन करना आवश्यक है। ताकि कृषि आयात में कमी की जा सके। स्थिर व्यापार-नीति, सीरा और एथनाल जैसे उप उत्पादों पर मात्रा एवं संचलन जैसे प्रतिबन्ध को हटाना, जूट पैकिंग की अनिवार्यता को समाप्त करना, फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य की समय पर घोषणा करना, स्वतंत्र टैरिफ नीति का समय पर निर्धारण, चीनी, गन्ना, खाद्य तेल को आवश्यक वस्तु अधिनियम में पूर्ण समय प्रतिबन्धित रखना, घरेलु किसानों एवं उपभोक्ताओं के हित में होगा साथ ही खाद्य तेलो के टैरिफ मूल्य (जो 2009 से अपरिवर्तित रहे है) को भी बाजार स्तर पर अद्यतन करने की आवश्यकता है ताकि बढ़े हुए आयात शुल्क से अतिरिक्त आयात राजस्व उत्पन्न हो सके।

कृषि उपज में सुधार दीधविधि वृद्धि, प्रौद्यौगिकी, गुणवत्तापूर्ण बीजों का उपयोग, उर्वरकों, कीटनाशकों, सुक्ष्म पोषक तत्वों और सिंचाई के उपयोग सहित कई कारकों पर निर्भर करती है। इनमें से प्रत्येक का उपज स्तर पर निर्धारण और उत्पादन स्तर बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। इस कड़ी में कृषि फसलों में नई किस्मों के विकास को प्रोत्साहित करने तथा किसानों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए एक भारतीय बीज कार्यक्रम (2005-06) लागू किया गया है। जिसमें केन्द्र और राज्य सरकारों, भारतीय कृषि 2005-06 अनुसंधान परिषद्, राज्य कृषि विश्व विद्यालयों, बीज सहकारी समितियों और निजी क्षेत्रों की भागीदारी है। इसका उद्देश्य किसानों को सस्ती कीमत पर विभिन्न फसलों के प्रमाणित गुणवत्ता बीज उपलब्ध कराना है। इस कार्यक्रम के तहत 2005-06 के 140.5 लाख क्विंटल से बढ़कर 2012-13 में 328.6 लाख क्विंटन प्रसंस्करण प्रमाणित बीजों की उपलब्धता कराई गई है। पूर्वोतर राज्यों के पर्वतीय दूरदराज के क्षेत्रों के किसानों को समय पर सस्ते बीजों की उपलब्धता के साथ सब्सिडी भी दी जा रही है। कृषि कार्यो में उपयुक्त मशीनीकरण अपनाने से, उत्पादन और कृषि उत्पादकता में वृद्धि 10-15 प्रतिशत, फसल तीव्रता में 5-20 प्रतिशत, बीज में प्रभावी बचत 15-20 प्रतिशत, उर्वरक और रसायन में 15 से 20 प्रतिशत तक तथा समय और श्रम को 20 से 30 प्रतिशत बचाया जा सकता है। अधिकांश क्षेत्रों में कृषि जोतों के आकार छोटे एवं सीमान्त होने से कृषि मशीनरी का प्रयोग सीमित अवस्था है। इसके लिए हाईटेक मशीनरी बैंकों की स्थापना हेतु कदम उठाये जाने अपेक्षित है। कृषि क्षेत्रों के बिजली की उपलब्धता भी 1975-79 की 48 किलोवाट प्रति हैक्टर की तुलना में 2011-12 में 1073 किलोवाट प्रति हैक्टर पाई गई है और इसमें 2015 तक 2 किलोवाट प्रति हेक्टर उपलब्ध कराये जाने का लक्ष्य निर्धारित है, किन्तु अनेक दुरदराज क्षेत्रों में 24 घन्टों की बिजली की उपलब्धता सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता अपेक्षित है।

देश के विभिन्न कृषि भागों में सिंचाई प्रणालियों के अध्ययन के लिए गठित रिर्जव बैंक की समिति रिर्पोट करेंसी एण्ड फाइनेंस 2001-02 के अनुसार विभिन्न राज्यों तथा विभिन्न फसलों के बीच सिचांई की उपलब्धता में बहुत ज्यादा अन्तर है। पंजाब में 97.8 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में सिंचाई सुविधाऐं उपलब्ध है, वहाँ महाराष्ट्र में केवल 18.1 प्रतिशत कृषि क्षेत्र पर सिचांई सुविधाएँ उपलब्ध थी। विभिन्न फसलों के मध्य गेहुँ में 88 प्रतिशत क्षेत्र पर तो चावल में 50.2 प्रतिशत क्षेत्र दालों में केवल 14.4 प्रतिशत तिलहनों में 22.7 प्रतिशत भाग पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध रही है। किन्तु वर्तमान में

वर्षा संचित किसान की उत्पादकता और लाभोत्पादकता में सुधार की सहायता के उद्देश्य से जल संरक्षण प्रणालियों का विकास किया गया है। सिंचाई की दक्षता हेतु सतही जल और भूजल दोनों ही माध्यम से मध्यम सिंचाई योजनाओं से पर्याप्त सिंचाई की संभावना सृजित की जा रही है। मार्च 2011 तक इस कार्यक्रम के तहत 7622.5 हजार हेक्टर में प्रमुख/मध्यम/लघु सिंचाई परियोजनाओं से सिंचाई संभावना का सजृन किया जा सका है। (केन्द्र सरकार ने इस उद्देश्य को पूरा करने हेतु 1996-97 में त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम आरंभ किया था) तथा 31 दिसम्बर 2012 तक 55416 करोड़ की राशि केन्द्रीय ऋण सहायता/अनुदान के लिए राशि जारी की जा चुकी है। जिससे सुदृढ सिंचाई सम्भावना सजिृत एवं उपयोगी हुई है, जो विभिन्न राज्यों के मध्य सिंचाई अन्तर को कम कर रही है।

वर्तमान में देश स्वदेशी उत्पादन के माध्यम से 80 प्रतिशत तक अपनी यूरिया आवश्यकता की पूर्ति करता है। किन्तु पोटेसिक (K) और फास्फोरस (P) उर्वरक आवश्यकता काफी हद तक आयात पर निर्भर है। नाइट्रोजन (N), फास्फोरस (P) तथा पोटाश (K) का वांछित अनुपात 4:2:1 है किन्तु वास्तविकता में इसका उपयोग 5:2:1 हो रहा है इससे भूमि की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। 2007-08 में यूरिया डीएपी तथा मिश्र उर्वरक की कुल खपत 299.22 लाख टन थी, जो 2012-13 में 340.44 लाख टन हो गई है। इसी प्रकार पोषक तत्वों का उपयोग भी 116.50 से बढ़कर 141.30 हो गया है। उर्वरकों एवं पोषकतत्वों पर 2010 में लागू सब्सिडी योजना के तहत सब्सिडी से पोषक तत्वों की एक नियत मात्रा के आधार पर

प्रदाय की जा रही है। नवम्बर 2012 की स्थिति के अनुसार किसान उर्वरको की सुपर्दगी लागत का मात्र 58 से 73 प्रतिशत भुगतान कर रहे है, शेष भाग सब्सिडी के रूप के वितरण होने से सरकार को एक बड़े भार का वहन कराना पड़ रहा है। 2007-08 में वितरित की गई सब्सिडी लगभग 40000 करोड़ रूपये की थी, जो 2011-12 में बढ़कर 76000 करोड रूपये हो गई है। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हो रही है।

कृषि-क्षेत्र में उच्च उत्पादनकारी किस्मों का वितरण,मृदा की उर्वरकता बनाये रखने, उत्पादन की दृष्टि से पिछड़े राज्यों को कृषि आयोजना व्यय उपलब्ध कराने, खेत पर जल-प्रबन्धन, भंडारण, विपणन, कृषि उपज मूल्य-संवर्धन फसल विविधिकरण, प्रमाणित बीजों के उत्पादन एवं वितरण, कृषि संयंत्र वितरण, खर-पतवारनाशी दवाओं का वितरण, स्प्रिंकल किट का वितरण, बागवानी एवं शीघ्र नष्ट फसलों का कोल्ड चेन वितरण, फसल नष्ट पर तत्काल राहत एवं बीमा दावों की क्षतिपूर्ति, किसान केडिट कार्डो का वितरण, बैंक एंडेड क्रेडिट लिक्ड सब्सिडी, डेयरी क्षेत्र, कुकूट क्षेत्र पशुपालन विकास एवं कृषि निर्यात बढ़ोत्तरी उपाय को कर कृषि क्षेत्र के मूलभूत ढ़ांचे के विकास का सुदृढ़ीकरण, ग्रेडिंग एवं मानकीकरण कर रही है।

किन्तु देश की लगातार बढ़ती आबादी को खाद्य की कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में गिरावट भी चिंता का विषय है। कृषि अनुसन्धान पर व्यापक व्यय, ग्रामीण बुनियादी ढ़ाचे में भारी निवेश, बाजारों तक अधिक पहुँच, ऋण सुविधाएँ को अधिक बेहतर बनना, फसलों की सूखा-प्रतिरोधी किस्मों की खेती, जल उपलब्धता का विवेकपूर्ण उपयोग, उर्वरको के सन्तुलित उपयोग, खेत दक्षता के स्तर में सुधार, मशीनीकरण तथा तकनीकी प्रयोग को बढ़ावा, सिंचाई सुविधाओं के व्यापक उपयोग को बढ़ावा देने के उपाय, अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में स्थायी कृषि रणनीति, मृदा अपरदन लवणता, जल भराव, कृषि उत्पादों की जगह बनाना, और पोषक तत्वों के सन्तुलित उत्पाद, अवनत भूमि और जल संसाधनों के पुर्नवासके बेहतर प्रबन्ध, प्रसंस्करण वर्धित दक्षता, कृषि सांख्यिकी का सुदृढ़ीकरण एवं समय पर उपलब्धता, कुशल खाद्य भंडारण एवं विपणन, मौसम आंकलन की विश्वनीयता जैसे विभिन्न उपायों को अधिक परिष्कृत किए जाने की जरूरत है। पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि नहीं वरन् प्रोटीन-विटामिन्स युक्त प्रचुर मदों पर भी जोर दिये जाने की आवश्यकता है। इस हेतु बागवानी, डेयरी एवं कृषि सहबध क्षेत्रों के विकास पर भी समुचित ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। उपरोक्त इन एवं अन्य सुधारों के साथ बारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि और सहबद्ध क्षेत्र के लिए निर्धारित 4 प्रतिशत लक्ष्य बनाए रखना सम्भव हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत में आर्थिक विकास एवं नीति- मिश्र एवं पूरी
2. आर्थिक समीक्षा 2000 से 2013 तक के समस्त अंक
3. भारतीय कृषि मंत्रालय की वेब साईड।

तालिका क्रमांक - 01
कृषि उत्पादन की दशकीय वृद्धि (प्रति हैक्टर उत्पादकता किलोग्राम में)

फसल	1954-55	1961-62	1971-72	1981-82	1991-92	2001-02	2011-12
चावल	820	1028	1141	1308	1751	2079	2346
गेहुँ	803	890	1380	1691	2394	2762	3026
ज्वार, बाजरा, मक्का	520	519	564	733	778	1131	1574
दाले	500	485	501	483	533	607	649
मुंगफली	766	725	823	972	818	1127	1294
सरसो	425	425	396	541	895	1002	1161
सोयाबीन	-	-	426	741	782	940	1206
Sugarcane	36303	42349	48322	58359	66069	67370	68879
चाय	-	-	1182	1461	1800	1670	1879
काफी	-	-	814	624	805	937	868
काटन	100	103	106	152	216	186	491
जुट	1021	1104	1032	1130	1662	2007	2285
तम्बाकू	737	842	810	1065	1369	1565	-

बैंकिंग एवं वित्त-व्यूह रचना एवं 21 वीं सदी में भारतीय बैंकिग के समक्ष चुनौतियाँ

डॉ. सारिका मिश्रा *

शोध सारांश – भारत में बैंकिंग का इतिहास बहुत पुराना है। परन्तु 21 वीं सदी के इस सौपान पर आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् भारत सरकार द्वारा अर्थ व्यवस्था को नियत्रित करने के लिये बैंकिंग क्षेत्र में कई प्रकार की सुविधायें प्रदान की गई है इसके परिणाम स्वरुप व्यापारिक बैकिंग परिदृश्य में कई परिवर्तन हुए है। इन परिवर्तनों को बैंकिंग सुधारों के नाम से जाना जाता है। निजी क्षेत्र के बैंकों के आने की वजह से बैंकिंग क्षेत्र में कई चुनौतिया आ गई है। वैश्वीकरण के इस युग में विदेशी बैंको के पदार्पण के पश्चात् भारतीय बैंको के समक्ष कई चुनौतिया खडी हुई है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिये भारतीय बैंकिंग उद्योग ने समयानुकुल रणनितियॉ अपनाई है। मैं अपने इस शोध पत्र के माध्यम से कुछ सुझाव प्रस्तुत कर रही हूँ।

कुंजी शब्द – भारतीय बैंक, बैंकिंग प्रणाली, बैंकिंग नीति, विनियोग बैंक, भारतीय बैंकिंग सुधार और बैंकिंग चुनौतियॉ।

प्रस्तावना – बैंक एक अति प्राचीन व्यवस्था है। बैंकिंग की जो व्यवस्था वर्तमान में है वैसी पहले नहीं थी। अपनी इस वर्तमान व्यवस्था एवं कार्यप्रणाली में आने से पहले बैंकों ने एक लंबा समय गुजारा है। बैंक किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का दर्पण होते हैं। भारत में अनेक प्रकार के बैंक है जो किसी ना किसी क्षेत्र में विशिष्टता रखते है। एक ओर देशी बैंकर हैं तो वही दूसरी ओर व्यापारिक बैक भी है, इन सब संस्थाओं के ऊपर रिजर्व बैंक है जो देश का केन्द्रीय बैंक है। भारत में बैंकिग कार्य दीर्घ काल से किया जाता रहा है। यद्यपि 1990 के बाद उदारीकरण और वैश्वीकरण के उपरान्त भारतीय बैंकिग प्रणाली एवं कार्यविधियों में व्यापक परिवर्तन हुए है। ये परिवर्तन भारतीय बैंकिग को प्रतिस्पर्धा में बनाये रखने के लिये जरुरी थे। क्योंकि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का विकास उस देश की बैंकिग व्यवस्था पर निर्भर करती है। भारतीय बैंकिग प्रणाली ने आये इन परिवर्तनों से कुछ चुनौतियॉ तो खडी हुई है लेकिन कई चुनौतियों का सामना करने में यह परिवर्तन सहायक सिद्ध हुए है।

बैंक का संक्षिप्त इतिहास – बैंक शब्द इटेलियन भाषा के शब्द Banco से बना है, जो फ्रेच भाषा के Bankes से बदलता हुआ अंग्रेजी भाषा में Bank हो गया। भारत में आधुनिक बैंकिंग का प्रचार अंग्रेजों के आने के साथ ही साथ शुरु हुआ था। परन्तु भारत में वैदिक काल, मनुस्मृति तथा महाकाव्य (रामायण एवं महाभारत) काल में बैंकिग गतिविधियॉ काफी तेज हो चुकी थी। भारत के प्राचीन अर्थशास्त्री चाणक्य ने भी प्राचीन काल में वाणिज्यिक बैंकरों के अस्तित्व को बताया है, जो जमाऐं स्वीकार करने, ऋण देने एवं हुण्डी निर्गत करने का कार्य करते थे। अध्ययन की सुविधा के विचार से भारतीय बैंकिग के प्रारम्भिक इतिहास को चार कालो में बॉटा जा सकता है।

1) प्राचीनकाल से प्रेसिडेन्सी बैंक की स्थापना तक (1806 ई. तक)
2) प्रेसिडेन्सी बैंक की स्थापना अर्थात 1806 से 1860 ई. तक।
3) 1860 ई. से 1913 ई. तक का समय।
4) 1913 ई. से 1969 ई. तक।

प्रथम काल – इस युग में बैंकिग का वास्तविक विकास 17 वीं शताब्दी में ब्रिटिश शासनकाल से प्रारम्भ हुआ, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी बैंकिग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत में Anency Houses की स्थापना की। 1970 ई. में भारत में पहला बैंक The Bank of Hindustan स्थापित किया गया। इस युग में बैंकिग का कार्य प्राय: महाजनों और साहूकारों द्वारा सम्पन्न किया जाता था।

द्वितीय काल – इस युग का प्रारम्भ 1806 ई. से होता है। 1806 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी के आज्ञापत्र के अनुसार बैंक ऑफ कलकत्ता की स्थापना हुई जिसे बैंक ऑफ बंगाल के नाम से जाना जाता था। तत्पश्चात् 1840 ई. में बैंक ऑफ बम्बई तथा 1843 में बैंक ऑफ मद्रास की स्थापना हुई, भारतीयों के प्रयास से 1849 में पंजाब नेशनल बैंक की स्थापना की गई। इन बैंकों को नोट निर्गमित करने का अधिकार प्राप्त था।

तृतीय काल – इस युग में सर्वप्रथम 1865 में इलाहाबाद बैंक की स्थापना की गई। इस युग में भारत का पहला भारतीय बैंक अवध कॉमर्शियल बैंक 1881 में स्थापित किया गया। 1901 में पीपुल्स बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। 1906 से 1913 के बीच भारत में 18 बैंक स्थापित किये गये थे। जिसमें कुछ बैंक बन्द हो चुके हैं लेकिन वर्तमान में कार्यरत बहुत से महत्वपूर्ण और प्रमुख बैंक इसी युग की देन है जैसे बैंक ऑफ इंडिया (1906), बैंक ऑफ बड़ौदा (1909), इण्डियन बैंक (1907), पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक (1908), बैंक ऑफ मैसूर (1913) ये सभी बैंक रिजर्व बैंक के सदस्य है।

चतुर्थ काल – इस युग में 1913-17 के बीच बैंक संकट के परिणामस्वरुप जनता का बैंकों पर विश्वास कम होने लगा था। इसी युग में भारत में बैंकिग विकास के अन्तर्गत प्रेसीडेन्सी बैंको की स्थापना की गई। इसके अन्तर्गत बैंक ऑफ बम्बई, बैंक ऑफ मद्रास तथा बैंक ऑफ कलकत्ता की स्थापना हुई। इन बैंकों का भारतीय बैंकिग के विकास में विशेष योगदान रहा है। वर्ष 1921 में इन तीनों बैंकों को मिलाकर इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। 1930 में भारत सरकार द्वारा गठित केन्द्रीय बैंकिग जॉच समिति ने देश में केन्द्रीय बैंक की स्थापना तथा एक वाणिज्यिक बैंकिग कम्पनी एक्ट बनाए जाने की सिफारिश की। तत्पश्चात् केन्द्रीय बैंक के रुप में वर्ष 1935 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। स्वतन्त्रता पश्चात् बैंकों के कार्य, संगठन तथा नीतियों से सम्बन्धित, महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गये इसी क्रम में फरवरी 1949 में बैंकिग कम्पनी अधिनियम 1949 बनाया गया। 1962 में इसका नाम बदलकर बैंकिग नियमन अधिनियम रख दिया गया। देश में बैंकिग व्यवसाय पर उचित नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से 1955 में सर्वप्रथम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गई। 19 जुलाई 1969 को भारत के 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। निजी क्षेत्र में कार्य कर रहे 6 अन्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण 15 अप्रैल 1980 को कर दिया गया। इस प्रकार राष्ट्रीयकृत बैंकों की संख्या 20 हो गई।

बैंकिंग प्रणाली एवं बैंकिंग नीति – बैंकिग प्रणाली के अन्तर्गत बैंक ढॉचे के सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है बैंकिग प्रणाली में प्रमुख कार्य बैंक के रुप में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का श्रेष्ठ स्थान है तथा इसके अधिनस्थ बैंक जैसे समस्त राष्ट्रीयकृत बैंक जो अनुसूचित एवं गैर अनुसूचित बैंक को भी सम्मिलित किया जाता है। प्रमुखत: रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, भारतीय औद्योगिक बैंक, भारतीय निर्यात-

*अतिथि विद्वान, अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

आयात बैंक, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, आवास बैंक, व्यावसायिक बैंकों को बैंकिग प्रणाली के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया उक्त समस्त बैंकों को अपने स्वरुप के अनुसार अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन वित्त की पूर्तिकर आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है।

सामाजिक नियन्त्रण योजना के अन्दर बैंकों से सम्बन्धित सभी कानूनों में जहॉ भी जमाकर्त्ताओं के हित शब्द थे उसके स्थान पर बैंकिग नीति के हित में (In the Interert of banking policy) लिख दिये गये बैंकिग नीति में पॉच बातें शामिल की गयी–

1) जमाकर्त्ताओं के हित सुरक्षित चाहिए।
2) देश में मौद्रिक स्थायित्व बना रहना चाहिए।
3) साधनों का वितरण प्राथमिक क्षेत्रों में यथोचित होना चाहिए।
4) आर्थिक विकास को बल मिलना चाहिए।
5) साधनों का श्रेष्ठ उपयोग होना चाहिए।

भारतीय बैंकिंग की चुनौतियॉ – भारतवर्ष में अभी तक बैंकिग प्रणाली का समुचित विकास नहीं हो पाया है। इसलिए हमारी बैंकिग प्रणाली बहुत ही पिछड़ी हुई है। भारतीय बैंकिग प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषता और दोष इसकी नितान्त अपर्याप्ता है। भारत जैसे विशाल और अधिक जनसंख्या वाले देश के लिए बैंक तथा वित्तीय संस्थाएँ बहुत कम उपलब्ध है। अगर तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो संयुक्त राज्य अमेरिका में सात हजार जनसंख्या पर तथा ग्रेट ब्रिटेन में केवल चार हजार जनसंख्या पर एक बैंक ऑफिस आप पायेंगे, जबकि हमारे यहॉ 26 हजार जनसंख्या के लिए एक बैंक है। भारत में बैंकों का वितरण बड़ा ही विषम हैं, ज्यादातर बैंक देश के कुछ ही नगरों में स्थित है। छोटे–छोटे कस्बे और सम्पूर्ण देहाती क्षेत्र में इनका बहुत अभाव है भारत में अनुसूचित बैंकों के जितने भी कार्यालय हैं उनके 50 प्रतिशत कार्यालय सिर्फ ऐसे नगरों में स्थित है जहॉ की आबादी 50,000 से अधिक है। चूँकि भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिए गाँवों में बैंकों का खुलना अति आवश्यक है। आज सरकार ग्रामीण बैंकों के जरिये गरीब किसानों को मदद देने के लिए कम आबादी वाली जगहों में भी बैंकों को खोल रही है।

जो भी बैंक भारत में हैं उनमें से ज्यादातर व्यापारिक बैंक ही पाये जाते हैं अभी तक थोड़े ही सरकारी बैंकों का विकास हो सका है। जबकि कृषि बैंक, औद्योगिक बैंक, विनियोग बैंक (Investment Bank), विनियोग प्रन्यास (Investment Trust), इकाई प्रन्यास (Unit Trust), निर्गम गृहों (Issue Houses), वगैरह का भी साथ–ही–साथ विकास होने से अच्छा होगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना 1948 में हुई, उसके पहले इस तरह की संस्थाओं का अभाव था। यहाँ व्यापारिक बैंकों के द्वारा जितने भी कर्ज दिये जाते हैं उनका सिर्फ दो प्रतिशत कर्ज ही कृषि–कार्य के लिए दिए जाते हैं जो सम्पूर्ण कृषि–वित्त का सिर्फ 9%। इस प्रकार भारत में कुछ ही प्रकार के बैंक और वित्तीय संस्थाएँ पायी जाती हैं, उनमें विविधता नहीं है।

भारत में संगठित मुद्रा बाजार का अभी अभाव है। यहाँ विनिमय–पत्रों का प्रयोग बहुत ही सीमित रुप में प्रचलित है। इसलिए विनिमय–पत्र बाजार का विकास ज्यादा नहीं हो पाता है। बिल बाजार के विकास के अभाव में भारत में बैंक द्वारा साख का निर्माण (Creation of Credit) ज्यादातर नगद साख आधार (Cash Credit Basis) पर ही होता है। फिर बिल बाजार के विकास के अभाव में भारतीय बैंकिग प्रणाली में लोच (Elasticity) भी बहुत कम पाये जाते हैं। क्योंकि यहाँ पर बिलों का पर्याप्त प्रचलन नहीं होने से भारतीय बैंक साख में आवश्यकतानुसार कमी–बेशी नहीं कर पाते हैं।

भारतीय मुद्रा बाजार के बहुत से अंग है और वे असंगठित हैं इसलिए रिजर्व बैंक की कार्य–सीमा सीमित ही रह जाती है और उसका नियन्त्रण प्रभावी (Effective) नहीं हो पाता है। हमारे देश में एक बैंक का प्रबन्ध दूसरे बैंक के प्रबन्ध से काफी भिन्न होता है इसलिए लोगों को प्रत्येक बैंक के साथ व्यवहार करने में काफी कठिनाई होती है। भारतीय बैंको में सहयोग का बहुत अभाव है। बहुत से बैंक अपनी अपनी शाखाएँ उन स्थानों में भी खोल देते हैं जहाँ पर पहले से बहुत–सी शाखाएँ दूसरे बैंकों का काम करती रहती हैं। इससे बैंकों में आपसी प्रतियोगिता बढ़ती है और बैंक को नुकसान उठाना पड़ता है।

बहुत से भारतीय बैंक अचल सम्पत्ति की जमानतपर भी ग्राहकों को कर्ज देते हैं। कुछ बैंक तो अपर्याप्त जमानत पर भी कर्ज देने का काम करते हैं। इस तरह भारतीय बैंक बैंकिग सिद्धान्तों का पूर्णत: पालन नहीं करते हैं। लोगों को आकर्षित करने के लिए भारतीय बैंक झूठे आँकड़ों का भी प्रकाशन करते हैं। इससे जनता बैंकों के बाहरी दिखावा से प्रभावित होकर अपने धन का विनियोजन ऐसे बैंकों में कर देती है। बैंकिग से सम्बन्धित कार्य करने के अलावा भारतीय बैंक सट्टा आदि का भी काम करते हैं। बैंकों का यह काम बिल्कुल ही अनुचित कहा जा सकता है क्योंकि इस तरह के कार्य से हानि होने पर इसका प्रभाव जमाकर्त्ताओं पर पड़ता है।

सुझाव– बैंक कर्मचारियों के उचित प्रशिक्षण तथा उनकी नियुक्तियों में सावधानी एवं सतर्कता बरतनी चाहिए तथा बैंक के कार्य में निपुण, उसमें रुचि लेने वाले एवं अनुभवी व्यक्तियों को भी भाग लेने देना चाहिए। बैंकों को हमेशा अपने धन के अधिक मार्ग को सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग करना चाहिए। जहाँ तक हो सके संचालकों के स्वार्थ वाली कम्पनियों में भाग लेना चाहिए।

बैंकों को हमेशा कर्ज देते समय कर्ज लेनेवाले की आर्थिक स्थिति की भली–भाँति जाँच कर लेनी चाहिए। बैंक कभी भी अचल सम्पत्ति तथा अपर्याप्त जमानत पर कर्ज नहीं दे तथा कर्ज देते समय जोखिम का विभिन्न व्यवसायों और स्थानों में उचित बँटवारा कर लेना चाहिए। बैंक को चाहिए कि अंशधारियों के बीच लाभ–उठाने के पहले पर्याप्त सुरक्षित कोष तथा सम्पत्ति की घिसाई के लिए रुपए का उचित प्रबन्ध कर ले तब फिर लाभांश का वितरण करें। बैंकों को इस तरह की कोई भी नई शाखा नहीं खोलनी चाहिए जिससे आपस में प्रतियोगिता उत्पन्न हो जाय। शाखा वही खोली जाय जहाँ लाभ की उम्मीद हो।

आर्थिक उदारीकरण व वैश्वीकरण के युग में निजी बैंकों के साथ ही विदेशी बैंको के पदार्पण से भारतीय बैंकों के समक्ष कुछ और भी मुद्दे है जो भविष्य की चुनौतियॉ हो सकती है। जैसे ग्राहक की वित्तिय स्थिति का सही आकलन, ग्रामीण ग्राहक जानकारी सेवा का अभाव, पारदर्शिता, निजी एवं विदेशी बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा, अनुत्पादक सम्पत्तियों को न्यूनतम करना, परिचालन लागत में कमी व लाभ में वृद्धि करना, बैंकिग ईकाइयों का संविलयन, ग्लोबल बैंकिग आदि। उपरोक्त चुनौतियों का सामना करने के लिए भारतीय बैंकिग उद्योग को अपनी समग्र रणनिति में परिवर्तन करना होगा।

निष्कर्ष – आधुनिक समय में बैंक अर्थव्यवस्था के केन्द्र बिन्दु, संचालक एवं नियन्त्रक के रुप में कार्य करते है और आर्थिक विकास में भारी योगदान देते है इनकी सहायता से ही देश में वित्त–व्यवसाय संचालित होता है तथा समस्त साख–व्यवस्था संगठित होती है। देश चाहे विकसित हो या विकासशील बैंकों की नितान्त आवश्यकता है। आज की व्यापारिक प्रणाली और हमारा आर्थिक जीवन एक सक्रिय और सृदृढ़ बैंकिग व्यवस्था के अभाव में सुचारु रुप से नहीं चल सकता। बैंकों द्वारा ही औद्योगिक समाज में पूँजी निर्माण बड़े पैमाने की उत्पत्ति के साथ–साथ व्यापार तथा वाणिज्य का भी विस्तार होता है। बैंक ही व्यापार तथा वाणिज्य और व्यवसाय की धमनी केन्द्र है यह एक कटु सत्य है कि आज बैंकिग व्यवसाय कई चुनौतियॉ का सामना कर रहा है परन्तु इन चुनौतियों का समाधानकर बैंकिग व्यवसाय सफलता के नये आयाम प्राप्त कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रो. बी. पी. अग्रवाल साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
2. रमेश बुक डिपो, जयपुर सन् 2010
3. बैंक साक्षात्कार किरण प्रकाशन नई दिल्ली
4. डॉ. लोकेश वर्मा अरिहन्त पब्लिकेशन्स लिमिटेड।
5. पत्रिका दैनिक– 10/3/14
6. नवीन शोध संसार (शोध पत्रिका)

मानव संसाधन प्रबंधन का भविष्य और उभरती चुनौतियां वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ. दिनेश कुमार चौधरी *

शोध सारांश – इस बात पर बार–बार महत्व दिया गया है कि, मानव संसाधन प्रबंधन को संगठन के बाह्य और आंतरिक वातावरण में हो रहे परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बनना होगा। बाह्य वातावरण प्रौद्योगिकी, नये बाजार, सामाजिक–राजनैतिक मांगों अथवा कर्मचारियों के संभावित समूह के बदलते नैतिक मूल्यों और अपेक्षाओं के संदर्भ में परिवर्तन करने की शुरूआत करेगा। संगठन के पास दो रास्ते हैं : उस समय तक प्रतीक्षा करना जब तक कि यह बहुत महत्वपूर्ण न हो जाएं और तब दबाव में आकर परिवर्तन करना अथवा उनमें से कुछेक के बारे में पूर्वानुमान लगाकर आवश्यक संशोधन करना। यदि संशोधन कार्यान्वित न भी किये जाएं तो भी उनके आधार पर योजनाएं तैयार कर रखी जा सकती हैं।

शब्द कुंजी – मानव, संसाधन, प्रबंध, कौशल, योग्यता, सृजनात्मकता, प्रौद्योगिकी, नये बाजार, भारतीय महिलाएँ।

मानव संसाधन प्रबंधन की अवधारणा – मानव संसाधन प्रबंध प्राय: तीन शब्दों के मेल से बना है, मानवसंसाधनप्रबंधन। मानव संसाधन एक बहुआयामी संसाधन है जो प्रत्येक कार्यस्थल पर संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपने संपूर्ण ज्ञान, कौशल, योग्यता, सृजनात्मकता, दृष्टिकोण व व्यवहार के साथ उपस्थित रहता है।

इस बात पर बार–बार महत्व दिया गया है कि, मानव संसाधन प्रबंधन को संगठन के बाह्य और आंतरिक वातावरण में हो रहे परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बनना रहेगा। बाह्य वातावरण प्रौद्योगिकी, नये बाजार, सामाजिक–राजनैतिक मांगों अथवा कर्मचारियों के संभावित समूह के बदलते नैतिक मूल्यों और अपेक्षाओं के संदर्भ में परिवर्तन करने की शुरूआत करेगा।

इन परिवर्तनों के लिये आंतरिक स्तर पर मांग की जा सकती है – यह मांग मौजूदा नीतियों और पद्धतियों व्यावसायिक विपणन अथवा मानव संसाधन प्रबंधन के कारण सामने आनेवाले मामलों के परिणामस्वरूप हो सकती है। यदि व्यावसायिक अथवा विपणन कार्यनीतियों में परिवर्तन होता है तो व्यक्तियों की मौजूदा क्षमताओं को फिर से पैना बनाना होगा अथवा अन्य नये व्यक्तियों को लाना होगा। कभी–कभी कार्यनीतिक परिवर्तनों में सांस्कृतिक स्तर पर हस्तक्षेप होता है। विशेष रूप से मानव संसाधन प्रबंधन के संदर्भ में ऐसे तीन स्तर हैं जिनमें यहां मौजूद प्रक्रियाओ के सक्रिय स्वरूप के कारण परिवर्तन हो सकते हैं। ये तीन स्तर हैं i) व्यक्ति, ii) कर्मचारियों का समूहउप समूह और iii) औद्योगिक संबंधों की प्रक्रिया जैसे–जैसे संगठन विकसित होता है नये – नये कर्मचारी अपने साथ भिन्न–भिन्न रवैये अथवा अभिमुखता लाते है। समाज में जो जैनेरेशन गैप की धारणा है वह संगठन में भी होती है। संगठनों को इस पर ध्यान देना होगा और अपनी मानस संसाधन नीतियों और व्यवहार की समीक्षा करनी होगी। दूसरे विश्व भर में यह देखा गया है कि एक समूह के रुप में कर्मचारियों का गठन समय–समय पर बदलता जा रहा है जो विभिन्न समय पर अलग–अलग मुद्दे सामने लाता है। उदाहरण के लिए संगठन के कर्मचारियों की आयु संरचना किसी निश्चित समय पर विशिष्ट जरूरतें पैदा कर सकती है। यदि किसी संगठन का विस्तार एक विशिष्ट अवधि के दौरान हुआ है तो उसने एक समान आयु वर्ग के कर्मचारियों को बड़े पैमाने पर भर्ती किया होगा और अब उनमें से अधिकांश सेवा निवृत्त होने वाले होंगे। इस परिप्रेक्ष्य में नियमित मानवशक्ति आयोजना के साथ–साथ संगठन को क्रमिक आयोजना पर भी ध्यान देना होगा। वैश्विक स्तर पर एक और प्रवृत्ति देखी गयी है वह श्रमशक्ति की विषमता की ओर ध्यान आकर्षित करती है। कई कारणों से, राष्ट्र अथवा विश्व के अनुरूप विशिष्ट रूप से, किसभी संगठन में आज कर्मचारियों के भिन्न – भिन्न प्रकार के समूह मौजूद हैं। इनमें से कुछ सामाजिक–राजनैतिक कारणों से आये होंगे और कुछ संगठन के सरोकारों के कारण आये होंगे। इन विविध समूहों से परम्परागत तरह का एक समान फार्मूला अपना कर प्रभावी रूप से काम नहीं लिया जा सकता। उन्हें प्रभावी रूप से संचालित करने के लिए विभिन्न कार्यनीतियों की जरूरत होगी। अंत में, यह जरूरी है औद्योगिक संबंधों के परम्परागत तरीकों की समीक्षा की जाए। सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया का प्रभावी होना निर्धारित किये गये मुद्दों पर और दोनों समूहों की स्थिति एक दूसरे की तुलना में कितनी अधिक शक्तिशाली है इस बात पर निर्भर करता है और संभव है दोनोमें परिवर्तन हो गये हों। निरंतर बदल रहे परिदृश्य में मानव संसाधन प्रबंधन के पदाधिकारी कार्यनीतिक साझेदार हैं और वे मानव संसाधन प्रणालियों में जो भी परिवर्तन करते हैं उनका अन्य नीतियों के लिए भी महत्वपूर्ण होना जरूरी है जिनका उद्देश्य संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता को बढ़ाना है।

शोध अध्ययन व मानव संसाधन प्रबंधन के उद्देश्य –

- प्रभावशाली एवं उपर्युक्त मानव संसाधन नीतियों को विकसित करना
- संगठन केलिये सही व्यक्ति की भर्ती कर सही समय पर उसका उपयोग करना
- संगठन में मानव संपदा का भरपूर एवं प्रभावशाली उपयोग करना
- व्यक्तियों के विकास के पूर्ण अवसर सुनिश्चित करना
- संगठन के सभी व्यक्तियों के हितों का ध्यान रखना
- संगठन के सभी कार्यो को पूर्ण करते हुये संगठनात्मक ढॉचे को सुदृढ़ करना
- संगठन के सभी कर्मचारियों को प्रेरणा देना एवं सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं का संचालन करना।

शोध अध्ययन की विधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में औद्योगिक घरानों, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों, छोटे एवं बड़े उद्योगों, कृषि विकास बैंको के आकड़ों को लिया किया गया है। इन आकड़ों में वार्षिक प्रतिवेदन विभिन्न छह मासिक

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

आकड़ें पत्र एवं पत्रिकाओं के आकड़े शामिल किये गये है। इन आकड़ों के माध्यम से औसत, अनुपात एवं प्रतिशत जैसी गणितीय विधियों का प्रयोग कर अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सकेंगे।

उभरती हुई चुनौतियां और मानव संसाधन प्रबंधन का भविष्य – इतिहास इस बात का गवाह है कि, मानव संसाधन नीतियों अथवा पद्धतियों में परिवर्तन बाह्य अथवा आंतरिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप हुए है। वस्तुत: लोक (व्यक्ति) प्रबंधन के विकास की प्रक्रिया भी अपने आप ऐसे ही दबावों का परिणाम है। शैक्षणिक विधाओं जैसे मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, समाज–विज्ञान, राजनीतिशास्त्र और अन्य द्वारा विकसित ज्ञान ने मानव व्यवहार के ऐसे कई पहलुओं की जानकारी दी है जो संगठन के लिए महत्वपूर्ण हैं और जिन्हें लोक प्रबंधन कार्य में अपनाया गया है। मुख्यत: समाज के बृहत परिप्रेक्ष्य में कई विचार है जिनकी यदि सही तरह से जांच की जाए तो संगठन में मानव व्यवहार पर उनका प्रभाव देखा जा सकता है। हां, यह भी हो सकता है कि कोई संगठन उन्हें असंबद्ध मानकर उन पर विचार न करे अथवा वे उसे असंगत मानकर छोड़ देने से पहले उसके महत्व की प्रणालीबद्ध तरीके और गंभीरता से जांच करें।

इस बात के प्रति अब जागरूकता बढ़ती जा रही है कि मानव संसाधन के मामलों को व्यावसायिक कार्यनीतियों का हिस्सा बनाना ही चाहिए। जब कोई संगठन भावी व्यावसायिक स्थिति की तुलना में अपनी स्थिति की समीक्षा करता है तब उसकी मानव संसाधन रूपरेखा इस समीक्षा की महत्वपूर्ण घटक होती है। संगठनों को इस वास्तविकता को स्वीकार करना ही होगा कि उन्हें भविष्य का सामना अपनी मौजूदा श्रमशक्ति से ही करना है। नयी विशेषज्ञता और प्रोद्योगिकी का समावेश महत्वपूर्ण और अनिवार्य भी लेकिन मौजूदा श्रमशक्ति ही अधिसंख्यक होगी। अत: उन्हें एक साथ जोड़ने के लिए आवश्यक उपाय सोचना महत्वपूर्ण है। इसकी पूर्व आवश्यकता इस बात का पता लगाना है कि ताकत अथवा कमजोरियां क्या हैं, ताकि 'ताकतों' का प्रयोग किया जा सके और 'कमजोरियों' को दूर किया जा सकें। अत: कार्यनीतिक मानव संसाधन प्रबंधन आंदोलन के महत्वपूर्ण कदम हैं।

मौजूदा कर्मचारियों की **सक्षमता सूची बनाना**

भावी कार्यनीति निर्णय

ताकतों और कमजोरियों का पता लगायें
- वैयक्तिक स्तर पर
- समूह स्तर पर
- संगठनात्मक संस्कृति स्तर पर

क्या जरूरी है : निम्न के लिए महत्वपूर्ण सक्षमताओं का पता लगायें
- व्यक्तियों
- अंतर वैयक्तिक समूह अंतर समूह स्तरों पर संगठनात्मक प्रक्रियाएं

कमियों का पता लगाये : वे क्षेत्र जहां हस्तक्षेप जरूरी है
- वैयक्तिक ज्ञान कुशलता रवैया
- अंतर वैयक्तिक संबंध
- समूह
- अंतर समूह संबंध

कमियों को दूर करने के उपाय
1. नयी भर्ती
2. क्षमता का पता लगाकर उपयुक्त कार्यनियोजन
3. मौजूदा को प्रशिक्षण, कार्य की जानकारी तथा कैरियर काउंसलिंग द्वारा सक्षम
4. कर्मचारियों को सभी स्तरों पर संगठन की उपलब्धियों और चुनौतियों की जानकारी देने के लिए प्रणालियां विकसित करना

मानव संसाधन प्रबन्ध का बाह्य वातावरण – वैश्वीकरण के कारण विश्व एक बड़ा बाजार स्थल बन गया है। इससे इस बाजार में ग्राहक अनेक उत्पादों और उत्पादकों में से अपनी पसंद का उत्पाद और उत्पादक चुन सकता है। न केवल उसके पास अपनी पसंद के अनुसार चुनने की सुविधा है बल्कि वह अपनी इच्छानुसार मांग भी कर सकता है। अपने प्रतिस्पर्धियों से आगे बढ़ने के लिए कंपनियां ऐसी मांगों को पूरा भी करती है जिससे ग्राहक की स्थिति और मजबूत हो जाती है। यह उत्पाद अथवा सेवा की गुणवत्ता की संशोधित परिभाषा का मूल आधार है। इससे संगठन की प्रक्रियाओं में ग्राहक की भूमिका प्रधान हो गयी है। ग्राहकों की जरूरतों का अध्ययन करने के लिए उन पर प्रतिक्रिया कीजिए। फीडबैक पर प्रतिकिरना महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं है जिन्हें आधार बनाकर अन्य प्रक्रियाएं तैयार अथवा संशोधित की जाती है। इसने उस परम्परागत परिदृश्य को उलटा कर दिया है जिसमें संगठन पहले सब कुल आंतरिक रूप से तैयार करते थे और में उसे बाजार में लाते थे। इसके विपरीत आज की प्रमुख गतिविधि यह है कि पहले ग्राहक को पकड़ा जाए फिर ग्राहक की जरूरत के अनुसार आंतरिक प्रक्रियाओं को आपस में मिला लिया जाए। अब झुकाव बाह्य मानदंड की ओर है कि पहले के समान आंतरिक प्रक्रियाओं की ओर। संक्षेप में ग्राहक की अपेक्षाओं और फीडबैक के अनुसार गुणवत्ता तय की जाती है और इन गुणवत्ता संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन, नियंत्रण, निरीक्षण, लागत निकालने और सुपुर्दगी की आंतरिक प्रक्रियाएं तैयार की जाती है।

भारतीय मानव संसाधन प्रबन्ध का आंतरिक वातावरण – आंतरिक रूप से मौजूद कारकों के बीच नये कर्मचारियों के नैतिक मूल्य और अभिमुखीकरण, श्रमशक्ति का जनसांख्यिकी स्वरूप और यूनियन तथा एसोसिएशन की स्थिति कुछ ऐसे वर्तमान मुद्दे हैं जिन पर ध्यान देने की जरूरत है।

नये नैतिक मूल्य और अभिमुखीकरण – परम्परागत रूप से संगठन श्रेणीबद्ध होते थे और कर्मचारी उस पदानुक्रम वाले ढांचे को स्वीकार करते थे। साथ ही, वे उस नैतिक मूल्य प्रणाली को भी मानते थे जो इसके साथ प्रचलित थी। वे हैसियत के साथ जुड़े अधिकार का सम्मान करते थे और उसे स्वीकार करते थे। बिना कोई प्रश्न किये आदेशों का अनुपालन करना उपयुक्त व्यवहार माना जाता था। एक रूढ़ मानसिक ढाँचा इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार था कि जो व्यक्ति उस पद पर है उसके प ास उसके अधीनस्थ सभी व्यक्तियों के प्रश्नों के उत्तर है – वह परम बुद्धिमान है और इसलिए उस पर निर्भर करना ही चाहिए उसके पास सभी समस्याओं को सुलझाने के उपाय हैं और प्रत्येक को उसके आदेशों का पालन करना चाहिए

इसके विपरीत युवा पीढ़ी एक अलग वातावरण में विकसित हो रही है जहां व्यक्ति को बुजुर्गो अथवा वरिष्ठ पद पर कार्यरत व्यक्तियों से प्रश्न करने की केवल अनुमति ही नहीं होती बल्कि उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसे लोकतंत्र का निर्विवाद नैतिक मूल्य माना जाता है। अब

समस्याओं को सुलझाने का एक सामान्य दृष्टिकोण विकसित हो गया है। व्यक्ति की क्षमताओं को महत्व देना आज के सामाजिक परिदृश्य का एक भाग बन गया है। अत: स्पष्टीकरणजानकारी मांगना अथवा वैकल्पिक उपाय ढूंढना एक सकारात्मक पहलू बन गया है जो यह बताता है कि व्यक्ति अपने विकास में रूचि ले रहा है और इस मनोवृत्ति को प्रोत्साहित किया जाता है। एक-दूसरे के प्रति आदर भाव रखना, तार्किक दृष्टिकोण, समानता, सहभागिता वे बुनियादी नैतिक मूल्य है जो नये कर्मचारी अपने साथ लेकर आयेंगे।

भारतीय महिला कर्मचारी – एक ऐसा समूह जिसके लिए अलग कार्यनीति की जरूरत है। ऐतिहासिक रूप से महिलाएं समाज के आर्थिक कार्यो में भाग लेती रही हैं पर अधिकांश समय उन्हें कर्मचारी के रूप में देखा गया। इसका एक कारण यह भी था कि वे अधिकांशत: असंगठित क्षेत्र में कार्यरत थी (और आज भी कर रही है) बहरहाल, पिछले दो दशकों में वे संगठन में औपचारिक रूप से आने लगी है। अधिकांश सामाजिक विज्ञान शाखाओं द्वारा दिये गये सहयोग के कारण अब उनका प्रवेश और अस्तित्व एक स्थायी विशेषता बन गया है। उन्हें एक साथ लाने में जो मुद्दे शामिल हैं वे विविधता प्रबंध का उदाहरण है। शारीरिक रूप (मांसपेशीय बल) में कमजोर होने की बाधा से महिलाओं की स्थिति प्रागैतिहासिक, कृषि और औद्योगिक चरणों में गौण रही है। तथापि भविष्यवेत्ता सूचना युग में महिलाओं का उज्जवल भविष्य देख रहे है जहां दिमागी ताकत सफलता की कुंजी होगी।

इस परिदृश्य में महिलाओं से अपेक्षा की जा रही है कि वे अपने पिछली कमी को पूरा कर आगे निकल जायेंगी। फिर भी पिछले दो दशकों में हुए अनुसंधानों से यह पता चलता है कि यद्यपि महिलाएं उसी योग्यता आधारित भर्ती प्रणाली द्वारा संगठनों में आयी है जिनके द्वारा पुरूष का चयन किया गया, लेकिन संगठन में उनकी प्रगति अपने पुरूष सहयोगियों की तुलना में कम रही है। सामान्यत: वे संगठन के उच्च स्तरों पर नहीं देखी जातीं।

उपसंहार – उभरते हुए वातावरण के एक और महत्वपूर्ण पहलू पर ध्यान देना जरूरी है। यह है ट्रेड यूनियनों की बदलती हुई स्थिति। यह दिलचस्प बात है कि कई ट्रेड यूनियन प्रबंधन की अपेक्षा अपने आप को तेजी से पुनर्अभिमुख करने में जुटी हुई है। नयी पीढ़ी के कर्मचारियों के दबाव और साथ ही नेतृत्व के दृष्टिकोण में आये बदलाव के कारण देश की कई ट्रेड यूनियन ऐसे वैकल्पिक तरीकों का पता लगा रही हैं जिनसे यूनियनों का संचालन किया जा सके। यूनियन आज सहयोगी दृष्टिकोण के लिए तैयार हैं और अपनी भूमिका को एक नया रूप देना चाहती है। राष्ट्रीय बैंक पुणे में आयोजित एक अनोखे सम्मेलन में उच्च प्रबंधन, लिपिकीय स्टाफ यूनियन और अधिकारी संघ के 56 प्रतिनिधियों ने कई ऐसे क्षेत्रों का निर्धारण किया और उन पर बातचीत की जिन पर सामूहिक रूप से प्रयास कर बैंक संगठनों को प्रभावी बनाया जा सकता है। औद्योगिक संबंध के अपने पारम्परिक मुठभेड़ वाले तरीके के स्थान पर सहयोगी रवैया अपनाने की उनकी तत्परता अब स्पष्ट दिखायी दे रही है। ट्रेड यूनियनों में इस प्रकार के परिवर्तनों से कार्य संस्कृति पर दूरगामी प्रभाव पडेंगे। मानव संसाधन पदाधिकारियों को इस परिवर्तन के सुगम बनाने में पहल करनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मानव संसाधन प्रबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशन, पृष्ठ क्र.-22
2. पारीक यू, बियान्ड मैनेजमेन्ट ऑक्सफोर्ड आईबीएच लिमि. पृष्ठ क्र. 994
3. योजना मासिक पत्रिका, प्रकाशन विभाग अक्टूबर 2002, पृष्ठ क्र.-
4. मानस संसाधन प्रबंध एवं नियोजन, रमेश बुक डिपो जयपुर
5. कुरूक्षेत्र मासिक पत्रिका, फरवरी 2005
6. पालिसी फार वूमन महाराष्ट्र सरकार जून 1995
7. रोजनर जूडी, वेज वूमन लीड एचबीआर, नवम्बर-दिसम्बर 1991

****

नीमच जिले में लिंग अनुपात में वृद्धि - एक शुभ संकेत

डॉ. एल.एन. शर्मा *

शोध सारांश – देश में लिंग भेद के कारण लिंग अनुपात में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई है, अज्ञानता, गरीबी, अशिक्षा, धार्मिक मान्यताओं, सामाजिक परिवेश आदि ने महिलाओं के अस्तित्व पर प्रभाव डाला परन्तु साक्षरता विशेषकर महिला साक्षरता वृद्धि एवं म.प्र. सरकार की बेटी बचाओ योजनाओं ने जिले में लिंग अनुपात में अभूतपूर्व वृद्धि की है 1971 से 2011 तक की पाँच जनगणनाओं में नीमच जिले में 38 लिंगानुपात की वृद्धि हुई है। जबकि म.प्र. में यह वृद्धि 10 व देश में केवल 08 लिंगानुपात की वृद्धि हुई है।अत: जिले के लिंगानुपात की यह वृद्धि प्रदेश की तुलना में 28 व देश की तुलना में 30 अधिक है इसी प्रकार नीमच जिले की तीनो तहसीलो में विगत पाँच जनगणनाओं में नीमच तहसील में 46 जावद तहसील में 28 व मनासा तहसील में 41 लिंगानुपात में वृद्धि हुई है। जो म.प्र. की तुलना में नीमच तहसील में 36 जावद तहसील में 18 व मनासा तहसील में 31 लिंगानुपात की अधिक वृद्धि है। तथा देश की तुलना में नीमच तहसील में 38 जावद तहसील में 20 व मनासा तहसील में 33 लिंगानुपात की अधिक वृद्धि है यह वृद्धि एक सुखद आश्चर्य एवं शुभ संकेत का् प्रतीक है। बाल संरक्षण एवं महिला सशक्तिकरण के माध्यम से देश में लिंगानुपात में वृद्धि की जा सकती है। म.प्र. में शासन द्वारा बेटी बचाओ एवं बाल एवं महिला विकास व सशक्तिकरण की योजना ने प्रदेश व जिले के लिंगानुपात की वृद्धि में अभूतपूर्व सहयोग किया है मध्यप्रदेश की इन योजनाओं को देश में भी लागू करके लिंगानुपात में वृद्धि की जा सकती हैं।

प्रस्तावना – लिंग भेद भारत की सदियों पुरानी समस्या है आज भी स्त्री जन्म को हेय दृष्टि से देखा जाता है, अज्ञानता, गरीबी धार्मिक मान्यताऐं, सामाजिक परिवेश एवं शिक्षा की कमी के कारण कुछ लोग लड़कियों को पैदा होते ही मार देते है या टायलेट या कचरे के ढेर पर लावारिस छोड़ देते है अथवा विज्ञान के दिए गए आधुनिक आविष्कारों का दुरूपयोग करते हुए जन्म से पूर्व कोख में ही कन्याओ का पता लगाकर भ्रूण हत्या करवा देते है इन सभी विषम परिस्थितियों के बावजूद नीमच जिले में प्रदेश व देश की तुलना में लिंग अनुपात में वृद्धि सुखद आश्चर्य के साथ एक शुभ संकेत भी है। शोध का उद्देश्य– म.प्र. सरकार ने बेटी बचाओ अभियान प्रारम्भ किया है इसका प्रदेश के साथ साथ जिले पर कितना प्रभाव हो रहा है तथा जिले में महिला साक्षरता की वृद्धि लिंग अनुपात पर क्या असर डाल रही है यह ज्ञात करना शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

शोध प्रविधि एवं क्षेत्र – प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया हैं। जनगणना में प्रकाशित आंकड़ें शोध पत्र के अध्ययन का आधार है। वर्ष 1971 से 2011 तक की जनगणनाओं में देश, प्रदेश व जिले के लिंग अनुपात का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है साथ ही नीमच जिले की तीनों तहसीलों - नीमच, जावद, मनासा के लिंग अनुपातों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

शोध व्याख्या – जनांकिकीय अध्ययन का एक महत्वपूर्ण घटक लिंग संरचना है जिसे लिंग अनुपात कहा जाता है। [1]

लिंग अनुपात का आशय किसी भी देश या क्षेत्र की कुल स्त्रियों की जनसंख्या में कुल पुरुषों की जनसंख्या का भाग देकर एक हजार के गुणांक में ज्ञात किया जाता है। [2]

भारत की विभिन्न जनगणनाओं में लिंग अनुपात निम्नांकित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है। [3]

समय विशेष पर कुल स्त्रियों की संख्या

समय विशेष पर कुल पुरुषों की संख्या

लिंगानुपात सामाजिक जीवन की प्रक्रियाओं को कई प्रकार से प्रभावित करता है जनांकिकीय तत्वों में विवाह, जन्म दर एवं मृत्यु दर आदि लिंग अनुपात को प्रभावित करता है। [4]

अजनांकिकीय तत्वों में युद्ध, प्रवास, व्यवसाय आदि लिंग अनुपात पर अपना प्रभाव डालते है। [5]

प्रो. डेविड एम. हीर के अनुसार अज्ञानता, गरीबी, अशिक्षा, बाल विवाह, दहेज, पौष्टिक आहार की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, महिलाओं के प्रति हेय दृष्टि काफी हद तक लिंग अनुपात को प्रभावित करती है। [6]

नीमच जिले का तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकल रहा है कि सन् 1971 की जनगणना में लिंगानुपात में नीमच जिला प्रदेश व देश की तुलना में पिछड़ा था परंतु 1981, 1991, 2001 एवं 2011 की जनगणनाओं में जिले के लिंगानुपात में अभूतपूर्व वृद्धि हुई एवं प्रदेश व देश से काफी आगे निकल गया है जो निम्न तालिकाओं से स्पष्ट हो रहा है।

नीमच जिले के लिंगानुपात का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका क्रं. 01

वर्ष जिला	नीमच	म.प्र.	भारत
1971	921	920	932
1981	941	921	935
1991	944	912	929
2001	950	919	933
2011	959	930	940

स्त्रोत – भारत की जनगणना 1971, 1981, 1991, 2001, 2011

उपरोक्त तालिका के निम्न निष्कर्ष है :-

1. 1971 की जनगणना में नीमच जिले का लिंगानुपात प्रदेश से 01 अधिक एवं देश की तुलना में 11 कम था।
2. 1981 की जनगणना में नीमच जिले के लिंगानुपात में 20 की वृद्धि हुई जो प्रदेश की तुलना में 20 तथा देश की तुलना में लिंगानुपात 06 अधिक हो गया।
3. 1991 की जनगणना में नीमच जिले में लिंगानुपात में विगत जनगणना

*प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोतर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

की तुलना में 03 की वृद्धि हुई जो प्रदेश की तुलना में 32 एवं देश की तुलना में 15 लिंगानुपात अधिक हो गया।

4. 2001 की जनगणना में नीमच जिले में लिंगानुपात में 06 की वृद्धि हुई यह लिंगानुपात प्रदेश की तुलना में 31 तथा देश की तुलना में 17 लिंगानुपात अधिक था।
5. 2011 की जनगणना में नीमच जिले में लिंगानुपात विगत् जनगणना की तुलना में 09 बढ़कर कुल 959 हो गया जो प्रदेश की तुलना में 29 एवं देश की तुलना में 19 लिंगानुपात अधिक है।
6. यदि विगत् पाँच जनगणनाओं का अध्ययन किया जाये तो नीमच जिले में लिंगानुपात में 38 की अभूतपूर्व वृद्धि हुई है जबकि प्रदेश में केवल 10 एवं देश में केवल 08 लिंग अनुपात की ही वृद्धि हुई है। अत: जिले के लिंगानुपात में यह वृद्धि एक शुभ संकेत है।

नीमच जिले की तहसीलों के लिंगानुपात का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका क्रं. 02

वर्ष	नीमच	जावद	मनासा	जिला
1971	896	935	934	921
1981	923	947	952	941
1991	933	947	952	944
2001	940	954	957	950
2011	942	963	975	959

स्त्रोत - भारत की जनगणना 1971, 1981, 1991, 2001, 2011

उपरोक्त तालिका के निम्न निष्कर्ष है -

1. 1971 की जनगणना में नीमच जिले की तुलना में नीमच तहसील का लिंगानुपात 25 कम था जबकि जावद तहसील का 14 व मनासा तहसील का 13 लिंगानुपात अधिक था एवं सर्वाधिक लिंगानुपात जावद तहसील में 935 था जो प्रदेश व देश की तुलना क्रमश: 15 व 03 लिंगानुपात अधिक था।
2. 1981 की जनगणना में नीमच जिले की तुलना में नीमच तहसील का लिंगानुपात 18 कम था जबकि जावद तहसील का 06 व मनासा तहसील का 11 लिंगानुपात अधिक था सर्वाधिक लिंगानुपात मनासा तहसील का 952 था जो प्रदेश व देश की तुलना में क्रमश : 31 व 17 लिंगानुपात अधिक था।
3. 1991 की जनगणना में नीमच जिले की तुलना में नीमच तहसील का लिंगानुपात 09 कम था जबकि जावद तहसील का 03 एवं मनासा तहसील का 08 लिंगानुपात अधिक था सर्वाधिक लिंगानुपात मनासा तहसील में 952 था जो प्रदेश व देश की तुलना में क्रमश: 40 व 23 लिंगानुपात अधिक था।
4. 2001 की जनगणना में नीमच जिले की तुलना में नीमच तहसील का लिंगानुपात 10 कम था जबकि जावद तहसील का 04 व मनासा तहसील का 07 लिंगानुपात अधिक था जिले में सर्वाधिक लिंगानुपात मनासा तहसील में 957 था जो प्रदेश व देश की तुलना में क्रमश : 38 व 24 लिंगानुपात अधिक था।
5. 2011 की जनगणना में नीमच जिले की तुलना में नीमच तहसील का लिंगानुपात 17 कम है जबकि जावद तहसील का 04 व मनासा तहसील का 18 लिंगानुपात अधिक है। जिले में सर्वाधिक लिंगानुपात मनासा तहसील में 975 है जो प्रदेश व देश की तुलना में क्रमश: 45 व 35 लिंगानुपात अधिक है।
6. यदि विगत पाँच जनगणनाओं के लिंगानुपात का तहसीलवार अध्ययन किया जाय तो नीमच जिले में 1971 से 2011 तक कुल 38 लिंगानुपात की वृद्धि हुई है जबकि नीमच तहसील में 46, जावद तहसील में 28, मनासा तहसील में 41 लिंगानुपात की वृद्धि हुई है। जिले की तुलना में जावद तहसील के लिंगानुपात में 10 की कम वृद्धि हुई है। जबकि नीमच तहसील में 08 एवं मनासा तहसील में 03 लिंगानुपात की अधिक वृद्धि हुई है। इसी प्रकार प्रदेश के तुलना में नीमच तहसील में 36 जावद तहसील में 18 व मनासा तहसील में 31 लिंगानुपात की अधिक वृद्धि हुई है व देश की तुलना में नीमच तहसील में 38, जावद तहसील में 20 व मनासा तहसील में 33 लिंगानुपात की अधिक वृद्धि हुई है। जिले की तहसीलों में लिंगानुपातों की अभूतपूर्व वृद्धि को एक शुभ संकेत माना जा रहा है।

नीमच जिले में लिंगानुपात में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण -

1. 1971 की जनगणना में नीमच जिले का लिंगानुपात देश की तुलना में 11 कम था। अत: यह माना जा रहा है कि उक्त स्थिति के लिये जिले में अज्ञानता, गरीबी, अशिक्षा, बाल विवाह, दहेज, पौष्टिक आहार की कमी, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी व महिलाओं के प्रति देय दृष्टिकोण आदि कारण जिम्मेदार रहे है।
2. 1981, 1991, 2001 एवं 2011 की जनगणनाओं में नीमच जिले का लिंगानुपात प्रदेश व देश की तुलना में सर्वाधिक रहा है जिसका एक कारण महिला साक्षरता में वृद्धि है। 1971 की जनगणना में नीमच जिले में महिला साक्षरता का केवल 14.3 प्रतिशत था जो 2011 में बढ़कर 57.3 प्रतिशत हो गया।[7] अत: स्पष्ट है कि विगत पाँच जनगणनाओं में जिले में महिला साक्षरता में 43 प्रतिशत की वृद्धि ने लिंगानुपात बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।
3. नीमच जिले में विगत् पांच जनगणनाओं के दौरान पूर्व स्थिति की तुलना में स्वास्थ्य सुविधाओं में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।[8] इस कारण जन्म के समय जन्म लेने वाली कन्याओं व उनकी माताओं की मृत्यु दर में काफी हद तक कमी आई है एवं म.प्र. सरकार की जननी सुरक्षा योजना ने इस क्षेत्र में काफी योगदान दिया है।
4. 2001 की तुलना में 2011 की जनगणना में देश में लिंगानुपात में केवल 07 की वृद्धि हुई है जबकि नीमच जिले में 09 व म.प्र. में 11 लिंगानुपात की अभूतपूर्व वृद्धि हुई हैं। इसका प्रमुख कारण म.प्र. सरकार की बेटी बचाओ योजना ने चमत्कार किया है, गांव की बेटी, प्रतिभा किरण, लाड़ली लक्ष्मी योजना, शासकीय सामूहिक विवाह योजना, स्कूलों व कॉलेजों में कन्याओं के शिक्षण शुल्क माफी योजना आदि में प्रदेश व जिले के लिंगानुपात बढ़ाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

देश में लिंगानुपात बढ़ाने हेतु सुझाव -

1. प्रदेश व देश में लिंगानुपात में वृद्धि करने हेतु गरीब परिवारों (बीपीएल) की महिलाओं को गर्भवती होने के पश्चात् सरकार उन्हें विशेष संरक्षण प्रदान करे यदि जन्म पर कन्या हो तो उसका सम्पूर्ण लालन-पालन, शिक्षा, रोजगार, विवाह आदि का समस्त व्यय शासन वहन करें। इस कार्य हेतु एन.जी.ओ. से भी सहयोग प्राप्त करे एवं बालिका सरंक्षण हेतु जन सहयोग का सरकार आव्हान करें।
2. महिला सशक्तिकरण के कार्य में तेजी लायी जाये। शासकीय एवं निजी क्षेत्रों में नौकरियों हेतु न्यूनतम 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।

3. म.प्र. की भांति स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचन में 50 प्रतिशत महिला आरक्षण को सम्पूर्ण देश में लागू किया जाना चाहिये तथा विधानसभाओं, विधान परिषदों, लोकसभा व राज्यसभा में भी न्यूनतम 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।
4. जिन परिवारों में केवल कन्याओं के जन्म होने पर उस परिवार की कन्याओं को स्कूलों एवं महाविद्यालयों में प्रवेश, नौकरियों एवं प्रमोशन में तथा राजनैतिक क्षेत्र में विभिन्न पदों पर सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिये।
5. परित्यागता व विधवा महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने हेतु शासन द्वारा विशेष योजना बनायी जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Ram Kumar , R. : Technical Demography, 1986, P.15
2. Kumar . V.: Demography, 1993, P.41
3. गुप्ता प्रकाशचन्द्र : नगरीय मालवा का जनांकिकीय अध्ययन, अप्रकाशित पीएच.डी. शोध प्रबंध विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन 1992 पृष्ठ 212
4. पेत्रोव विक्तर : भारत का जनसंख्या मूलक अध्ययन 1987 पृष्ठ 91
5. Shrivastava, S.C. : Dynamic of Demographic studies, 1990, P.139
6. Kumar . V.: Demography, 1993, P.42
7. शर्मा लक्ष्मीनारायण : मन्दसौर जिले का जनांकिकीय अध्ययन 1971 से 1991 अप्रकाशित पीएच.डी शोध प्रबधं विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन 1995
8. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, म.प्र. सरकार भोपाल
9. भारत की जनगणना : 1971, 1981, 1991, 2001, 2011

****

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा 'इंदौर संभाग' में कृषि विनियोग 2005 से 2010 : एक विश्लेषण

डॉ. दिलीप पाटीदार * डॉ.आशीष गुप्ता **

प्रस्तावना – भारत में कृषि महत्व स्वप्रमाणित है। जो अपने उद्‌भव एवं विकास से ही मानव की भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही उद्योग, धंधों एवं रोजगार के विकास का आधार बनी हुई है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था में जीवनदायी रक्त की तरह है यह न केवल भूख और गरीबी जैसी समस्याओं का समाधान हैं अपितु खाद्य और जैव सुरक्षा के माध्यम से जीवन के अस्तित्व को सुदृढ़ करती है। यही नहीं भारतीय संस्कृति में जो मूल नैतिक मूल्य प्रतिष्ठित है उनका उद्‌भव कहीं-न-कहीं कृषि से हुआ हैं। लेकिन हम कृषि एवं कृषक समाज के विकास की बात करे तो इन विकास विचारों को मूर्त रुप देने संबंधी योजनाएँ किसी भी शासनकाल में पूर्णत: फलीभूत नहीं हो पाई। दैविक व प्राकृतिक इच्छाओं से समायोजन कर उत्पादन करने वाली कृषि व्यवस्था के साथ राजा – महाराजा, साहुकार, जमींदार, ब्रिटिश शासन, महाजन और अन्य प्रभुत्ववादी व्यवस्था ने कभी समायोजन नही किया हमेशा ही लगान, ब्याज, कर, वसूली, नीलामी आदि माध्यमों से कृषकों का आर्थिक एवं मानसिक शोषण ही किया है।

देश स्वतंत्र हुआ समय था समग्र विकास की दिशा में कृषि व्यवस्था में सुधार रुपी सकंल्प एवं स्वप्न को साकार करने का इसके लिए आवश्यक था उपलब्ध संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करके, कृषि की वित्तीय मॉगों को पूरा करना। क्योंकि फसल उत्पादन प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण साधन वित्त ही है। जिसकी व्यवस्था किसान कई समय से जमीदारों, साहुकारों, महाजनों आदि स्त्रोतों से करता आ रहा है। इसी ऋण निर्भरता को कम करने एवं कृषकों तक ऋण पहुँचाने हेतु भारत सरकार द्धारा कई योजनाएँ संचालित की गई है। इनमें से कुछ योजनाएँ नीतिगत रुप से असफल रही तो कुछ योजनाओं को व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका की ही उदासीनता ने विफल कर दिया फिर भी भ्रष्टाचार रुपी व्यवस्था से लड़ते-पलते अधिकांश योजनाएँ अशत: सफल रही।

भारत में कृषि एवं कृषक विकास की दिशा में दीर्घकालीन वित्त पूर्ति का एक प्रयास भूमि विकास बैंक वर्तमान राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के माध्यम से वर्ष 1929 (वास्तविक स्थापना मद्रास) से किया जा रहा है। बैंक की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य किसानों को महाजनों एवं साहुकारों के चंगुल से मुक्त कराना , भूमि सुधार एवं कृषि में आधुनिकीकरण हेतु दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराना था। लेकिन धीरे-धीरे आवश्यकता एवं विकास की मॉग अनुरूप शासन एवं नाबार्ड द्धारा बैंक को कृषि के साथ ही अकृषि क्षेत्र में भी ऋण उपलब्ध कराने हेतु अनुमति प्रदान करते हुए आवश्यक अधिकार एवं संसाधन उपलब्ध कराये है जिससे बैंक ने ग्रामीण गरीबों की गरीबी दूर करने में अपनी महत्तवपूर्ण एवं सार्थक भूमिका निभाई है। भारतीय प्राकृतिक विशेषताओं के अनुसार ही मध्यप्रदेष के विकास का आधार भी कृषि क्षेत्र ही है। मध्यप्रदेश का किसान भी अपनी ऋण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति असंस्थागत स्त्रोतों से करता था, जिसकी लागत अधिक होती थी जिससे समय-दर-समय ब्याज राशि तो लगातार बढ़ती जाती थी लेकिन प्रकृति से समायोजन करके उत्पादन की मात्रा बढ़ाना एवं उसकों दलालों के चुंगल से बचकर उचित मूल्य पर विक्रय करना कृषकों के लिए विचार मात्र थे अर्थात् बहुत कुछ भाग्य पर निर्भर होता था परिणामस्वरूप धीरे-धीरे कृषक ऋणग्रस्त होता गया। भारत सहित मध्यप्रदेश के किसानों के सन्दर्भ में यह सत्य है कि वे मेहनती एवं ईमानदार है वे लिए गए कर्ज को चुकाने में वे कभी पीछे नहीं हटे चाहे इसका मूल्य उन्हें आत्महत्या करके ही क्यों ना चुकाना पड़े। इसी त्रासदी से बचने के प्रयासों में मध्य-प्रदेश के कृषक जगत को महाजनों एवं साहुकारों से अपनी बंधक भूमि को छुड़ाने एवं कृषि में आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने हेतु वित्ता की पूर्ति 'मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक' द्धारा वर्ष 1935 से की जा रही है।

आजादी के बाद बैंक को आर्थिक नियोजन प्रक्रिया में उत्पादी प्रयोजन हेतु दीर्घावधि विनियोजन साख उपलब्ध कराने का कार्य सौंपा गया। 1, नवम्बर, 1956 को मध्यप्रदेश के पुर्नगठन के बाद भूमि विकास बैंक में राज्य स्तरीय ढाँचागत सुधार करने के प्रयासों में 21, मार्च, 1961 को मध्यप्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक मर्यादित जबलपूर का पंजीयन हुआ जिसने 1, अगस्त, 1961 से कार्य करना प्रारंभ किया। जिसे बाद में मध्यप्रदेश राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक अधिनियम 1966 के अधीन कर दिया गया। अकृषि क्षेत्र की मांग एवं बैंक को सम्पूर्ण ग्रामीण विकास बैंक बनाने के प्रयासों के परिणामस्वरूप बैंक के पूर्व अधिनियमों को संशोधित करते हुए नया अधिनियम **'मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम 1999'** बनाया गया। इसी के तहत 2, अक्टूबर, 1999 को बैंक का नाम बदलकर मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक कर दिया गया। वर्तमान में बैंक राज्य में 38 जिला बैंकों के माध्यम से सभी जिलों में कृषि एवं अकृषि प्रयोजनों हेतु वित्त उपलब्ध करा रहा है।

इंन्दौर संभाग की बात करे तो इसके अंतर्गत इंन्दौर , खंण्डवा , बुरहानपुर , खरगोन , बड़वानी , धार, एवं झाबुआं जिले आते है जिनमें लगभग **1.18** करोड जनसंख्या निवास करती है इसमें सें लगभग **72** प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि सहायक कार्य में संलग्न है। इंन्दौर को मिनी बाम्बे के नाम से नवाजे जाने के पीछे के कुछ कारणों कों छोड़ दे तो सम्पूर्ण संभाग के विकास का प्रमुख एवं पुख्ता आधार कृषि अर्थव्यवस्था ही है। यहॉ प्रमुख रूप से सोयाबीन , आलू , कपास, केला, गेहू, गन्ना, मुगफली आदी फसलों का उत्पादन किया जाता है। कपास उत्पादन में तो संभाग का सेंधवा क्षेत्र एशिया स्तर पर प्रसिद्धी भी पा चुका हैं इसी कृषि एवं कृषक समाज के सम्पूर्ण

*सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) ** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, निवाली (म.प्र.) भारत

विकास हेतु क्षेत्र में भूमि विकास बैंक वर्ष 1937 से दीर्घकालीन वित्तीय सुविधाएँ उपलब्ध करा रहा है।

ऋण वितरण एवं वसूली – इन्दौर में जिला सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक का संभागीय कार्यालय है जिसकी **स्थापना पंजीयन क्रमांक INDRHO/175 के अन्तर्गत 25 फरवरी 1962 को दि इन्दौर डिस्ट्रिक्ट को आपरेटिव्ह लैण्ड मार्गेज बैंक के नाम से की गई थी।** जो बाद में इस बैंक अधिनियम 1966 के द्वारा इन्दौर जिला सहकारी भूमि विकास बैंक मर्यादित तथा बैंक अधिनियम 1999 के अन्तर्गत वर्तमान में जिला सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत इंन्दौर , खंण्डवा बुरहानपुर , खरगोन, बड़वानी , धार, तथा झाबुआं जिला बैंक आते है। इन पॉच जिला बैकों के द्वारा क्षेत्र में **वर्ष 2005 से 2010** तक किए गए ऋण वितरण एवं वसूली को नीचे दी गई तालिकाओं से स्पष्ट किया जा सकता है :-

तालिका क्रमांक - 01

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा **'इंदौर संभाग'** में **वर्ष 2005-06 से 2009-10 तक कुल लक्ष्य एवं ऋण वितरण** की स्थिति

(राशि लाख रूपये में)

क्र	जिला बैंक	लक्ष्य	वितरित ऋण का %	लक्ष्य पर ऋण
1.	इंदौर	7883.00	5095.54	64.64
2.	खण्डवा	2717.00	2136.19	78.62
3.	खरगोन	2247.00	1883.97	83.84
4.	झाबुआ	470.00	446.80	95.06
5.	धार	2486.00	1856.17	74.67
	योग	**15803.00**	**11418.67**	**72.25**

स्त्रोत -राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक संभागीय का कार्यालय इंदौर ऋण वितरण पत्रक।

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 01 से स्पष्ट है कि वर्ष 2005 से 2010 तक इंदौर संभाग में कुल 15803.00 लाख रुपये लक्ष्य निर्धारित किया था जिसकी तुलना में 11418.67 लाख रुपये ऋण वितरण किया गया जो लगभग 72.25 प्रतिशत रहा। इस दृष्टिकोण से झाबुआ जिला बैंक द्वारा सर्वाधिक 95.06 प्रतिशत ऋण बाँटा जो अच्छी कार्यक्षमता को स्पष्ट करता है। इसके बाद खरगोन जिला बैंक द्वारा भी 83.84 प्रतिशत ऋण वितरण करके अच्छा प्रदर्शन किया है। खण्डवा एवं धार जिला बैंकों भी इस दिशा में तेजी दिखानी होगी तथा सबसे कम लगभग 64.64 प्रतिशत ऋण वितरण इंदौर जिला बैंक द्वारा किया गया। बैंक प्रशासन द्वारा यहाँ मानव संसाधन को पूर्ण उपयोग किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा**'इंदौर संभाग' में वर्ष 2005-06 से 2009-10** तक

तालिका क्रमांश - 02

कुल मांग एवं कुल वसूली की स्थिति (राशि लाख रूपये में)

क्र.	जिला बैंक	कुल मांग	कुल वसूली	मांग पर वसूली का %
1.	इंदौर	20964.73	10287.72	49.07
2.	खण्डवा	15573.17	7179.85	46.10
3.	खरगोन	16967.67	7352.67	43.34
4.	झाबुआ	6638.32	2014.20	30.34
5.	धार	12179.80	5092.83	41.82
	योग	**72323.69**	**31927.27**	**44.15**

स्त्रोत :- राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक संभागीय कार्यालय इंदौर ऋण वसूली पत्रक।

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 02 से स्पष्ट होता है कि इंदौर संभाग में वर्ष 2005 से 2010 तक कुल 72323.69 लाख रूपये की माँग की गई थी जिसकी तुलना में 31927.27 लाख रूपये की वसूली की गई जो लगभग 44.15 प्रतिषत रही इस दृष्टिकोण से सर्वाधिक 49.07 प्रतिशत वसूली इंदौर जिला बैंक द्वारा की गई तथा सबसे कम वसूली झाबुआ जिला बैंक द्वारा लगभग 30.34 प्रतिशत की गई। फिर भी मांग की तुलना में सभी जिला बैंकों की वसूली आधे से भी कम है। इस दिशा में विचार किया जाना चाहिए क्योंकि वर्तमान में नाबार्ड द्वारा वसूली की मात्रा अनुसार ऋण पात्रता प्रदान की जा रही है।

तालिका क्रमांक -03

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा **'इंदौर संभाग' में वर्ष 2009-10 तक ऋण अवशेष एवं एन.पी.ए.** की स्थिति (राशि लाख रूपये में)

क्र.	जिला बैंक	ऋण अवशेष	एन.पी.ए.	ऋण अवशेष पर NPA का %
1.	इंदौर	5973.37	2984.20	50.00
2.	खण्डवा	3011.67	1474.96	49.00
3.	खरगोन	3641.17	2026.54	55.00
4.	झाबुआ	1193.39	889.21	74.00
5.	धार	2615.77	1369.29	51.00
	योग	16435.37	8744.20	53.00

स्त्रोत :- राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक संभागीय कार्यालय इंदौर ऋण वसूली पत्रक।

उपर्युक्त तालिका क्रमांक : 03 से स्पष्ट होता है कि बैंक का संभाग में किसानों के ऊपर कुल 16435.37लाख रूपये का ऋण बकाया है जिसमें सर्वाधिक बकाया राशि इंदौर जिला बैंक की है क्योंकि बैंक द्वारा ऋण वितरण की तुलना में कम वसूली की है तथा सबसे कम ऋण अवशेष झाबुआ जिला बैंक का है लेकिन इसका दूसरा और दु:खद पहलु देखे तो ऋण अवशेष का लगभग 53 प्रतिशत अलाभदायक सम्पत्तियों (NPA) के रूप में है जिससे बैंक के ऊपर शीर्ष बैंक एवं नाबार्ड का ऋण बोझ बढ़ता जा रहा है। इस दृष्टि से सर्वाधिक एन.पी.ए. झाबुआ जिला बैंक का है लगभग 74 प्रतिषत तथा सबसे कम खण्डवा जिला बैंक का लगभग 49 प्रतिशत है।

परिणाम एवं निष्कर्ष- इस प्रकार हमने देखा की जिला सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना किसानों को असंस्थागत ऋण जाल से मुक्त कराने के साथ ही कृषि में आधुनिकीकरण हेतु दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने के उद्देश्य से की गई थी ताकि कृषि अर्थव्यस्था का सुदृढ विकास करते हुए हमारी कृषि उत्पाद संबंधी आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सके। इस दायित्व को बैंक द्वारा ऋण वितरण करके बखूबी निभाया है साथ ही बैंक द्वारा अकृषि क्षेत्र को ऋण सुविधाएँ उपलब्ध करायी है। लेकिन बैंक की वर्तमान स्थिति देखे तों बैंक द्वारा लक्ष्यानुसार ऋण वितरण नही किया जा रहा हैं तथा वर्ष 2011 से तो ऋण वितरण लगभग बंद ही कर दिया है परिणामस्वरूप बैंक एवं कृषको के मध्य विवाद बढ़ता जा रहा है साथ ही कृषक वर्ग वित्त प्राप्ती हेतु असंस्थागत ऋण जाल में फिर से उलझने लगा है। वितरित ऋणों की वसूली की बात करे तो नकली खाद, बीज, दवाई , प्राकृतिक सुखा, बाढ़ ओला पाला इल्ली, फसल बीमारी एवं ऋण-ब्याज

जाल से शेष बची कृषि आय को शारीरिक एवं सामाजिक आवश्यक आवश्कताओं के समायोजन के बाद यदि किसान हितग्राही बैंक की किश्त समय पर जमा नही कर पाता तो उस पर वसूली हेतु दबाव डालने के साथ साथ कानूनी कार्यवाहिया भी की जाने लगी हैं जिससें सामाजिक एवं मानसिक ह्रास स्वभाविक हैं परिणामस्वरूप किसान आत्महत्या जैसी त्रासदी को गलें लगा रहा है। जिसके विकास के लिए हम इतने और इतने समय से प्रयासरत् है तो क्या हमारे प्रयासों की पूंजी 'किसान आत्महत्या'ही है। यह विचारणीय है ।

सुझाव – शासन द्वारा कृषकों के विकास को सुनिश्चित करने हेतु एवं कृषकों की समस्याओं को कम करने की दिशा में त्वरित कार्यवाही करते हुए किसानों की वर्तमान वास्तविक स्थितिनुसार ही वसूली हेतु बैंक को निर्देशित किया जाना चाहिए। शासन से ऐसा प्रयास भी अपेक्षित है की कृषि में ऐसी आधारभूत व्यवस्था करे की कृषि उत्पादन क्षमता एवं कृषि आय को बढाया जा सके जिससे की कृषक एवं बैक के मध्य विवाद स्वत: समाप्त हो जायेगें और हमारा कृषि एवं कृषक विकास उद्देश्य भी प्राप्त किया जा सकेगा। साथ ही कृषक समाज से भी अपेक्षा की जाती हैं की बैंक ऋण की वापसी की जिम्मेदारी नैतिकता पूर्ण निभाये ताकि बैंक दूसरे किसान भाईयों को भी ऋण सुविधाएं उपलब्ध कराकर उनके आर्थिक एवं सामाजिक विकास को सुनिश्चित कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक अधिनियम 1966 एवं 1999।
2. विकास विभाग, मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, भोपाल।
3. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, इंदौर संभाग, वार्षिक प्रतिवेदन 2005 से 2010
4. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की उपविधि एवं योजना पत्रिका 2005 से 2010
5. नाबार्ड , ग्रामीण विकास पत्रिका ।
6. कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार , नई दिल्ली ।
7. www.census2011.co.in

****

FDI In India's Retail Sector - Opportunities And Challenges

Dr. Deepali Behere *

Abstract - Retailing is the interface between the producer and the individual consumer buying for personal consumption. This excludes direct interface between the manufacturer and institutional buyers such as the government and other bulk customers. A retailer is one who stocks the producer's goods and is involved in the act of selling it to the individual consumer, at a margin of profit. As such, retailing is the last link that connects the individual consumer with the manufacturing and distribution chain. The retail industry in India is of late often being hailed as one of the sunrise sectors in the economy. It has made India the cause of a good deal of excitement and the cynosure of many foreign eyes. With a contribution of 14% to the national GDP and employing 7% of the total workforce (only agriculture employs more) in the country, the retail industry is definitely one of the pillars of the Indian economy.

Key Words - FDI, Retail Sector, Indian Economy, Consumers, GDP .

Introduction - The Indian Scenario-Trade or retailing services sector in terms of contribution to GDP. Its massive share of 14% is double the figure of the next largest broad economic activity in the sector. is the single largest component of the The retail industry is divided into organized and unorganized sectors. Organized retailing refers to trading activities undertaken by licensed retailers, that is, those who are registered for sales tax, income tax, etc. These include the corporate-backed hypermarkets and retail chains, and also the privately owned large retail businesses. Unorganized retailing, on the other hand, refers to the traditional formats of low-cost retailing, for example, the local kirana shops, owner manned general stores, paan/beedi shops, convenience stores, hand cart and pavement vendors, etc.

Unorganized retailing is by far the prevalent form oftrade in India – constituting 98% of total trade, while organized trade accounts only for the remaining 2%. Estimates vary widely about the true size of the retail business in India. In a recent presentation, FICCI has estimated the total retail business to be Rs. 11, 000 crores or 44% of GDP., sales now account for 44% of the total GDP and food sales account for 63% of the total retail sales,. Food retail trade is a very large segment of the total economic activity of our country and due to its vast employment potential

Employment in Retailing - A simple glance at the employment numbers is enough to paint a good picture of the relative sizes of these two forms of trade in India – organized trade employs roughly 5 lakh people, whereas the unorganized retail trade employs nearly 3.95 crores, India's workforce is proportionately much larger. That about 4% of India's population is in the retail trade says a lot about how vital this business is to the socio-economic equilibrium in India.Organized retail is still in the stages of finding its feet in India even now. Though organized trade makes up over 70-80% of total trade in developed economies, India's figure is low even in comparison with other Asian developing economies like China, Thailand, South Korea and Philippines, all of whom have figures hovering around the 20-25% mark

Retail as a 'Forced Employment' Sector - It is important to understand how retailing works in our economy, and what role it plays in the lives of its citizens, from a social as well as an economic perspective. India still predominantly houses the traditional formats of retailing, that is, the local kirana shop, paan/beedi shop, hardware stores, weekly haats, convenience stores, and bazaars, which together form the bulk. Most importantly, Indian retail is highly fragmented, with about 11 million outlets operating in the country and only 4% of them being larger than 500 square feet in size. Compare this with the figure of just 0.9 million in the US, yet catering to more than 13 times of the Indian retail market size.The presence of more than one retailer for every hundred persons is indicative of the lack of economic opportunities that is forcing people into this form of self-employment, even though much of it is marginal. Because of this fragmentation, the Indian retail sector typically suffers from limited access to capital, labour and real estate options. The typical traditional retailer follows the low-cost-and-size format, functioning at a small-scale level, rarely eligible for tax model of operations.

The Waiting Foreign Juggernaut - The largest retailer in the world 'Wal-Mart' has a turnover of $ 256 bn. and is growing annually at an average of 12-13%. In 2004 its net profit was $ 9,000 mn. It had 4806 stores employing 1.4 mn persons. Of these 1355 were outside the USA. The average size of a Wal-mart is 85,000 sq.ft and the average turnover of a store was about $ 51 mn. Wal-Mart had a 9% return on assets and 21% return on equity. By contrast the average Indian retailer had a turnover of Rs. 186,075. Only 4% of the 12 million retail outlets were larger than 500 sq.ft in size. The total turnover of the unorganized retail sector was Rs. 735,000 crores employing 39.5 mn persons.

- Let alone the average Indian retailer in the unorganized sector, no Indian retailer in the organized sector will be

*Asst. Professor (Economics) Department of Commerce & Management, Career College, Barkatullah University, Bhopal (M.P.)INDIA

able to meet the onslaught from a firm such as Wal-Mart – when it comes. With its incredibly deep pockets Wal-Mart will be able to sustain losses for many years till its immediate competition is wiped out. This is a normal predatory strategy used by large players to drive out small and dispersed competition job loss. If Wal-Mart were to open an average Wal-Mart store in each of these cities and they reached the average Wal-Mart performance per store – we are looking at a turnover of over Rs. 80,330 mn with only 10195 employees

Disturbing the Hornet's Nest - If you assume 40 mn adults in the retail sector, it would translate into around 160 million dependents using a 1:4 dependency ratio. Opening the retailing sector to FDI means dislocating millions from their occupation, and pushing a lot of families under the poverty line. Plus, one must not forget that the western concept of efficiency is maximizing output while minimizing the number of workers involved – which will only increase social tensions in a poor and yet developing country like India, where tens of millions are still seeking gainful employment.(SeeTable 5)

Table 5: Sectoral GDP, Employment & Growth Rates (%)

Sectors	Share % in GDP (2004)	Employment	Cumulative ave. Growth Rate during1994-2004
Agriculture	22.1	60.5	2.70
Industry	21.7	16.8	6.53
Service	56.2	22.7	7.90

Source: FICCI (2004) & NSS 55th Round Employment Survey (1999-2000)

So far Indian economy has been heavily geared towards the service sector to contributes 56% of our GDP. The service sector's contribution to the increase in GDP over the last 5 years has been 63.9%. Having a high contribution from services is an attribute that is characteristic of developed economies

Recommendations -

- The retail sector in India is severely constrained by limited availability of bank finance. The Government and RBI need to evolve suitable lending policies that will enable retailers in the organized and unorganized sectors to expand and improve efficiencies.
- A National Commission must be established to study the problems of the retail sector and to evolve policies that will enable it to cope with FDI – as and when it comes.
- The proposed National Commission should evolve a clear set of conditionalities on giant foreign retailers on the procurement of farm produce, domestically manufactured merchandise and imported goods. The government must actively encourage setting up of co-operative stores to procure and stock their consumer goods and commodities from small producers..
- set up an Agricultural Perishable Produce Commission (APPC), to ensure that procurement prices for perishable commodities are fair to farmers and that they are not distorted with relation to market prices.

Recommendations for the Food Retail Sector - With 3.6 million shops retailing food and employing 4% of total workforce and contributing 10.9% to GDP, the food-retailing segment presents a focused opportunity to the Government to catalyze growth & employment.

- Provision of training in handling, storing, transporting, grading, sorting, maintaining hygiene standards, upkeep of refrigeration equipment, packing, etc. is an area where ITI's and SISI's can play a proactive role.
- Creation of infrastructure for retailing at mandis, community welfare centers, government and private colonies with a thrust on easier logistics and hygiene will enable greater employment and higher hygiene consciousness, and faster turnaround of transport and higher rollover of produce. Credit availability for retail traders must be encouraged with a view to enhancing employment and higher utilization of fixed assets.
- Several successful models of integrating very long food supply chains in dairy, vegetable, fish and fruit have been evolved in India.

Conclusion - To summarize, debate on opening up multi-brand retail is a welcome first step. There is sincere expectation that the government will open the sector to FDI, and act fast on this front, even if it means opening the sector in a gradual and phased manner. FDI should not be allowed for multi brand stores in near future, as Indian retailers will not be able to face competition with these stores immediately.

At present it is also not desirable to increase FDI ceiling to more than 51% even for single premium brand stores. It will help us to ensure check and control on business operations of global retailers and to look after the interests of domestic players. However, the limit of equity participation can be increased in due course of time as we did in telecom, banking and insurance sectors. Foreign players should not be allowed to trade in certain sensitive products like arms and ammunition, military equipment, etc. and the list of excluded products should be clearly stated in the FDI policy.

Moreover, it is submitted that in the fierce battle between the advocators and antagonist of unrestrained FDI flows in the Indian retail sector, the interests of the consumers have been deliberately and utterly disregarded.. After Independence and the economic liberalization in 1990, retail may well be the next revolution. With economic slowdown behind us, the time seems just right to expand the horizons, and realize the potential.FDI in retailing would surely be a gain to India and it would also help India in becoming 'developed count

References -

1. Department of Commerce, Government of India, 23-Feb-2005, Press Release on 'FDI in Organized Retail to generate Employment, but should not displace ongoing Retail activities',
2. Economic Survey (2007-08), Ministry of Finance, Government of India, New Delhi, 2008 ICRIER study, "Impact of Organized Retailing on the Unorganized Sector" May2008
3. Joseph, Mathew and Soundararajan, Nirupama (2009), "Retail in India: A Critical Assessment", Academic Foundation, NewDelhi.
4. Mohanty, J.P, Sharma Kamal, Guruswamy Mohan, Korah Thomas J. FDI in India's Retail Sector – More Bad Than Good. Center for Policy Alternatives (CPAS), New Delhi.

Local Fund Audit: A Vision

Sandeep Kumar Laxkar * Dr.P.R.Somani **

Abstract - According to Article 243-J of the Constitution 73rd Amendment Act the provision has been made that the accounts of Panchayati Raj Institutions will be done from to time to time. This is also essential because, if the audit of accounts of income and expenditure is not done then the possibility of misuse of functioning of Panchayati Raj will become strong. The objective of the audit of local bodies notified by the State Government is to check Expenses Accounts, the original records, certificates etc. The financial theory to check Expenditure Accounts as per the Accounting Rules and to certify the annual accounts and to put before the institution and to bring out all kind of irregularities of local bodies. The object of present research papers is to deliver the information of local fund audit to curious of various level so they can become awake towards annual accounts of various government and non government organizations. The information about powers and duties of auditor is given in present research paper.

Local Fund Audit - The Local Fund Audit Department was notified in Local Fund Audit Notification Act of 1994, No.11671/Leg. A2/93/Law on 11/05/94. The main duty of this department is to conduct audit of accounts of Institutions within their audit control through merits of Local Fund Audit Act, 1994. Along with audit of local fund the Director of the Local Fund Audit Departments in his capacity as treasurer of various charitable fund contained the proper management of the fund administered by this Department. Being a PRI decentralized autonomous institution is accountable to the public. For the purpose to read over the accounts of development work regularly in the meeting of Gram Sabha is healthy institutional system of social audit which is an important part of Rajasthan Panchayati Raj arrangement. In addition the Panchayati Raj institutions are bound to the arrangement to cause annual audit through external audit agencies.

Mainly two agencies / departments are authorized to conduct audit of Panchayati Raj institutions, (1) Local Fund Audit Department (Department of State Government), (2) Comptroller & Auditor General – C.A.G. (Comptroller of Auditor General in India). The Panchayati Raj institutions are getting financial grant from both, the State and the Central Government. Therefore, the arrangement of audit is applicable at both the levels. The format of Budget for Panchayati Raj institutions is prescribed in C.A.G. 2002 and the formal order-11 issued by the states is accepted and this format has been made applicable to all the institutions. The 11th Finance Commission in para 8.19 (d) of its report had recommended that there should be a format to prepare the Comptroller Auditor General of India (C & G). Such format for the local bodies of Budget & Audit should be changed. According to Article 243-J of the Constitution 73rd Amendment Act the provision has been made that the accounts of Panchayati Raj Institutions will be done from to time to time. This is also essential because, if the audit of accounts of income and expenditure is not done then the possibility of misuse of functioning of Panchayati Raj will become strong. And this is the reason that in section 95 of the Act also audit system of accounts has been implemented. In the fifth year of the Republic of India the legislature of Rajasthan State had enacted the Local Fund Audit Act, 1954. This act is spread across Rajasthan State, any Panchayati Raj institution will maintain the accounts which will be placed for audit in every financial year. The format of annual accounts are prepared for any Panchayati Raj institution under which the fund spent on any work and balance money, the summary of various accounts etc. of the institution will be written.

The object for auditing of the local bodies notified by the state government to examine the accounts of income and expenditure, original records, certificates in accordance with the rules and financial principles and to certify the annual accounts and to submit to the institution and to communicate different types of irregularities to the local bodies.

General instruction for auditing - The instructions related for audit guidance proceeding are being issued, minimum and essential direction for auditor is as under:

1. **Commencement of Audit -** The audit begin with institution's cash balances of postage stamps begins with verification of securities, postal stamps and balances given by the local authority. It is being noticed by the auditor that whether the physical cash on hand is in accordance with cash on hand in books of accounts or not.
2. **Annual administration and inspection report:** The auditor should study Auditor the annual administration of the local body institution, reports, minutes of standing committees and other committees, inspection report of the senior official of the institution and to pay attention towards all the important matters which is essential for auditor to investigate during checking.
3. **Rules and regulations and impact of its implementation:** The Rules and bye-laws are framed and accepted under the Act related to the institution and special attention is given towards that whether the ruleor by-laws rules are framed in accordance with the act or not as well as no source of income is neglected.
4. **Budget:** An auditor must see that the budget is prepared and passed in accordance with act related to budget as well as accounting rules and the figures is similar to the actual assessment, supposition of receipts and expenditure is balanced and entire figures have been accepted before spending.
5. **Annual Accounts:** The receipts and expenditure of amount of the annual accounts should be examined with concerned

*Research Scholar, Pacific University Udaipur (Raj.) INDIA
** Ex-Head, Department of Accounts and Business Statistics,B.N. P.G. College, Udaipur (Raj.) INDIA

registrars and to find out unusual variation of both, income - expenditure related to budget and actual figures.

Duties of Audit Department - To accomplish the task of audit department following procedures are being adopted:

1. **Checking of financial approval:** The financial approval granted by the Controlling Authorities or State Government as well as approval related to service which is being obtained from Directorate will be examined and it will also observe that whether the approval granted is based upon the concerned Act or not and thereafter to forward such approvals to the concerned regional offices for essential proceedings at the time of checking.
2. **Detailed & Specific inquiry:** For the purpose to conduct specific examination of accounts of any institution if any demand received from the Controlling Authority or State Government then the orders issued for specific inquiry. To conduct specific inquiry / details inquiry the Director himself is competent and if necessity arise then the orders for specific inquiry are being issued by the Director - Directorate.
3. **In case of damages, theft, misappropriation:** Whenever the Audit Report of each regional office is issued then therein the case of loss, theft and misappropriation of more than Rs.1,000/ - is reported to the Directorate. The Directorate upon receipt of such instruction in this branch, the entry is being made in the register maintained for loss, theft, misappropriation for the same and the communication is being sent to, the Controlling Authority to, initiate further proceedings in this behalf and reminder letters being sent to him about seriousness of the matter from time to time. And the proceeding of all such cases of loss, theft and misappropriation are being entered in the register in the regional offices.
4. **Serious irregularities found in audit:** Upon finding irregularities during audit, the earlier checking group / regional office upon receipt of instruction of payment made by the City Council (Nagar Parishad) without passed by the earlier group of auditor, the controlling authority immediately shall inform for the purpose of forthwith proceedings to the Administrative Department as well as the Finance Department.
5. **Annual Budget and Rules:** The annual budget is being prepared in accordance with directions prescribed in the rule which is being followed in regional offices. All the concerned officer on the date specified in rules and in prescribed form and in accordance with the directions send the budget to his higher authorities.

Process before commencement of Audit -

1. **Audit Year:** The Audit year shall commence from 1st of June of every year and ending on 31st of May of next year. The audit of accounts of previous year of the institution will be conducted during this period
2. **Information of Audit:** The instruction to conduct audit will be given by relevant local authorities to the Assistant Director of Audit unless there is special situation Local Fund Auditor Act 1954 at least two weeks prior to the date given.
3. **Distribution of work:** Before starting of audit the accounts of that institution the summary of work between Accounts Officer and Assistant Auditor will be given in prescribed proforma to the Investigation Superintendent. The summary of work is given in such a manner that all the members remain busy and the audit work can be completed within the stipulated period.
4. **Auditor Marking:** At the time of audit of accounts all the entries checked by the auditor, the tick by prescribed pencil will be put on the entries or the 'x' mark should be affixed and initial should be made on checked the counters of final receipts, cheque etc. accounting documents. At the end of audit period it is being written on the registers checked as to, "the total checked has been checked, checked the bank's challan, pass book is tallied etc. and initial is put and date is also being written.
5. **Letter of Demand:** Without giving adequate opportunity the Executive Officer of the institution to make clarification about irregularity, misappropriation, solution, etc. found during the audit it should not be mentioned in Draft Audit Report. In this connection it would be appropriate that the investigation superintendent some times to informally discuss about defect and irregularities found during audit with the office superintendent so as he may tender his explanation after inquired into the facts for that subject. If the Office Superintendent not produce any record humbly demanded for audit purpose, then to prepare the summary in duplicate by using carbon paper in prescribed form L.A.D.1 and forward one copy with his signature and date to the aforesaid officer and obtain the receipt.
6. **Verification of compliance audit query:** After verification of compliance in form L.A.Fi. 20 by the institution prepared by the Investigation Superintendent his remarks will be given in prescribed table. And along with the form of Audit Report will be forwarded to the Assistant Director for prompt proceeding purpose.

Duties of Auditor - Primary duty of the auditor is to make verification of significance and completion of all the accounts so as it can be assure that entire revenue and receipts have been asked for appropriately under rules formed subject to the concerned acts, as such the accounts of all the revenue and receipts is being maintained.

The Auditor should make it assure that for accounts of the institution any forms are made under special rules - laws have been exclusively complied with or not. If it is found that the method of accounting is defective then before giving any suggestion directly to the local body or authority, for the purpose to order him, he along with his primary suggestion it is being placed through appropriate medium before the Director, Local Fund Audit Department, Rajasthan, Jaipur.

Powers of Auditor - For any audit to be carried under the Rajasthan Local Fund Audit Act, 1954, the following powers have been vested to the Auditor under section-6 of the Act.

1. Can submit letter of demand to make available the chart, eligible correspondence and other records Authenticator comments etc. for the purpose of audit.
2. Can make written application to the Chairman of Institution or member of Audit institution office.
3. Intimation for commencement of audit should be given in writing to the local authority at lease before two weeks and in special situation he has authority to conduct audit without intimation.

References -

1. Babel Vasantilal, Rajasthan Panchayati Raj Code, Bafna Publishing House, Jaipur 2009, Page No.166.
2. Departmental Rules, Local Fund Audit Department, Rajasthan, Jek Printers, Jaipur, 1993, page No.127.
3. Pramodkumar Agrawal, Bharat Me Panchayati Raj, Gyan Ganga, Delhi, 2003 page no.85.

Economic Growth on the basis of Gross Natural Product

Dr. Anand Tiwari *

Introduction - Today, we need to understand that man and environment complete one another in every possible extent. It we aspire to maintain this perfect balance between nature and living beings, then we require to include the use of natural resources while calculation of national income or GDP of the country. What we need today is sustainable development.

Sustainable development refers to the development where the resources shoule be used in such a balanced manner that their should be enough for "present" as well as "coming generations" According to latest reports 12% resources have already being exploited and 27% of resources are being used presently hence, 40% of resources are being consumed only by human beings and only 60% is left for the use by other species.

During four decades from 1950-1990, production of food grains was increased enormously because of green revolution i.e. growth by 2.9 crore tonnes per year. But since 1984 there has been a major fall in food grain production which if continued to next 40 years, then it would reach to 248 kg per year per person.

TERI- Tata energy resource institute has presented a report acc. to which there has been a sharp decrease in ground water level of the country. Mehsana district in Gujrat and some regions in T.N. have experienced a permanent static fall in ground water level similarly in Haryana water level has gane below 48-54 c.m. During the same period, 4686 million hectare forest land was used illegal actions leading to a loss of 89232 million ruppes in terms of soil minerals.

Development of a country is only measured in terms of national income and GDP but it does not include various resources aspect and no of families below poverty level instead "Total Natural Resources" should be made the key factor to decide development in a country.

For a fast paced development deforestation and natural resources exploitation is done by man which not at all boshes our national income.

Hence, unknowingly or knowingly we are exploiting our resources for the sake of "development" Not only exploitation but it is also increasing the pollution level of the wintry which again effect badly both the nature and the living beings.

What we need to understand is we should include these resources exploitation loss in terms of money which will be accounted in millions and include that cost while calculating the national income of the country.

Just for an instance, after independence of country, in a run for establishing more & more paper mills in their states, wood was sold in 1 Re per ton in Shahdol (M.P.) because of which many forest near this district were completed deforested. In additional to this, because of the same Paper Mill, son river was polluted and people living in nearby villages had to face many contamination discuses. This is what we are leaving behind "unseen" in the none of development.

Similarly if a 50 years old three has been cut down and is ready for sell, then its cost many be accounted as 50,000 acc. to its face value.

But if seen beyond face value, that three has provided rainfall cycle, pollution control balanced environment, provided habitat for animals etc. If there conditional costs are added to the original cost then this three will cost Rs. 64,40,000 which we fail to analyses.

Acc. to national environ. engg research institute NEERI report 1990, the national income of country is actually at -4 score (minus 4) because of its over exploitation of resources.

This failure in economic system is not only faced our by country. but by the whole world. Therefore, instead of development, we should better go with the concept of "SUSTAINABLE DEVELOPMENT" for our economy and rather for world's economy as a whole.

References -

1. Mishra & Puri, Indian Economy, Himalayas Publishing House, Mumbai.
2. Rudradutt & Surndram Indian Economy, S. Chand, New Delhi.
3. Economic time, New Delhi.
4. Times of India, New Delhi.
5. Environmental Accounts Das Wheeler Publishing House.

* **Professor & Head (Commerce), Govt. Auto. Girls PG College of Excellence, Sagar (M.P.) INDIA**

संचार क्रांति एवं ग्रामीण बाजार का बदलता परिदृश्य

डॉ. प्रकाश चन्द्र रांका *डॉ. एल.एन. शर्मा **

शोध सारांश – भारत में आज भी कुल जनसंख्या का 74.3 % भाग गाँवों में बसता है इस कारण भारत का ग्रामीण बाजार दुनिया का सबसे अधिक सम्भावनाओं वाला बाजार है। विकास की रफ्तार के साथ ग्रामीण बाजारों का परिदृश्य भी तेजी से बदल रहा है इस कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भी इसमें अपनी दिलचस्पी दिखा रही है। संचार क्रान्ति के कारण जीवन शैली व उपभोग प्रवृति भी प्रभावित हुई है अब कच्चे मकानों (झोपड़ियों) में भी मोबाइल की घण्टियाँ बज रही है। संचार क्रान्ति ने ग्रामीण बाजार में 26 गुना प्रगति की है सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार का लाभ ग्रामीण क्षेत्र में कृषि उत्पादन के रूप में मिल रहा है कृषि की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु कृषि विशेषज्ञों की सलाह संचार क्रान्ति के माध्यम से प्राप्त हो रही है, कृषि विपणन में भी काफी सहायता मिल रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापारी पहुँचने लगे है इससे कृषि बाजारों का विस्तार भी हो रहा है। संचार क्रान्ति ने गाँवो के पलायन को रोकने एवं रोजगार के अवसर बढाने में भी सहयोग किया है संचार क्रान्ति एवं ग्रामीण बाजारों के विस्तारों ने ग्रामीण शिक्षित युवाओं को गैर कृषि क्षेत्रो की ओर आकर्षित कर , सेवा क्षेत्रों के विस्तार में रोजगार उपलब्ध कराकर आय सृजन के नए द्वार खोले है इससे भविष्य में ग्रामीण बाजारों को और भी मजबूती मिलेगी। ग्रामीण विकास योजनाओ एवं भारत निर्माण योजना में बजट आबंटन में भारी वृद्धि से ग्रामीणो की आय में वृद्धि हुई है अत: ग्रामीण बाजार को इसमें गति मिली है ग्रामीण जनता को जाग्रत करने एवं गाँवों में उपभोक्ता संस्कृति का विकास करने का श्रेय संचार क्रान्ति एवं मीडिया को जाता है। निकट भविष्य में संचार क्रान्ति, सूचना प्रौद्योगिकी एवं ग्रामीण बाजारो के आधुनिकीकरण से देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था अपने दम पर खड़ी हो जायेगी।

प्रस्तावना – भारत के लगभग 125 करोड उपभोक्ताओं में से लगभग एक चौथाई ग्रामीण क्षेत्र में रहते है। भारत की ग्रामीण जनसंख्या 627 मिलियन है, जो कि कुल जनसंख्या की 74.3% है। वर्ष 2011 में बढकर 6,40,867 हो गई। भारत की ग्रामीण आबादी विश्व की जनसंख्या का 12 प्रतिशत है। अत: भारत का ग्रामीण बाजार दुनिया का सबसे अधिक सम्भावनाओं वाला देश है। कुछ वर्षो पूर्व तक भारत के जिन ग्रामीण बाजारों को दीन-हीन समझा जाता था, आज उन्हीं ग्रामीण बाजारों का परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। विकास की रफ्तार में आज भारत के 67 प्रतिशत गाँव सड़को से जुड़ चुके है। ग्रामीण क्षेत्रों के 60 प्रतिशत परिवार बिजली का उपभोग करने लगे है जिसने टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का उपभोग करने की इच्छा एवं आवश्यकताओं को बढ़ावा दिया है इन सबके फलस्वरूप बाजारों का विस्तार ग्रामीणों के द्वार तक होने लगा। औद्योगिक एवं बाजार के विशेषज्ञों के अनुसार भविष्य की विकास दर भारत के छोटे कस्बों एव गाँवों से आने वाली है। स्थिति यह है कि भारतीय ग्रामीण बाजारों की ओर देश की ही नहीं, दुनिया की बडी-बडी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपनी दिलचस्पी दिखा रही है।

शोध व्याख्या- संचार क्रान्ति के कारण जीवनशैली और उपभोग प्रवृति के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीणों की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं पर प्रदर्शन प्रभाव (ड्योसेनबरी परिकल्पना) ने भारी असर डाला है। अब मिट्टी के घरो में भी मोबाईल की घण्टियां बज रही है। ग्रामीण बाजार में पिछले आठ वर्षो में संचार सुविधाओं ने अभुतपूर्व 26 गुना प्रगति की है 2011 में 219 मिलियन ग्रामीण उपभोक्ता दूरसंचार सुविधाओं का उपभोग कर रहे थे। आज भारत में संचार उद्योग की प्रगति विश्व में प्रथम स्थान पर है, जहाँ 671 मिलियन से ज्यादा इसके कुल उपभोक्ता है सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार होने से सबसे ज्यादा फायदा ग्रामीण क्षेत्र में कृषि उत्पादन को मिल रहा है। किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य मिल सकेगा और वे कम लागत में अधिक मुनाफा प्राप्त कर सकेगे, क्योंकि अभी तक कृषको का अपनी विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु कृषि विशेषज्ञों तक पहुंचने में काफी पैसा और समय खर्च करना पड़ता था। संचार सुविधाओं एवं सूचना प्रौद्यिगिको का दायरा स्तर होने से ये तुरन्त अपनी समस्या का समाधान कर सकेगें। अभी तक के अनुभव सही बता रहे है कि जिस गति से सचार क्रान्ति आगे बढ़ रही है, उसी गति से कृषि को भी बढावा मिला है। कृषि उत्पादन में वृद्धि होने से ग्रामीण क्षेत्रों में बडे व्यापारियों की पहुँच भी होने लगी है, जिससे कृषि बाजारों का भी विस्तार हो रहा है। वर्ष 2006 – 10 के बीच ग्रामीण भारत में मोबाईल उपभोक्ताओं की संख्या में 07 गुना वृद्धि आंकी गई जबकि शहरी क्षेत्र में यह 03 गुना ही हुई बहुराष्ट्रीय कम्पनियां ग्रामीण उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं एवं उनके मनोविज्ञान को समझने हेतु शोध एवं सर्वेक्षण पर काफी धनराशि खर्च कर रही है। संचार क्रांति एवं ग्रामीण बाजार के विस्तार होने से गाँवो से पलायन रूका है, तथा गाँवो में रोजगार के अवसर भी बढे है। भारत में छोटे-बडे सभी शहरों की तुलना में गाँवो की संख्या लगभग 100 गुना है। भारत की GDP में ग्रामीण क्षेत्र का हिस्सा 56 प्रतिशत है जबकी कुल राष्ट्रीय व्यय में 64 प्रतिशत भागीदारी है। देश की कुल बचत में भी 33 प्रतिशत का योगदान ग्रामीण आबादी का है। उपलब्ध संमको के अनुसार वर्ष 2008 –09 में देश के ग्रामीण बाजार से 425 अरब डालर के राजस्व की प्राप्ति हुई, जिसके वर्ष 2012-13 में 540 अरब डालर होने की सम्भावना है।

तालिका

भारत में ग्रामीण बाजार का अनुमानित वार्षिक आकार(2011-12)

क्र.	मद	करोड़ रू. में
1.	उपभोक्ता वस्तएं FMCG	रू. 75,000 करोड़
2.	टिकाऊ उपभोग वस्तुएं (Durablesa)	रू 65,000 करोड़
3.	कृषि आदा (Agro inputs)	रू 55,000 करोड़
4.	दो-चार पहिया वाहन(Two-Four Wheelers)	रू 10000 करोड़

स्रोत:- International Journal of Marketing studiesa Vol. 5, No.-03,2013

सन् 2000 के पश्चात् भारत की जीडीपी में वृद्धि दर का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जीडीपी की वार्षिक वृद्धि दर 6.2 प्रतिशत रही है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह वृद्धि 4.7 प्रतिशत ही रही। Accenture Umam "Mastwers of Rural Market Profitably

*प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत **प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

Selling to India`s Rural Consumers" पर किये गये एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2010-12 की समायावधि में ग्रामीण क्षेत्रों के उपभोक्ताओं ने 3,73,566 करोड़ रुपये (US $ 68.05 Billion) खर्च किये जबकि शहरी उपभोक्ताओं का व्यय 2,97,770 करोड़ रुपये (US $ 54.25 Billion) ही रहा। भारत में प्रथम बार ग्रामीण उपभोक्ताओं की व्यय वृद्धि दर 2009-10 के मध्य 19.20 प्रतिशत आंकी गई है। जो कि शहरी उपभोक्ताओं की वृद्धि दर 17.25% से लगभग 2 प्रतिशतांक अधिक है।

रेखाचित्र

भारत में ग्रामीण एवं शहरी उपभोग व्यय की वृद्धि दर की तुलनात्मक स्थिति

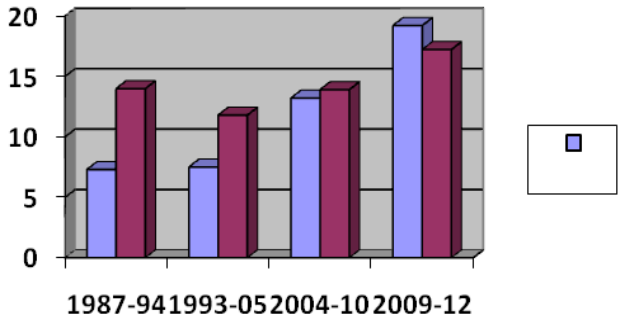

जहां व्यय योग्य आय में वृद्धि के साथ कुल उपभोग व्यय में निरंतर वृद्धि हो रही हो, उस उपभोक्ता क्षेत्र में उद्यमियों का आकर्षित होना स्वाभाविक है। संचार क्रांति एवं ग्रामीण बाजारों के विस्तार ने ग्रामीण शिक्षित युवाओं को गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये गये है। ग्रामीण क्षेत्र में सेवा क्षेत्र के विस्तार ने आय सृजन के नये द्वारा खोले है। आय वृद्धि के ये नये आयाम भविष्य में ग्रामीण बाजारों को और भी मजबूती प्रदान करेगें।

वर्ष 2010-2012 की अवधि के मध्य 'टाटा स्ट्रेटोजिक मेंनैजमेंट ग्रुप' की एक रिपोर्ट के अनुसार FMCG (Fast Moving Consumer Goods) एवं टिकाऊ उपभोग वस्तुओं के उत्पादन (Durable Consumer Goods) में से लगभग 33% है वस्तुओं की बिक्री ग्रामीण बाजारों में हुई है। भरपूर लाभ की संभावनाओं वाला ग्रामीण बाजार बड़ी कम्पनियों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है तथा विविध आधुनिक वस्तुओं से सजा हुआ ग्रामीण बाजार के उपभोक्ताओं को लुभाने में लगा हुआ है। ग्रामीण विकास योजनाओं एवं भारत निर्माण योजना में बजट आवंटन में भारी वृद्धि, आधारभूत संरचनाओं एवं व्यावसायिक पर्यावरण में सुधार, किसान कर्ज माफी योजना, ग्रामीण सड़क निर्माण, मनरेगा जैसी रोजगार योजनाओं आदि से ग्रामीण क्षेत्रों में आय का सृजन हुआ है, व्यय योग्य आय (Disposable Income) में भी वृद्धि हुई है, जिसने ग्रामीण बाजार को गति दी है। वर्ष 2013-14 के केंद्रीय बजट में कृषकों तथा ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देते हुए जो प्रावधान किये है उससे गांवों में आने वाला नया धन भारतीय ग्रामीण बाजार की चमक को बढ़ायेगा। आज बड़ी कम्पनियों के आकर्षण का मुख्य केंद्र गांवों में बढ़ते मध्यम वर्ग की नवीन आवश्यकताएं है। पिछले तीन वर्षो के आंकड़े बता रहे है कि ग्रामीण बाजारों में दिन-प्रतिदिन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं (MFCG) की बिक्री 20 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है, जबकि शहरी बाजार में यह (MFCG) क्षेत्र 17 प्रतिशत की दर से बढ रहा है। जो छोटी बडी कम्पनियों ग्रामीण बाजार का लाभ लेने आगे हैं, उन्होंनें स्थानीय लोगों की जीवन शैली और उपभोग आदतों का अध्ययन करने हेतु व्यापक बाजार सर्वेक्षण किये है। अपने ब्रांण्ड उत्पादकों के लिये अनेक ग्रामीण मार्केटिंग कंपनियां विशेषकर एम.एम.सी.जी. और टिकाऊ उपभोग उत्पादों के क्षेत्र में काम कर रही है। ग्रामीण भारत में उपभोक्ता सम्पर्क बढ़ाने के लिये कम्पनी प्रतिनिधियों द्वारा सीधे उपभोक्ताओं से जुड़ना ही उपर्युक्त रास्ता है। यही कारण है कि अपैरैल्स व फैशैनेबल ब्रांड बनाने वाली कंपनियां गांवों में रोड़ शो को अपने प्रचार का साधन बना रही है।

गाँधीजी ने कहा था 'दिल्ली भारत नहीं है, भारत तो गांवों में बसता है। अत: यदि हमें भारत को उन्नत करना है, तो गांवों की दशा सुधारनी होगी'। अत: गांवों के विकास के लिये समय-समय पर अनेक योजनाएं क्रियान्वित की गई और उनसे गांवों की तस्वीर बदलने की हर संभव कोशिश की गई। इन सब प्रयासों के बावजूद ग्रामीण जनता को जागृत करने में संचार सुविधाओं ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गांवों में उपभोक्ता संस्कृति का विकास करने का श्रेय संचार क्रांति एवं मीडिया को जाता है, जिसके कारण ही ग्रामीण बाजारो में आधुनिक उपभोक्ता वस्तुओं की मांग में आश्चर्यचकित वृद्धि दिखाई दे रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब ग्रामीण संस्कृति में भी शहरों जैसी सुख सुविधाएं दिखाई पड़ने लगी है जो बदलते भारत की नई कहानी बयां कर रहे है।

ग्रामीण बाजार को गतिशील बनाने के लिये बैंकिंग चुनौतिया का सामना करना होगा। अभी भी बैंक एवं वित्तीय सेवाएं उस बाजार से दूर है। रिजर्व बैंक का अनुमान है कि अभी भी ग्रामीण भारत के 40 प्रतिशत लोगों तक कोई भी औपचारिक वित्तीय सेवा नहीं पहुंच पाई है। ग्रामीण बाजारों के विस्तार के साथ सरकार को भी जिम्मेदारी निभानी होगी कि ग्रामीण उपभोक्ताओं को शोषण से बचाऐं तथा गुणवत्ता नियंत्रण के लिये ग्रामीण बाजार नियामक आयोग बनाऐं और दूसरी ओर गांवों के स्थानीय लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देकर उन्हें ग्रामीण बाजार में बड़ी कम्पनियों से व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के लिये तैयार करें।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के हितों की रक्षा करके ही देश में स्वस्थ ग्रामीण बाजारों के विस्तार का मार्ग प्रशस्त होगा, जो देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में महत्वपूर्ण स्तम्भ सिद्ध होगा। भारत निर्माण कार्यक्रम भी अपने आप में विकास की समग्र क्रांति को समेटे ठोस योजनाओं को आत्मसात किये हुए योजनाओं का ऐसा समूह है जिसके द्वारा ग्रामीण भारत की तस्वीर बदलने में सार्थक प्रयास हो रहे है। निकट भविष्य में संचार क्रांति, सूचना प्रोद्योगिक एवं ग्रामीण बाजारों के आधुनिकीकरण से देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था स्वयं के दम पर खड़ी हो पायेगी और पूर्ण आत्मनिर्भरता को प्राप्त करके भारत को विकसित देशों की अग्रणी पंक्ति में स्थान दिलाने में कामयाब होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Indian Expresas May 01, 2013
2. Avadesah, K.S. & Satyaprakash P.(2005): Rural Marketing: Indian Perspective (Ist ed.), New age International Pvt. Ltd.
3. Hagargi, A.K.S., (2011): Rural market in India: Some Opportunitiesa and challengesa, International Journal of Exclusive Management Resaearch.
4. Economic Survey 2010-11
5. K.P.M. Sundaram: Indian Economy (2012)
6. http://www.ibef.org/economy/rural market.aspx

वित्तीय-समावेशन में लघुवित्त की भूमिका (भारत में गठित स्व-सहायता समूहों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. कविता भदौरिया *

शोध सारांश– वित्तीय समावेशन से तात्पर्य समाज के उपेक्षित, निम्न आय वर्ग के असंख्य लोगों को सस्ती लागत पर बैंकिंग सेवाये उपलब्ध कराना है। इसमें वृहद रूप से आय के साथ औपचारिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा बचत, बीमा, भुगतान सेवा उपलब्ध कराना भी शामिल है। इस हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से हाशिये पर चले गये लोगों को स्व-सहायता समूहों के माध्यम से संगठित कर ऋण तक उनकी पहुँच बनाना व बैंकिंग प्रणाली से जोड़ना है। भारत सरकार द्वारा स्व-सहायता समूह बैंक सम्पर्क मॉडल का शुभारंभ 1992 में हुआ। जिसमें स्व-सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गो के एक बड़े भाग तक अपनी सेवायें प्रभावशाली ढ़ंग से कम लागत पर पहुँचा सकते है। आज स्व-सहायता समूह बैंक सम्पर्क मॉडल, भारत सरकार बैंकिंग क्षेत्र, राज्य सरकारों, एन.जी. ओज व नाबार्ड से सहायता प्राप्त एक आंदोलन बन गया है। इस प्रकार स्व-सहायता समूहों के माध्यम से लघुवित्त के जरिये, सरकार वित्तीय समावेशन की दिशा में आगे बढ़ रही है।

शब्द कुंजी – स्व-सहायता समूह, वित्तीय समावेशन, नाबार्ड, एन.जी.ओज, लघुवित्त, गरीबीउन्मूलन, बैंकिंग, बचत, ऋण, समावेशी विकास

प्रस्तावना – प्रत्येक देश के आर्थिक विकास का आधार वित्त है। भारत में स्वतंत्रता के बाद से ही संस्थागत वित्त स्त्रोतों का काफी विस्तार हुआ है। वित्तीय समावेशन से तात्पर्य है समाज के उपेक्षित निम्न आय वर्ग के असंख्य लोगों को सस्ती लागत पर बैंकिंग सेवाऐं उपलब्ध कराना। इसमें वृहद रुप से साख के साथ औपचारिक वित्तीय संस्थाओं द्वारा बचत, बीमा, भुगतान सुविधाऐं उपलब्ध कराना भी शामिल है।

वित्तीय समावेशन में लघु वित्त की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। वित्तीय समावेशन अर्थव्यवस्था के समावेशी विकास का मूल यंत्र है। बिना समावेशी विकास के सुस्थिर अनवरत व सतत् विकास की कल्पना निरर्थक होगी। आज देश की सरकारों द्वारा विभिन्न योजनाओं में सतत् एवं समावेशी विकास पर बल दिया जा रहा है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिपत्र में त्वरित, समावेशी व सतत् विकास के लक्ष्य को हासिल करने में आने वाली चुनौतियाँ का ब्यौरा दिया गया है। योजनाकारों द्वारा बनाये गये दृष्टि पत्र में समावेशी विकास के अनेक उद्देश्यों में से एक निर्धन और कमजोर वर्ग के पैसा कमाने की क्षमता में सीधे तौर पर वृद्धि और संपूर्ण विकास प्रक्रिया की मुख्य धारा में सम्मिलित करने के लिये उनकी आजीविका का प्रबंध करने हेतु सरकार को विशेष कार्यक्रम चलाये जाने पर जोर दिया गया है।

केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा उठाये गये अनेक कदम सफल हो रहे है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये आवंटन भी बढ़ा है 12वीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों हेतु आवंटन भी बढ़ाया गया है। योजना पेयजल तथा स्वच्छता, ग्रामीण सड़कों, घरों के निर्माण तथा स्वसहायता समूहों को शामिल कर स्वरोजगार अवसरों को बढ़ाऐं जाने पर जोर दिया गया है। केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा ग्रामीण विकास की 200 योजनायें बनाई गई है, जिनमें भारत सरकार की स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में प्रमुख है। वर्ष 2012-17 की पंचवर्षीय योजना में महिलाओं द्वारा संचालित स्वंय सहायता समूहों को भी विशेष सहूलियते प्रदान की गई है। इन समूहों को अब 4 प्रतिशत की ब्याज दर पर 3 लाख रूपये तक के ऋण मिल पाना संभव होगा। साथ ही समय पर ऋण वापस कर देने वाले समूहों को 3 प्रतिशत छूट भी मिलेगी। यह सुविधा पहले चरण में देश के 150 जिलों के 600 ब्लॉकों में दी जाएगी।

अत: प्रस्तुत शोध पत्र में स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में गठित स्वसहायता समूहों की समावेशी विकास में भूमिका को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य –

1. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना पिछड़े व कमजोर वर्गो के लोगों के विकास में सहायक है।
2. स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में गठित स्व-सहायता समूहों से जुड़कर क्या पिछड़े वर्गो की महिलाओं का विकास हुआ है।
3. स्वर्ग जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में गठित स्व-सहायता समूह से जुड़कर महिलाओं की आत्म-निर्भरता, निर्णयन क्षमता व जीवन-स्तर में सुधार हुआ है।

उपरोक्त उद्देश्यों को लेकर शोध-पत्र बनाया गया है तथा भारत में स्व सहायता समूहों के जरिये लघु वित्त के माध्यम से समावेशी विकास की दिशा में बढ़ते प्रयासों को मूल्यांकित करने का कार्य किया गया है।

भारत में लघु वित्त की आवश्यकता – स्वतंत्रता प्राप्ति के 6 दशकों के बाद भी भारत में आबादी का लगभग दो तिहाई हिस्सा जो मुख्यतया गाँवों में निवास करता है अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने लिये निरंतर प्रयास कर रहा है। आज भी लगभग 30 करोड़ की आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। अशिक्षा, स्वास्थ्य व आवासीय सुविधाओं का अभाव तथा सस्ती साख की उपलब्धता का न होना ऐसी बाधक चीजे है। जो गरीब व्यक्ति के स्वावलम्बन के प्रयास को कुंठित एवं बाधित कर रही है। भारत में विश्व की 14 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या निवास करती है तथा विश्व के 28 प्रतिशत से भी अधिक गरीबों का निवास भी भारत में ही है। यह अनुमान है कि भारत में ग्रामीण निर्धनों की संख्या 170.5 मिलियन, शहरी निर्धनों की संख्या 49.6 मिलियन तक होगी और कुल मिलाकर भारत में 220.1 मिलियन लोग गरीबी की रेखा के नीचे पाये जायेंगे। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि अधिकांशत: ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे लोग, शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक निर्धन हैं या यो कहें की गरीबी की रेखा के नीचे निवास करने वाले अधिकतर लोग ग्रामों में निवास करते हैं। इनमें भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली गरीब महिलाओं की प्रस्थिति अत्यंत दयनीय है। अत: गरीबी के चक्रव्यूह से निकलने के लिये एवं परम्परागत प्रचलित सदूखोर व्यवस्था से बाहर निकलने के लिये यह जरूरी हो गया कि लघुऋण तक ग्रामीण गरीबों की पहुंच द्वारा साहूकरों एवं महाजनों के चंगुल से इनको (ग्रामीण गरीबों) को मुक्त किया सकता है। तथा समावेशी विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

*सहायक प्रध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बडवानी (म.प्र.) भारत

भारत में लघुवित्त की स्थिति – भारत ने गरीबी निवारण संबंधी कार्यक्रम को 5 वीं पंचवर्षीय योजना में अपनाया गया था लेकिन अभी तक जो स्थिति बनी हुई है उसमें काफी विरोधाभास है। जैसे – नेशनल सेंपल सर्वे आर्गेनाइजेशन के 61 वें दौर के आंकड़े बताते है कि भारत में गरीबी अब 25.15 प्रतिशत रह गई है। जबकि योजना आयोग के मुताबित 26 प्रतिशत लेकिन जीन जागलर ने सितम्बर 2006 में भारत के संबंध में संयुक्तराष्ट्र मानवाधिकार समिति को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में बताया है कि भारत के 30 प्रतिशत गरीब परिवार 2100 कैलोरी ऊर्जा के मानक के बजाय 1700 कैलोरी पर ही गुजर–बसर कर रहे है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में गरीबों को पर्याप्त कैलोरी ऊर्जा भोजन से प्राप्त नहीं हो रही है। अत: भारत की चिंता केवल आर्थिक विकास की नहीं होनी चाहिये बल्कि न्यायोचित विकास की होनी चाहिए। विकास के लिए आवश्यक है कि रोजगार व आय के स्तर में वृद्धि हो, जो छोटी–छोटी बचतों व विनियोग के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

भारत में 1990 के दशक से विकास संबंधी अवधारणा में अत्यंत परिवर्तन आये। यद्यपि लघुवित्त हमारे देश में वर्ष 1992 से ही नाबार्ड द्वारा सुनियोजित कार्यक्रम के रूप में चलाया जा रहा है तथा भारतीय रिजर्व बैंक समय–समय पर अनुदेश जारी कर के बैंको को इस कार्यक्रम में अपनी भागीदारी बढ़ाने के लिये प्रेरित करता रहता है। भारत में अधिकतम लघु ऋण कार्यक्रम समूहगत ढांचों के जरिये क्रियान्वित किये जा रहे है। जिन्हें स्व–सहायता समूह के नाम से जाना जाता है।

स्व–सहायता समूह हाशिए पर चले गए समान आर्थिक, सामाजिक पृष्ठभूमि के लोगों का एक समूह है, जो अधिकतर देश के अर्द्ध शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित होता है। महिलाओं के एस.एच.जी. एक गृह विकसित मॉडल है, जहां जाति, समुदाय व स्थानीय गतिविधि से जुड़ी हुई 10–20 महिलाऐं सदस्य बन सकती है। यह सरकार से मान्यता प्राप्त एक स्व–प्रतिबंधित संस्था होती है और इसके लिए कोई औपचारिक पंजीकरण अनिवार्य नहीं होता है। सदस्य स्वयं, स्व–सहायता समूह की मालिक, प्रबंधक और सदस्य होल्डर होती है। हर 5–10 स्व–सहायता समूह के लिए एक परामर्शदाता होता है जो उनकी गतिविधियों को देखता रहता है। आज स्व–सहायता समूह भारत सरकार, बैंकिंग क्षेत्र, राज्य सरकारों, एन.जी.ओज. व नाबार्ड से सहायता प्राप्त एक आंदोलन बन गया है।

भारत सरकार का बजट प्रस्तुतीकरण स्व–सहायता समूह, बैंक संयोजन पर जोर देता है। इन्डियन माइक्रो फायनेंस मॉडल जिसका औपचारिक रुप से शुभांरभ 1992 से हुआ था, नाबार्ड व भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गनिर्देशों पर आधारित है। जिससे स्व–सहायता समूह को समर्थन के बिना वाणिज्य बैंक उधार देने में सक्षम हुए है। सफलता की कहानी इस तथ्य से स्पष्ट है कि स्व–सहायता समूह बैंक संयोजन कार्यक्रम में 16 मिलियन से अधिक घरों को बैंक से काम–काज करने योग्य बना दिया है। इसमें ग्रामीण गरीबों को साहुकारों व महाजनों के चंगुल से आजाद कर ऋण की पहुँच घर की 'देहलीज' तक बनाई है।

इस प्रकार सरकार द्वारा निर्मित स्व–सहायता समूह बैंक सम्पर्क मॉडल के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के कमजोर वर्गों के एक बड़े भाग तक अपनी सेवाऐं प्रभावशील ढ़ंग से कम लागत पर पहुंचा सकते है, क्योंकि इसमें ऋण चक्र से संबंधित कार्यो की जिम्मेदारी बैंकों पर नहीं होने से व्यवसाय लागत में कमी आती है, जिसके कारण उनका मुनाफा बढ़ता है तथा समूहों में वसूली का दबाव होने के कारण, वसूली शत–प्रतिशत होती है और बैंक ग्रामीण क्षेत्र के ऐसे व्यक्तियों से जमा संग्रह कर पाते है, जो अभी तक समाज से अलग–थलग पड़े हुए थे।

भारत में कम से कम 70–80 लाख समूह बने हैं जिनके जरिये 7–8 करोड़ परिवारों तक ऋण की पहुँच हुई है। इनमें से लगभग 92 प्रतिशत स्व–सहायता समूह सिर्फ महिलाओं के हैं। भारत ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी लघु ऋण कार्यक्रमों में शामिल सदस्यों में से 80 से 85 प्रतिशत जनसंख्या महिलाओं की है। इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं का अल्प–साख से जुड़ना यह दर्शाता है कि महिलाओं द्वारा लिये गये ऋण का उपयोग उनकी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये होता है तथा वे ऋण वापसी के लिये भी पुरूषों की तुलना में अधिक अनुशासित व प्रतिबद्ध होती है। पिछले 15 वर्षो के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार 2007 के अंत तक 30.05 लाख स्व–सहायता समूह को 20.114 करोड़ राशि के कर्ज दिये जा चुके थे। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें 18 से 24 प्रतिशत ब्याज दर होने पर भी वह महाजन द्वारा लिये गये कर्ज के मुकाबले, कर्जदार को सस्ता पड़ता है और कर्ज अदायगी का रिकार्ड भी शानदार होता है। अधिकतर लघु ऋण कार्यक्रम महिला समूह के साथ ही काम कर रहे है और यही कारण है कि अधिकतर स्वसहायता समूह लघु ऋण के जरिये सिर्फ गरीबी उन्मूलन ही नहीं बल्कि अन्य व्यापक उद्देश्यों को पालने का दावा भी करते हैं। जिनमें एक प्रमुख उद्देश्य है महिला–सशक्तिकरण। यही कारण है कि अल्प–साख की आवश्यकता गरीबी उन्मूलन के लिये बहुत अधिक है ताकि देश की ग्रामीण–गरीब जनता के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाकर उनको विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके और सुस्थिर एवं अनवरत विकास किया जा सके। अमृर्त्य सेन का स्वामित्व तथा संसाधनों तक पहुँच का विचार उनके इसी सिद्धांत पर आधारित है कि आय का मूल्य तभी है जब वह व्यक्ति की क्षमताओं को बढ़ाती है तथा इससे समाज की क्रियात्मकता ज्ञात होती है। इसीलिए कहा जा सकता है कि व्यक्ति व समाज दोनों को ही आर्थिक लाभ का पूर्ण अवसर प्राप्त हो सके तथा दोनों अविरत स्थायी विकास की और अग्रसर हो सके।

वर्ष 2004–2005 में लघुवित्त कार्यक्रम को गति देने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक ने निम्नलिखित उपाय भी किये है।

1. लघुवित्त गतिविधियों में संलग्न गैर सरकारी संगठनों को संसाधन जुटाने के अतिरिक्त माध्यम के रूप में स्वचालित मार्ग के अंतर्गत, अनुमत अंतिम उपयोग के लिये वित्तीय वर्ष के दौरान 5 लाख अमेरिकी डॉलर तक का बाह्य वाणिज्यिक उधार ले सकने की अनुमति।
2. लघुवित्त संस्थाओं की ओर अधिक पूंजी आवश्यता को पूरा करने के लिये केन्द्र सरकार ने लघुवित्त विकास कोष की 100 करोड़ रू. की राशि को बढ़ाकर 200 करोड़ कर दिया और इस फंड का नाम बदलकर लघुवित्त डेवलपमेंट एंड इक्विटी फंड कर दिया लघुवित्त प्रणाली का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले कुछ अन्य प्रतिनिधियों को दिया गया।
3. रिजर्व बैंक लगातार इस प्रयास में है कि वित्तीय परिधि के बाहर रह गये अधिकाधिक लोगों को फायनेंसियल इंक्ल्यूजन के माध्यम से वित्तीय सेवाओं के दायरे में लाया जाना चाहिये।
4. स्वसहायता समूह बैंक– संपर्क मॉडल – यह लघु ऋण व्यवस्था के अंतर्गत भारत में विकसित किया गया मॉडल है। जिसके अंतर्गत बचत को प्राथमिकता प्रदान की गई है, जिसके अनुसार किसी भी समूह के अंतर्गत अपने ही द्वारा सृजित निधि की सहायता से ऋण संबंधी अनुशासन सीखने का अवसर मिलता है। बैंकों ने ऐसे समूहों को ऋण देना लाभप्रद कारोबार समझा है क्योंकि ये समूह किसी बैंक से ऋण प्राप्त करने से पहले ही अपनी स्वयं की बड़ी निधि तैयार कर चुके होते है।
5. अर्द्ध औपचारिक संस्थायें/गैर सरकारी संगठन/लघु वित्त संस्था थोक ऋण मॉडल (बल्क लेंडिग मॉडल) : इसके अंतर्गत गैर–सरकारी संगठन या लघुवित्त संस्था को निधि उपलब्ध कराई जाती है जो बाद में यही निधि ऋण के रूप में अपने सदस्यों को उपलब्ध कराते है। सिडबी, फ्रेंड्स ऑफ वीमेंस वर्ल्ड बैंकिग और राष्ट्रीय महिला कोष ने इस व्यवस्था को

प्रमुखता से अपनाया है। इन प्रयासों के चलते आज इस बात के बहुत से साक्ष्य है जो यह बताते है कि लघुवित्त कार्यक्रमों के अंतर्गत ऐसी क्षमता है जिसके द्वारा न्यायसंगत और उत्तरोत्तर एवं समावेशी विकास का मार्ग सुनिश्चित किया जा सकता है।

भारत में लघुवित्त की प्रगति – भारत में लघुवित्त की प्रगति को निम्न तालिका द्वारा देखा जा सकता है। **तालिका क्रं. 1:1 (पीछे देखे)**

तालिका के विवरण से स्पष्ट है कि 98-99 में भारत में सूक्ष्म ऋण से जुड़े स्व-सहायता समूहों की संख्या 32,995 अर्थात 0.38 प्रतिशत थी तथा इन समूहों को बैंक से प्राप्त ऋण की राशि मात्र 57.07 करोड़ रू. थी। प्रतिवर्ष धीरे-धीरे समूहों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। वर्ष 2006-07 के अंत तक स्व सहायता समूहों की कुल संख्या 25,50,000 हो गई अर्थात् समूह की संख्या में 28.64 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है। वर्ष 1998-99 से 2006-07 के मध्य समूहों की संख्या में 28.26 प्रतिशत परिवर्तन वृद्धि हुई है। एक ओर जहां स्व-सहायता समूहों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हुई है, वही इन समूहों को दिये जाने वाले बैंक ऋण की राशि भी 14320.00 करोड़ रूपये तक पहुँच गई है। समूह को दी जाने वाली बैंक ऋण राशि में वर्ष 1998-99 से वर्ष 2006-2007 के अंत तक 35.95 प्रतिशत वृद्धि देखी गई। अत: स्पष्ट है कि लघुवित्त की दिशा में भारत तेजी से विकास हो रहा है।

लघुवित्त के क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं का योगदान – लघुवित्त के क्षेत्र में विभिन्न संस्थाओं के योगदान को निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका क्रं. 1:2 (पीछे देखे)

तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि लघुवित्त प्रदान करने वाली संस्थाओं के द्वारा लाखो स्व-सहायता समूहों को, करोड़ो रूपये के ऋण-वितरित किये गये।

नाबार्ड – भारतीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा 1,649.00 लाख स्व-सहायता समूह से जुड़े लोगों को 11,397.00 करोड़ रूपये का ऋण वितरित किया गया है। इस प्रकार लगभग 90 प्रतिशत ऋण नाबार्ड द्वारा उपलब्ध कराया गया।

एस.एफ.एम.सी. – इस संस्था के द्वारा 26.25 लाख समूह से समबद्ध लोगों को 761.81 करोड़ रूपये का ऋण दिया गया है। इस प्रकार 6.07 प्रतिशत ऋण सिडबी फाउण्डेशन फॉर माइक्रो-क्रेडिट द्वारा उपलब्ध कराया गया है।

आर.एम.के. – इस संस्था के द्वारा 5.48 लाख समूह सदस्यों को 147.53 करोड़ रूपये ऋण राशि के रूप में उपलब्ध करवाये गये है। इस प्रकार राष्ट्रीय महिला कोष द्वारा 1.17 प्रतिशत ऋण उपलब्ध कराया गया है।

एफ. डब्ल्यू – इस संस्था के द्वारा 5.29 लाख समूह संबंद्ध लोगों 240.1 करोड़ रूपये की राशि ऋण के रूप में उपलब्ध करवाई गई है। अर्थात् इस संस्था द्वारा 1.91 प्रतिशत ऋण समूह से जुड़े लोगों को दिया गया है। उपरोक्त संस्थाओं में से सर्वाधिक ऋण नाबार्ड द्वारा स्व-सहायता समूह से जुड़े लोगों को दिया गया है। नाबार्ड एवं अन्य बैंकों ने मार्च 2007 के अंत तक 5.85 लाख स्व-सहायता समूहां को बैंक से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया था। इस प्रकार लघुवित्त प्रदान करने में उपरोक्त संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में लघुवित्त द्वारा गरीबी को कम करने और गरीबों को वित्तीय दायरे में लाने के प्रयास किये जा रहे है। ग्रामीण बैंक बांग्लादेश के जन्मदाता प्रोफेसर युनूस का कहना है कि लघुवित्त से गरीबी दूर की जा सकती है। उनका कहना है कि वे 2030 तक गरीबी को एक म्यूजियम कैद कर देंगे। लेकिन भारत के लघु ऋण के प्रदाता और बेसिक्स के संस्थापक विजय महाजन का कहना है कि गरीबी समाप्त करने में लघुवित्त की भूमिका बहुत सीमित है। प्रख्यात अर्थशास्त्री पिस्के का कहना है कि माइक्रो क्रेडिट गरीबों के लिये पैसे का उपयोग करने का पर्याप्त अवसर निर्मित कर सकता है ताकि वे अपनी आमदनी बढ़ा सकें। लेकिन हर लघु ऋण केवल अनुकूल परिणाम नहीं देता। अत: वित्तीय समावेशन में लघु-वित्त की महत्वपूर्ण भूमिका है। बैंक संयोजन कार्यक्रम का मूल्यांकन

नाबार्ड द्वारा कर्नाटक, आंध्रप्रदेश व तमिलनाडु राज्य में स्व-सहायता समूहों के अध्ययन से निम्न तथ्य सामने आऐ है।

1. स्व-सहायता समूहों के माध्यम से अल्प संसाधनों वाले क्षेत्रों की महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।
2. हाशिए पर गए लोगों में बचत की प्रवृत्ति का विकास हुआ तथा उनकी आय में बढ़ोतरी हुई।
3. समाज में अति निर्धन लोगों को इस योजना में जुड़ने का अवसर मिला।

इस प्रकार स्व-सहायता बैंक संयोजन कार्यक्रम भारत सरकार व राज्य सरकारों के सबसे प्रभावशील जन-जागरण कार्यक्रमों में से है। यह ऋण वितरण के प्रमुख स्तंभ है, ऋण वितरण में इनका 60 प्रतिशत से अधिक का योगदान है। इस कार्यक्रम में देश में प्रति घण्टे 400 महिलाऐं स्व-सहायता समूहों से जुड़ रही है। नाबार्ड के अनुसार 3 करोड़ से अधिक महिलाऐं 22 लाख से अधिक व्यवसायों से जुड़ी है, जिससे महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा को बल मिला है, वे आत्मनिर्भर हो रही है, अच्छी मजदूरी के लिए स्वयं आवाज उठाती है, व स्वयं को स्थापित करती है। वे अपने बच्चों की शिक्षा व पोषण की जरुरतों को पूरा कर पाती है तथा एक मंच पर एकत्र होकर आपसी बातचीत के द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान पाती है। उनमें निर्णय क्षमता का विकास हुआ है। ग्रामीण समस्याओं के समाधान में भी समूहों की सार्थक भूमिका रही है।

स्व-सहायता समूह गरीब महिलाओं के उत्थान व विकास में एन.जी.ओज. की भूमिका महत्वपूर्ण है, यह महिलाओं को वित्तीय रुप से स्वतंत्र व आत्मनिर्भर बनाने हेतु प्रयत्नशील रहते है तथा ग्रामीण महिलाओं को बैंक खाते खोलने व बच्चों की शिक्षा, घरेलू खर्च व किसी भी आपात स्थिति के लिए ऋण लेने में सक्षम बनाते है। सभी महिलाऐं सक्रिय रुप से ऋण लेने वाली नहीं होती है। एक अखिल भारतीय औसत बताता है कि महिलाऐं कम से कम 500 रुपये प्रतिमाह बचाती है। इस प्रकार एन.जी.ओज. भी महिलाओं की आय उनके सशक्तिकरण और कल्याण के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से स्व-सहायता समूहों के कार्यो को सरल और सुविधाजनक बनाते है।

दक्षिण भारत में माइराड़ा एक ऐसा एन.जी.ओ. है जो दक्षिण भारत के कुछ राज्यों के विकास कार्यक्रमों का प्रबंध करता है।

स्वसहायता समूह के लिए समस्याऐं – भारत सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से वित्तीय समावेशन किए जाने एवं गरीबी उन्मूलन की दिशा में निम्न समस्याऐं विकास में बाधक है।

1. समूह से जुड़ें लोगों में जागरुकता की कमी।
2. समूह में शिक्षा का अभाव।
3. समूह के कार्यकरण हेतु उचित प्रशिक्षण का अभाव।
4. समूहों के लोगों को बाजार का पूर्ण ज्ञान न होना।
5. विपणन का अभाव।
6. प्रबंधकीय योग्यता का अभाव।
7. समूहो में कौशल एवं क्षमता निर्माण की कमी।

सुझाव –

1. समूहों में जागरुकता का विकास किया जाऐ।
2. समूहों को उचित मार्गदर्शन, शिक्षा का विकास।
3. समूहों को समुचित प्रशिक्षण व्यवस्था।
4. समूहों को बाजार से अवगत कराया जाऐ।
5. समूहों के उत्पादित माल के विपणन हेतु प्रदर्शनी एवं मेलों का आयोजन।
6. समूहों की प्रबंधकीय योग्यता का विकास।

7. समूहों में कौशल एवं क्षमता-निर्माण प्रक्रियाओं को बढ़ाया जाऐ।

निष्कर्ष - निष्कर्ष के रुप में कहा जा सकता है कि स्व-सहायता समूहों के माध्यम से वित्तीय समावेशन के जरिए सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से हाशिए पर पड़े लोगों को गरीबी के दलदल से निकाल कर उनका सर्वांगीण विकास किया जाना कल्याणकारी राज्य की स्थापना में सहायक है। सरकार द्वारा जेड़र आधारित बजट, समाज में बढ़ती चेतना की देन है।

महिला स्वसहायता समूह विकास निधि के लिये 2012-13 में 200 करोड़ रूपये उपलब्ध कराते हुये इस निधि को बढ़ाकर 300 करोड़ रूपये कर दिया है। वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी ने 2012-13 का आम बजट पेश करते हुये कहा है कि यह निधि महिला स्व-सहायता समूह को बैंक ऋण उपलब्ध कराते हुये उनका सशक्तिकरण करेगी।

इस प्रकार स्व-सहायता समूहों के माध्यम से लघुक्ति के जरिए सरकार वित्तीय समावेशन की दिशा में आगे बढ़ रही है। विकास का यह जरिया तभी अनुकूल विकास कर पाऐगा जबकि समूहों के माध्यम से हमारी आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुरुप कृषि आधरित स्थानीय लघु व कुटीर उद्योगों का विकास किया जाए तथा पशुपालन, डेयरी, मत्स्य पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, बागवानी व खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए ताकि स्थानीय संसाधनों का समुचित विदोहन हो तथा स्थायी विकास को गति मिलें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. योजना अप्रैल 2012 - पेज क्रं. 26, महिला स्व-सहायता समूह विकास निधि का विस्तार
   538 योजना भवन संसद मार्ग, नई दिल्ली
2. The Lion, Lions Club International, March 2012 www.thelionindiamagazine.org महिला के स्व-सहायता समूह
3. योजना जून 2011, वित्तीय समावेशन वित्तीय गहनता एवं आर्थिक विकास, 538 योजना भवन संसद मार्ग, नई दिल्ली
4. योजना जनवरी 2012 त्वरित, सतत् व अधिक समावेशीय विकास 538 योजना भवन संसद मार्ग, नई दिल्ली
5. तथ्य भारत अक्टू 2008
6. मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसंधान जर्नल वर्ष 5 अंक 1, 2007
7. लघुवित्त योजना, जनवरी 2008

तालिका क्रं. 1:1

स्वसहायता समूह बैंक संपर्क कार्यक्रमों की प्रगति

वर्ष	लघुवित्त से जुड़े स्वसहायता समूहों की संख्या	प्रतिशत परिवर्तन	बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋण की राशि (करोड़ रूपये में)	प्रतिशत परिवर्तन
1998-1999	32,995	0.38	57.07	0.143
1999-2000	1,14,775	1.28	192.98	0.486
2000-2001	2,63,825	2.96	480.87	1.212
2001-2002	4,61,478	5.18	1026.34	2.587
2002-2003	7,17,360	8.05	2048.67	5.164
2003-2004	9,42,000	10.58	3240.38	8.168
2004-2005	16,18,476	18.18	6898.00	17.388
2005-2006	22,00,000	24.71	11398.00	28.732
2006-2007	25,50,000	28.64	14320.00	36.098
	8900909	100	39669.31	100

स्त्रोत - यलघु वित्त, जनवरी 2008 पेज क्रं. 30

तालिका क्रं. 1:2

लघुवित्त कार्यक्रमों के तहत प्रगति

संस्थाएँ	संबंद्ध लोगों की संचयी एसएचजी संख्या (लाख में)	प्रतिशत	ऋण व्यय (करोड़ रूपये में)	प्रतिशत
नाबार्ड	1649.00	98.97	11,397.00	90.83
एफएफएमसी	26.25	1.57	761.81	6.07
आर.एस.के.	5.48	0.32	147.53	1.17
एफ डब्ल्यू	5.29	0.31	240.1	1.91
कुल	1666.02	100	12,546.44	100

स्त्रोत : नाबार्ड, सिडवी फाउंडेशन फॉर माइक्रो क्रेडिट (एसएफएमसी), राष्ट्रीय महिला कोष (आरएमके) तथा फ्रेंड्स ऑफ वोमेन्स वर्ल्ड बैंकिंग (एफडब्ल्यूडब्ल्यूबी)

प्रो. अमर्त्य सेन का आर्थिक विषमता पर चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. प्रकाश चन्द्र रांका * रेखा मेहना * *

शोध सारांश – नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन को विशिष्ट महत्व एवं सम्मान प्रदान किये जाने का मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अर्थशास्त्र को मनुष्य के कल्याण का साधन बनाने के उद्धेश्य से जोड़ा और विकास के सिद्धांतों के साथ उन्होंने इसके व्यवहारिक पक्ष गरीबी और विषमता आदि की गणना और मापन को भी बहुत दूर तक विकसित किया है। सामूहिक चयन और समाज कल्याण के अर्थशास्त्र में प्रचलित विचारधाराओं को आर्थिक विषमता के व्यवाहारिक क्षेत्र से जोड़कर उन्होंने प्रथम बार एक ऐसे ढाँचें का निर्माण किया है जिसके आधार पर गरीबी की समस्या का निदान किया जा सकता है। प्रस्तुत पत्र में प्रो. सेन के आर्थिक विषमता संबंधी विचारों का मूल्यांकन किया गया है। आवश्यकताओं के कुछ लक्षणों को हम सहज भाव से पहचान सकते है किंतु इनमें अनेक ऐसी विशेषताएँ भी होती है, जिन्हें समझ पाना संभव नहीं होता। इसी कारण विभिन्न व्यक्तियों के बीच तुलना कर पाना अति कष्ट साध्य हो जाता है। समतावाद के कई स्वरुप विकसित हो गये है जैसे प्रायिकतावादी समतावाद, न्यूनतम के अधिकतमीकरण पर आश्रित समातवाद आदि। पूरी तरह न्यूनतम से समतापूर्ण वितरण ही उपयुक्तम वितरण होगा तथा समाज के पिछड़े वर्गो के उपभोग स्तर में सुधार का प्रयास करने से ही आर्थिक विकास का हल हो सकता है।

शब्द कुंजी – कल्याणकारी अर्थशास्त्र, विषमता, उपयोगितावद, क्षेमपरक लक्षण, पात्रता, पैरेटो कुशलता दक्षता, वस्तुपरक लक्षण, समतावाद

प्रस्तावना – 'प्रो. अमर्त्य सेन को कल्याणकारी अर्थशास्त्र के लिये वर्ष 1998 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अमर्त्य सेन नोबल पुरस्कार जीतने वाले पहले एशियाई और नोबल धारक छठें भारतीय है। '

नोबेल पुरस्कार की प्राप्ति के बाद अमर्त्य सेन का नाम विश्व प्रसिद्ध हो गया। प्रो. अमर्त्य सेन 1994 में अमेरिका आर्थिक संगठन (अएअ) के अध्यक्ष बनने वाले प्रथम भारतीय है एवं वर्ष 1986-88 में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संघ और भारतीय आर्थिक संघ के अध्यक्ष बनने वाले एकमात्र भारतीय है। प्रो. अमर्त्य सेन को 1999 में भारत रत्न से सम्मानित किया गया। इनको नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ एज्यूकेशन प्लानिंग एण्ड एडमिनस्ट्रेशन (न्यूपा) द्वारा 04 जुलाई 2011 को डी.लिट्. की उपाधि से सम्मानित किया गया है।

अमर्त्य सेन को वर्ष 1976 में महालनोनिस पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1990 में एग्नेली इंटरनेशनल प्राइस एवं 1990 में एलेन शॉन फेन्सटाईन वर्ल्ड हंगर एवार्ड प्राप्त हुआ। अमर्त्य सेन की अनेक पुस्तकें सिद्धांत रुप में प्रतिष्ठा पाकर अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रमों में सम्मिलित है। इनके द्वारा दिये गये सिद्धांतों पर आजकल कल्याणकारी योजनाएं बनाई जाती है। प्रो. अमर्त्य सेन ने अर्थशास्त्र को दर्शन तथा नैतिकता से जोड़कर आर्थिक अध्ययन को एक नया आयाम दिया है तथा समाज में फैली विषमताओं का व्यापक वैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

विश्लेषणात्मक अध्ययन – प्रो. अमर्त्य सेन ने अकाल संबंधी, गरीबी संबंधी, विषमता संबंधी एवं मानव संसाधन संबंधी विचारों पर अपने अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। प्रस्तुत पत्र में अमर्त्य सेन के आर्थिक विषमता संबंधी विचारों का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। विषमता शब्द अपने आप में असमानता को प्रकट करता है। विकसित एवं विकासशील सभी देशों में असमानताएं पाए जाती है। देश में व्याप्त असमानताओं को जानने के लिये प्रो. अमर्त्य सेन ने विषमता को अपने अध्ययन का केंद्र बिंदु बनाया। क्षेत्रीय विषमता, आय व धन का असमान वितरण, जातीय विषमता, लिंग, वर्ग, समुदाय आदि विषमताएं सदियों से चली आ रही है।

प्रो. अमर्त्य सेन ने अपने विषमता संबंधी अध्ययन का चिन्तन किया व तत्पश्चात यह पाया कि उपरोक्त विषमताओं का निवारण करके अथवा उन्हें कम करके हम व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि कर सकते है। उपयोगितावाद के संदर्भ में अमर्त्य सेन कहते है कि व्यक्तियों को प्राप्त उपयोगिता के योग को सामाजिक कल्याण का मापक माना जाता है। प्रो. सेन ने स्पष्ट किया कि समाज में कुल कल्याण को अधिकतम करने के लिये हमें विभिन्न व्यक्तियों को उनकी आय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को समान करना आवश्यक है।

विषमता की विशेषताएँ – अर्द्ध-विकसित देशों में विभिन्न प्रकार के अंतर पाये जाते हैं, लेकिन इन देशों में विषमता की एक आधारभूत समानता पाई जाती है। यद्यपि किसी एक देश को प्रतिनिधि अर्द्ध-विकसित देशों की संज्ञा देना कठिन है किंतु फिर भी कुछ ऐसे सामान्य लक्षणों को बताना संभव है जो कई अर्द्ध-विकसित देशों में आसानी से देखे जा सकते है। ये सामान्य लक्षण अर्द्ध-विकसित देशों में असमान अंशों में पाये जाते है। अर्द्ध-विकसित देशों में असमानता के लक्षणों को निम्न बिंदुओं में प्रदर्शित किया जा सकता है।

1. आर्थिक लक्षण
2. जनसंख्या संबंधी लक्षण
3. सामाजिक, राजनीति, सांस्कृतिक लक्षण
4. तकनीकी लक्षण
5. अन्य लक्षण

1. आर्थिक लक्षण – आर्थिक लक्षणों में निम्नलिखित लक्षण महत्वपूर्ण है – अर्द्ध-विकसित प्राकृतिक संसाधन, कृषि की प्रधानता और उसकी निम्न उत्पादकता, औद्योगीकरण का अभाव, प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर, निम्न जीवन स्तर, पूँजी की कमी, नियति पर निर्भरता और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रतिकूलता, बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी और छिपी बेरोजगारी, आर्थिक कुचक्रों की उपस्थिति, बाजार की अपूर्णताएं, अवसरों की असमानता, द्विंतीयक अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय आय का निम्न स्तर, उचित राजकोषीय नीति का अभाव, असंतुलित भुगतान संतुलन, आयातों की अधिकता एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में निर्यातों की प्रतिस्पर्धात्मक समस्या।

*प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत ** शोधार्थी (अर्थशास्त्र) राजीव गाँधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मदंसौर (म.प्र.) भारत

2. जनसंख्या संबंधी लक्षण –

अ. परिमाणात्मक लक्षण
1. जनसंख्या की अधिकता
2. जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर
3. आयु वितरण
4. सक्रिय जनसंख्या का भाग कम होना
5. ग्रामीण क्षेत्र की प्रधानता
6. जनसंख्या का कृषि पर अधिक दबाव

इ. गुणात्मक लक्षण
1. जीवनावधि की अल्पता
2. साहसी वर्ग का अभाव
3. निर्माण कौशल का निम्न स्तर
4. निम्न जीवन स्तर एवं स्वास्थ्य
5. व्यापक निरक्षरता
3. सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक लक्षण – अर्द्ध–विकसित मानव पूँजी, सामाजिक दोषों से ग्रस्तता
4. तकनीकी लक्षण
5. अन्य लक्षण :–

अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं एवं प्रतिकूलताओं में हम कुशल प्रशासन का अभाव, उत्पत्ति के साधनों में असमानता, स्थिर व्यावसायिक ढाँचें, दोषपूर्ण प्रशासनिक व मौद्रिक संगठन आदि को ले सकते है। कुशल अधिकारियों के अभाव में आर्थिक विकास के साधनों का दुरुपयोग होता है और राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध होती है। अर्द्ध–विकसित देशों में उत्पत्ति के साधनों में वांछित गतिशीलता नहीं पाई जाती। फलस्वरुप राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में अधिकतम उत्पादन संभव नहीं हो पाता। इन अर्थव्यवस्थाओं का व्यवसायिक ढाँचा प्राय: स्थिर रहता है। इस कारण भी उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता नहीं पाई जाती। परिणामत: न तो उद्योगों में विशिष्टीकरण ही हो पाता है और न ही देश आर्थिक विकास के पथ पर अग्रसर होता है।

अल्प विकसित देशों में राजस्व प्राय: अप्रत्यक्ष करों के माध्यम से प्राप्त होता है जिनकी प्रकृति अधोगामी होती है। आय के साधन के रुप में प्रत्यक्ष करों का महत्व कम होता है। इन देशों में प्रगतिशील करों का अभाव होता है। कर संग्रह विधि मितव्ययी नहीं होती और कर अपवचंन भी बहुत कम होता है। मुद्रा बाजार प्राय: अविकसित होते है। सरकारी मौद्रिक नीति परिस्थितिवश प्राय: इतनी दुर्बल होती है कि देश की अर्थव्यवस्था को समुचित ढंग से नियंत्रित नहीं कर पाती।

प्रो. अमर्त्य सेन के अनुसार प्राय: उपरोक्त सभी विशेषताएं अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्थाओं में न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती है। विश्व में समस्त अर्द्ध–विकसित देशों की सम्मिलित ढंग से एक प्रकार की विशेषताएँ बताना बहुत कठिन है क्योंकि विभिन्न देशों की आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक और कृषि संबंधी अवस्थाएँ एवं प्रवृत्तियां भिन्न भिन्न होती है। यद्यपि इन देशों में विकास की गति एवं पद्धतियाँ, जनसंख्या की विशेषताएँ और आंतरिक परिस्थितियाँ भी भिन्न भिन्न है तथापि इन भिन्नताओं के बावजूद अधिकांश परिस्थितियों में एक बड़ी मात्रा तक उनकी विशेषताओं में समानता पाई जाती है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर हम अर्द्ध–विकसित अर्थव्यवस्थाओं को विकसित अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न करके भली प्रकार पहचान सकते है।

विषमता के मापक – प्रो. अमर्त्य सेन ने विषमता संबंधी अध्ययन में विषमता के मापक को दो श्रेणियों में विभक्त किया है –
1. वस्तुपरक मापक विधियाँ
2. आदर्श मूलक मापक विधियाँ

दोनों विधियों के अध्ययन उपरांत प्रो. अमर्त्य सेन ने पाया कि प्रथम श्रेणी की वस्तु परक मापक विधियों में सामाजिक कल्याण के विचार का कोई प्रयोग नहीं किया जाता तथा द्वितीय श्रेणी में आदर्श मूलक मापक विधियों में स्पष्ट रुप से सामाजिक कल्याण के विचारों का उपयोग किया जाता है।

विषमता के प्रकार – प्रो. सेन ने 1970 के दशक में सर्वप्रथम स्त्री–पुरुष विषमता का अध्ययन करने का प्रयत्न किया तथा उन्होंने अपने अध्ययन के दौरान यह पाया कि जो व्यक्ति समाज के पिछड़े वर्गों का उत्थान करने की बात करते हैं, उन लोगों को ही लिंग आधारित विषमता जैसे प्रश्नों से कोई लगाव नहीं था। लेकिन अब इस मानसिकता में बदलाव आने लगा है। स्त्री पुरुष भेदभाव सहित अनेक विषमतापूर्ण मुद्दों का महत्व स्वीकार किया जाने लगा है। यद्यपि विषमता के इन कारकों पर ठीक से ध्यान देना जरुरी है क्योंकि इनकी स्वीकारोक्ति और इन पर ठीक से ध्यान देना ही भारत की जनसंवाद की व्यापकता और दूरगामिता को अनेक प्रकार से और समृद्ध बना रहा है।

अब हमारे सामने कुछ ऐसे प्रश्न भी आते है कि क्या ये विषमता वर्ग भेद, लिंग भेद और जाति भेद एक दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं। इस प्रकार इन विभेदों में बहुत व्यापक अंतर्निभरता पैदा हो सकती है। देखा जाये तो ये सभी स्त्रोत अपने आप में अलग–अलग भी बहुत महत्वपूर्ण होते है किन्तु हमें यह बात भी जानना चाहिये कि कैसे इनकी प्रतिपूरकता इनके अलग अलग दुष्प्रभावों को बढ़ाती है। सर्वप्रथम हम लिंग आधारित भेदभाव की बात करे तो उच्चवर्ग व पिछड़ा वर्ग की महिलाओं में भी भेद पाया जाता है। प्राय: यह देखा जाता है कि उच्च वर्ग में जन्म लेने वाली महिलाएं पिछड़े वर्गो में जन्म लेने वाली महिलाओं से हर क्षेत्र में आगे निकल जाती है व अनके बाधाएं निम्न वर्ग की महिलाओं को आगे बढ़ने से रोक देती है। यह दुखद तथ्य है कि निम्न वर्ग व महिला होना, ये दोनों लक्षण पिछडे वर्ग की महिलाओं को और अधिक निर्धनता की ओर धकेलते है।

दक्षिण एशियाई देशों में तो लिंग विषमता की बहुत ही दयनीय स्थिति दिखाई देती है। इनकी दयनीय स्थिति का पता हम महिलाओं की अप्रत्याशित व्याधि ग्रस्तता और मरणशीलता की दरों में हुई वृद्धि से लगाया जा सकता हैं। 'भारत, पाकिस्तान, बांगलादेश और श्रीलंका सभी में महिला प्रधानमंत्री पद को सुशोभित कर चुकी। यह एक ऐसी उपलब्धि है जो सयुंक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, इटली, जर्मनी और जापान आदि में न तो संभव हो पाई है और न ही निकट भविष्य में इसकी कोई संभावना दिखाई देती है।'

प्रो. अमर्त्य सेन ने स्त्री–पुरुष असमानता के विभिन्न स्वरुपों में विद्यमान व्यापक अंतरों पर विचार व्यक्त किया है। विषमता के इन स्वरुपों के निर्धारण की प्रक्रिया को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है :–
1. जीवन धारणा की विषमता
2. जन्म दर की विषमता
3. सुविधा की उपलब्धता में विषमता
4. स्वामित्व विषमता
5. पारिवारिक दायित्वों और हितलाभों में विषमतापूर्ण भागीदारी
6. पारिवारिक हिंसा और शारीरिक उत्पीड़न

कुशल कल्याण विविधताएँ – इस बिंदु में हम आय और वस्तुओं को अपने कुशल श्रम का मौलिक आधार मानते है। किंतु आय के स्तर व वस्तु समुच्चय विशेष से लाभांवित हो पाने की क्षमता हमारी अनेक निजी एवं सामाजिक सहायक कारकों पर निर्भर करती है। हमारी वास्तविक आयों और हित लाभों को अनेक कारक प्रभावित कर सकते है –

1. वैयक्तित्व विषमताएँ
2. पर्यावरण की विविधताएँ
3. सामाजिक वातावरण में परिवर्तन –
4. सम्बन्धवाची संसृष्टियों में अंतर –
5. परिवार में आन्तरिक आवंटन वितरण–

अभी कुछ समय से प्रकाश में आ रही 'सामाजिक पूँजी विषयक रचनाएँ' तो यहाँ तक सुझा रही है कि सार्वजनिक सुविधाओं के साथ साथ सामुदायिक संबंधों की प्रकृति का भी यहाँ बहुत महत्व हो सकता है। हम यदि जनांकिकीय आयाम की बात करें तो लिंगधारित विषमता न केवल मरणशीलता में अंतर के परम्परागत स्वरुप में प्रकट नहीं होती बल्कि एक नया रुप भी धारण कर रही है। कन्याओं को जन्म लेने से पहले ही मार दिया जाने लगा है। इस प्रकार की जन्म क्रम विषमता अनेक अभिभावकों की इच्छा का परिणाम है।

मापन के प्रकार – प्रो. अमर्त्य सेन ने अपने अध्ययन में बताया है कि विषमता का मापन किस प्रकार किया जाये ? मापन कार्य अनेक स्तरों पर हो सकता है लेकिन किस व्यक्ति की स्थिति अत्याधिक खराब है तथा किसकी कम खराब इन बातों को मापने में कठिनाई आती है। उन्होंनें एक अंतराल पैमाने का प्रयोग करने की बात कही। इस पैमाने में अनुपात का कोई अर्थ नहीं होता परंतु अंतरों का अनुपात महत्वपूर्ण होता है। उपयोगिता विश्लेषण में यह अंतराल पैमाना ही गणनावाची पैमाना कहलाता हैं। उपयोगिता विश्लेषण में इससे भी अधिक लचीले पैमाने क्रमिकतावाची पैमाने का नाम दिया जाता है। इस विधि में अंकों का क्रम महत्वपूर्ण होता है। प्रो. अमर्त्य सेन ने क्रमिकतावाची पैमाने के निकट भी मापन की एक और विधि बतलाई हैं, जिससे अंकों का प्रयोग किये बिना विषमता का मापन किया जाता है।

गरीबी और असमानता के मापदण्ड – गरीबी और असमानता एक सापेक्ष भाव है, जिसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन होता है, किंतु लोगों के जीविकोपार्जन से संबंधित क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके अमीरी और गरीबी के बीच एक संभावित सीमा–रेखा खींच सकते है। कुल गरीबी सूचक स्तर इस प्रकार है –

1. आय–व्यय का स्तर
2. उपभोग और पौष्टिकता का स्तर
3. भूमि– जोत स्तर
4. रोजगार स्तर
5. धन एवं शक्ति संकेन्द्रण

कार्य आवश्यकताएँ और विषमता – प्रो. अमर्त्य सेन की विषमता की अवधारणा मुख्यत: आय व धन के वितरण से संबंधित है। किसी समाज में आय एवं धन का वितरण समान रुप से हो रहा हो तो वहां विषमता की अवधारणा का कोई औचित्य ही नहीं रहता है। वर्तमान में प्रत्येक देश चाहे विकसित हो या विकासशील, आर्थिक, सामाजिक एवं अन्य दृष्टि से उनमें अनेक क्षेत्र उन्नत एवं पिछड़े हुए प्रदेश होते ही है। यहां अनेक प्रकार की विषमताएं विद्यमान होती है।

प्रो. अमर्त्य सेन ने विषमता से जुड़ी हुई अनेक मान्यताओं का अध्ययन किया तथा उन्होंने पाया कि व्यक्तियों के कार्य या सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में उनके योगदान उनकी आवश्यकताओं तथा समाज में व्याप्त विषमताओं का अध्ययन किया जाना चाहिये।

प्रो. अमर्त्य सेन ने वितरण के निरुपण की दो धारणाएँ बतलाई है, प्रथम आवश्यकता पर निर्भरता, द्वितीय पात्रता पर निर्भरता। प्रो. अमर्त्य सेन ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा बनाम चिकित्सा बीमा को भी विषमता का एक बिंदु माना है। अनके अर्थशास्त्रियों ने चिकित्सा सुविधाओं के सार्वजनिक सेवा के स्वरुप के औचित्य पर गहन चिंतन किया है। यदि एक बीमार व्यक्ति पर अधिक खर्च करके उसे स्वस्थ कर दिया जाये तो उस व्यक्ति की प्रभावी आय में वृद्धि होगी।

प्रो. अमर्त्य सेन नि:शुल्क चिकित्सा व्यवस्था के गुण दोषों का विवेचन नहीं करते बल्कि वे राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के माध्यम से चिकित्सा सुविधा के संगठनात्मक पहलूओं और उसमें निहित बड़े पैमाने की मितव्ययिताओं की संभावनाओं पर भी बात नहीं करना चाहते बल्कि वे तो सापेक्ष आवश्यकताओं से जुड़े मुद्दों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी करते है।

विषमता निवारण के उपाय – प्रो. अमर्त्य सेन के चिंतन का सम्मान करते हुए भारत सरकार देश की गरीबी ओर आर्थिक विषमता को दूर करने के लिये कृत संकल्प है। सरकार ने गरीबी की तस्वीर को पहचाना और गरीबी हटाओं 'का संकल्प लिया है। भारतीय इतिहास में अपने ढंग का यह पहला और महत्वपूर्ण संकल्प है और इसी नारे को साकार बनाने के लिये सरकार एक के बाद एक कदम उठा रही है एवं पंचवर्षीय योजनाओं को इसी रुप में ढालने का प्रयत्न किया गया है कि वह गरीबी और असमानता को दूर करने वाली तथा देश को आत्म निर्भरता की सीढ़ियों पर चढ़ाने वाली सिद्ध हो। फिर भी गरीबी और असमानता को कम करने की दिशा में निम्नांकित कदमों को उठाना आवश्यक है –

1. निजी सम्पत्ति की सीमा का निर्धारण
2. उत्तराधिकार की समाप्ति की ओर कार्यवाही
3. प्रगतिशील करारोपण में ओर अधिक सुधार
4. एकाधिकारी प्रवृत्ति पर नियंत्रण
5. न्यूनतम व अधिकतम मूल्य निर्धारण
6. अनार्जित आयों पर उच्च दर से करारोपण
7. निजी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण
8. सामाजिक सुरक्षा सेवाओं का विस्तार
9. काम की ग्यारंटी
10. अधिक संतानोत्तपत्ति पर नियंत्रण
11. उत्पादन व बचत दर में वृद्धि
12. रोजगार बाहुल्य कार्यक्रम पर जोर
13. समृद्ध वर्गो द्वारा त्याग

निष्कर्ष – इस प्रकार प्रो. अमर्त्य सेन ने मूल सिद्धांतों के गणितीय निर्माण और विकास के साथ साथ उन्होनें इसके व्यावहारिक पक्ष – राष्ट्रीय आय, नौकरियाँ, विषमता और गरीबी आदि की गणना और मापन को बहुत दूर तक विकसित किया है। विषय के मूल सिद्धांतों को तकनीकी और गैर तकनीकी दोनों ही ढंग से बहुत सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। यह वह बीजरुपी आधार है जिस पर उनके कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विशाल वटवृक्ष खड़ा है। विकासशील देशों के लिये प्रो. अमर्त्य सेन के विचार और उन पर आधारित योजनाएँ विशेष महत्वपूर्ण है तथा वर्तमान सन्दर्भ में भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. योजना, जनवरी 1999, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. सेन अमर्त्य, 2008, 'आर्थिक विषमता', राज्यपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
3. ईयर बुक, 2012।
4. सेन अमर्त्य, 2010, 'आर्थिक विकास और स्वातंत्रय', राज्यपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
5. सेन अमर्त्य, 2010, 'भारतीय अर्थतंत्र इतिहास और संस्कृति', राज्यपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

जल संकट एवं जल संसाधन प्रबंधन - भारत के संदर्भ में

डॉ. शक्ति जैन *

प्रस्तावना - जल ही जीवन है, जल है तो कल है, जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, यदि जल न होता तो सृष्टि का निर्माण भी संभव नहीं हो पाता, जल इस सृष्टि की जीवनधारा है। जल एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिसका महत्व इसी बात से समझा जा सकता है कि बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ नदियों के तट पर ही बसी हैं तथा मनुष्य की जीवित रहने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है उस आक्सीजन पैदा करने के लिए जल की भी आवश्यकता होती है। पृथ्वी पर जल प्रचुर मात्रा में है परंतु सिर्फ जल का होना पर्याप्त नहीं है इसका स्वच्छ होना स्वस्थ जीवन के लिए जरूरी है। वर्तमान में जलसंकट एक वैश्विक समस्या है अत: जल के संबंध में दो दृष्टिकोणों से अध्ययनआवश्यक है एक तो स्वच्छ पेयजल प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध कराना एवं दूसरा जल की बढ़ती माँग को उसकी आपूर्ति के बराबर करने के जल संरक्षण व जल संसाधन प्रबंधन करना प्रत्येक देश का विचारणीय विषय है।

जल की वैश्विक उपलब्धता - पृथ्वी पर जल प्रचुर मात्रा में है तो पृथ्वी का तीन चौथाई हिस्सा जलाच्छादित है अर्थात पृथ्वी के 70 प्रतिशत भाग पर जल है। (दुनिया में पानी की उपलब्धता 142 करोड़ घन मिली है तथा भारत देश में प्रतिव्यक्ति पानी उपलब्धता 15 लाख 45 हजार लीटर है।) पानी की उपलब्धता 142 करोड़ घन कि.मी. है परंतु स्वच्छ जल की मात्रा 2.5 प्रतिशत ही है शेष जल लवणीय होने के कारण न तो मानव द्वारा निजी उपयोग में लाया जा सकता है और न कृषि कार्य में ही उपयोग लाया जा सकता है एक नये सर्वे के अनुसार 1 प्रतिशत पानी ही धरती का पीने योग्य है इस एक प्रतिशत का 70 प्रतिशत हिस्सा खाद्य पदार्थों के उत्पादन में उपयोग हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को यह जानना आवश्यक है कि किन खाद्य व उपयोगी वस्तुओं को बनाने में कितना पानी खर्च होता है जिसे निम्न चित्र द्वारा जाना जा सकता है।

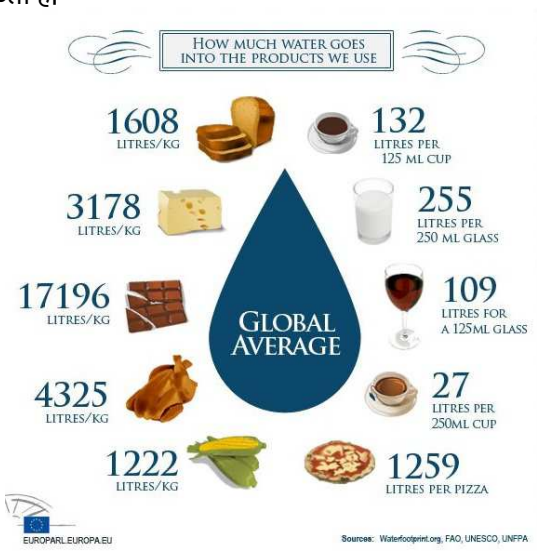

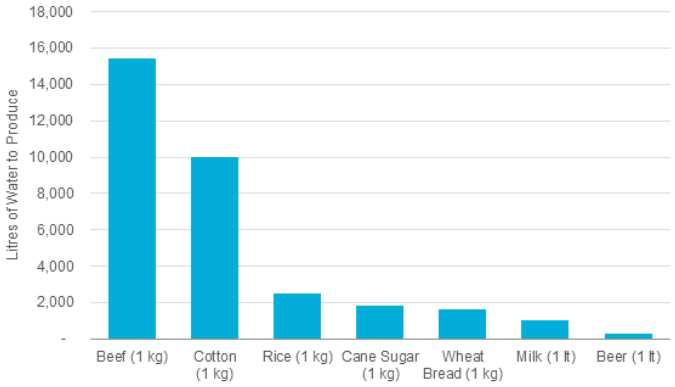

विश्व की निरंतर बढ़ती जनसंख्या के लिए स्वच्छ पेयजल एवं बढ़ता हुआ पानी का उपयोग एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आ रहा है। विश्व में जनसंख्या और जल का वितरण असमान है किनलैण्ड, कनाडा, न्यूजीलैंण्ड, ब्रिटेन और जापान जैसे देश जल से समृद्ध है वहीं भारत मैक्सिको, बेल्जियम, सूडान जैसे में जल की कमी है विश्व की लगभग एक चौथाई आबादी स्वच्छ पेयजल से वंचित है। विशेषज्ञों के अनुसार वर्ष 2025 तक वैश्विक जल की माँग 56 प्रतिशत बढ़ जायेगी जो वर्तमान में उपलब्ध जल की कुल मात्रा से भी अधिक होगी।

भारत देश के जल की उपलब्धता - भारत देश का क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग कि.मी. है संपूर्ण विश्व में जल उपयोग में भारत का चीन के बाद दूसरा स्थान है प्राचीन समय में भारतीय उपमहाद्वीप को सबसे अधिक जल समृद्ध क्षेत्र माना जाता था परंतु आज भारत देश भी जल संकट से जूझ रहा है इसका कारण देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए जल की उपयोग मात्रा का बढ़ना है कुल उपभोग की दृष्टि से भारत विश्व में सबसे बड़ा वाटर फुट प्रिंट रखता है। भारत में लोग जल उपभोग के लिए वर्षा जल, भूगर्भीय जल, नदियाँ व जल के अन्य परंपरागत स्रोतों पर निर्भर करते हैं भारत देश में सकल वर्षा जल 4000 अरब घन मीटर है वार्षिक वर्षा औसतन 1170 मि.मी. है तथा क्षेत्रवार असमानता है। चेरापूँजी में 11000 मि.मी. वार्षिक वर्षा होती है वहीं राजस्थान के जैसलमेर जैसे क्षेत्रों में वर्षा की वार्षिक औसत मात्र 100 से 120 मि.मी. के बीच है। भारत देश में अमेरिका की औसत वर्षा से छह गुनी अधिक वर्षा होती है परंतु इसके अनिश्चित वितरण और सही प्रबंधन न हो पाने के कारण जल संकट से जूझना पड़ता है। वर्षा से जो जल एक वर्ष में प्राप्त होता है उसका मात्र 28 प्रतिशत ही उपयोग हो पाता है। वर्षा जल के अतिरिक्त भारत देश में नदियाँ भी जल की प्रमुख स्रोत हैं किंतु देश की 90 प्रतिशत से भी अधिक नदियाँ ऐसी हैं जिनमें बहाव रूपी जल की उपलब्धता मात्रा चार माह तक ही रहती है। केन्द्रीय जल आयोग के आँकड़ों अनुसार भारत में प्राकृतिक जल संसाधन के रूप में नदियों का वार्षिक अप्रवाह लगभग 1869 घन कि.मी. है इसमें से 690 घन कि.मी. ही जल का उपयोग हो पाता है। नदियों का

*प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

प्रदूषित हो जाना भी जल संकट का एक कारण है नदी के अतिरिक्त परंपरागत जल स्रोत, कुओं, हैण्डपंपों आदि की उपेक्षा एवं उचित रख रखाव न होने के कारण सीमित हो रहे हैं। इसके बावजूद भी 18.2 प्रतिशत जनसंख्या जल के लिए कुऐं पर निर्भर है तथा 1.2 प्रतिशत जनसंख्या अन्य पारंपरिक जल स्रोतों पर निर्भर करती है भारत देश में स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता बड़ी समस्या है जिसे इन आँकड़ों के द्वारा देखा जा सकता है भारत में 19.2 करोड़ परिवारों में से –

करोड़ परिवार	प्रतिशत में	पेयजल उपलब्धता
7.5	39	घर के भीतर पेयजल
8.5	44.3	परिसर के निकट
3.2	16.7	घर में दूर से पानी लाना पड़ता है

भारत में जल स्रोत में 170 करोड़ घन मीटर भूजल का भंडार है लगभग 80 प्रतिशत से अधिक पानी की आपूर्ति भूजल से ही होती है इसका उपयोग कृषि कार्यों में बहुत अधिक किया जा रहा है। केन्द्रीय भूजल बोर्ड के अनुसार 265 लाख हेक्टेयर मीटर भूजल का दोहन प्रतिवर्ष कर सकते हैं भूजल का उपयोग सिंचाई कार्य, घरेलू कार्य व औद्योगिक क्षेत्र में होता है। भूजल का अत्याधिक दोहन से भूजल का स्तर निरंतर गिरता जा रहा है लगभग 1 से 3 मीटर जलस्तर प्रतिवर्ष निरंतर गिर रहा है जबकि पुनर्भरण का प्रतिशत दोहन की तुलना से कम है। केन्द्रीय भूजल बोर्ड के द्वारा विभिन्न राज्यों में कराये गये सर्वे में आया है कि इन राज्यों में भूजल स्तर 20 सेमी प्रतिवर्ष की दर से गिरावट आयी है। भारत देश में भूजल का कोई कितना दोहन कर सकता है इस संबंध में कोई कानून नहीं है जबकि अन्य देशों में इस संबंध के कानून बने हुए हैं।

जल संकट वैश्विक समस्या – जल संकट व जल प्रदूषण एक वैश्विक समस्या है वैश्विक जल संकट के परिप्रेक्ष्य में जनवरी 2004 में नई दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में विश्व में जल के सार्वभौतिक तथा विवेक सम्मत उपभोग के लिए हुआ अंतर्राष्ट्रीय जल सम्मेलन विशेष महत्वपूर्ण रहा इस सम्मेलन में 76 देशों के 300 से भी अधिक वाटर वारियर्स ने भाग लिया इस सम्मेलन की मुख्य बातें थीं –

1. पेयजल मनुष्य का मौलिक अधिकार है तथा इस अधिकार का संरक्षण किया जाना चाहिए।
2. विश्व में किसी भी स्थान पर जल का निजीकरण नहीं किया जाना चाहिए।
3. प्राकृतिक जल स्रोतों का विवेकपूर्ण प्रबंधन किया जाना चाहिए।
4. प्रत्येक देश में सामान्य जल वितरण प्रणाली को प्रभारी बनाया जाये।
5. जल स्रोतों के दोहन तथा पेयजल वितरण को निजी हाथों में न दिया जावे।

इसके पहले भी कई अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जल संकट व प्रबंधन के संबंध में सम्मेलन हुए जैसे 1974 में संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य सम्मेलन में जल के उचित नियंत्रण व प्रबंधन पर विशेष जोर दिया, वर्ष 1976 में कनाडा के वेनक्यूवर तथा वर्ष 1977 में अर्जेंटीना के डेल प्लाटा में सुरक्षित पेयजल आपूर्ति की चर्चा हुई। 1981 से 1990 के दशक को अंतर्राष्ट्रीय पेयजल एवं स्वच्छता दशक के रूप में मनाया गया। 2003 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मीठे जल का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया। 2003 में जापान के क्योटो तथा 2009 में टर्की में आयोजित वर्ल्ड वाटर फोरम के अधिवेशनों में जल संसाधनों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया। भारत देश की इन सभी सम्मेलन में सहभागिता रही।

नवम्बर 2006 में दक्षिण अफ्रीका के केपटाउन में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा मानव विकास रिपोर्ट (HDR-2006) जारी की गई थी इस रिपोर्ट का केन्द्रीय विषय था – Beyond Scarcity Power, Poverty and the Global Water Crisis इस रिपोर्ट में था कि 21वीं सदी में मानव विकास का सबसे बड़ा संकट जल संकट से है। रिपोर्ट के अनुसार जल मानव की आधारभूत आवश्यकता है यह मूलभूत मानवाधिकार भी है प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन न्यूनतम 5 गैलन साफ पानी की आपूर्ति सुनिश्चित होनी चाहिए। गरीबों को यह नि:शुल्क प्राप्त होना चाहिए। प्रत्येक सरकार को कम से कम सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का एक प्रतिशत खर्च करना।

इसके बाद जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वच्छ पेयजल और साफ–सफाई को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने संबंधी प्रस्ताव 28 जुलाई 2010 को पारित किया गया। इस प्रस्ताव में यह कहा गया कि स्वच्छ एवं सुरक्षित पेयजल और साफ–सफाई बुनियादी–मानवाधिकार है जो जीवन के अधिकार का उपभोग करने के लिए जरूरी है। 121 देशों के समर्थन से यह प्रस्ताव पारित हुआ था।

जलवायु परिवर्तन व जल प्रदूषण समस्या को लेकर कई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन होते रहे हैं इन सम्मेलनो में भारत देश ने भी भाग लिया। भारत देश भी जल संकट को लेकर चिंतित है। जल संबंधी विभिन्न विषयों पर ध्यान देने उनसे निपटने, नीतियाँ तथा कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन तथा पूरे देश में व्यापक रूप से जागरूकता कार्यक्रम चलाने के उद्देश्य से वर्ष 2007 को **जल वर्ष** घोषित किया गया। इसके अंतर्गत जल संसाधनों का संरक्षण, जल प्रबंधन, जन जागरूकता आदि गतिविधियाँ संचालित की गयीं।

भारत देश में जल संरक्षण व जल प्रदूषण को दूर करने के लिए कई नीतियाँ बनायी गयी हैं जिनमें कुछ प्रमुख हैं –

राष्ट्रीय जल नीति 1987, जल संसाधनों को प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए गंगा कार्ययोजना (1985 से), यमुना कार्य योजना, राष्ट्रीय नदी संरक्षण कार्ययोजना (1995 से), राष्ट्रीय झील संरक्षण कार्ययोजना आदि, राष्ट्रीय जल नीति (2002), 1990 में गठित राष्ट्रीय जल बोर्ड, राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय (एन.आर.सी.डी.), भूजल के कृत्रिम पुनर्भरण की सलाहकार परिषद (2006), गहरे कुओं के जरिये भूजल के कृत्रिम पुनर्भरण की योजना, भूमि जल संवर्द्धन और राष्ट्रीय जल पुरस्कार (2007), मिशन क्लीन गंगा (2009), जल संचयन एवं संवर्द्धन परियोजना आदि हैं।

भारत सरकार के केन्द्रीय मंत्रीमण्डल द्वारा 6 अप्रैल 2011 को राष्ट्रीय जल अभियान को स्वीकृति दी गई थी यह भारत सरकार का एक बहुत महत्वपूर्ण अभियान है जिसके अंतर्गत निम्न पाँच लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है –

1. सार्वजनिक क्षेत्र में जल का एक व्यापक डाटाबेस तैयार करना।
2. जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का आंकलन करना।
3. आम जनता और राज्यों को जल संरक्षण के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित करना।
4. जल संचयन हेतु जलाशयों के स्तर को बढ़ाना।
5. जल के उपभोग की प्रभाव क्षमता को 20 प्रतिशत तक बढ़ाना।

भारत में जल संकट – भारत देश में बढ़ता औद्योगीकरण, कृषि पर निर्भरता बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता नगरीकरण आदि के कारण जल की खपत निरंतर बढ़ रही है इससे जल संकट भी निरंतर बढ़ रहा है एक भारतीय नागरिक एक वर्ष में औसतम 470 घन मीटर जल का उपयोग करता है वर्ष 1955 में मीठे पानी की प्रति व्यक्ति वार्षिक उपलब्धता 5277 घन मीटर थी जो वर्ष

1990 में घटकर 2464 घन मीटर रह गयी है वर्तमान में यह उपलब्धता प्रति व्यक्ति 2000 घन मीटर वार्षिक हो चुकी है। वर्ष 2025 तक प्रति व्यक्ति वार्षिक जल की उपलब्धता घटकर 1000 घन मीटर होने की संभावना है इसका मतलब यह है कि पीने के पानी से लेकर अन्य दैनिक उपयोग तक के लिए पानी की कमी हो जायेगी। सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता न रहने पर खाद्य संकट भी उत्पन्न हो जायेगा।

जल संकट की समस्या कोई ऐसी समस्या नहीं है जो मात्र एक दिन में ही उत्पन्न हो गई हो बल्कि धीरे-धीरे बढ़ती हुई इस समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। जल संकट की समस्या ज्वलंत है जिस ग्रह का 70 प्रतिशत भाग जल से घिरा हुआ है वहाँ स्वच्छ जल की उपलब्धता एक बड़ा प्रश्न है। जल संकट का अर्थ केवल इतना ही नहीं कि सतत दोहन के कारण भूजल स्तर लगातार गिर रहा है बल्कि जल में शामिल होता घातक रासायनिक प्रदूषण, भविष्य में स्वच्छ पेयजल पानी की उपलब्धता की कमी, जल संरक्षण व जल संचय के प्रति जागरूकता की कमी भी जल संकट का कारण है।

जल संरक्षण एवं जल संचय के उपाय – देश में जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने पर स्वच्छ पेयजल का अभाव भारत देश की ही नहीं संपूर्ण विश्व की समस्या है स्वच्छ पेयजल का अभाव कई समस्यायें सामने लेकर आता है जिनमें प्रमुख रूप से जलजन्य रोग से ग्रसित लोगों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। दूषित जल का सीधा प्रभाव मानव जीवन पर पड़ रहा है। पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों की मौत का सर्वाधिक जिम्मेदार कारण दूषित जल ही है। युद्ध सहित सभी तरह की हिंसाओं से मरने वाले लोगों से कहीं ज्यादा लोग हर वर्ष असुरक्षित पानी पीने से मर जाते हैं। दुनिया में होने वाली कुल मौतों में 30 प्रतिशत मौते अस्वच्छ जल और सफाई के अभाव के कारण होती हैं एक रिपोर्ट के अनुसार 15 प्रतिशत बच्चे डायरिया के कारण असमय मौत के शिकार हो जाते हैं दूसरे शब्दों में प्रत्येक 15 सेकेण्ड में एक बच्चा दूषित जल का शिकार होता है।

जल जीवन का आधार है यदि हमें जीवन को बचाना है तो जल संरक्षण और जल संचय एवं जल प्रबंधन के उपाय अमल करना होंगे। उन्हें एक कानून व नीति के अंतर्गत देश के प्रत्येक नागरिक को अपनी जिम्मेदारी व कर्तव्य समझते हुए मानना होगा। जल के स्रोत सीमित हैं नये स्रोत हैं नहीं, इसलिए जल स्रोतों का संरक्षण एवं जल का संचय जलसंकट को सुलझाने में सहायक हो सकता है इसके लिए निम्न उपाय सहायक हो सकते हैं।

- सर्वप्रथम जल संचय के प्रयोग को प्रोत्साहित करना होगा जितना पानी प्रकृति से लिया उसे लौटाना होगा जल संचय के लिए वर्षा जल सबसे अच्छा तरीका है। वर्षा जल में 6.95 पी.एच. मान का पानी मिलता है तथा वर्षा जल को पानी की गुणवत्ता के मामले में आदर्श माना जाता है तथा जमीन में पानी कम होने से क्लोराइट की मात्रा बढ़ती है उसे वर्षा जल संरक्षण से दूर किया जा सकता है मात्र एक घंटे का वर्षा का पानी उतारने पर सूख चुके हुए ट्यूबवेल में फिर से पानी आने लगता है। वर्षा जल संरक्षण जल संचय के लिए रेन वाटर हार्वेस्टिंग सबसे अच्छा उपाय है वर्तमान में अंधाधुंध विकास और बढ़ते शहरीकरण से धरती का अधिकांश हिस्सा पक्का हो चुका है इसके चलते बारिश का जल स्वत: रिसकर धरती की कोख में नहीं पहुँच पाता है जिससे भूजल स्तर में निरंतर गिरावट आ रही हैं रेन वाटर हार्वेस्टिंग के द्वारा कृत्रिम तरीके से इस बारिश के पानी को धरती के अंदर पहुँचाते हैं जिससे भूजल स्तर ऊपर उठता है इस तरह शहरी, ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा जल संरक्षण का उपाय अपनाकर गिरते भूजल स्तर को रोकना एवं उसे बढ़ाया जा सकता है, जल की गुणवत्ताा में वृद्धि की जा सकती हैं मृदा अपरदन रोकने में सहायक तथा यह बहुत सरल उपाय भी है रेन वाटर हार्वेस्टिंग की कई विधियाँ हैं जैसे नलकूपों द्वारा रिर्चाजिंग, खाई बनाकर रिसाव टैंक, सरफेस रनऑफ हार्वेस्टिंग आदि है। इस तरह वर्षा जल संचयन के प्रति नागरिकों को इस उपाय को अपनाने के लिए बाध्य किया जा सकता है अर्थात् एक ठोस योजना जिसके अंतर्गत हर गाँव एवं शहर में वर्षा जल संचय की व्यवस्था की जाए।
- परंपरागत कुंए और तालाबों की सफाई, मरम्मत करवाना चाहिए।
- चौड़े पत्तो वाले पेड़ों और सब तरह की मिली-जुली हरियाली भूजल के रूप में जल संरक्षण के लिए एक अच्छा उपाय है।
- उचित फसल चक्र का अपनाना जिससे जमीन का भूजल स्तर बढ़ सकते तथा विभिन्न फसलों के लिए पानी की कम खपत वाले तथा अधिक पैदावार वाले बीजों के लिए अनुसंधान को बढ़ावा देना।
- कोई भी बड़ी परियोजना लगाने से पहले वहाँ के जल स्रोतों और भूजल स्तर का आंकलन अनिवार्य हो।
- अत्यधिक जल दोहन रोकने लिए कड़े कानून बनाए जाए जिसमें सजा का भी प्रावधान रखा जाये।
- नदियों के मीठे जल का अधिक से अधिक उपयोग हो सके इसलिए जितनी भी नदियों के संबंध में योजनायें चल रही हैं उनको अच्छी तरह से लागू हो।
- वर्तमान में एन.आर.सी.पी. केन्द्र आयोजित राष्ट्रीय नदी संरक्षण योजना को केन्द्र व राज्य सरकारें मिलकर चलाती रही हैं देश में एन.आर.सी.पी. के तहत 20 राज्यों के 166 शहरों में 37 प्रमुख नदियों को चिह्नित कर प्रदूषित भागों में प्रदूषण कम करने का कार्य चल रहा है। एन.आर.सी.पी. के तहत इन परियोजनाओं के लिए 4,39,183 करोड़ रूपये अनुमोदित किये गये हैं। एन.आर.सी.पी. का मुख्य नदियों में पानी की गुणवत्ता में सुधार के लिये प्रदूषण निम्नीकरण संबंधी कार्य किये जाते हें ताकि पानी नहाने के योग्य हो। इसमें अपशिष्टों को नदी में बहाने से रोकना, उसे शोधन के लिए भेजना, नदी तट पर खुले में शौच पर रोक लगाने के लिए सस्ते शौचालय की व्यवस्था करना, शवों की अंत्येष्ठि के लिए बिजली शवदाह गृह की व्यवस्था, स्नान के लिए घाटों में सुधार, सौंदर्यीकरण के कार्य करना तथा लोगों के बीच प्रदूषण के प्रति जागरूकता फैलाना आदि शामिल हैं। इस उपाय से नदियों को प्रदूषण मुक्ति करने में सहायता मिल रही है।
- आस्ट्रेलिया में एक विद्धान सोवरगर ने जिंदा जल नामक पुस्तक लिखी उनके अनुसार हर जगह का पानी जिंदा नहीं रहता है जैसे नल के अंदर गया हुआ पानी स्वच्छ रूप से खासकर पहाड़ी नदी में बहने वाले जल की अपेक्षा कम स्वच्छ होता है क्योंकि वह पानी पहाड़ों से टकरा-टकराकर अपने को स्वच्छ रखता है और उसी पानी को जीवंत कहा जाता है, गतिमान जल ही स्वच्छ है, जीवित है।
- जितनी आवश्यकता हो उतना जल का उपयोग प्रत्येक देश करें तो जल संकट कम हो सकता है।
- जल संबंधी विवाद जो देश के अंदर राज्यों में हो रहे हैं उनका शीघ्र ही निपटारा हो।
- जनसंख्या नियंत्रण होना अत्यधिक आवश्यक है।
- प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शैक्षिक पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से जल संकट व संरक्षण के उपायों से संबंधित अध्याय सम्मिलित करना। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर समय-समय पर जलसंकट विषय पर कार्यशाला, सेमिनार का आयोजन आदि।

- अधिक से अधिक वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करना। वृक्षारोपण जल संरक्षण को सबसे सस्ता व अच्छा उपाय है।
- तालाब, नदी, समुद्र में कचरा नहीं फेंकना यह जागरूकता जल प्रदूषण को कम कर सकती है।
- घर की सफाई के लिए जिन रासायानिक द्रव्यों का इस्तेमाल करते हैं वे जलस्रोतों पर भूमि में मिलकर उन्हें दूषित करते हैं इसी तरह कृषि उत्पादन में प्रयुक्त रासायनिक खाद पानी को दूषित कर रहे हैं भूमि की उर्वराशक्ति कम हो रही है पानी में रहने वाले जीव-जंतु विलुप्त हो रहे हें इन सभी को देखते हुए रासायनिक द्रव्यों व खाद की जगह उनके विकल्पों (सिरका, नींबू, खाने का सोडा, जैविक खाद) के प्रयोग को बढ़ाकर जल प्रदूषण कम कर सकते हैं।

वर्तमान में जल प्रदूषण व भारत की नदियों की दुर्दशा देखकर ही वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने प्रथम दिन ही जनता से प्रथम वादा किया गंगा को साफ करने का जो एक अच्छा प्रभावी कदम जल प्रदूषण रोकने का हो सकता है। गंगा नदी के अतिरिक्त भारत देश की सभी नदियों का पानी औद्योगीकरण, शहरीकरण, अशिक्षा, जागरूकता की कमी से प्रदूषित है। सेन्ट्रल पॉल्यूशन कंट्रोल बोर्ड (सीपीसीबी) ने 2013 में एक रिपोर्ट में बताया कि देश की 445 बड़ी-छोटी नदियों में से आधी से अधिक प्रदूषित हैं इन सभी में प्रदूषण का स्तर इतना अधिक है कि इनका पानी पीने योग्य क्या नहाने योग्य भी नहीं बचा है। यमुना में आक्सीजन न के बराबर है इसलिए एक्सपर्टस ने इसको मृत घोषित कर दिया है, गोमती नदी, चंबल भी देश की प्रदूषित नदियों में है। नर्मदा, ताप्ती, क्षिप्रा, महानदी इन्द्रावती, कालीसिंध, माही, वर्धा आदि नदियाँ भी लगातार प्रदूषित हो रही हैं।

इसी संबंध में जल संरक्षणकर्ता अनुपम मिश्र कहते हैं - 'नर्मदा के कुछ हिस्सों को छोड़ दें तो देश की लगभग सभी नदियाँ कम-ज्यादा प्रदूषित हो चुकी हैं। सिर्फ गंगा पर ध्यान गया है सिर्फ ध्यान देने से कुछ नहीं होने वाला, नदियों की सफाई, उनमें पैसा बहाने से नहीं, पानी बहाने से होगी।

'सिर्फ पैसा बचाने से नदियाँ बच जाती तो यह काम पहले ही हो चुका होता' क्योंकि कई योजनाओं व कई करोड़ रूपये लग जाने पर भी ये योजनायें सफल नहीं हो पा रही हैं। इसलिए इसमें जनता की सहभागिता आवश्यक है। जनता को जागरूक करना होगा। यदि नदियों की स्थिति नहीं सुधरेगी तो वर्ष 2028 तक 25 प्रतिशत तक देश की कृषि कम हो जावेगी। हमें जितना पानी नदी से लिया उतना ही लौटाना होगा। नदियों की सफाई से भूजल स्तर गुणवत्ता में सुधार होगा, ईको सिस्टम, सुधरेगा, जलजनित रोग कम होंगे, विलुप्त होने की कगार पर पहुँचे जलीय जंतुओं के साथ अन्य जंतु भी बचे रहेंगे।

निष्कर्ष - जल प्रदूषण, गिरता हुआ भूजल स्तर, ये दोनों समस्यायें सिर्फ भारत देश की नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व की हैं। भारत देश में बढ़ता औद्योगीकरण, उद्योगों और ऊर्जा की बढ़ती जरूरत, बढ़ता शहरीकरण बढ़ती जनसंख्या, कृषि पर अत्यधिक निर्भरता, जलवायु परिवर्तन, घटती मानसून वर्षा, वर्षा का असमान वितरण, आधुनिकतापूर्ण रहन-सहन आदि के कारण जल की खपत निरंतर बढ़ रही है इसके अतिरिक्त गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता व जागरूकता की कमी भी जल संकट के लिए जिम्मेदार है। अत: जल की महत्ता व उपयोगिता देखते हुए जल संरक्षण व जल संचय वर्तमान समय का महत्वपूर्ण विषय है। सिर्फ जल का होना ही पर्याप्त नहीं है इसका स्वच्छ होना भी स्वस्थ जीवन के लिए जरूरी है। प्रति वर्ष जल संसाधनों और उपभोक्ताओं के बीच माँग और आपूर्ति की दूरी बढ़ती जा रही है देश की राजधानी दिल्ली जो यमुना नदी के किनारे बसी हुई है जो एक गंदे नाले में बदल चुकी है दिल्ली में पानी समस्या दूर करने के लिए करोड़ों रूपये खर्च किये जाते हैं। दिल्ली की पानी की समस्या हल करने के लिए हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड की और देखना पड़ता है कैसी विडम्बना है कि दिल्ली यमुना नदी के किनारे बसी हुई है लेकिन पानी के लिए स्वच्छ पानी दिल्ली वासियों को नहीं मिल पा रहा हैं देश की आर्थिक राजधानी मुम्बई पानी के टैंकरों पर गर्मी में निर्भर हो जाती है। जयपुर से लेकर विसव तक हल्द्धानी से लेकर जामरानी तक, भोपाल से होशंगाबाद और इंदौर से लेकर माहेश्वर तक हर जगह स्वच्छ पानी के लिए समस्या है। इसका कारण है कि भारत देश में जल का उचित प्रबंधन की बहुत-बहुत आवश्यकता है। जल संबंधी नीति व कई योजनायें होने पर भी उनका सही अमल नहीं हो पाना भारत भविष्य के लिए खतरा हो सकता है। प्रत्येक नागरिक को जल संरक्षण एवं जल प्रदूषण की जानकारी देकर उन्हें जल का महत्त्व संबंधी शिक्षा देकर, जागरूकता की आवश्यकता है तभी जल संकट दूर हो सकता है।

प्रतिवर्ष 25 मार्च को मनाया जाने वाला अंतर्राष्ट्रीय जल दिवस एवं 5 जून विश्व पर्यावरण दिवस की जानकारी प्रत्येक नागरिक को हो तथा संकट व जल प्रदूषण के संबंध में हर विद्यालय, महाविद्यालय स्तर पर इस दिनों एक सफल कार्यशाला हो जिससे देश के प्रत्येक नागरिक को जल की उपयोगिता व महत्त्व को समझाया जा सके। जल संरक्षण से जुड़े विशेषज्ञ इस बात पर एकमत हैं कि इस मुद्दे को शिक्षा में जोड़ना जरूरी है। आम जनता की सहभागिता तब तक सुनिश्चित नहीं हो सकती जब तक वे नदी का महत्त्व न समझे, जल का महत्त्व न समझे।

पहले हम जल जैसे अनमोल प्राकृतिक संसाधन का उपभोग मात्र करते थे वहीं विकास की होड़ में व जनसंख्या के दबाव में जल का दोहन करने लगे तथा यह सब करते हुए जल स्रोतों के संरक्षण और रख रखाव पर ध्यान नहीं दिया गया। भूगर्भीय जल को रिचार्ज करने की जरूरत भी नहीं समझी। इसकी कारण जल संकट की समस्या से दुनिया का बड़ा हिस्सा जूझ रहा है। स्तंभकार स्टीवन सेलोमन ने अपनी पुस्तक 'वाटर' में यहाँ तक लिखा है कि दुनिया का सबसे विस्फोटक क्षेत्र पश्चिम एशिया में अगली लड़ाई पानी को लेकर ही होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ल्ड वाटर डेवलपमेंट की एक रिपोर्ट वाटरफार पीपुल, वाटर फार लाइफ का प्राकशन में विश्व के 122 देशों पर आधारित इस रिपोर्ट में कहा गया कि 60 देशों में लगभग 70 अरब लोग भविष्य में जल संकट का सामना करेंगे। स्वच्द्ध जल की दुर्लभता को ध्यान में रखकर संयुक्त राष्ट्र के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान भी कह चुके हैं कि पानी पर राष्ट्रों की बढ़ती प्रतिद्धंदिता हिंसक संघर्ष का कारण बन सकती हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि यदि पेयजल संकट और बढ़ा तो पानी को लेकर राष्ट्रों के मध्य हिंसा बढ़ सकती है। अत: जल संकट व जल प्रबंधन भारत देश के प्रत्येक नागरिक के लिए विचारणीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पर्यावरण, संचार शिक्षा एवं प्रबंधन - डॉ. एच.सी. जैन
2. पर्यावरण व चेतना - धनंजय वर्मा, 2004
3. पर्यावरण अध्ययन- म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
4. विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र - डॉ. वी.सी. सिह्ना, 2010
5. जनसंख्या विकास एवं पर्यावरण प्रदूषण की चुनौतियाँ - डॉ. जे.पी. मिश्रा, 2014
6. योजना पत्रिका - जुलाई 2010, जनवरी 2012
7. परीक्षा मंथन - पर्यावरण विशेषांक, 2013-14
8. पर्यावरण मित्र की वेबसाइट
9. दैनिक भास्कर समाचार पत्र, 1 जून 2014, 5 जून 2014
10. मानव पर्यावरण - इग्नू द्धारा प्रकाशित

भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्यागो की भूमिका का प्रभाव: विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. जयराम सोलंकी*

प्रस्तावना – उद्योग आधुनिक आर्थिक समाज की आधार शिला है। उद्योगों के अभाव में कोई देश अपनी आर्थिक प्रगति नहीं कर सकता। यदि किसी देश से उद्योगों को हटा दिया जाये तो उसकी स्थिति वैसी ही हो जायेगी जैसी कि एक रीढ विहिन मनुष्य की होगी। समर्थन में गॉरंबिल महोदय का कथन दृष्टव्य है: "The Industries are the backbone of modern economic society, without industries, a country has no existence and cannat fallow its economic devecopanent **

देश की अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व होता है, भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में जहाँ पुंजी का अभाव गरीबी और बेरोजगारी का साम्राज्य है वही कुटीर एवं लघु उद्योग आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सभी पहलुओं से औद्योगिक विकास आधारशिला है। भारत में परिचालन स्तर, प्रयुक्त तकनीक आदि की दृष्टि से उद्योगों के विभिन्न वर्गो में बराबर फेर–बदल होने से भारत में औद्योगिक मानचित्र लगातार परिवर्तित हो रहा है। अत: यहाँ उद्योगों के वर्ग–विभाजन का आधार भी समय समय पर बदलता रहा है।

कुटीर उद्योग का तात्पर्य – कुटीर उद्योग एक ऐसा उद्योग है। जो पूर्णत: अथवा प्रमुखत: परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्णकालीन अथवा अंशकालिन धन्धे के रूप में संचालित किया जाता है। कुटीर उद्योग में पुजी का विनियोग नाममात्र का होता है। उत्पाद प्राय: हाथ से किया जाता है। और शक्तिचालित यंत्रों का उपयोग अपेक्षाकृत कम होता है। ऐसे उद्योगों में वेतनभोगी श्रमिकों की प्रधानता नहीं होती है। क्योंकि ऐसे उद्योग एक परिवार के सदस्यों द्वारा प्रमुख या सहायक व्सवसाय के रूप में चलाये जाते है।

कुटीर उद्योगों की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है–

1. ये उद्योग पूर्णत: या मुख्यत: परिवार कि सदस्यों की सहायता से चलाये जाते है।
2. यह पूर्णकालीन या अंशकालीक व्यवस्था के रूप में चलाये जाते है।
3. इन उद्योगों में प्राय: परम्परागत विधियों से परम्परागत वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।
4. इनमें स्थानीय कच्चे माल व कुशलता का प्रयोग होता हैं।
5. इनमें प्राय: स्थानीय बाजार की मांग की शर्ते की जाती है।

कुटीर उद्योगों में सूत कातना, गुड़ बनाना, बीड़ी बनाना, रस्सी बनानाएंव चटाई बुनना, रंगाई और छपाई, हस्तशिल्प आदि को सम्मिलित किया जाता है।

लघु उद्योग की परिभाषा – लघु उद्योगों की परिभाषा समय–समय पर विभिन्न आधारों पर की जाती रही है।परन्तु फरवरी 1999 से लघु उद्योगों में उन सब कारखानों को शामिल किया जाता है। जिनमें 1 करोड़ रूपये तक स्थिर पुंजी का विनियोग हुआ है। सामान्य रूप से लघु उद्योगों की प्रमुख तथा विशेषताएँ है –

- ये उद्योग शक्ति –चलित मशीनों तथा उत्पाद की नवीनतम तकनीकों एवं विधियों का प्रयोग करते है।
- यह उद्योग किराये के श्रम का प्रयोग करते है अर्थात श्रमिक मजदुरी पर रखे जाते है।
- ये उद्योग बाजारों के लिए उत्पादन करने के साथ–साथ निर्मातोन्मुख वस्तुओं का भी उत्पादन करते है।
- ये उद्योग पर्याप्त मात्रा में पुंजी निवेश कर स्थाई रूप से कार्य करते है। विश्व: के प्राय: सभी देशों में भी जहाँ बड़े उद्योगों का बहुत अधिक विकास हुआ है। लघु उद्योगों के महत्व को स्वीकार किया जाता है। जापान जैसे औद्योगीकृत देश में भी हमें बड़े उद्योगों एवं कुटीर तथा लघु उद्योगों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। स्विजरलैण्ड की तो अर्थव्यवस्था ही कुटीर एवं लघु उद्योगों पर आधारित है डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के शब्दों में 'भारत गाँवों का देश है। अत: सरकार को संतुलित अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योग के विकास को सर्वाधिक महत्व प्रदान करना चाहिए।
- **महात्मा गांधी के अनुसार** ' भारत का मोक्ष उसके कुटीर उद्योग में निहित है' मोरारजी देसाई:–ऐसे उद्योगों से ग्रामीण लोगों को जो अधिकांश समय बेरोजगार रहते है, पूर्ण अथवा अंशकालीक रोजगार प्राप्त होता है।'

भारत में लघु उद्योगों का विस्तार:–प्राचीन काल से ही भारत में लघु उद्योगों का विशेष स्थान रहा है। यही कारण है, कि पंचवर्षीय परिभाषा में समय–समय पर परिवर्तन होने के कारण इन उद्योगों की दीर्घवधि प्रगति का अध्ययनकरना संभव नही है। उल्लेखनीय है, कि सन् –1991 में लघु उद्योगों के लिए अधिकत्तम निवेश की सीमा ३0 लाख रूपए थे। इसमें पुन: संशोधन किये गये तथा सन् 2005 मे लघु उद्योगों में निवेश सीमा (संयत्र एवं मशीनरी) 5 करोड़ रूपये कर दी गई। तालिका मे लघु उद्योगों क्षेत्र की वृद्धि को दर्शाया गया है।

तालिका–5

वर्ष	इकाइयों की संख्या (लाखों में)	उत्पाद (करोड़ में) (2001–02)	रोजगार	निर्यात (करोड़ में)
2002–03	109.49	3,06771	263.68	86013
03–04	113.95	336344	275.30	97644
04–05	118.59	372,938	287.55	124,417
05–06	123.44	478884	299.85	150242
06–07	128.44	471663	312.52	अनुपलब्ध
08–09	285.16	अनुपलब्ध	659.35	अनुपलब्ध

Source: economic survey. 2008.09

भारत में लघु उद्योगों का विस्तार – आर्थिक समीक्षा 2007–08, पृष्ठ 198 एवं भारतीय अर्थसास्त्र 2011–12, प्रतियोगीता दर्पण पृष्ठ 116। वर्ष 2002–03 में देश मे कुल लघु उद्योगों की संख्या 109.46 थी, जो

*अतिथि सहायक प्राध्यापक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सैंधवा (म.प्र.) भारत

बढकर 2008-09 में 285.16 लाख हो गई। इस प्रकार इन उद्योगों मे रोजगार के अवसरो में विस्तार के साथ-साथ निर्यात व्यापार भी बढा है।

उल्लेखनीय है, कि अनेक उद्योगों जैसे-तैयार वस्त्र, खेल का समान, चमड़ा व चमड़े से निर्मित समान, उनी कपड़ो, रसायनों व सहायक पदार्थो तथा इंजीनियरिंग वस्तुओं इत्यादि में लघु उद्योगों के निर्यातों मे काफी वृद्धि है। भविष्य में भी लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के निर्यात की बहुत अधिक संम्भावनाए विद्यमान है।इसके साथ ही लघु उद्योगों ही प्रमुख रूप से बेरोजगारी की समस्या के हल में महत्वपूर्ण सहायता दे सकते है। अल्प - रोजगार और मौसमी बेरोजगारी के समाधान में इनका योगदान विशेष रूप से महत्वपुर्ण है। ये उद्योग अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय एवं रोजगार बढाने आदि सभी क्षेत्रों मे महत्वपुर्ण योगदान दे रहे है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा वृहत उद्योगों के मध्य प्रतियोगिता का निवारण करने तथा उनमें समन्वय स्थापित करने के उपाय -

1. लघु उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान कर, कच्चा माल एवं सस्ते दर पर चालक शाक्ति उपलब्ध कराकर, ट्रेनिंग एवं तकनीकी ज्ञान प्रदान कर तथा करों में छुट देकर इन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने की स्थिति मे लाना चाहिए जिससे ये वृहतस्तरिय यंत्रीकृत उद्योगों की प्रतिस्पर्धा का सामना कर सके।
2. एक ही उद्योगों से सम्बधित कुछ प्रक्रियाऐं लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए कुछ प्रक्रियाए वृहद उद्योगों के लिए सुरक्षित रखी जाए, जैसे वस्त्र उद्योगों में कताई का कार्य बड़े उद्योगों को तथा बुनाई का कार्य लघु एवं कुटीर उद्योगों को सौपा जा सकता है।
3. एक निश्चित सीमा तक किसी वस्तु विशेष का उत्पादन बड़े उद्योगों के लिए सुरक्षित रखा जाए और उससे अधिक उत्पादन हो, वह लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा किया जाए, जैसे रंगीन धोतियों का उत्पादन । इसके विपरित कदम उठाने से भी परस्पर प्रतियोगीता का अंत किया जा सकता है।

निष्कर्ष-संक्षेप मे यह कहां जा सकता है कि लघु एवं कुटीर उद्योग बड़े पैमाने पर तत्काल रोजगार प्रदान करते है, राष्ट्रीय आय में अपेक्षाकृत अधिक न्यायपूर्ण वितरण का आश्वासन देते है, पुंजी एवं अन्य संसाधनों को प्रभावशाली ढंग से गति प्रदान करते है। इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए योजना आयोग की रिपोर्ट मे कहां गया है कि लघु एवं कुटीर उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग है जिनकी कभी भी उपेक्षा नही की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. पी.ड़ी. माहेश्वरी -भारतीय अर्थव्यवस्था
2. डॉ. जय प्रकाश मिश्र- कृषि अर्थसास्त्र
3. अनुपम गोयल- भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक समीक्षा
4. डॉ. शिवभूषण गुप्त:- कृषि अर्थशस्त्र
5. डॉ. अरूणा कुसमाकर:- व्यक्ति अर्थशास्त्र एवं भारतीय अर्थव्यस्था

****

संचार माध्यम : बदलता परिदृष्य

डॉ. प्रीति श्रीवास्तव *

शोध सारांश – संचार माध्यमों के विकास से समाज के हर एक क्षेत्र में परिवर्तन हुआ है। सामाजिक, शैक्षणिक साहित्यिक, नैतिक और बाजार इन सभी क्षेत्रों में सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। आज हम घर बैठे–बैठे शॉपिंग कर सकते हैं, इण्टरनेट के माध्यम से सोशल नेट वर्किंग साइट्स के माध्यम से अपनी बात हम पूरी दुनियाँ में फैला सकते है। शिक्षा के क्षेत्र में धूम मचा दी है। मानवीय संवेदनाएं संसार के एक कोने से दूसरे कोने में प्रकट हो जाती है और भावनाओं के इस समुद्र को उजागर करने में संचार आज हमारे सामने वरदान के रूप में प्रकट हो रहा है। 'ऑनलाइन ट्रेडिंग' पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो रहा है। व्यापारी वीडियो कॉन्फ्रेसिंग का भी व्यापार में सहारा ले रहे है। संचार का नैतिकता पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है।

शब्द कुंजी – संचार माध्यम, बदलता परिदृष्य, जनसंचार सामाजिक परिदृष्य, शैक्षिक परिदृष्य, ग्लोबल, विलेज बाजार परिदृष्य, साहित्यिक परिदृष्य, विज्ञापन, परिवर्तित नैतिक मूल्य, कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट, प्रिन्ट मिडिया।

प्रस्तावना – भारत में जनसंचार की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय पौराणिक साहित्य में इसके अगणित उदाहरण मिलते हैं। संजय महाभारत में सम्भवत: दूरदर्शन की भाँति ही किसी माध्यम से धृतराष्ट्र के समीप बैठकर उन्हें युद्ध के लाइव टेलीकास्ट का वर्णन सुनाते हैं, जिसे हम सभी दिव्य–दृष्टि नाम देते हैं। प्राचीन भारत में आधुनिक संचार माध्यमों की तरह सूचना संचार तंत्र की उपस्थिति का संकेत देती है। संचार माध्यमों की समाज में प्रभावी भूमिका के कारण आज ग्लोबल विलेज में सूचना के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में स्थान मिल रहा है।

सामाजिक परिदृष्य – आज के बदलते सामाजिक परिवेश में दूरसंचार के क्षेत्र में व्यापक बदलाव आया है। वर्ष 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा शुरू किये गये आर्थिक सुधार तथा 1997 में भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण के गठन से स्थिति बदली और दूरसंचार के क्षेत्र में निजी कम्पनियों में प्रवेश का रास्ता खुल गया। आज भारत में साढे चार करोड़ फिक्स लाइन फोन हैं, जिनके माध्यम से भार के लोग हर दिन एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। टेलीफोन के मुकाबले केबल टी.वी. को संख्या ज्यादा है। भारत में साढे छ: करोड़ घरों में केवल टी.वी. चल रहा है। आज संचार क्षेत्र के लगभग 70 % भाग पर निजी कम्पनियों का कब्जा है। आज बात यदि हम मोबाइल टैरिफ की करे तो वर्ष 1998 के मुकाबले आज यह 1/40 हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि निजी कम्पनियों में मची होड़ का फायदा सीधे उपभोक्ताओं को मिल रहा है और समाज में संचार क्षेत्र का विस्तार हो रहा है।

लोकतंत्र में हर व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने की पूरी आजादी है। आज हर व्यक्ति सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से अपनी बात कह सकता है। अन्ना के आन्दोलन को जनक्रांति का रूप देने में बड़ा योगदान इन सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भी रहा है। और वैसे भी इन सारी साइट्स के मुख्य यूजर तो युवा ही हैं और युवाओं को खुद से जोड़ने के लिए सेलिब्रिटीज ही नहीं बल्कि नेतागण भी कम्युनिकेशन की इस नई तकनीक से जुड़ने में कदम बढ़ा रहे हैं।

समाज में संचार माध्यमों से एक चेहरा यह भी सामने आया कि मोबाइल हैक करना, एमएमएस बनाना और भेजने या पासवर्ड हैक कर अश्लील एमएमएस करने की समस्या सामने आई हैं। वैसे संचार के नए रूप से जुडे अपराध से लडने के लिए कानून भी बनाया गया है।

शैक्षिक परिदृष्य – संचार ने आज शिक्षा के क्षेत्र में धूम मचा दी है। नये–नये संचार माध्यमों आज शिक्षाके क्षेत्र में आ रहे हैं। संचार में सबसे पहले शिक्षा के क्षेत्र में पत्रकारिता का आगमन हुआ। पत्रकारिता के अनेक रूप होते हैं। समय या अवधि के आधार पर दैनिक, साप्ताहिक पाक्षिक, मासिक एवं वार्षिक विषय के अनुरूप– साहित्यिक, धार्मिक, राजनैतिक, आलोचनात्मक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, व्यापार संबंधी, खेलकूद संबंधी, चलचित्र संबंधी। लिंग व आयु के वर्ग के आधार पर– बालभारत, युवाभारत, नारी जगत, विद्यार्थी जगत आदि। आगे चलकर संचार क्षेत्र में दूरर्शन, वीडियो, कम्प्यूटर और फिल्म आदि दृश्य संचार माध्यम के रूप में अवतरित हुए जो आज हमें शिक्षा के क्षेत्र में लाभान्वित कर रहे हैं। नेट के माध्यम से आज हम सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कम्प्युटर के माध्यम से गणित, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक राजनैतिक सभी विषय से सम्बन्धित जानकारी हमें प्राप्त होती है और हम इस जानकारी को कितने भी वर्षो बाद, किसी भी समय, प्राप्त कर सकते है। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में संचार माध्यम बदलते रहते हैं।

आज के युग में संचार माध्यम सबसे बड़ा माध्यम है, जिसके द्वारा आज मानवीय संवेदनाएँ संसार के एक कोने से दूसरे कोने में प्रकट हो जाती है और भावनाओं के इस समुद्र को उजागर करने में संचार आज हमारे सामने वरदान के रूप में प्रकट हो रहा है।

साहित्यिक परिदृष्य – संचार क्रांति और साहित्य के अन्त: सम्बन्ध पर विचार करते समय यह बात ध्यान रखें कि संचार का आदिम रूप स्वयं साहित्य है। संचार माध्यम का अर्थ मात्र सूचनाओं का संचार करना नहीं है। संचार का मतलब है मनुष्य के भावों विचारों संवेदनाओं और मानवीय क्रियाओं का व्यक्ति से व्यक्ति की तरफ संचार यहीं संचार सम्बन्ध है। संचार क्रांति का साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा यह जानने के लिए मुख्य संचार उपकरणों से किस तरह की संवृत्तियों का उदय हुआ। किस तरह साहित्य की धारणा बदली? और मौजूद संचार क्रांति के कारण किस तरह साहित्य और साहित्य रूपों का जन्म हुआ ? यह जानना समीचीन होगा।

बालकृष्ण भट्ट ने जुलाई 1881 के यहिन्दी प्रदीपय में लिखा– ' साहित्य जब समूह के हृदय का विकास है' बाद में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने माना, ' ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।' आचार्य रामचन्द शुक्ल ने

* अतिथि विद्वान (अर्थशास्त्र विभाग) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला – सागर (म.प्र.) भारत

लिखा– 'साहित्य जनता की चिन्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है इस प्रकार सामाजिक साहित्यान्दोलन के कारण साहित्यिक परिदृष्य बदलता रहा।'

बाजार परिदृष्य – जनसंचार माध्यम की बाजारवादी शक्तियों से प्रभावित होकर उन्हीं समाचारों को प्रमुखता दे रहे हैं जो बिकाऊ हैं। समाचार पत्र, पत्रिका, रेडियों, टेलीविजन और इंटरनेट आदि जनसंचार माध्यमों में विचार तंत्र गौण हो गया है तथा सूचनाओं का विस्फोट हो रहा हैं, भले ही वे निरर्थक और महत्वहीन हो। इस संदर्भ में डॉ. देवप्रकाश मिश्र का विचार है कि, आए दिन अखबारों एवं टी.वी. चैनलों द्वारा अपराध, ग्लैमर, भ्रष्टाचार और आंतकवादी घटनाओं को सनसनीखेज संवेदना के रूप में बेचा रहा है।

संचार क्रांति का सर्वाधिक प्रभाव घरेलू वस्तुओं के बाजार पर दृष्टिगोचर होता है। आज बाजार में वहीं वस्तु बिकती है जिसका जनसंचार माध्यमों से व्यापक प्रचार किया गया हो। बाजार की दिशा तय करने में विज्ञापनों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उत्तर आधुनिक प्रवृत्तियों के समायोजन के कारण विज्ञापन व दिखावे की बहुलता है। संक्रमण के दौर में बाजारवाद व खुलेपन की व्याप्ति पूरे समाज में दिखाई दे रही हैं। बाजारवाद के दौर में विज्ञापनों ने बाजार ही नहीं, अपना प्रभाव जमाने के लिए घर की रसोई, बेडरूम से लेकर बाथरूम तक अपनी सत्ता जमा ली है। स्वतंत्रता पूर्व के बाजारों में जहां छोटे दुकानदारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी, वहीं आज परिदृष्य बदल गया है और बड़े दुकानदार बाजार के नियंता बन गए है। शहरों में पैठ लगनी बन्द हो रही हैं, और शॉपिंग मॉल बनते जा रहे हैं। घरेलू वस्तुओं का बाजार भी मॉल पर केन्द्रित होता जा रहा है। बाजार के इस बदते स्वरूप ने छोटे दुकानदारों के समक्ष गहरा संकट खड़ा कर दिया है। सूचना संसाधनों में समृद्ध पूंजीपति वर्ग के आधिपत्य वाले बाजार की नई व्यवस्था ने मनुष्य को उपभोक्ता के रूप में स्थापित कर दिया है जिसकी संस्कृति यह है कि जो भी मिल जाए उसका उपभोग करें। बदले परिदृष्य में बाजार जाना पिछड़ेपन का प्रतीक बनने लगा है और ऑनलाइन खरीददारी को प्राथमिकता दी जाने लगी है।

संचार साधनों के विकास के कारण पूरा विश्व ऐसे बाजार में परिवर्तित हो गया है जहां कम्प्युटर, इण्टरनेट, ई–मेल और मोबाइल का प्रयोग करके व्यापारी एक स्थान से सुदूर देश में अपना व्यापार कर सकता है। ऑनलाइन ट्रेडिंग पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो रही है। सुदूर देश से ई–मेल पर आर्डर लिए और दिए जा रहे हैं। व्यापारी वीडियों काफ्रंसिंग का भी सहारा ले रहे है। कहा जा सकता है कि संचार क्रांति में बाजार पर व्यापक प्रभाव डाला है।

परिवर्तित नैतिक मूल्य –आज संचार क्रांति ने पूरे विश्व को दूसरे मानव के सामने खड़ा कर दिया है। कम्प्यूटर, नेटवर्क, प्रिन्ट मीडिया, फिल्म आदि का मानव विकास परिवर्तन के साथ साथ नैतिकता वर भी गहरा प्रभाव पड़ा है।

संचार माध्यमों के बदलते परिदृष्य ने नैतिकता पर बड़ा ही नकारात्मक प्रभाव डाला है। अश्लील चित्र, वीडियो, कथन, वाक्य आदि समाज में संचार साधनों के माध्यम से व्यापक रूप ले रहे हैं। जो विशेषकर युवा पीढ़ी के नैतिक मूल्यों का पतन करते हैं और धृणित कार्य करने को बढ़ावा मिलता है। मानव की नैतिकता का पतन देश के पतन का कारण बन सकता है। संचार क्रांति का यह बदलाव जो युवाओं को अपने चरित्र व संस्कार के विपरीत बनाती है। यह क्रांति आज हमारे समाज को नैतिक मूल्यों का पतन करने के जल की धारा है जो चरित्र और संस्कारों की आग को जलाने का काम कर रही है। राष्ट्र का विकास प्रगति एवं युवाओं को चरित्रवान एवं संस्कारवान बनाने की ही बातें पुरजोर तरीकों से कहीं गई है। संचार क्रांति व पश्चिमी सभ्यता से राष्ट्रवाद की भावना अब धीरे–धीरे युवाओं के दिलो–दिमाग से जाती दिखाई दे रही है। वे भ्रष्टाचार, लोभ व लालच की चार दीवारों में कैद होकर नैतिकता खो चुके है।

संचार क्रांति में परिवर्तन लाते हुए देश में नैतिक मूल्यों को बचाने के लिए अश्लीलता पर रोक लगाकर संचार माध्यम से जुड़ी ''नैतिक शिक्षा'' को वर्तमान में अनिवार्य किया जाए तथा संचार साधनों पर दिखाए जाने वाले अश्लील चित्र, वीडियो पर रोक लगाकर दण्ड व जुर्माना का प्रावधान बनाये जायें। संचार माध्यमों के द्वारा स्कूलों व कॉलेजों में भी नैतिक शिक्षाअनिवार्य की जाए।

निष्कर्ष – हम देखते हैं कि संचार क्रांति के समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार के भाव पडे है और उसके परिणाम भी स्पष्टत: दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु यह ध्रुव सत्य है कि य संचार प्रत्येक समाज की अनिवार्य जरूरत है। संचार के अभाव में न तो मानव समाज की स्थापना हो सकती है और न ही मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था संभव है। संचार के अभाव में व्यक्ति अपने तक ही सीमित रहेगा। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो गया है कि संचार के नकारात्मक परिणामों को कम करने की नई दिशाओं को खोजने का प्रयास किया जाए और सकारात्मक परिणामों को और भी बढ़ाने और प्रसारित करने हेतु कार्य किया जाएँ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारतीय इलेक्ट्रानिक मीडिया – डॉ. देवव्रत सिंह
2. जनसंचार के सिद्धान्त – डॉ. संजीव भानावत
3. सम्प्रेषण एवं संचार, संपादक– त्रिभुवननाथ शुक्ल, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, संस्करण– प्रथम 2011
4. जनसंचार एवं पत्रकारिता, प्रो. रमेश जैन, मंगलदीप पब्लिकेशन्स, जयपुर, संस्करण– प्रथम 2003

****

पर्यटन विकास की संभावनाऐं (कोटा जिले के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव*

शोध सारांश – *'राजस्थान के कानपुर'* एवं *'शिक्षा नगरी'* के नाम से विख्यात कोटा अब धीरे–धीरे पर्यटन मानचित्र पर छाने लगा है। हाड़ौती के लगभग सभी पर्यटन स्थलों का प्रवेशद्धार कोटा नगर ही है। कोटा नगर में देशी–विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के इतने प्रति महत्वपूर्ण स्थान हैं, कि अब राजस्थान में भविष्य के पर्यटकों का लक्ष्य एवं राहें कोटा नगर की ओर मुखातिब हो तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। प्रस्तुत शोध पत्र में कोटा जिले में पर्यटन विकास की विभिन्न संभावनाओं का विवेचन किया गया है।

प्रस्तावना – विश्व के पर्यटन मानचित्र में भारत एक महत्वपूर्ण देश बनने की स्थिति में है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री प. जवाहर लाल नेहरू का पर्यटन के सम्बन्ध में यह वक्तव्य 'हमें विदेशी दोस्त–पर्यटकों का स्वागत न केवल आर्थिक कारणों से करना चाहिए, क्योंकि वे विदेशी मुद्रा लाते हैं, बल्कि इसलिए भी क्योंकि इससे आपसी सूझबूझ तथा एक दूसरे के गुणों को बेहतर जाना जा सकता है, इस समय विश्व में इस आपसी सूझ बूझ से ज्यादा जरूरत किसी अन्य चीज की नहीं है। हालांकि हमारे लोग परम्परा से और आदत से विदेशी पर्यटकों के प्रति दयावान और नम्र होते हैं। वे उनका स्वागत करते रहेगे, मगर मैं, अधिकारियों तथा राज्यों व केन्द्र सरकारों से जुड़े तथा संबंधित लोगों से यह कहना चाहूंगा कि वे आगंतुकों के साथ नम्रता से पेश आए और उनका ख्याल रखें।' पर्यटन के भावी विकास के परिप्रेक्ष्य में आज भी सामयिक है।

'राजस्थान के कानपुर' एवं *'शिक्षा नगरी'* के नाम से विख्यात कोटा अब धीरे–धीरे पर्यटन मानचित्र पर छाने लगा है। हाड़ौती के लगभग सभी पर्यटन स्थलों का प्रवेशद्धार कोटा नगर ही है। कोटा नगर में देशी–विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के इतने प्रति महत्वपूर्ण स्थान हैं, कि अब राजस्थान में भविष्य के पर्यटकों का लक्ष्य एवं राहें कोटा नगर की ओर मुखातिब हो तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। पुण्य सलिला चम्बल नदी के तट पर अवस्थित कोटा नगर में ही नहीं वरन् जिले की परिधि एवं आसपास के क्षेत्रों में भी अनेक दर्शनीय स्थल हैं, जो पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र हैं। पुरा संपदाओं से कोटा जिला सर्वाधिक सम्पन्न यहाँ की ऐतिहासिक व अनमोल धरोहर के कारण है। यहाँ सैंकड़ों वर्ष पुरानी कलात्मक इमारतें और स्मारक जैसे गढ़ पैलेस, रंगबाड़ी का रंग महल, अभेड़ा महल, नांता महल, जंग मंदिर, क्षार बाग की छतरियाँ, घंटाघर, अबला मीणी का महल, रांवठा महल, सूरजपोल दरवाजा, महात्मा गाँधी भवन हैं। कोटा में चंबल, परवन, कालीसिंध, पार्वती और उजाड़ जैसी नदियों के साथ जुड़ा नैसर्गिक सौन्दर्य यहाँ की विशिष्टता और विलक्षणता को दर्शाता है। चम्बल उद्यान, हाड़ौती यातायात प्रशिक्षण पार्क, दरा अभयारण्य, कोटा सुपर थर्मल पावर परियोजना, कोटा बैराज आदि उद्यानों का प्राकृतिक सौन्दर्य देख पर्यटक गदगद हो जाते हैं। यही नहीं कोटा में अनेक ऐतिहासिक, प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण अनेक धार्मिक पर्यटन स्थल हैं, जो पर्यटकों को शान्ति और सुकून प्रदान करते हैं जिनमें मथुराधीश मन्दिर, गरडिया महादेव, कँसुआ का महादेव मन्दिर, अधरशिला एवं गोदावरी धाम, गेपरनाथ, चार चौमा का शिवालय, भीमचौरी, बूढ़ादीत का सूर्य मन्दिर, विभीषण मन्दिर, डाढ़ देवी माता मन्दिर प्रमुख हैं। यहाँ का *'दशहरा', 'न्हाण'* व *'होली'* भी देश ही नहीं वरन् विदेशी पर्यटकों को भी आकर्षित करते हैं।

कोटा जिले में पर्यटन के विकास की काफी संभावनाएं है। 700 वर्ष पुराने ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत का खजाना समेटे शहर के पुराने मंदिर, गढ़, हवेलिया छतरियाँ, शीश महल, झरोखे, म्यूजियम, दरवाजे और विश्व प्रसिद्ध भित्ति चित्र देशी.विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। कोटा जिले में कहीं सुरम्य वादियाँ तो कहीं मुकंदरा की खूबसूरत पर्वत श्रृंखलाओं को देखकर हाड़ौती में *'उत्तर भारत के केरल'* की तस्वीर उभर आती है। *हरे–भरे* खेतों की माटी में रची–बसी धनिये की महक तो कहीं सरसों की चमक ..... चम्बल की लहरों पर तैरता प्राकृतिक सौन्दर्य, कलरव करते अप्रवासी पंछी ..... कोटा जिले के आँचल पर फैले हुए ये अप्रतिम कुदरती नजारे देश–विदेश के पर्यटकों के लिये प्रतीक्षारत है। कोटा के आस पास समृद्ध विरासत का अकूत खजाना है, जिसे सवांरकर इसे *टूरिज्म के राष्ट्रीय मानचित्र* पर उभारा जा सकता है। कोटा की भौगोलिक बनावट इतनी सुंदर है कि एक छोर पर सदानीरा चम्बल की लहरों का सौन्दर्य सैलानियों का मन मोह लेता है, तो दूसरी तरफ शहर के हृदय स्थल में बने किशोर सागर व जगमंदिर, लक्की बुर्ज और छत्र विलास बाग इसे *'पर्यटन नगरी के सरताज'* का दर्जा दिला सकते हैं।(1) कोटा जिले में साहसिक खेल पर्यटन, वन्यजीव पर्यटन, हेरीटेज पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, पर्यावरण पर्यटन आदि के रूप में पर्यटन–विकास की अपरिचित संभावनाएं हैं। इन सभी के अन्तर्गत संभावनाओं के योजनाबद्ध विकास हेतु कार्य किया जाए तो यह कोटा जिले की अर्थव्यवस्था के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। कोटा जिले में पर्यटन की विभिन्न संभावनाओं को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है –

1) **साहसिक पर्यटन** – कोटा जिले में साहसिक पर्यटन की दिशा में अत्यधिक संभावनाएं इसलिए है, क्योंकि यहाँ पहाड़ भी है और नदियाँ भी हैं। यहाँ ट्रेकिंग, वाटर स्पोर्टस्, स्वीमिंग, रेपलिंग, एरो मॉडलिंग, बेलून राइडिंग आदि रोमांचक खेलों के विकास की संभावनाएं है। अत: साहसिक खेल गतिविधियों में रुचि रखने वाले पर्यटकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। साहसिक पर्यटन की दृष्टि से कोटा में चम्बल नदी व किशोर सागर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रावतभाटा से लेकर कोटा तक चम्बल एक पर्वतीय घाटी के बीच बहती है। इस स्थान पर चम्बल का बहाव प्राकृतिक नहीं वरन् मानव निर्मित है। यहाँ का मनोहारी दृश्य पर्यटकों को लुभाने एवं आनन्दित करने की पूर्ण क्षमता रखता है। यहाँ बोटिंग के प्रयास किये जा सकते हैं। इसके लिये

*व्याख्याता (अर्थशास्त्र) राजकीय महाविद्यालय कोटा (राज.) भारत

चम्बल नदी के तट पर आकर्षक घाट का निर्माण भी आवश्यक है। दूसरा साहसिक पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण किशोर सागर लम्बाई-चौड़ाई और गहराई के हिसाब से वाटर स्पोर्टस के लिए बेहद अनुकूल है। वर्ष भर इसमें कयाकिंग, वाटर स्कूटिंग, वाटर स्कीइंग, स्पीड बोट रिवर, राफ्टिंग, विड सार्फिंग आदि की जा सकती है। किशोर सागर की चार दीवारी सुधर जाए तो इसमें राज्य या राष्ट्रीय स्तर की तैराकी प्रतियोगिता हो सकती है। इससे साहसिक पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा। यही नहीं किशोर सागर के किनारों पर *कश्मीर के डल झील* की तर्ज पर *वुडन हाउस* बोट्स बनाकर सैलानियों को आकर्षित किया जा सकता है। यहाँ *गेम फिश* डालकर किनारों पर फिशिंग प्लेटफार्म बनाए जा सकते हैं ताकि पर्यटक प्लेटफार्म पर बैठकर फिशिंग का आनन्द ले। गेम फिश में गेम फिश को पकड़कर दुबारा पानी में छोड़ दिया जाता है। *बार्ज* चलाए जा सकते हैं, जिस पर परिवार के लोग एक साथ पिकनिक का लुत्फ ले सकते हैं। लक्की बुर्ज जहाँ चम्बल फेस्टिवल पर रेपलिंग जैसे साहसिक खेलों का आयोजन किया जाता है वहाँ से किशोर सागर तक रोपवे का निर्माण किया जा सकता है।(2) किशोर सागर के तटीय क्षेत्र को *मुंबई के मरीन ड्राइव* तथा प्रस्तावित *गौरव पथ को हैदराबाद के हुसैन सागर लेक* के चारों तरफ बने *नेकलेस रोड़* जैसा रूप दिया जावे तो किशोर सागर की सुन्दरता को चार चाँद लग जायेंगे। पर्यटन की दृष्टि से सरकार किशोर सागर पर ध्यान दे तो निश्चित रूप से यह साहसिक पर्यटन व वाटर स्पोर्ट्स का नया *डेस्टिनेशन* बन सकता है जिससे यहाँ देश-विदेश के पर्यटकों के आगमन से स्थानीय लोगों के आय व रोजगार में वृद्धि भी होगी।

2) **पर्यावरण पर्यटन –** कोटा जिले में हरियाली से अच्छादित नैसर्गिक सौन्दर्य व चंबल नदी का अथाह जल पर्यटकों का स्वागत करता प्रतीत होता है। कोटा से 35 किमी. दूर जवाहर सागर क्षेत्र में चम्बल की *ग्रीन वैली, वाइल्ड लाइफ*, 200 फीट गहरी चट्टानें, *फेटम गुफाएँ* और फ्रुट बेट व *वल्चर्स की नेस्टिंग* पर्यावरण पर्यटन को आमंत्रण दे रही है। चम्बल नदी के बीच दो सुंदर टापू हैं। *टाइटेनिक आईलैण्ड* के नाम से जाना जाने वाला यह आईलैण्ड 200 फीट लम्बा और 25 फीट चौड़ा है। जवाहर सागर से 8 किमी. दूर जहाँ एक ओर चंबल नदी का संगम होता है, उसी जंक्शन पर यह आईलैंड खड़ा है। इसका एक चट्टानी सिरा आगे से ऊँचा उठाकर एक आकर्षक हट बनाई गई है। चंबल की लहरों के बीच हरे-भरे टापू पर सैलानी प्राकृतिक नजारों का आनन्द ले सकते हैं। इस *पैराडाइज टापू* पर कैपिंग एडवेंचर स्पोर्ट्स स्पेशल क्रूज की सुविधा उपलब्ध करा दी जाए तो यह पर्यावरण पर्यटन का केन्द्र बिन्दू बन सकता है। चंबल वैली में मगरमच्छ, कछुए व घड़ियाल देखना भी रोमांचक होगा।(3) *उदयपुरिया वर्ड* वाचिंग सेंटर ओर अधिक विकसित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण पर्यटन के अन्तर्गत यहाँ के अन्य प्राकृतिक स्थलों को अलग.अलग भागों में विभाजित कर वहाँ के पर्यावरण के अनुकूल पर्यटन के पैकेज विकसित किए जाएँ तो न केवल पर्यटन विकास को गति दी जा सकती है, वरन् यहाँ देशी व विदेशी पर्यटकों के आवागमन के वर्तमान ग्राफ को भी सुधारा जा सकता है। इस दिशा में वन्य जीव, पक्षी तथा अभयारण्यों के अलावा अन्य स्थलों के अभयारण्यों के पर्यटन पैकेज विकसित करके भी पहल की जा सकती है, कौनसे गाँव में कौन से वन्य जीव या पक्षी सहजता से उपलब्ध होते हैं, इस तथ्य का विश्लेषण कर पर्यटन के रूप में उन्हें विकसित करने से यहाँ पर्यावरण पर्यटन की ओर अधिक संभावनाएँ उजागर हो सकती हैं। सम्पूर्ण जिले में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में समृद्ध प्राकृतिक व पर्यावरणीय वस्तुओं की विरासत के प्रदर्शन के पर्यटन संग्रहालय स्थापित किए जाकर भी इस दिशा में पहल की जा सकती है। इससे पर्यटन विकास तो होगा ही, साथ में पारिस्थिति की प्रणाली पर पर्यटन के प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में भी रखा जा सकता है।

3) **हेरिटेज पर्यटन –** विरासत के प्रति बढ़ते रुझान ने हेरिटेज पर्यटन को बढ़ाया है। कोटा शहर और आस-पास के क्षेत्रों में कई ऐतिहासिक किले व महल जैसे. 700 साल पुराना गढ़ पैलेस, 10 वीं शताब्दी में बना चंद्रेसल मथ, 275 साल पुरानी बड़े देवता की हवेली, 250 साल पुरानी दानमल जी की हवेली आदि हैं। इन किलों व महलों में बहुत से अभी तक ऐसे भी हैं, जिन तक लोगों की पहुंच नहीं है, या फिर वे उपेक्षित हैं। ऐसे उपेक्षित व पहुँच से दूर किलों व महलों के परिरक्षण, संरक्षण एवं रखरखाव की दिशा में राज्य सरकार, जिला प्रशासन व निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहित कर इन्हें होटलों तथा टूरिज्म कॉम्प्लैक्सों में विकसित कराया जा सकता है। यद्यपि राज्य सरकार ने हेरिटेज होटल योजना के रूप में इस दिशा में सब्सिडी प्रदान कर पहल की है, परन्तु इस दिशा में निजी निवेशकों को अभी ओर अधिक प्रोत्साहित कर हेरिटेज या विरासतीय पर्यटन की संभावनाओं पर कार्य किए जाने की अधिक आवश्यकता है। ऐतिहासिक धरोहरों के रूप में बहुत से ऐसे स्थान हैं जो उजागर नहीं हुए हैं, ऐसे स्थानों पर स्थित किलों, हवेलियों व महलों की खोज कर उन तक पहुंच सुगम बनाने व उनका विकास पर्यटन के लिए किसी भी रूप में कर हेरीटेज पर्यटन की ओर अधिक संभावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस दिशा में कोटा जिले में हेरिटेज या विरासतीय पर्यटन की संम्भावनाओं की तलाश कर पर्यटन विकास को गति दी जा सकती है।

4) **शिविर पर्यटन –** पर्यटन के विविध रूपों को समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा किए गए प्रयासों द्वारा उजागर किया जाता रहा है परन्तु कुछ वर्षों से पर्यटन के जो नए रूप उभरकर सामने आए हैं, उनके तहत भी जिले में पर्यटन की संभावनाओं की तलाश की जानी आवश्यक है। इनमें शिविर पर्यटन प्रमुख है। कोटा जिले के मेले और त्यौहार अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। अध्यात्म स्थलों के साथ ही लोक परम्पराओं, सभ्यता व संस्कृति से जुड़े स्थलों पर न केवल पर्यटन, कला एवं संस्कृति विभाग द्वारा मेलों व उत्सवों का आयोजन किया जाता है बल्कि स्थानीय व क्षेत्र विशेष के लोगों एवं निजी संस्थाओं द्वारा भी आंचलिक संस्कृति का समग्र दर्शन कराने वाले मेले व उत्सव का आयोजन यहाँ बड़े उत्साह व समर्पण के साथ किया जाता है। कोटा का दशहरा मेला देश का मैसूर व कल्लु के बाद सबसे बड़ा दशहरा मेला है। दशहरा मेले में रावण दहन को देखने फ्रांस, जर्मनी से अनेक पर्यटक आते हैं। इस अवसर पर स्थानीय कलाकारों की कला को प्रोत्साहित करने हेतु सांस्कृतिक कार्यक्रमों जैसे मुशायरा, कवि सम्मेलन, नृत्य आदि का आयोजन होता है। साथ ही मनोरंजन के कार्यक्रमों के अन्तर्गत शिल्पग्राम, घुड़ दौड़, बैल गाड़ी दौड़, ऊँट दौड़, मूछों का प्रदर्शन, साफा बांधना, रस्सा कसी, माण्डना, रंगोली, मेहन्दी आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया जाता है। दीपोत्सव व आतिशबाजी के आयोजन स्थानीय व विदेशी पर्यटकों द्वारा बहुत पसंद किये जाते हैं। कोटा जिले के अन्य मेले, चंबल एडवेन्चर फेस्टिवल, सांगोद का न्हाण, तीज, अनंत चतुर्दशी, उद्योग मेला, हेंडीक्राफ्ट मेले भी अपनी विशिष्ट पहचान बना चुके हैं। इन मेलों व उत्सवों के आयोजन के साथ, यदि शिविर पर्यटन को प्रोत्साहित किया जाए तो पर्यटन विकास के प्रभावी परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

5) **सभा-सम्मेलन पर्यटन –** कोटा जिले में जिला प्रशासन द्वारा पर्यटन सभाओं और सम्मेलनों के आयोजन के माध्यम से भी पर्यटन के

विकास की संभावनाओं का उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में राजनीतिक, व्यवसायिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों के विभिन्न संगठन अपने वार्षिक सम्मेलन आयोजित करते हैं। इससे भी पर्यटन को बढ़ावा मिलता है। सभा स्थलों पर स्थान विशेष की छवि व स्थलों को दर्शाने वाले चित्रों, वस्तुओं की प्रदर्शनी आदि लगाई जाए तो बाहर से आने वाले व्यक्तियों में पर्यटन के प्रति निश्चित रूप से आकर्षण पैदा होगा और इससे यहाँ पर्यटन विकास को बढ़ावा मिलेगा। कोटा जिले की समृद्ध विरासत के अभी भी कई पहलू ऐसे हैं, जिनमें विकास की अपरिमित संभावनाएं हैं।

6) **स्वदेशी पर्यटन –** जिले में विदेशी पर्यटन के साथ.साथ स्वदेशी पर्यटन की भी विशेष संभावनाएं हैं। भारत के अलग.अलग क्षेत्रों से आने वाले पर्यटकों का वर्गीकरण कर उनकी रुचि के अनुसार सुविधाएँ उपलब्ध कराई जायें तो कोटा जिले में स्वदेशी पर्यटन के विकास की बेहद संभावनाएं प्राप्त हो सकती हैं। शिक्षा नगरी कोटा की समृद्ध कला.संस्कृति, यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर, प्राकृतिक सौन्दर्य, सदानीरा चम्बल के सुन्दर तट तथा वन्य जीव आदि सभी कुछ भारतीय पर्यटकों को भी रोमांचित करने वाले हैं। स्वदेशी पर्यटन के प्रोत्साहन के अन्तर्गत देशी पर्यटकों के लिये विशेष रियायती ट्यूरिज्म पैकेज बनाए जाए व विशेष परिवहन साधनों की सुविधा उपलब्ध कराई जाये तो कोटा जिले में स्वदेशी पर्यटन को विशेष प्रोत्साहन मिलेगा।

7) **नये पर्यटन स्थलों का विकास –** कोटा जिले का पर्यटन आकर्षण व्यापक है। यहाँ के पर्यटन स्थलों का अपना आकर्षक पर्यटकों को मौन निमंत्रण देता है। परन्तु पर्यटन स्थलों का जो सर्किट पर्यटन विभाग द्वारा तैयार किया हुआ है इसमें सभी क्षेत्र को नहीं छुआ गया है। अभी भी कई ऐसे स्थल है, जो पर्यटन की संभावनाएं रखते हैं, उन्हें आपस में जोड़कर पर्यटन विकास का मार्ग निरुपित किया जा सकता है। पारम्परिक पर्यटन स्थलों के साथ–साथ अपारम्परिक पर्यटन स्थलों को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित किया जाये। *बाडौली की मन्दिरब चरण 'चौकीब कैथून में कोटा 'डोरिया हस्तशिल्प स्थलो, भड़देवरा* आदि ऐसे स्थल हैं जहाँ पर पर्यटन विकास की बहुत संभावनाएं है। यहाँ फिल्म पर्यटन की भी पर्याप्त संभावनाऐं हैं। इनको उचित संरक्षण प्रदान कर पर्यटन विकस के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

निष्कर्ष – नि:सन्देह कोटा जिले में अनेक स्थल पर्यटन आकर्षण का केन्द्र है। आवश्यकता है उनको निखारने, सजाने, संवारने, संरक्षित रखने एवं प्रचारित करने की। कोटा जिले के पर्यटन वैभव के अधिकाधिक दोहन के लिए ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है, जो न केवल प्रभावकारी हों, बल्कि नवाचारों से भी युक्त हों। पर्यटन के सम्पूर्ण विकास से न केवल आर्थिक विकास होगा, वरन् रोजगार के नए–नए अवसरों का सृजन भी होगा। सभी स्तरों पर योजनाबद्ध रूप से कार्य किया जाये तो निश्चित ही आगामी समय में कोटा जिला राजस्थान के पर्यटन मानचित्र पर अपनी महती छवि अंकित करायेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दैनिक भास्कर, कोटा, 12 फरवरी 2007
2. वही
3. दैनिक भास्कर, कोटा, 9 मई 2008
4. सेतिया, सुभाष ''भारतीय पर्यटन के नये आयाम'', योजना, नई दिल्ली, सितम्बर 2007
5. वार्षिक रिपोर्ट – पर्यटन मंत्रालय (वर्ष 2001–2009), भारत सरकार, नई दिल्ली
6. जिला सांख्यिकीय रूपरेखा, जिला कोटा 2009 ''आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय'', राज., जयपुर
7. अतिथि ट्यूरिज्म, आर्ट एण्ड कल्चर डिपार्टमेन्ट, राजस्थान, जयपुर
8. राजस्थान ट्रेवल गाईड, जयपुर, राजस्थान

****

जैविक खेती : वर्तमान आवश्यकता

डॉ. आशा साखी गुप्ता *

शोध सारांश – एक अरब 20 करोड़ से भी अधिक जनसंख्या वाले देश में खाद्यान्न की बढ़ती हुई मांग के अनुरूप सतत् आपूर्ति बनाऐं रखना, चुनौतीपूर्ण कार्य है। खाद्य, रेशा, ईधन, चारा और बढ़ती जनसंख्या के लिए, कृषि भूमि की उत्पादकता और मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाना आवश्यक है। स्वतन्त्रता पश्चात् युग में हरित क्रांति द्वारा खाद्य क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुए, किन्तु इस दौरान रासायनिक कृषि का विस्तार हुआ। परम्परागत कृषकों ने भी रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया, उन्हे प्रगतिशील कृषक माना जाता था। इससे संसाधनों की गुणवत्ता घटी, कीटनाशकों के प्रयोग में वृद्धि से गुणवत्ता का ह्रास हुआ, पर्यावरण प्रदूषण की समस्या, तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में निरन्तर ह्रास होना, प्रमुख समस्या रहीं। फसल उत्पादन को निरन्तर बनाऐं रखने के लिए जैविक कृषि एक अच्छी पहल है।

प्रस्तावना – प्राचीन काल में प्रकृति के अनुरूप खेती की जाती थी, जिससे जैविक और अजैविक पदार्थो के बीच आदान–प्रदान का चक्र Ecological System निरन्तर चलता रहता था, जिसके फलस्वरूप जल, भूमि, वायु तथा वातावरण प्रदूषित नहीं होता था, कृषि के साथ गो–पालन भी किया जाता था, अर्थात् खेती पारम्परिक थी। परन्तु बदलते परिवेश में रसायनिक खाद व कीटनाशकों के प्रयोग ने जैविक व अजैविक पदार्थो के चक्र का संतुलन बिगाड़ा है, इससे मानव स्वास्थ्य भी प्रभावित हुआ है। वर्तमान में आधुनिक विज्ञान के समन्वय से जैविक पद्धति को पुन: प्रतिपादित किया गया है। आज जैविक खेती करने वाले किसान को प्रगतिशील माना जाता है।

उद्देश्य –

1) भारत में जैविक खेती की आवश्यकता ज्ञात करना।
2) जैविक खेती के तरीके ज्ञात करना।
3) जैविक खेती से होने वाले लाभ ज्ञात करना।
4) जैविक खेती में आने वाली समस्याऐं ज्ञात करना।
5) जैविक खेती का विस्तार किस तरह से हो सकता है ?

परिकल्पना –

1) देश में जैविक खेती सीमित क्षेत्रफल में हो रही है।
2) देश में जैविक उत्पादों की मांग कम है।
3) पर्यावरण तथा मानव जीवन गुणवत्ता के दृष्टिकोण से जैविक खेती के विस्तार की आवश्यकता है।
4) जैविक खेती हेतु कृषक एवं उपभोक्ताओं को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।
5) कृषि नीति अन्तर्गत जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है।

शोध प्रविधि –

इस शोध पत्र में द्वितीयक समंक, पूर्व अध्ययन तथा अवलोकन विधि के अंतर्गत गुणात्मक अनुसंधान पद्धति का प्रयोग कर निष्कर्षो की ओर पहुँचने का प्रयास किया है।

जैविक खेती की अवधारणा तथा घटक –

जैविक कृषि की परिकल्पना सर अलबर्ट हाबर्ड ने 1930 में की थी। खेती की यह पद्धति फसल चक्र, फसल अवशेष, हरी खाद, कार्बनिक खाद, गोबर की खाद, यांत्रिक खेती, जैविक कीटनाशकों के प्रयोग पर विश्वास करती है, जिससे भूमि की उत्पादकता तथा उर्वरकता लम्बे समय तक बनी रहती है। जैविक पद्धति के प्रमुख सिद्धान्त है – खेती के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग, भूमि का आवश्यक एवं जीवन्त उपयोग, प्राकृतिक समझ–बूझ पर आधारित कृषि क्रियाऐं, जैविक प्रणाली पर आधारित फसल सुरक्षा एवं पोषण, भूमि में टिकाउ उर्वरता, उचित पोषित खाद्य उत्पादन पर्यावरणीय मित्रवत प्रौद्योगिकीयों द्वारा अधिकतम खाद्य उत्पादन।

जैविक खेती के तीन प्रमुख घटक है – (1) एकीकृत जल तथा भूमि प्रबन्धन, (2) एकीकृत पौध पौषक तत्व प्रबंधन (3) एकीकृत जीवनाशी प्रबंधन। एकीकृत जल तथा भूमि प्रबंधन के अन्तर्गत वर्षा के जल का खेती के लिए योग्य भूमि पर विभिन्न तरीकों से संरक्षण तथा संवर्धन कर उनका उचित दोहन किया जाता है। इसमें जल निकास के लिए भूमि में मेढ़ व कूड़ पद्धति से फसल बोई जाती है। एकीकृत पौध पोषक तत्व प्रबन्धन के अन्तर्गत प्रकृति में उपलब्ध पोषक तत्वों का जैविक खाद तथा कम मात्रा में मृदा परीक्षण पर आधारित रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत कम्पोस्ट खाद, जैव उर्वरक, केचुंआ खाद तथा हरी खाद का उपयोग किया जाता है। कम्पोस्ट बनाने की नाडेप विधि से कम से कम गोबर का उपयोग कर अधिकाधिक मात्रा में खाद बनाया जा सकता है। इस विधि के द्वारा मात्र एक गाय के वार्षिक गोबर से 80 से 100 टन अर्थात् लगभग 150 गाड़ी खाद प्राप्त किया जा सकता है। जीवाणुओं से बनी खाद को जैव उर्वरक कहते है।

इन जीवाणुओं को लिग्नाईट या पीट मृदा के पाउडर में प्रयोगशाला में उत्पन्न किया जाता है। केचुंए भूमि के हानिकारक जीवाणुओं को खाकर भूमि की लाभदायकता तथा जलग्रहण क्षमता को कई गुना बढ़ाते है। केचुंए भूमि में पड़े अनुपलब्ध पोषक तत्वों को पौधों के द्वारा ग्रहण किए जाने योग्य बनाकर फसल उत्पादन में वृद्धि करते है। वर्मी कम्पोस्ट में सामान्य मिट्टी की तुलना में 7 गुना फास्फोरस, 11 गुना पोटाश, 2 गुना कैल्शियम एवं 7 गुना अन्य जैविक तत्व मिलते है। कचरे से वर्मी कम्पोस्ट तत्व मिलते है। कचरे से वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिए पकी गोबर की खाद, पानी और केचुओं की आवश्यकता होती है। इसके बनाने में 60 दिन का समय लगता है। एकीकृत जीवनाशी प्रबन्ध के अन्तर्गत पूर्ण रूप से रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करने के स्थान पर जैविक विधियों का उपयोग किया जाता है। इस पद्धति का नाम इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट है। इस विधि में कम से कम रसायनों का उपयोग करके कीट नियन्त्रण किया जाता है। जैविक विधि के अन्तर्गत

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बडवानी (म.प्र.) भारत

जाता है, ये मित्र कीट हानिकारक कीटों से अपना जीवन यापन करते है तथा उनकी वृद्धि को नियन्त्रित करते है।

वर्तमान में जैविक खेती भारत सहित 120 से अधिक देशों में हो रही है। जैविक खेती के संदर्भ में अग्रणी देश आस्ट्रेलिया, अर्जेंटीना, अमेरिका तथा यूनाइटेड किंगडम है। भारत में जैविक खेती लगभग 51000 हेक्टेयर क्षेत्र में हो रही है। डॉ. हनुमंत यादव (देशबन्धु जनवरी 2014) भारत में बहुफसलीय भाग के लगभग 8 प्रतिशत भाग में जैविक खेती होती है। वर्तमान में भारत में जैविक खेती के व्यापार में 30 प्रतिशत तक वार्षिक वृद्धि देखी गई है।

म.प्र. में सर्वप्रथम 2001-02 में जैविक खेती का आन्दोलन चलाया गया तथा जैविक गांव बनाऐ गऐ। प्रदेश में प्रारम्भ में 313 ग्रामों में जैविक खेती की शुरूआत की गई। वर्तमान में प्रत्येक विकासखण्ड में 5-5 जैविक ग्रामों का चयन किया जाता है। इस प्रकार प्रदेश में लगभग 3130 ग्रामों में जैविक खेती का कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

जैविक खेती से लाभ -

दीर्घकाल में जैविक खेती की विधि रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है। अर्थात् जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णत: सहायक है। डॉ. हनुमंत यादव (देशबन्धु जनवरी 2014) ''वर्षा आधारित क्षेत्रों में रासायनिक खेती को तत्काल छोड़कर जैविक खेती को अपनाने से पहले तीन साल तक आर्थिक रूप से घाटा होता है। चौथे साल ब्रेक ईवन बिन्दु आता है, पांचवे साल से लाभ मिलना प्रारम्भ होता है। व्यवहार में किसान घाटा झेलने के बाद रासायनिक खेती प्रारम्भ कर देते है। जैविक विधि द्वारा खेती करने से उत्पादन की लागत कम होती है साथ ही कृषकों की आय में वृद्धि होती है।'' गैर सरकारी संगठन श्रमिक भारती के प्रोजेक्ट कोऑर्डिनेटर उदय प्रकाश उपाध्याय (7 जनवरी 2014) के अनुसार '' जैविक खेती से किसानों की खेती लागत में लगभग 40 प्रतिशत की कमी आई है। पहले किसान अपने पड़ोसी किसान से प्रतिस्पर्धा के चलते रासायनिक खादों का खूब प्रयोग करते थे, वहीं अब रासायनिक खादों का कम प्रयोग कर रहे है। जैविक खेती भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि करती है तथा जैविक खेती का उपयोग करने वाले कृषकों द्वारा अधिक अंतराल से सिंचाई करने पर भी फसल पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है। मिट्टी की दृष्टि से जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।

पर्यावरण की दृष्टि से जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है। कचरे का उपयोग, खाद बनाने में होने से बीमारियों में कमी आती है। जैविक उपजों की मांग को देखते हुऐ कृषकों को उपज की कीमत अच्छी प्राप्त होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद गुणवत्ता के स्तर पर खरे उतरते है। इण्डियन इकांनामिक एसोसियेशन में डॉ. एल.के. मोहनराव (दिसम्बर 2013) ने बताया कि जैविक खाद के उपयोग से भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है, लागत कम होती है, समय की मांग को देखते हुऐ राष्ट्र के व्यापकहित में जैविक खेती को बढ़ावा देना चाहिये।

जैविक खेती के लाभों को देखते हुऐ तथा देश में जैविक खेती को प्रोत्साहन देने के दृष्टिकोण से मिशन ग्रीन प्लांट " Save The Mother Earth" प्रोजेक्ट पर कार्य कर रहा है। प्रोजेक्ट में पौधों एवं जमीन के लिए तरल, संतुलित तथा पौषक तत्वों से भरपूर खाद 'पांवर प्लांट ग्रो' बनाया है, जो जमीन में पोषक तत्वों को संतुलित कर उर्वरा क्षमता में वृद्धि करता है। जिससे उपज अधिक होती है तथा पोष्टिक अन्न मिलता है, जो मानव स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी बेहतर है।

जैविक खेती की समस्याऐं -

जैविक खेती की प्रगति में कई बाधाऐं है। हमारे देश में जागरूकता की कमी कंपोस्ट की कमी, जैविक सामग्री में पोषक तत्वों का अन्तर, कचरे से संग्रहण करने और प्रसंस्करण करने में जटिलता, जैविक कच्चे माल के विपणन की समस्याऐं वित्तीय समर्थन का अभाव आदि शामिल है।

किसानों के पास कंपास्ट तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीकों के इस्तेमाल की जानकारी के साथ ही उसके प्रयोगों की जानकारी का भी अभाव है। ज्यादा से ज्यादा वे यही करते है कि गड्ढा खोदकर उसे कचरे की कम मात्रा से भर देते है। अक्सर गड्ढा वर्षा के जल से भर जाता है, इसका परिणाम यह होता है कि कचरे का ऊपरी हिस्सा पूरी तरह से कंपोस्ट नहीं बन पाता और नीचे का हिस्सा कड़ी खल्ली की तरह बन जाता है। जैविक कंपोस्ट तैयार करने के बारे में किसानों को उचित प्रशिक्षण देने की जरूरत है।

प्रारम्भ में जैविक खेती से तैयार फसल की कीमत अधिक होती है। सामान्य उपभोक्ता अधिक कीमत देकर उत्पाद क्रय करने हेतु तैयार नहीं होते है। ऐसा प्रमाण मिला है कि राजस्थान में जैविक गेहूँ के किसानों को गेहूँ के पारम्परिक किसानों की तुलना में कम कीमते मिली। दोनों प्रकार के उत्पादों की विपणन लागत भी समान थी, गेहूँ के खरीदार जैविक किस्म के लिए अधिक कीमत देने को तैयार नहीं थे। जैविक खाद्यान्न के लिए उपभोक्ताओं का जागरूक होना आवश्यक है। पश्चिमी देशों में किसानों से अधिक वहां के उपभोक्ताओं का जैविक खेती की उपज से लगाव है, वे अधिक कीमत देकर भी क्रय कर लेते है।

अमरिकी उपभोक्ता जैविक उत्पादों के लिए 60 से 100 प्रतिशत तक लाभकारी मूल्य के भुगतानके लिए तैयार रहता है। भारत में ऐसी स्थिति नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र द्वारा कराए गऐ बाजार सर्वेक्षण से यह संकेत मिला है कि पिछले वर्षो विश्व के कई हिस्सों में जैविक उत्पादों की मांग बढ़ी है। छोटे और सीमान्त कृषकों को उर्वरकों की तुलना में जैविक खाद प्राप्त करने में कठिनाई होती है। उन्हे या तो उनके पास उपलब्ध जैविक पदार्थो के प्रयोग से जैविक खाद तैयार करना होगा या फिर वे कम से कम प्रयासों और लागत के साथ स्थानीय तोर पर जैविक पदार्थो का संग्रह कर सकते है। जनसंख्या का दबाव बढ़ने और कचरे तथा सरकारी भूमि तथा साझा भूमि के कम होने से यह काम कठिन हो गया है।

अनेक बार रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की लागत की तुलना में जैविक उत्पादों की लागत अधिक होती है। मूंगफली की खल्ली, नीम के बीज और उसकी खल्ली, जैविक कंपोस्ट, गाद, गोबर और अन्य खादों का इस्तेमाल जैविक खादों के रूप में होता रहा है। इनकी कीमतों में वृद्धि होने से छोटे किसानों को इनका उपयोग करने में कठिनाई होती है।

सरकारी प्रयास -

भारत में जैविक खेती की संभावनाओं एवं विस्तार को ध्यान में रखते हुऐ सरकार द्वारा राष्ट्रीय हॉर्टिकल्चर मिशन तथा राष्ट्रीय कृषि विकास योजना नाम से जैविक खेती पर केंद्रित कार्यक्रम चलाया जा रहा है। राष्ट्रीय हॉर्टिकल्चर मिशन के तहत वर्मी कम्पोस्ट यूनिट बनाने के लिए सरकार द्वारा 50 फीसदी तक सब्सिडी दिये जाने का प्रावधान है, जो अधिकतम 30 हजार हो सकती है। इसके साथ ही बायोगैस प्लांट को प्रोत्साहित करने हेतु सरकार द्वारा 100 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है। कृषकों को फसलों की

जानकारी देने हेतु कृषि काल सेंटर स्थापित किये गये है। खाद्यान फसलों को मौसम में होने वाले परिवर्तन की दृष्टि से ग्यारंटी हेतु कृषि बीमा योजना भी चलाई जा रही है।

जैविक खेती विस्तार हेतु सुझाव –

देश में जैविक खेती को बढ़ावा देने के सम्बन्ध में कार्यक्रम तथा कार्य योजना होना आवश्यक है। किसानों को जैविक खेती तकनीक के प्रयोग हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहियें, जैविक खेती करने के तरीकों से प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है। जैविक खेती टिकाऊ खेती है, जो सतत् कृषि उत्पादन को बनाऐ रखने में मददगार है तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशील है। भारतीय कृषि में शुद्ध जैविक खेती को अपनाकर रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल में कमी लाने की संभावना मौजूद है। जैविक खेती को अपनाने के लिए समन्वित पोषण प्रबंधन, समन्वित कीटनाशक प्रबंधन और जैविक नियन्त्रण विधियों को सशक्त करने की जरूरत है। भारतीय कृषि ने इको–फार्मिंग, जैविक खेती, प्राकृतिक खेती, आदि धारणाओं को जन्म दिया।

जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए पंचायत स्तर पर महिला स्वसहायता समूह गठित कर, जैविक खेती का प्रशिक्षण देकर समूह के माध्यम से कृषि को एक उत्पादक तथा लाभकारी व्यवसाय के रूप में रूपांतरित किया जा सकता है। कृषकों को जैविक खाद क्रय करने हेतु सरकार द्वारा अनुदान राशि प्रदान की जा सकती है। फसल की पैदावार की गिरावट को रोकने हेतु चरणबद्ध तरीकों से जैविक उत्पादों के रूप में बदलाव करना चाहिये, ताकि प्रारम्भिक वर्षो में जोखिम कम हो। सिंचित भाग में रासायनिक उर्वरक तथा वर्षा पर निर्भर कृषि क्षेत्र में चरणबद्ध तरीके से जैविक खेती को स्थानांतरित किया जाना चाहियें।

भारत जैसा देश जैविक खेती को अपनाकर कई प्रकार से लाभान्वित हो सकता है। मिट्टी की उर्वरता, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, मृदा क्षरण की रोकथाम आदि शामिल है। इसके माध्यम से ग्रामीण रोजगार का सृजन किया जा सकता है। स्थानीय खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण तथा मानवजीवन की गुणवत्ता जैसे लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Ghosh R.N. (1977) - Agriculture in Economic development,Vikas Publication,New Delhi.
2. के.जे. एजुकेशन सोसायटी, भोपाल (2008), जैविक खेती समृद्ध विकास
3. सलिल (2008) जैविक खाद बनाऐं और कमाऐं, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
4. डॉ. गणेश पाण्डे (2009), सामाजिक अनुसंधान, सर्वेक्षण एवं सांख्यिकी, राधा पब्लिकेशन्स, पृ.सं. 65
5. कुलदीप शर्मा (2011) – जैविक खेती : समस्याऐं और संभावनाऐं योजना, पृ.सं. 31
5. किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग म.प्र. 2013 जैविक खेती (प्राकृतिक एवं टिकाऊ खेती)
6. डॉ. हनुमंत यादव (21 जनवरी 2014) देशबन्धु

****

बैतूल जिले में कृषकों का जैविक खेती की ओर बढ़ता रूझान

सुरेखा यादव *

प्रस्तावना – भारत कृषि प्रधान देश है। भारत में 1960 के दशक में कृषि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ जिसे हरित क्रान्ति कहते हैं यहीं से भारतीय कृषि प्रणाली परिवर्तित हुई है। हरित क्रान्ति में गेंहू के उन्नत किस्म के बीजों का रासायनिक उर्वरकों (एन.पी.के.) तथा रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करना कृषको ने प्रारंभ किया। कृषक कृषि आदान जैसे बीज, खाद, कीटनाशक पर निर्भर हो गया है। इससे वर्तमान समय में कृषकों को बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड रहा है।

वर्ष 1960 के दशक के पूर्व भारतीय कृषि प्रणाली में कृषक अपने खेतों में उत्पादन हेतु गोबर की खाद स्वयं तैयार करते थे जिसे वे गौ पशुओं के गोबर, फसल, अवशेष एवं पशुबाड़े के कचरे से खाद तैयार करते थे। साथ ही मूँग, लोबिया, बर्सिंग आदि की फसल को हरी खाद के रूप में खेतों में प्रयोग करते थे इसकी लागत कृषकों को कम आती थी इसी के सुधरे व संशोधित रूप को जैविक खेती कहते हैं। वर्तमान में देश में कृषकों के द्वारा उपयोग होने वाले रासायनिक उर्वरकों की खपत बढ़ रही है। वर्ष 2010-11 के अनुसार भारत में रासायनिक उर्वरकों की कुल खपत 28.12 मिलियन टन है।

भारत अभी भी नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की अपनी खपत का 82 प्रतिशत ही उत्पादन कर पाता है। पोटाशधारी उर्वरकों के लिए पूरी तरह से विदेशों पर निर्भर है इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में रासायनिक उर्वरकों के उत्पादन एवं उपभोग मात्रा में अंतर है एवं भारत सरकार को उर्वरकों के आयात पर भी चुकाना करना पड़ता है। भारतीय कृषक फास्फोरिक और पोटेशक उर्वरकों की वितरित लागत का केवल 50 प्रतिशत राशि चुकाते हैं शेष भारत द्वारा सब्सिडी के रूप में वहन किया जाता है।

अतएव उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि रासायनिक खेती की तुलना में जैविक खेती कृषक हितकारी, राष्ट्रहितकारी व भूमि के आर्थिक समय तक टिकाऊ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

उद्देश्य – शोध पत्र के निम्न उद्देश्य हैं –

1. जिले में जैविक घटकों के उपयोग की वर्ष वार जानकारी का अध्ययन करना है।
2. जिले में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की जानकारी का अध्ययन करना है।

शोध प्रावधि – प्रस्तुत शोध पत्र में बैतूल जिले का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र बैतूल जिला हैं अध्ययन हेतु द्वितीयक आंकड़े किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग जिला बैतूल से संग्रहित किये गये हैं। शोधकर्ता द्वारा वर्ष 2007-08 से वर्ष 2011-12 तक के समंक संग्रहित किये गये हैं समंक संग्रहण के पश्चात् सारणीयन कर औसत ज्ञात कर विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण – जिले में रासायनिक उर्वरक उपभोग की वर्षवार जानकारी निम्नांकित है –

तालिका क्रमांक-1

जिले में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी निम्नांकित है।

जिले में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी (किलोग्राम/हैक्टेयर में)

वर्ष	उर्वरकों के नाम			उर्वरक उपयोग का योग
	नाइट्रोजन	स्फुर	पोटेशियम	
2007-08	81.36	26.88	7.03	115.27
2008-09	78.51	30.83	6.37	115.71
2009-10	100.09	45.47	7.64	153.20
2010-11	108.22	48.44	8.92	165.58
2011-12	105.73	46.08	6.20	158.01
समांतर माध्य	**94.782**	**39.54**	**7.232**	**109.95**

स्त्रोत : किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, बैतूल।

तालिका से स्पष्ट है कि बैतूल जिले में कृषकों द्वारा रासायनिक उर्वरकों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। नाइट्रोजन उर्वरक का प्रतिहेक्टर उपयोग 94 किलोग्राम है जबकि स्फुर उर्वरक 3959 किलोग्राम प्रति हेक्टर हैं वहीं पोटेशियम उर्वरक औसत उपयोग 7232 किलोग्राम प्रति हेक्टर है। तीनों उर्वरकों का औसत उपयोग 10995 किलोग्राम प्रति हेक्टर है। जिले में औसत उर्वरक उपयोग असन्तुलित अनुपात में है, जो वर्तमान में फसल उत्पादन तो बढ़ रहा है किन्तु साथ ही यह भूमि की उत्पादन क्षमता को क्षीण भी बना रहा है।

जिले में जैविक खेती का प्रसार – शोधकर्ता को द्वितीयक समंकों से ज्ञात हुआ कि जिले में जैविक खेती के घटकों का प्रयोग कृषक अपने खेतों में कर रहे हैं। समंकों की जानकारी निम्न प्रकार से है –

तालिका क्रमांक- 2

जिले में जैविक खेती के विभिन्न घटकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी

(इकाई – संख्या)

वर्ष	नाडेप		बायोगैस संयंत्र	वर्मी कम्पोस्ट पिट
	कच्चा	पक्का		
2007-08	7816	1070	90	386
2008-09	7500	894	426	561
2009-10	8000	960	170	217
2010-11	5195	470	471	650
2011-12	6190	460	498	470
कुल योग	**6.9402**	**770.8**	**331**	**456.80**

स्त्रोत : किसान कल्याण तथा कृषि विकास विभाग, बैतूल

उपरोक्त तालिका क्रमांक-2 में जिले में जैविक खेती के विभिन्न घटकों के उपयोग की वर्षवार जानकारी से स्पष्ट है कि जिले में पक्के नाडेप की तुलना

* अर्थशास्त्र विभाग, सरोजिनी नायडू शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) भारत

में कृषक कच्चा नाडेप अधिक बना रहे हैं और गोबर की खाद अपने खेतों में उपयोग कर रहे हैं। जिसका वर्षवार औसत निर्माण संख्या 6940.2 है इसी प्रकार बायोगैस संयंत्र औसत निर्माण संख्या 331 है और वर्मीकम्पोस्ट पिट की निर्माण संख्या 456.8 है। रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की तुलना में जैविक खेती के घटकों का उपयोग कम है किन्तु इसी प्रकार की जिले में संभावना है। चूंकि बैतूल जिले के गांवों में पशुधन संख्या अधिक है जो जैविक खेती का आधार है।

समस्याएं –

1. रासायनिक उर्वरकों का अधिक मात्रा में एवं असन्तुलित अनुपात में उपयोग करने से भूमि की उर्वरा शक्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
2. जैविक खेती के घटकों का निर्माण करना कृषकों के लिए कठिन प्रक्रिया है जिससे वे उसका कम प्रयोग कर रहे हैं।
3. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है।

सुझाव –

1. कृषकों को रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से भूमि को होने वाली हानि से अवगत कराया जाए।
2. जैविक खेती के घटकों से भूमि को होने वाले फायदे की जानकारी कृषकों को दी जाए।
3. जैविक खेती के घटकों का निर्माण करने का प्रशिक्षण कृषकों को दिया जाए।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध पत्र में समंकों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कृषक अपने खेतों में असन्तुलित मात्रा में कर रहे हैं। कुछ कृषक जैविक खेती के घटकों को भी उपयोग की ओर अग्रसित हो रहे हैं। जैविक खेती के बारे में जानकारी कृषकों को धीरे-धीरे प्राप्त हो रही है उसी के अनुसार वे धीरे-धीरे इसका प्रयोग कर रहे हैं और कृषि को सतत् व स्थायी बनाये रखने हेतु यह बहुत आवश्यक है एवं सकारात्मक प्रयास है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कौशल डॉ.जीएस.(2008) 'श्रद्धा के फूलों से सोना' मप्र.विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी परिषद विज्ञान भवन नेहरू नगर भोपाल।
2. ओझा एसके.(2012-13) 'कृषि एवं प्रौद्योगिकी' बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद पेज नं.11-36.

****

जनजातिय विकास में बदलते कृषि तकनीकी का अंगीकरण

डॉ. लक्ष्मी वास्केल * प्रो. गौरा मुवेल * *

प्रस्तावना – भारत कृषि प्रधान देश है। भारत में कृषि का केन्द्रीय स्थान रहा है, तथा कृषि को भारतीय अर्थवस्था की रीढ़ की हड्डी की संज्ञा दी गयी है। भारत की कृषि नीति का साठ के दशक तक अभिभावी लक्ष्य रहा है। कृषि देश की निरपेक्ष एवं त्वरित आवश्यकता है एवं यह आने वाले समय में भी बनी रहेगी। वैश्विक अर्थव्यवस्था में कृषि को सबसे बड़ा उधोग का दर्जा दिया गया है। बावजूद निरंतर कृषि उत्पादकता के स्तर के घटते अनुपात से बुद्धि जीवी वर्ग, मर्मज्ञ व नियोजक आदि कृषि के युद्ध स्तर पर विकास हेतु विवश हो गए एवं आगामी योजनाओं में कृषि विकास हेतु अपेक्षित सुसंगत लक्ष्य निर्धारित किये है। नियोजकों ने कृषि यंत्रीकरण पर अत्यधिक बल दिया और खाद्यान्न क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की स्थिति निर्मित कर दी। विडम्बना है, कि देश में विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी का अहम् योगदान केवल खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता दिलाने में सफल हुआ है। किन्तु हमारी कृषि की अपूर्व क्षमताओं को प्रकट नहीं कर पाया। कृषि द्वारा ही ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों की उन्नति के साथ औद्योगिक अर्थव्यवस्था का निर्माण संभव है। पश्चिमी मध्यप्रदेश में जनजातियों का सर्वाधिक जनाभार है। इन जनजातियों का बाहुल्य मध्यप्रदेश के धार जिले में भी दृष्टिगोचर होता है। इनकी जीवनशैली तथा सामाजिक आर्थिक संरचना नगरीय सभ्यता एवं संस्कृति से भिन्न है। भौतिक संस्कृति की अंधी दौड़ से दूर ये जनजातियाँ आज भी अपने परम्परागत रहन-सहन, खानपान एवं रूढ़िवादी कृषि प्रणाली में जकड़ी हुई है। इस क्षेत्र से अपनी आजीविका का निर्वाह करते हुए सीमित आवश्यकताओं के बावजूद अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी करने में असमर्थ है। ये जनजातियाँ 90.5 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से जुड़ी हुई है।

भारतीय जनजातीय कृषक अपनी आजीविका वनोपजों, मत्स्य एवं आखेट से चलाया करते हैं। समय परिवर्तन के दौरान आदिवासियों का जीवन पूर्णत: कृषि पर निर्भर हो गया। जनजातीय कृषक पुरातन परम्परागत तकनीकी के माध्यम से कृषि कार्य करते थे। क्योंकि आधुनिक तकनीकी को अपनाने में कई घटक विविध समस्याओं को उत्पन्न कर रहे थे। इनमें मुख्यत: शिक्षा एवं जागरूकता की कमी, आर्थिक पिछड़ापन एवं कृषि उपज मंडी एवं बाजारों का दूर अर्थात् दुर्गम एवं पहुँचविहीन क्षेत्र होना प्रमुख है। परिणाम स्वरूप कृषक पुरातन और परम्परागत कृषि तकनीकी के सहारे निम्न स्तर का जीवन जीने हेतु बाध्य हो रहे थे।

आधुनिक तकनीकी में यंत्रों व मशीनों, उन्नत बीजों, रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों से लेकर नवीन फसल प्रणाली तथा व्यापारिक फसलों का उत्पादन और रख रखाव व्यवस्था एवं विक्रय समाहित है अर्थात् यह तकनीकी मानवीय श्रम की बचत करती है।

सरकार की नई नीति में उर्वरकों के उपयोग को बढ़ाने पर अत्यधिक बल दिया जा रहा हैं। वर्ष 1952 - 53 में उर्वरक के प्रयोग मात्र 66.00 लाख टन था, जो वर्ष 2004-05 में 18390 हजार लाख टन हो गया। उन्नत बीजों का प्रयोग वर्ष 1997-98 में प्रजनक बीज 46134 क्विंटल और गुणवत्ता वाले बीज 7879 क्विंटल था। जो 2005-06 में 54700 क्विंटल हो गया। परंतु पोटाश युक्त रासायनिक खाद्य की पूरी मात्रा आयात की जाती है। इसका तात्पर्य देश में उर्वरक की खपत में बढ़ोतरी होती जा रही है। देश में सिंचाई क्षमता में भी उतरोत्तर वृद्धि दर्ज की गई और भविष्य में आशानुकुल विकास होने की संभावना है। अत: सिंचाई व्यवस्था की दृष्टि से देश का विश्व में प्रथम स्थान है। वर्ष 1950-51 में देश में कुल सिंचाई क्षमता 223 लाख हेक्टेयर थी, जो नई योजना में एक 1.80 से 1.85 मिलियन हेक्टेयर रही है। देश में जनजातियों के विकास के लिये कार्यक्रमों में बड़े पैमाने पर निवेश किया गया और निकट भविष्य में भी होता रहेगा। नियोजन में कई खामियों के अतिरिक्त कार्यक्रमों के क्रियान्वयन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन में अनगिनत प्रक्रियात्मक समस्याएं रही है। योजना क्रियान्वयन के लिए कुछ नियोजन अपेक्षित है। जनजातीय विकास में बदलते कृषि तकनीकी में वैज्ञानिक उपकरणों का उचित प्रयोग सुनिश्चित किया जाये, जिससे सिंचाई एवं फसल विकास परियोजना, उत्पादन, प्रसंस्करण एवं विपणन परियोजना, शक्ति एवं उद्योग आदि को समय पर पूर्ण करने एवं परियोजना से पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। अत: योजनाओं में अग्रगामी एवं पश्चगामी दोनों सम्पर्क निर्मित एवं सशक्त किये जाने चाहिये। इन जनजातियों के विकास हेतु योजनाओं के क्रियान्वयन के संगठनात्मक तथा प्रबन्धकीय आयामों के मूल्यांकन की आवश्यकता है।

अध्ययन की विधि – यह शोध पत्र द्वितीयक स्त्रोतों से प्राप्त समंकों पर आधारित है। इसमें तथ्य संकलन जिला सांख्यिकी पुस्तिका एवं विविध आलेखों से किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य –

1. जनजातीय समाज द्वारा कृषि तकनीकी अपनाने की प्रक्रिया का अध्ययन करना।
2. जनजातीय समाज पर आधुनिक कृषि तकनीकी के प्रभाव एवं समस्या के समाधान हेतु तथ्यात्मक सुझाव व निष्कर्ष प्रस्तुत करना।

तालिका क्रमांक - 01 (देखें)

तालिका से यह स्पष्ट होता है, कि वर्ष 2002-03 में उन्नत बीज, 16351 क्षेत्रफल एवं मात्रा (क्वि. में) 9862 थी, जो वर्ष 2006-07 में क्षेत्रफल 826200 एवं मात्रा 89248 हो गई। रासायनिक खादें उक्त अवधियों में 391732 क्षेत्रफल व मात्रा 344180 हो गई, जो वर्ष 2006-07 में 826200 क्षेत्रफल व मात्रा 784400 क्विंटल हो गई। पौध संरक्षण क्षेत्रफल की मात्रा इसी अवधि में 331482 से घटकर 245600 तक थी। जबकि इसकी मात्रा 252682 लीटर से घटकर आधी 135410 हो गयी। बीच उपचार वर्ष 2002-03 में 155315 क्षेत्रफल से बढ़कर 180500 व मात्रा क्रमश: 3340 कि.ग्रा. हो गयी।

उपरोक्त तालिका के समग्र विश्लेषण से यह तथ्य साबित होता है, कि उक्त अवधियों में (वर्ष 2002-03 एवं वर्ष 2006-07) उन्नत बीजों एवं रासायनिक खादों की मात्रा एवं क्षेत्रफल में उत्तरोत्तर वृद्धि दर्ज की गई, जबकि इसके विपरित पौध संरक्षण एवं बीच उपचार के क्षेत्रफल एवं मात्रा में

* सहायक प्राध्यापक * * अतिथि विद्वान, अर्थशास्त्र विभाग शहीद भीमानायक, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बडवानी (म.प्र.) भारत

भारी गिरावट आयी है। परिणामत: कृषि उत्पादकता के स्तर में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो पायी। जहां देश विकास की ओर निरंतर अग्रसर है, वहीं कृषि क्षेत्र जो कि देश के विकास की नींव बना हुआ है, उसके अविराम विकास हेतु प्राथमिकता से प्रयास करना चाहिए।

तालिका क्रमांक – 02 (देखें)

तालिका में कृषि उपकरणों में लकड़ी के हल वर्ष 2002–03 में 91728 थे, जो वर्ष 2006–07 में घटकर मात्र 52223 रह गए एवं इन्हीं अवधियों में लोहे के हल में 19847 से बढ़कर 31269 हो गए एवं बैलगाड़ियां 67815 से कम होकर 58174 रह गयी। वर्ष 2002–03 में तेल पंप 1446 थे, जो वर्ष 2006–07 में 177 हो गए। विद्युत मोटर 62391 से बढ़कर 69103 हो गई। वर्ष 2002–03 में ट्रेक्टर्स 7410 थे, जो वर्ष 2006–06 में 7516 हो गए।

तालिका के समग्र विश्लेषण से यह तथ्य साबित होता है, कि कृषि संबंधित मशीनें, यंत्र, उपकरणों में सर्वाधिक वृद्धि, लोहे के हल, तेल पंप, विद्युत मोटर एवं ट्रेक्टर्स में दर्ज की गई। जबकि इसके विपरित लकड़ी के हल की संख्या घटकर आधी रह गई। साथ ही बैलगाड़ियों की संख्या में भी कमी अंकित की गई अर्थात् कृषि यंत्रीकरण की ओर भारतीय कृषकों का रूझान बढ़ता दिखाई दे रहा है। कृषक लकड़ी के हल व परम्परागत तकनीकी से अलग हटकर आधुनिक तकनीकी को अपना रहे है। जो कृषि के तीव्रगामी विकास के सकारात्मक संकेत है।

सुझाव – शोध पत्र में निम्नांकित प्रासंगिक बिन्दु सुझाये गये है–

1. भारतीय जनजाति में आधुनिकतम दृष्टिकोण के आविर्भाव हेतु उनकी सोच में परिवर्तन करना जिससे उनकी परम्परागत कृषि तकनीकी में सुधार लाया जा सके।
2. अनुसूचित जनजाति के विकासात्मक पहलुओं को मद्देनजर रखते हुए कृषकों को जागरूक करना, विविध कार्यक्रमों का प्रचार–प्रसार कर आधुनिक तकनीकी से साक्षात्कार करवाना।
3. कृषि की आर्थिक व्यवहार्यता में सुधार करते हुए यह सुनिश्चित करना कि किसानों को न्यूनतम शुद्ध आय प्राप्त हो।
4. कृषि पाठ्यक्रम तथा शैक्षणिक प्रणाली विज्ञान की पुर्नरचना करना जिससे कृषक कृषि यंत्रीकरण के लाभों से स्पष्टरूप से अवगत हो सके। किसानों के लिये एक सामाजिक सुरक्षा प्रणाली तथा सहायता सेवा को आरम्भ एवं विकसित करना।
5. भूमि की गुणवत्तानुसार कृषि हेतु बीजों की वितरण व्यवस्था एवं कम सिंचाई की फसलों हेतु कृषकों को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध पत्र के आधार पर कहा जा सकता है कि, जनजातियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि कार्य है। **जनजातीय समाज का विकास कृषि विकास से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है।** कृषकों की परम्परागत कृषि व्यवस्था पर आधुनिक पद्धतियों के प्रभाव से कृषकों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। कृषकों में जागरूकता का अभाव व निरक्षरता ने उन्हें प्रकृति पर पूर्णत: निर्भर व भाग्यवादी बना दिया था। अन्ततोगत्वा शासन द्वारा क्रियान्वित विविध योजनाओं एवं ग्रामीणों हेतु शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार द्वारा जनजातीय कृषकों को संसाधनों, निवेशों, नवाचारों का स्थायी समान वितरण सुनिश्चित किया जा सकता है। जिससे कि विकास की उपलब्धियां सार्थक तथा स्थायी बन सकेगी। जिले में जनजातीय विकास में बदलते कृषि तकनीकी का अंगीकरण लोगों की मान्यताओं, प्रवृत्तियों तथा मूल्यों में परिवर्तन लाने में कारगर साबित होगा। फलस्वरूप यह वर्ग उच्च आर्थिक एवं सामाजिक प्रस्थिति को प्राप्त कर सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कटारसिंह – ग्रामीण विकास सिद्धांत, नीतियां एवं प्रबन्ध – 2011
2. राजीवकुमार – आर्थिक नीति, 2009
3. अग्रवाल एन.एल. 1999, भारतीय कृषि का अर्थशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
4. वर्मा रूपचंद 1997, भारतीय जनजातियाँ अतीत के झरोखे से, सूचना प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार।
5. भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रतियोगिता दर्पण – 2012–13

तालिका क्रमांक – 01

धार जिले में उन्नत कृषि के अन्तर्गत क्षेत्रफल एवं मात्रा

क्र.	वर्ष	उन्नत बीज		रासायनिक खादें		पौध संरक्षण		बीज उपचार	
		क्षेत्रफल	मात्रा (क्वि.में)	क्षेत्रफल	मात्रा (क्वि.में)	क्षेत्रफल	मात्रा (क्वि.में)	क्षेत्रफल	मात्रा (क्वि.में)
1	2002–03	16351	9862	391732	344180	331482	252682	155315	3340
2	2003–04	53956	17636	655632	577270	271268	225498	176581	4719
3	2004–05	109104	28341	704378	635080	217045	294566	110999	99410
4	2005–06	77660	31048	6044386	532130	271402	180915	90200	82000
5	2006–07	826200	89248	826200	784400	245600	135410	180500	10599

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी पुस्तिका, धार (2007)

तालिका क्रमांक – 02

कृषि संबंधित मशीनें, यंत्र तथा उपकरण संख्या

क्र.	वर्ष	कृषि उपकरणों की संख्या			पंप सिचाई हेतु		ट्रेक्टर्स
		लकड़ी के हल	लोहे के हल	बेलगाडीयां	तेल पंप	विद्युत मोटर	
1	2002–03	91728	19847	67815	1446	62391	7410(20.0)
2	2003–04	90881	30602	60675	1475	63951	7280(19.7)
3	2004–05	89564	30781	60596	1962	66230	7309(19.7)
4	2005–06	86241	31129	58826	1922	68179	7417(20.0)
5	2006–07	52223	31269	58174	1771	69103	7516(20.37)

स्त्रोत – जिला सांख्यिकी पुस्तिका, (2007) धार (म.प्र.)

Method Of Teaching: Lecture Method

Dr. Manoj Vankhede *

Introduction - The Most common and believed to be quite easy and effective teacher-directed method of teaching is lecture method. All lecturers in colleges and universities use this method invariably. Some teachers in India also use this method for teaching senior secondary classes, as they find it very convenient. However, many of the teachers in schools as well as colleges really do not know how to use the lecture method effectively. They also do not know that it is not very useful method for schools.

For effective use of the lecture method, it is desirable that the lecturer or the teacher keeps the following points in mind :

There are three phases or steps in delivering a lecture:

1. Introduction of the Lecture
2. Development Phase
3. Consolidation Phase

Introduction of the Lecture - The teacher must select the topic and plan properly what Contents he would like to include in his lecture. Then he should put them in a systematic or logical order and decide how he would present them and when - in the beginning in the middle or in the end. He should start the lecture in such way that the students may easily and instantly get attracted towards it; they may be interested in listening to it with rapt attention. He should introduce the topic with Some interesting related questions or with the mention some recent news, catchy story or anecdote Or description of an event or the like.

Development Phase - In this phase, the teacher should present the subject matter related to the topic of his lecture in a lively manner with effective voice and use one or more teaching aids are illustrations like picture, map, chart, model etc systematically. He should develop his lesson gradually and very effectively in the manner as had already been planned by him. He should ensure that the students' interest sustained throughout the lecture and they are indeed about to gather the necessary information. He should ask some questions in the course of his lecture.

Consolidation Phase - The teacher should summarize the main points of his lecture towards the end. He should recapitulate or recall the main points briefly so that the students can recall are remember them. This can be done by asking some question to know how much of the lecture the students have been able to understand and remember the subject matter. If the teacher finishes his lecture abruptly or suddenly without asking recapitulation questions, then the students might not be able to understand clearly the main points and their inte. relationship.

A good or effective lecture should have these features-

1. Lecture should contain new information and it should be delivered in a lively manner.
2. The lecturer or the teacher should speak in a well-mod-ulated and clear voice.
3. The teacher or the lecturer should ask a few questions to the students in between the lecture and try to elicit their knowledge, information, experiences and/or views. He should appreciate them and properly assimilate or integrate them in this lecture.
4. The teacher should try to show some interesting and relevant picture, map, diagram, model or real object, or use any of the teaching aids like filmstrip, tape recorder, VCR, DVD etc. so that the listeners' attention is drawn towards his lecture points.
5. The lecture should neither be too long nor it should be of a very high level or in a difficult, incomprehensive or terse language.
6. The teacher should use hum our also once or twice (not more often) to create a pleasant environment, to break the boredom and keep the listeners' attention glued to his lecture.
7. The teacher should not lecture in a threatening or commanding voice. He should not be provoked, angry and offensive if any student in the lecture room asks him a question. He should reply the students' question/s in a polite, amiable and gentle manner.
8. It is a good idea if the synopsis or a very brief summary of the lecture in points is given by the lecturer to the students a day or a few days in advance before the lecture so that. the students may come to the class to listen to the lecture having read that synopsis. This definitely helps them better in understanding the lecture.

Advantages of Lecture Method - If used properly with care, Lecture Method shall have definite advantages, some of which may be stated as under :

1. **Spoken word more effective than a printed one** It is a fact that a spoken word is always more effective than a printed one. The teacher can indicate by his tone, gesture and facial expression the exact sense or a meaning which he wishes to convey. He can dramatize a scene, a story or a message he wishes to convey.

* **Asst. Professor of Sociology , Govt. Girls' College, Barwani (M.P) INDIA**

2. **A lecture can be immediately repeated and modified -** Whenever the teacher feels that his idea not being followed or appreciated by his pupils, he can at once repeat. it or expand and modify his statement. A sensible teacher would never like to "talk over the head" of his pupils.
3. **It gives pupils good training and experience in learning by hearing -** In democratic countries we have to train children in schools for the adult life so that as democratic citizens they may participate fully and effectively in the affairs of national and international importance. And as we all know lectures and talks play an important part in one's adult life these days whether we lead or follow others. For this children are to be prepared from the school stage. Thus, occasional talks and interesting lectures should be arranged for all types of school children.
4. **It saves time and energy of the pupils -** Sometimes facts of Social Studies, because of their complicated nature, are not clear to students as they read their textbooks. In textbooks, details are seldom given and sometimes interpretations may also be wrong. The students may, thus, be lost in the maze of facts.
5. **It is a good means of stimulating students -** Since lecture demands a lot of preparation on the part of the teacher, its advantages are transferred to the class as a whole. Teacher's own preparation, his enthusiasm and his interest do stimulate good students who may, therefore, like to pursue projects, problems and other such activities in order to gain more knowledge.

When to use this Method?

This method may, however, be used with advantage only on suitable occasions for :

1. **Stimulating students -** In the beginning of a new topic or unit we can stimulate our pupils by presenting the outstanding aspects of the events or movements or the achievements of significant persons in very simple and they easy words. This will arouse interest among the pupils and they will like to know more about that topic.
2. **Clarifying concepts -** If the students are not helped in time, they may form wrong notions after memorizing certain facts from the books without understanding their meaning and importance. The teacher, chrough an informal talk, should correct such wrong notions and clarify the pupils' doubts.
3. **Supplementing the knowledge of the pupils -** Whatever amount of study the student may have done, there is always need for further addition of the subject matter by the teacher, as a result of his own reading and experience. This can be done through a talk or lecture on the topic under study.
4. **Summing up the findings of the pupils -** After independent group or individual work, the students may disagree on several points. It may also not be possible for them to outline and summarize the main points of the topic or chapter or unit. studied by them. It is then for the teacher to pick up the loose ends and unite them into a presentable whole for the convenience and advantage of his pupils.
5. **Preparing the students to undertake an assignment, a project or an activity -** Before any assignment or activity or project on group level is undertaken by the pupils, it is always advisable to give them an informal talk. This will save them from unnecessary, wastage of time and energy in searching relevant. material and guide them to achieve the maximum in the shortest possible time and with the minimum labour.

Conclusion - We may conclude by saying that teaching through an informal talk or lecture is "A method and not the method". It should not be used too frequently and too hopefully. It should always be accompanied by illustrations, comparisons, charts, pictures, diagrams and other aids. A talk should always be carefully planned, outlined and mastered beforehand. It should be remembered that lecturing is an art. Its successful performance depends upon the teacher's strength and depth of knowledge and upon his awareness of human factors of interest and motivation. A lecture is primarily is primarily meant to reinforce key ideas and facts and to place them in a context of thought. It is to present a philosophical whole out of a number of related fragments of information that can be obtained piecemeal by other means, but not put together sensibly without the mature judgment and wisdom of a good teacher. It is, therefore, obvious that lecture method itself is not bad. The real culprit is the bad lecture or the unsuitable topic. After all, people flock by thousands to listen to lectures or talks which are interesting, fascinating, inspiring, informative and exciting. The same type of talks should be presented in the classroom to ensure success.

The teacher many utilize this method profitably for (i) giving background of a topic, (ii) giving an overview of a large unit, (iii) creating interest in the pupils, (iv) explaining and correcting some faulty ideas or introducing an intelligent assignment.

References -

1. O.P. Dhiman : Understanding Education : Published by Kalpaz Publication, Delhi
2. Salmon, D. : The Art of Teaching
3. Adam John.Sip : Modern Developments in Education
4. Smith & Harrisor : The Principal of Class Teaching
5. Dr. Paul, S. : Effective Methods of Teaching Social Studies : ABD Publishers Jaipur : 2003
6. Dhiman, O.P : Principal and Techniques of Education : Published by Kalpaz Publication, Delhi

भारत में दलित महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराध

डॉ. अनामिका प्रजापति *

शोध सारांश – आज विश्व का कोई भी देश हो महिला उत्पीड़न सभी जगह व्याप्त है। अब अगर बात दलित महिलाओं की करे तो स्थिति और भी अधिक बुरी है। एक तो औरत, ऊपर से दलित, फलस्वरूप अपराधियों के निशाने पर आसानी से आ जाती है। यदि किसी दलित स्त्री के साथ कोई अपराध होता है तो दलित परिवार अपनी मजबूरियों के कारण उसका प्रतिरोध नहीं कर पाता है और न ही अदालत में न्याय प्राप्त करने के लिए पैरवी कर पाता है। यही कारण है कि भारत में दलित महिलाएं अत्याचार और शोषण का शिकार अधिक होती है। बात चाहे हम यौन शोषण की करे या बलात्कार की, दलित महिलाएं काम पिपासुओं की भेंट अधिक चढ़ती हैं। ग्रामीण इलाकों में व्याप्त तथाकथित सामंती व्यवस्था एवं उंची जाति के दबंग लोग दलित युवतियों को अपनी बाप की बपौती समझते हैं इसलिए वे अक्सर दलित युवतियों को अपनी वासना का शिकार बनाते रहते हैं।

संविधान में दलित वर्ग को दो भागों में विभाजित किया गया है– अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति। भारत सरकार के एक संगठन राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आकड़े बताते हैं कि वर्ष 2012 के दौरान अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के अपराध बढ़े हैं, और सभी प्रकार के अपराधों का दंश सबसे अधिक महिलाओं ने ही झेला है। सरकार द्वारा दलितों के उत्थान के लिए कई कानून बनाये गये हैं। लेकिन स्थिति में कोई ज्यादा फर्क नहीं आया है। उत्पीड़न चाहे स्वर्ण महिला का हो या दलित महिला का, बेहद शर्मसार करने वाला होता है। किंतु दलित महिलाएं सामाजिक व आर्थिक रूप से कमजोर होती हैं इस कारण अपने खिलाफ हो रहे अत्याचारों का विरोध नहीं कर पाती है। अब बहुत हो गया, स्थिति बदलनी चाहिए। दलित औरतों को भी प्रतिष्ठा और सम्मान से जीवन जीने का हक मिलना चाहिए। दलित महिलाओं के विरूद्ध अपराधों को रोकने के लिए कई कानून बने है, ताकि दलित महिलाएं भी सम्मानपूर्वक जीवन जी सके, बस आवश्यकता है दलित महिलाओं के खिलाफ होने वाले किसी भी प्रकार के अपराध का पुरजोर विरोध करने की।

शब्द कुंजी – दलित, समाज, अपराध, उत्पीड़न, दंश, बलात्कार, अपहरण, अनुसूचितजाति, अनुसूचितजनजाति।

प्रस्तावना – एक ओर जहां दुनिया आर्थिक विकास के नित नये आयाम छू रही है वहीं मानव सभ्यता अपराध के साये में जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। दुनियाभर में होने वाले अपराधों का यदि अध्ययन किया जाये तो महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों का प्रतिशत अधिक प्राप्त होगा। अब प्रश्न उठता है कि महिलाओं के प्रति ही अपराध अधिक क्यों होते है ? चूंकि महिलाएं स्वभाव और शारीरिक दृष्टि से पुरूषों की तुलना में कोमल होती है उनकी इसी कमजोरी के चलते उनके विरूद्ध अपराध और अत्याचार अधिक होते हैं।

इतिहास के पन्ने पलटने पर पता चलता है कि वैदिककाल में महिलाओं को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था उस समय महिलाओं के खिलाफ अपराध जैसी कोई बात अस्तित्व में नहीं थी। धीर–धीरे समाज तथाकथित रूप से विकसित होता गया और इसी के साथ बढ़ता गया महिलाओं के प्रति अपराध का ग्राफ मध्यकाल में तो महिला अपराधों की गहनता काफी बढ़ गयी थी। उस समय युद्ध के समय सोने–चांदी के साथ स्त्रियों को भी लूटा जाता था। वह मध्यकालीन बर्बरता आज भी किसी न किसी रूप में जारी है। समय के साथ महिला अपराधों की प्रवृत्ति और प्रकृति जरूर बदली है लेकिन मानसिकता में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं आया है। भारत में नारी का जीवन कितना असुरक्षित, अपमानित है यह राष्ट्रीय अभिलेखन ब्यूरो की इस रिपोर्ट से स्पष्ट हो जाता है जिसके अनुसार भारत में स्त्रियों के साथ प्रति छः मिनिट में कोई न कोई संगीन अपराध घटित हो जाता है। हर 54 वें मिनिट बलात्कार ,हर 26 वें मिनिट में स्त्री की अस्मिता से छेड़छाड़, हर 43 वें मिनिट उसे पुरूषों द्वारा अपराधिक अपहरण का अभिशाप भोगना पड़ता है और हर 96वें मिनिट में कोई न कोई नववधू दहेज की दावाग्नि में झोंक दी जाती है। यह तथ्य इक्कीसवीं सदी के प्रवेश द्वार में खड़े हमारे देश के लिए कितने शर्मनाक है। कहा जाता है कि कोई समाज कितना सुसंस्कृत है इसका पता नारी के प्रति किये जाने वाले सम्मान से लगाया जाता है। हम अपने देश की सदियों पुरानी संस्कृति एवं सभ्यता पर गर्व महसूस करते नहीं थकते किन्तु क्या आज नारी के प्रति बढ़ते अपराध हमारी सभ्यता और संस्कृति पर किये जाने वाले मिथ्या अभिमान पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाता है?

भारतीय संविधान की धारा– 15 में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति के साथ जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। लेकिन व्यवहार में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। देशभर में दलितों के खिलाफ अत्याचार हो रहे हैं। दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है– दलन किया हुआ। इस अर्थ में वह हर व्यक्ति आ जाता है जिसका शोषण या उत्पीड़न हुआ है। श्री रामचन्द्र वर्मा ने अपने शब्दकोष में दलित का अर्थ लिखा है– मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ। पिछले 6–7 दशकों में दलित शब्द का अर्थ काफी बदल गया है। संविधान में दलित वर्ग को दो भागों में विभाजित किया गया है– अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति। चूंकि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लोग सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से बेहद पिछड़े हुए होते है इसलिए इस वर्ग के लोगों के कल्याण एवं संरक्षण के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों ने विविध कानून के प्रावधान किये गये हैं। भारत सरकार के एक संगठन राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आकड़े बताते हैं कि अनुसूचित जाति के साथ–साथ अनुसूचित जनजाति के लोगों के खिलाफ भी अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं। एक महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि दलित अत्याचार के अधिकतर मामले तो पुलिस के रिकार्ड में दर्ज होते ही नही है क्योंकि जब कोई दलित शिकायत लेकर पुलिस थाने पहुंचता है तो उसे डरा धमकाकर भगा दिया जाता है। **(तालिका पीछे देखे)**

अनुसूचित जाति की महिलाओं के खिलाफ वर्ष 2011 के दौरान बलात्कार के कुल 1,557 मामलें दर्ज किये गये जबकि वर्ष 2010 में ऐसे मामलों की संख्या 1,349 थी। इस प्रकार दलित महिलाओं के बलात्कार की दर वर्ष 2010 की तुलना में वर्ष 2011 में 15.4 फीसदी बढ़ी। अनुसूचित जाति के लोगो के अपहरण के मामलों में तेजी वर्ष 2011 के दौरान देखने को मिली। यहां उल्लेखनीय है कि अधिकतर अपहरण महिलाओं के ही होते हैं ताकि उनका यौन शोषण किया जा सके। वर्ष 2011 के दौरान अनुसूचित जाति के लोगों के अपहरण के 616 मामले प्रकाश में आये, जबकि वर्ष 2010 में इन मामलों की संख्या 511 और वर्ष 2009 में 512 थी। इस प्रकार वर्ष 2011 में वर्ष 2010 के मुकाबले अपहरण के मामलों की दर 20.5 फीसदी रही। इस प्रकार के मामले वर्ष 2011 में उत्तरप्रदेश में सर्वाधिक देखने को मिले। अपहरण के कुल 616 मामलों में से उत्तरप्रदेश मे 363 मामले दर्ज हुए जो अपहरण से संबंधित कुल अपराधों के मामलों का 58.8 प्रतिशत है।

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) सुभद्रा शर्मा शासकीय कन्या महाविद्यालय, गंजबासौदा, जिला विदिशा (म.प्र.) भारत

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों द्वारा संकलित आकड़ों के मुताबिक वर्ष 2012 के दौरान केन्द्रशासित प्रदेशों में दलित बलात्कार और अपहरण का कोई मामला प्रकाश में नहीं आया है। दलित महिलाओं के खिलाफ बलात्कार के सर्वाधिक मामले मध्यप्रदेश में 367, उत्तरप्रदेश में 285, राजस्थान में 202 और आंध्रप्रदेश में 104 मामलें दर्ज किये गये। अपहरण के सर्वाधिक मामलें उत्तरप्रदेश में हुए वहां ऐसे कुल 258 मामले प्रकाश में आये। दूसरे स्थान पर मध्यप्रदेश (64) तीसरे स्थान पर राजस्थान (43) तथा चौथे स्थान पर गुजरात में इस प्रकार के 32 मामले दर्ज हुए। **(तालिका देखे)**

अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के खिलाफ अपराध की स्थिति कमोबेश अनुसूचित जाति की महिलाओं के जैसी ही है। अनुसूचित जनजाति के खिलाफ अपराध के वर्ष 2011 के दौरान 5,756 मामले दर्ज हुए जबकी 2010 में 5,885 मामलें दर्ज हुए। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के खिलाफ वर्ष 2011 के दौरान बलात्कार के 772 मामले दर्ज किये, जबकि वर्ष 2010 में ऐसे मामलों की संख्या 654 थी। इस प्रकार अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के साथ बलात्कार की दर वर्ष 2010 की तुलना में 18.0 फीसदी बढ़ी। मध्यप्रदेश में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के खिलाफ बलात्कार के 308 मामले वर्ष 2011 के दौरान दर्ज हुए, जो कि अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के खिलाफ बलात्कार के अपराधों के कुल मामलों का 39.9 प्रतिशत है।

अनुसूचित जनजाति के लोगों के खिलाफ वर्ष 2011 के दौरान अपहरण के 137 मामले दर्ज हुए जबकी 2010 में इस प्रकार के मामलों की संख्या 84 थी। इस प्रकार वर्ष 2010 की तुलना में वर्ष 2011 में अनुसूचित जनजाति लोगों के खिलाफ अपहरण से संबंधित प्रकरणों में 23.1 फीसदी की वृद्धि रही। वर्ष 2012 के राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के ताजा आकड़ों के अनुसार केन्द्रशासित प्रदेशो में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के खिलाफ बलात्कार और अपहरण के कोई प्रकरण प्रकाश में नहीं आये। विभिन्न राज्यों में अनुसूचित जनजाति की महिलाओ के खिलाफ बलात्कार और अपहरण के बहुत से मामले दर्ज हुए। वर्ष 2012 के दौरान अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के साथ सबसे अधिक बलात्कार के मामले मध्यप्रदेश में हुए। मध्यप्रदेश में इन मामलों की संख्या 288 रही। दूसरे स्थान पर छत्तीसगढ़, 118 मामलें, तीसरे स्थान पर उड़ीसा, 70 मामले, चौथे स्थान पर राजस्थान जहां पर बलात्कार के 59 मामले दर्ज हुए। एन.सी.आर.बी. की वर्ष 2012 की रिपोर्ट के अनुसार अनुसूचित जनजाति लोगों के खिलाफ अपहरण के सबसे अधिक मामले मध्यप्रदेश में हुए इन मामलों की संख्या मध्यप्रदेश में 45 रही, दूसरे स्थान पर गुजरात 13 मामले, तीसरे स्थान पर छत्तीसगढ़ 10 मामलें, चौथे स्थान पर महाराष्ट्र, 07 मामलें और राजस्थान में 07 मामले रहे। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के बलात्कार के प्रकरण 28 राज्यों में कुल 729 मामलें दर्ज हुए जिसमें से मध्यप्रदेश में सर्वाधिक 288 मामलें दर्ज हुए, जो कि एक चिन्तनी मुद्दा हैं। वहीं अपराध के मामलों में 28 राज्यों में अपहरण के कुल 103 मामलें दर्ज हुए जिसमें से सर्वाधिक मामलें 45 मध्यप्रदेश में दर्ज हुए। आये दिन समाचार पत्रों में दलित महिलाओं के खिलाफ बलात्कार की घटनाएं पढ़ने को मिलती है। हाल ही में उत्तरप्रदेश के बदायूं में दो दलित बहनों से बलात्कार कर आरोपियों द्वारा उनकी हत्या कर लाश को पेड़ पर लटका दिया गया। इस दुष्कर्म पर उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री अखिलेश यादव द्वारा विवादित बयान दिया गया। तब जब एक महिला पत्रकार ने कानपुर में उनसे पूछताछ की कि महिलाएं सुरक्षित क्यों नहीं है? तब अखिलेश यादव ने जबाब दिया कि आप को तो कोई खतरा नहीं हुआ ना जब रिपोर्टर ने जवाब में ना कहा तो अखिलेश यादव फिर बोल धन्यवाद् आप यह सबको बताइये। पीड़ित परिवार को सुरक्षा मुहैया कराने के स्थान पर उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री द्वारा ऐसे बयान महिलाओं के अस्मिता पर गहरा अघात है।

ओडिशा के कटक जिले में कुमाडा गांव में एक आदिवासी महिला के साथ सामूहिक बलात्कार का मामला हो या झारखण्ड में 19 वर्षीय आदिवासी महिला के साथ गैंगरेप की घटना हो या आंध्रप्रदेश के विशाखापट्नम में 23 वर्षीय आदिवासी महिला के साथ दो लोगों द्वारा बलात्कार की घटना हो आये दिन महिलाओं के विरूद्ध अपराध बढ़ते जा रहे हैं। अपराधियों की बात तो अलग ओडिशा के मयूरभंज जिले में एक पुलिस अधिकारी को शादी के नाम पर एक आदिवासी महिला का यौन उत्पीड़न करने के आरोप में निलंबित किया गया है।

निष्कर्षत: बहुत हो गया अब स्थिति बदलनी चाहिए। महिला उत्पीड़न रूकना चाहिए। दलित औरतो को भी प्रतिष्ठा और सम्मान से जीवन जीने का हक मिलना चाहिए। दलित महिलाओं के विरूद्ध अपराधों को रोकने के लिए कई कानून बने हैं बस जरूरत है उन कानूनों को सख्ती से लागू करने की। ताकि दलित महिलाएं भी सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। यदि हम अब भी जागरूक नहीं हुए और समाज में महिला उत्पीड़न को रोक नहीं सके, तो फिर हमें कम से कम सभ्य कहलाने का तो कोई अधिकार होना ही नहीं चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. आर.पी. तिवारी एवं डॉ. डी.पी. शुक्ला, 'भारतीय नारी: वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान', ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई-दिल्ली, 2008, पृ. 174
2. डॉ. निशान्त सिंह, 'भारतीय महिलाएं : एक सामाजिक अध्ययन', ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2009, पृ. 34
3. मीनाक्षी निशान्त सिंह, 'आधुनिकता और महिला उत्पीड़न', ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2008, पृ. 158
4. Website - http://ncrb.gov.in
5. hhttp://hi.wikipedia.org/s/12n
6. http: //zeenews.india.com/hindi
7. Crime in India 2012, Statistics, National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs, New Delhi
8. दैनिक भास्कर, 31 मई 2014

Comparative Incidence of Crime Against Scheduled Castess

S.No.	Crime-Head	Year					% Variation in
		2007	2008	2009	2010	2011	2011 Over 2010
1.	Rape	1,349	1,457	1,346	1,349	1,557	15.4
2.	Kidnapping & Abduction	332	482	512	511	616	20.5

स्रोत - Website - http://ncrb.gov.in

Comparative Incidence of Crime Against Scheduled Tribes

S.No.	Crime-Head	Year					% Variation in
		2007	2008	2009	2010	2011	2011 Over 2010
1.	Rape	627	585	583	654	772	18.0
2.	Kidnapping & Abduction	89	93	82	84	137	63.1

स्रोत - Website - http://ncrb.gov.in

मध्यप्रदेश सरकार के बेटी बचाओं अभियान के प्रभाव का अध्ययन

जागृति आर्य *

प्रस्तावना – वास्तव में नारी धरती एवं प्रगति का एक रूप है जिसमें नवनिर्माण एवं सृजन की अपार क्षमताएं है। वह हमेशा से कोमलांगी, मृदु एवं मितभाषी रही है। उसकी एक अलग शख्सियत रही है। पुरूषों के साथ मिलकर वह संतति–निर्माण के साथ ही संतानों को संस्कारित करने की अहम् भूमिका निभाती रही है। नारी पुरूषों की प्रथम गुरू, मां, बहन फिर अंत में प्रेयसी बनती है। इसके अलावा भी उसके कई रूप है। उसमें अपार सहनशीलता के दर्शन है। वह चाहे किसी जाति, किसी मजहब या किसी वर्ग से संबंध रखती है उसके अन्दर का वात्सल्य, स्नेह, करूणा, दया और मंगलकामना की भावना का सागर हमेशा एक सा रहा है। नारी देश और दुनिया की आधी आबादी है, संपूर्ण मानव जनसंख्या का आधा हिस्सा है। लेकिन इसका एक स्याह सच ये भी है कि आज भी नारी पूरी दुनिया में उपेक्षित है। हाशिए पर है। तरह–तरह की यंत्रणाओं और शोषणों की शिकार है।

कभी बाल विवाह तो कभी दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, यौन शोषण और वैश्यावृत्ति जैसी समस्याओं से दो चार है। दुनिया के सभी संस्कृति और सभ्यताओं के मानव जातियों का विकास हुआ लेकिन अगर कुछ नहीं बदला तो वह है स्त्रियों के हालात और उसके गुलाम अस्मिता वाली वो पहचान जो सदियों से उसका पीछा नहीं छोड रही है। वह आज भी अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनने से वंचित है। उसके किसी भी फैसले के पीछे पुरूषों की सहमति जरूरी है। यहां तक की एक कन्या भ्रूण के जन्म लेने या न लेने के फैसले पर भी पुरूष और पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता की भूमिका काम करती है। कन्या भ्रूण हत्याओं की बढती घटनाओं से यह बात साफ हो जाती है कि एक स्त्री को पुरूष के समान दर्जा आज भी प्राप्त नहीं है।

वर्तमान में दुनिया के दूसरे देशों के साथ ही भारत में भी स्त्रियों की कम होती आबादी चिंता का सबब बनी हुई है। देश में अभी प्रत्येक एक हजार पुरूषों पर सिर्फ 940 महिलाए हैं। यह अनुपात राज्यों में अलग–अलग हैं। लिंगानुपात की दर सबसे कम हरियाणा में है जहां प्रत्येक हजार पुरूषों पर सिर्फ 866 महिलाएं है।

देश के हृदय प्रदेश यानि मध्य प्रदेश का हाल भी बुरा है। लिंगानुपात के मामले में प्रदेश 20वें स्थान पर खड़ा है। तुलनात्मक तौर पर प्रदेश की स्थिति छत्तीसगढ़, झारखंड जैसे पिछडे राज्यों से भी बदतर है। 1991 में जहां लिंगानुपात 912 था वहीं 2001 में यह बढ़कर 919 हो गया। 2011 में स्त्री पुरूष अनुपात 930 हो गया है। परन्तु राज्य के कई जिलों में लिंगानुपात की दर काफी चिंताजनक है। 2011 के जननांकी आंकडों के अनुसार भिंड में लिंगानुपात की दर 830, मुरैना में 839 है वहीं प्रदेश के दस कथित विकसित और शिक्षित जिलों में जिनमें इंदौर, ग्वालियर, रीवा जैसे जिले हैं, लिंगानुपात की दर 900 से भी कम है। ऐसे में राज्य में 2050 में ढाई करोड़ युवाओं की शादियां नहीं हो पाएगी। यहां रोचक तथ्य यह है कि प्रदेश के पिछडे और आदिवासी बहुल जिलों सिंगरौली, डिंडौरी, बालाघाट, छिंदवाड़ा आदि में लिंगानुपात सामान्यत: प्रति हजार 952 से अधिक है। इससे जाहिर होता है कि शिक्षित और विकसित समाजों में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है या फिर कन्या भ्रूण हत्या की दर वहां ज्यादा है।

केन्द्र सरकार ने स्त्री और पुरूषों के बीच इस घटते लिंगानुपात को कम करने और भ्रूण हत्याओं पर पाबंदी लगाने के लिए कई कानून बनाएं हैं और कल्याणकारी योजनाए भी चला रही है। इस दिशा में मध्यप्रदेश सरकार ने भी अपनी ओर से पहल शुरू की है। प्रदेश सरकार ने इस समस्या के निराकरण के लिए बेटी बचाओ नाम से एक महत्वाकांक्षी योजना की शुरूआत की है। इसके पीछे सरकार की मंशा बेटियों के प्रति समाज की मानसिकता को बदलना है, ताकि इससे भ्रूण हत्या पर पाबंदी लगायी जा सके और बेटियों के प्रति लोगों में एक सकारात्मक सोच का विकास किया जा सके।

बेटी अभिभावकों पर बोझ न बने इसके लिए सरकार ने कन्या के जन्म से लेकर उसकी पढाई–लिखाई और शादी–ब्याह तक में सहायता दे रही है। लेकिन सवाल है कि आखिर इस योजना से कितने लोग लाभांवित हो रहे हैं और इस योजना से बेटियों के प्रति लोगों की मानसिकता में किस हद तक बदलाव आया है या बदलाव हुआ है भी कि नहीं ? इस तथ्य का पता लगाना योजना की सफलता और असफलता को ज्ञात करने के लिए जरूरी हो गया है। इस अध्ययन में इसी तथ्य का पता लगाने की कोशिश की गई है।

अध्ययन का उद्देश्य–बेटी बचाओ योजनाओं की सफलता व उसके प्रति लोगों की जागरूकता के स्तर का पता लगाना।

शोध प्रविधि – अध्ययन के लिए रैंडम सैंपल विधि एवं उद्देश्यपूर्ण निद6न व प्रश्नावली विधि का प्रयोग करते हुए आंकडों का संकलन किया गया है। इसमें इकाइयों के चयन के लिए तीन स्तरों का प्रयोग किया गया है।

प्रथम चरण– इस स्तर पर पूरे मंदसौर शहर को दस इकाइयों में बांटा गया है, और प्रत्येक इकाई का नाम एक–एक कार्ड पर लिख कर उसे आपस में मिला दिया गया। इसके बाद कुल दस कार्डो में से एक कार्ड का चयन लॉटरी विधि के माध्यम से किया गया है।

द्वितीय चरण– इस स्तर पर लॉटरी विधि से प्राप्त इकाई की विविध उप इकाईयों में से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग करते हुए लक्षित इकाई का चयन किया गया। यहां उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग शोध समस्या के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किया गया है क्योंकि शोध के लिए वैसी इकाईयों का चयन करना आवश्यक था जिनके बच्चे कहीं न कहीं सरकार द्वारा संचालित इस अभियान से प्रभावित हो रहे हों। यह समूह निम्न मध्यम आय वर्ग समूह है।

तृतीय चरण– इस स्तर में निम्न मध्यम आय वर्ग की कुल 100 इकाइयों में से पुन: रैंडम सैंपल विधि का प्रयोग करते हुए दस इकाईयों का चयन किया गया है।

*अतिथि विद्वान (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, मंदसौर (म.प्र.) भारत

तथ्य संकलन प्रविधि – तथ्य संकलन के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से उत्तरदाताओं की समस्या के प्रति जागरूकता और उसके प्रभाव का पता लगाने का प्रयास किया गया है।

आँकडों का तथ्यात्मक विश्लेषण– रैंडम सेंपल सर्वे व प्रश्नावली द्वारा प्राप्त आँकडों का विश्लेषण निम्न सारणी द्वारा किया जा रहा है:–

- क्या आप सरकार द्वारा संचालित बेटी बचाओं अभियान के बारे में जानते है ?

हॉ	नहीं	थोडा बहुत
49.7%	22.4%	27.9%

- बेटी बचाओंआंदोलन के बारे में आपको जानकारी कैसे मिली ?

टी.वी. व समाचार –पत्र	विज्ञानपन व सगे संबंधी	सरकारी निकाय व अन्य
56.66%	29.4%	13.94%

- क्या बेटियां बेटों के बराबर है ?

  हॉ 70% नहीं 30%

- बेटी का विवाह आपकी नजर में क्या है ?

एक दायित्व	एक उत्सव	रिवाज	एक बोझ
62%	30.09%	07.9%	–

- क्या बेटी बचाओं योजना का लाभ आपके परिवार को मिल रहा है ?

  हॉ 57.34% नहीं 42.66%

- क्या आप इस योजना के तहत मिलने वाले सरकारी सहयोग से संतुष्ट है ?

संतुष्ट	आंशिक रुप से संतुष्ट	बिल्कुल नहीं
38.2%	23.32%	38.48%

- क्या आप बेटियों की शिक्षा के पक्ष में है ?

हॉ	नहीं	थोडा बहुत
57.3%	25.7%	17%

- आप बेटियों की किस प्रकार की शिक्षा के पक्ष में है ?

सामान्य शिक्षा	उच्च शिक्षा	तकनीकी व व्यवसायिक शिक्षा
58.7%	29.9%	12.4%

आकडों के विवेचन से यह ज्ञात हुआ कि सरकार के अभियान के प्रति जनता में जागरूकता है। इस जागरूकता के प्रसार में जनमाध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि ज्यादातर उत्तरदाताओं को अभियान की जानकारी जनमाध्यमों से ही मिली है। जनता में अभियान के प्रति जागरूकता तो है परंतु इसके तहत मिलने वाले विभिन्न प्रकार के लाभों के प्रति लोगों में जानकारी का अभाव है। विभिन्न सरकारी योजनाओ में साईकिल योजना और पोशाक योजना काफी लोकप्रिय है और इसका लाभ अधिकांश उत्तरदाता उठा रहे है। कहीं न कहीं अभियान ने उत्तरदाताओं के मानसिक स्तर को काफी बदला है। जनता की राय है कि अगर सरकार बेटियों के लिए इतना प्रयासरत है तो फिर लड़कियों के प्रति दोयम रवैया क्यों अपनाया जाए। सामान्य जनता लड़कियों को लेकर कोई दोयम रवैया नहीं अपनाता है, क्योंकि ज्यादातर लोग बेटियों को गृहलक्ष्मी या बेटों के बराबर का दर्जा देते है। हालांकि लड़कियों की उच्च शिक्षा के प्रति लोगों की रूचि अधिक दिखी है। अब लोगों का रूझान बेटियों को व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा देने के प्रति भी बढ़ रहा है। कुल मिलाकर लोग सरकार के इस योजना से खुश तो दिख रहे हैं लेकिन इस योजना के सही क्रियान्वयन और योजना के असल दावेदार लाभार्थियों के चयन को लेकर उनके मन में आशंका साफ दिखाई दे रही है।

सुझाव – योजना के प्रति जन–जागरूकता लाने के लिए और अधिक प्रयास करने की जरूरत है। योजना के प्रचार–प्रसार के लिए जनमाध्यमों के साथ ओपिनियन लीडर की भूमिका भी सुनिश्चित करने की जरूरत पर बल दिया जाना चाहिए। ग्राम पंचायत और प्रखण्ड स्तर पर इस अभियान से जनता को जोड़ने के प्रयास होने चाहिए। योजना के लाभार्थियों के चयन में खास सावधानी बरतने की जरूरत है।

उपरोक्त सुझावों को अमल में लाकर निश्चित ही म.प्र.में न सिर्फ लिंगानुपात बढाया जा सकेगा बल्कि म्र.प्र.सरकार की इस सराहनीय पहल को भी एक सही दिशा मिल जाएगी। ज्यादा से ज्यादा लोग इस अभियान से जुडे व सरकार द्वारा दी जारी इस योजना का लाभ सही मायनों मे मिले इस हेतु समाज में जन– जागरूकता लाने के साथ–साथ समाज में लोगों की मानसिकता बदलने की भी आवश्यकता है। ताकि यह योजना जन–अभियान में परिवर्तित होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची:–

1. महिला एवं बाल विकास विभाग, मन्दसौर
2. दैनिक भास्कर व अन्य पत्र–पत्रिकाएँ
3. म. प्र.सरकार के वेब पोर्टल
4. रिपोर्ट म.प्र.सरकार महिला एवं बाल विकास विभाग 2013–2014
5. वार्षिक रिपोर्ट बेटी बचाओ अभियान
6. जनगणना रिपोर्ट 2011

****

बदलता भारतीय समाज - उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में

डॉ. निशा जैन *

प्रस्तावना – मनुष्य सर्वोच्च बौद्धिक प्राणी है। उसकी बौद्धिकता का आधार उसकी चिन्तनशीलता है। इसी चिन्तन शीलता के कारण वह आदिकाल से समाज और उसकी घटनाओं पर निरन्तर चिन्तन करता आया है। विश्व के आदिग्रन्थ ऋग्वेद काल से ही उसके चिन्तन का प्रवाह प्रारम्भ होकर निरन्तर, आज तक गतिशील है। तथा आगे भी गतिशील रहेगा। जब चिन्तन को व्यवस्थित आधार प्रदान कर दिया जाता है तो इसी आधार को सिद्धांत अथवा विचार के रूप में जाना जाता है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी भी है और समाज के अभाव में उसकी कल्पना करना कठिन ही नहीं असंभव है। अत: सामाजिक प्राणी होने के नाते वह सामाजिक जीवन और इससे जुड़ी घटनाओं पर विचार करता है। तथा समाज में बेहतर जीवन की आधार शिलाओं की खोज करता है। ये आधार शिलाएं समाज को गति प्रदान करती है। तथा व्यक्ति को बेहतर जीवन जीने की प्रेरणा देती है। इसके कारण समाज में एक व्यवस्था का निर्माण होता है।

सामाजिक विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र एक नया विषय अवश्य है किन्तु समाजशास्त्री परिप्रेक्ष्य में इसका चिंतन इतना ही प्राचीन जितना कि मानव समाज में अनेक विचारकों ने समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के सिद्धांतों को दृष्टिगत करना है। वास्तव में समाजशास्त्र का तीव्रता से विकास हुआ है मात्र डेढ़ शताब्दी से कुछ अधिक समय में, समाजशास्त्री सिद्धांतों की बाढ़ सी आ गई। पहले क्लासिकल समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन करते थे फिर आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का अध्ययन किया गया। वर्तमान में उत्तर आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत का अध्ययन कर रहे है। समाज शास्त्रीय सिंद्धांत में उत्तर आधुनिकता तीन दशक पहले आयी है, जब ल्योटर्ड ने अपनी पुस्तक 'द पोस्ट मॉडर्न कल्चर' 1979 में सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग किया। उत्तर आधुनिकता वाद एक ऐसा संश्लेषणात्मक समाजशास्त्रीय सिद्धांत है। जो विभिन्न ज्ञान शाखाओं से तथ्यों और अवधारणाओं को लेकर भविष्य के समाज के बारे में एक एकीकृत विचारधारा प्रस्तुत करता है। यह भविष्य के समाज के बारे में सिद्धांत बनाने का एक ऐसा प्रयास है जो दर्शनशास्त्र साहित्यशास्त्र कला, शिल्पकला आदि से बहुत कुछ ग्रहण कर अपने निश्चित संदर्श में वस्तुओं को व्यवस्थित करता है। उत्तर आधुनिकतावाद का संबंध विकसित एवं पूंजीवादी देशों की जीवन पद्धति से जुड़ा है। इसका एक मात्र उदेश्य आधुनिकता के जो तथ्य और सिद्धांत है उन्हे ध्वस्त करना है।

उत्तर आधुनिकता के बारे में चार्ल्स जेंक्स का कहना है कि 'उत्तर आधुनिकतावादी विचारक बाद के पूंजीवाद या बाद की आधुनिकता की व्याख्या करते है। असली उत्तर आधुनिकतावाद की व्याख्या करते हुए जेंक्स कहता है कि यह वास्तव में दोहरी कोडिंग के होने की दलील देता है। कोई एक विश्वदृष्टि प्रभावी नहीं है। परम्परा, आधुनिकता, आधुनिकता के बाद तथा उत्तर आधुनिक व्यवहारों पर बहुलता का शासन है जो एक ही संस्कृति के अंतर्गत एक दूसरे को कोहनी मारकर रगड़ रहे है तथा एक दूसरे को पछाड़ने की होड़ लगाए हुए जेक्स उत्तर आधुनिकता के साथ हाइफन लगाता है। क्योंकि उत्तर आधुनिक समय में मिश्रित अस्मिताओं की व्यापकता है यह पूर्णत: नई चीज है इसके बारे में उत्तर आधुनिक मस्तिष्क ने एक आशा जगायी है कि इससे क्रांतिकारी परिवर्तन आएगा जिसकी सभी उम्मीद लगाए बैठे है। उत्तर आधुनिकतावाद इतिहास में बहुविध आवाजों को सुनता है। यह बोध गम्यता को प्रक्रियात्मक रूपेण प्राप्त करता है। यह आधारभूत तर्को को अस्वीकार करता है। अति एव उत्तर आधुनिकतावादी विचारकों के सिद्धांतों का समावेश करना आवश्यक है। फूकों की मान्यता रही है कि ज्ञान के सब तरीके शक्ति प्राप्त करने के साधन है फूकों ने विश्रंखलता क्षेत्र का विचार भी प्रस्तुत किया उत्तर आधुनिकता संबंधी विचारों में विकेन्द्रीयता और भिन्नता के स्वरूप अवलोकित होते है। ज्यां फ्रेकोज लोटार्ड विज्ञान को, आधुनिकता को, ज्ञानोदय को, तर्क को, तथा बुद्धिवाद को अस्वीकार करता है। यही उसका उत्तर-आधुनिकतावाद है। जेक्यूज दरिदा के उत्तर आधुनिकता संबंधी विचार उसके विसंरचनाकरण की अवधारणा पर आधारित है।

केन्द्रीयकरण के विचार के स्थान पर अन्य सभी विचारों को प्रधानता देने की बात करता है जो अभी तक उपेक्षित है, जो अभी तक दबाए गए है, जो अभी तक हासिए पर खड़े थे। ऐसे सभी को केन्द्रीय बनाने, उनको महत्व देने की बात देरिदा करता है यही उसका उत्तर आधुनिकता वाद है। ज्यां बोर्डिलार्ड ने जन संरचनीय समाज एवं उपभोक्ता समाज पर विशेष ध्यान आक्रर्षित किया है। इनकी मान्यता है कि संस्कृति पर प्रतिकृति प्रभावी है। इसी को वे उत्तर आधुनिक समाज की संज्ञा प्रदान करते है इनका मानना है कि उत्तर आधुनिक समाज एक उपभोग और मीडिया का समाज है। इस समाज पर वास्तविकता का नहीं अपितु संकेत, प्रतिकृति, और आकृतियों का प्रभाव है सब कुछ काल्पनिक है। यहां चारों और केवल कार्बन कॉपी है। मूल प्रति का कहीं पता नही है। यह पूंजीवाद का नया अवतार है। कुल मिलाकर पूंजीवाद ने ही इस उत्तर आधुनिक समाज को जन्म दिया जो कि विनाश के कगार पर है। इहब हजन उत्तर आधुनिकता के संबंध में इनका कहना है कि पीट्स इलियर और जायशी ने एक नया केन्द्र बनाया है। कार्य, अभिकल्प को एक नया अर्थ, स्वरूप गहराईयां प्रदान की हैं उत्तर आधुनिकता वादी निर्मित करते है, जोड़ते है रंगते है, कैनवास पर रंगों को छिड़क कर वह भी ईश्वर के भरोसे रहकर उत्तर आधुनिकता वादी कला को परिभाषा की सीमा से बाहर ले जाते है। तथा विहिनता पर बल देते है। माइकल फोकाल्ट- वर्तमान उत्तर आधुनिकता समाज में ज्ञान का स्थान सर्वोपरि है। इस के द्वारा ही शक्ति अर्जित की जा सकती है। यहीं ज्ञान और शक्ति मानव अस्तित्व को बनाए रखते है। इस ओर शक्ति के इसी आधार से फोकाल्ट को उत्तर संरचनावादी के रूप में ख्याति मिली।

अत: इन विचारकों ने पिछले एक दशक में उत्तर आधुनिकता की व्याख्या सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में की है। यद्यपि अधिकांश विचारक यह स्वीकार करते है कि आज की अवस्था में उत्तर आधुनिकता एक सुसंगत सिद्धांत नहीं है। फिर

* प्राध्यापक, शासकीय बालिका महाविद्यालय, बीना (म.प्र.) भारत

भी इन विचारकों ने उत्तर आधुनिकता के संबंध में तर्क दिया है कि यह एक प्रकार की अराजकता है जो समाज के सदस्यों को बेलगाम छोड़ देता है। इस समाज में औद्योगिक उत्पादन उपभोक्तवाद से जुड़ जाता है। मानवीय मूल्य और मानक ताक में रखकर दिए जाते है। और उत्तर आधुनिकता का रोड रोलर रास्ते में जोगी आता है उसे रोंदता चला जाता है ऐसा दृष्टिकोण उत्तर आधुनिकता वाद के विचारकों का है।

पश्चिमी देशों के साथ-साथ भारत भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ भारत ने आधुनिकोत्तर युग में प्रवेश किया। आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण भारत की कई पारम्परिक संस्थाएं एवं धार्मिक मान्यताओं पर दुश्प्रभाव पड़ा है। 1990 में टीवी चैनल में एमटीवी. ने जोर पकड़ा दुनिया के पैमाने पर एमटीवी. छा गया। जिसे उत्तर आधुनिकता वादियों ने हाथों हाथ लिया जिसका प्रभाव भारत के परम्परावादी ढांचे पर कुछ इस तरह से पड़ा कि संयुक्त परिवार टूट गए, वृद्धों के प्रति अनादर की भावना बढ़ी वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ती चली गई। नैतिकता का पतन हो गया। व्यक्तिवादिता को बढ़ावा मिला। समाज में भौतिकवाद तथा विसालिता बढ़ गई फास्टफूड, रेस्टोरेंट केडिट कार्ड, मोबाइल फोन, इंटरनेट पर चैंटिग चेनलों पर अश्लीलता परोसने जैसी नई संस्कृति विकसित होती चली गई। जो हमारी विश्व प्रसिद्ध प्राचीन तथा आध्यात्मिक संस्कृति को विकृत कर रही है। इसका विशेष प्रभाव मानव की जीवन शैली पर भी पड़ा है। हर आदमी दौड़ता दिखाई देता है। अकेलापन उसकी नियति हो जाती है। दूसरा वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतियोगिता करता दिखाई देता है। उसे संतोष नहीं मिलता है। एकांकीपन प्रतियोगिता और असन्तोष-मनुष्य की मन: स्थिति को दशति है।

उत्तर आधुनिकता की विचारधारा के कारण भारत में कुछ मामलों में परम्परा का स्वरूप परिवर्तित ही नहीं हुआ बल्कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। उत्तर आधुनिकता वादियों का एक बहुत बड़ा तर्क यह कि महान व सत्य कहे जाने वाले वृतान्तों को कूड़े करकट में डाल दो। वृतान्त वे कथाएं, मिथक, लोकप्रिय कहानियां है। पंचतंत्र की कहानियां मिथक जैसे कि भीम की गदा से कुंड बन गया, समुद्र पर सेतु बन गया, राजपूतों की उत्पत्ति साबू पर्वत के अग्निकुण्ड से हुई ये ऐसे कई वे ये मानते है कि ये समाज की रूढ़ियों परम्पराओं और अंधविश्वासों को वैधता देते है। भारत में वृतान्तों का सिलसिला महाकाव्यों के काल में प्रारम्भ होता है। इससे पहले पुराणों का आख्यान है मिलकों की बराबर भरमार हैं मिलकों से जुड़ी कथाएं, वार्ताएं अब भी कोटि कोटि जनों के व्रतों और उपासना को दिशा देते है। उत्तर आधुनिकता इस तरह के महज वृतान्तों को चुनौती देता है। एवं विभिन्न ज्ञान शाखाओं द्वारा बनाई गई सीमाओं का खण्डन करता है तथा एक नई विचारधारा को उत्पन्न करता है। अपने कथन का प्रारम्भ भाषा से करता है। भाषा का आज के संदर्भ में अधिकतम संबंध कम्प्यूटर से है जो एक आधुनिकतम तकनीक है। भारत में संचार क्रांति के आने से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आधुनिकता का स्थान उत्तर आधुनिकता ने ले लिया संचार से सूचना मिलती है। उसका भण्डारण करते है आज की मशीने विशालतम ज्ञान को सूक्ष्म रूप में रखकर व्यापारिक बाजार में डाल देती है अब ज्ञान सीखने के तरीके, ज्ञान स्वयं का वर्गीकरण मशीनों द्वारा होने लगा है। सबसे बड़ा आश्चर्य यह कि सैकड़ों पृष्ठों वाली पुस्तक एक फिलोपी में कैद हो जाती है। भारतीय समाज में यह क्रांतिकारी परिवर्तन है। आज यह माना जाता है कि जिस देश के पास जितना अधिक ज्ञान है वह देश उतना ही अधिक शक्तिशाली है। जिसके फलस्वरूप भारत ने प्रगति तो की है किन्तु पूंजावादी तकनीकी व्यावस्था के कारण प्रदूषण बढ़ा, रोगो में वृद्धि हुई, बेकारी एवं गरीबी कम होने के बजाए बढ़ी है देश में नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ मौलिकता की दौड़ के कारण लोग येन केन प्रकोरण धन संचय करने की सोचते है। भ्रष्टाचार चरम सीमा पर पहुंच गया। बहुराष्ट्रीय उद्योग समाप्त हो गए।

भारत के प्रजातंत्र पर जातिवाद, प्रान्तवाद और भाषावाद हावी हो गया। वैज्ञानिक विचारों और नवीन खोजो को स्वीकार कर भाग्यवाद और धर्म पर सबसे बड़ा कुठाराघात है। भारत में संतान ईश्वर की देन मानी गई आज भी विवाह की आयु, विधवा पुनिर्विवाह, बाल विवाह, स्त्री सम्पति अधिकार उत्तराधिकार दहेज तथा तलाक से संबंधित नवीन कानून बने और विवाह जहां एक धार्मिक संस्कार माना जाता था महज एक समझोक्ता बन कर रह गया। हिप्पीवाद पनपा व्यक्ति नशे का आदी हो गया, वैज्ञानिक पद्धति के तर्क को स्वीकारा गया। भारत में अष्क विस्फोट भी किए है तथा आर्यभट्ट नामक आदि उपग्रह छोड़कर स्पुतनिक जगत में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। लोगों ने नया देश विन्यास भी अपनाया है। नए यातायात संचार के साधनों को भी अपनाया है लेकिन आज बिल्ली रास्ता काटने पर या छींकने पर शुभ अशुभ का हिसाब लगाते है। इस प्रकार भारत में उत्तर आधुनिकता एक नए चोले में स्वीकार मिला गया है।

भारत में आधुनिकता पूंजीवादी व्यवस्था के तहत् आई और उसी रास्ते से उत्तर आधुनिकता ने भी अपने पैर जमा लिए जिससे भारत की सामाजिक व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन आया जो गुणात्मक, अयोग्य, विजातीय, विखंडित, विरोध भासी तथा उभय प्रकृति के समाज पर बल दिया। उत्तर आधुनिक वाद एक तीव्रीकरण और एक पूंजीवादी व्यवस्था के नवीनतम युग के रूप में स्वीकारा जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. समाजशास्त्र का सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य - रवीन्द्र नाथ भुकुजी 2003
2. परिवर्तन एवं विकास - जी.आर.मदान
3. सभा में परिवर्तन एवं विकास - डी.एस.बघेल
4. भारतीय समाज - धर्मवीर महाजन
5. उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत - एसएल.दोषी, एम एम त्रिवेदी
6. समाजशास्त्र नई दिशाएं - एस एल दोषी पी सी जैन
7. भारतीय समाज एवं विचारधाराएं - गोविन्द चन्द्र पाण्डेय
8. समकालीन समाजशास्त्रीय सिद्धांत - रामेश्वर लाल मैनी
9. भारतीय सामाजिक व्यवस्था - राम आहूजा

****

आधुनिकता की चकाचौंध में गुम होता भगोरिया पर्व

कमल सिंह मालवीय * प्रो. मीना मावी * *

प्रस्तावना – भारत देश एक विशाल देश है जिसमें अनेक धर्म जाति के लोग निवास करते हैं। इसी में दुर–दुराज के क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियां भी अपने आवास संस्कृति एंव रीति–रिवाजों के कारण एक अलग ही पहचान रखती है। पुरे देश में मध्यप्रदेश एक ऐसा राज्य है। जहां जनजातियों में प्रथम स्थान पर हैं। इनके लोक संस्कृति एंव पर्व अनुठे होते हैं जो अन्य समाज से भिन्न होते हैं उसी में से एक है भगोरिया पर्व जो कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहा है। लेकिन आज आधुनिकता के दौर में बहुत सारे परिवर्तन हमें देखने को मिलते हैं।

भगोरिया पर्व– मध्यप्रदेश के पश्चिमी जिलों में मुख्यत: भील जनजाति की प्रधानता है। भील जनजाति के अपने अनुठे पर्व उत्सव होते है। इन पर्वो में भगोरिया पर्व है। इस पर्व के कारण झाबुआ एवं इसके पड़ोसी जिलों ने अपनी अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बना ली है।

झाबुआ और भगोरिया एक दुसरे के पर्याय बन चुके है। इस पर्व पर अब पडोसी राज्य ही नहीं देश–विदेश से भी पर्यटक आते हैं कई शोधार्थियों ने अपने शोध विषय के रूप में भगोरिया का चयन किया है।

भगोरिया पर्व प्रतिवर्ष होली पर्व के एक सप्ताह पूर्व से प्रारम्भ होता है होली के पहले जिस स्थान पर जिस वार को साप्ताहिक हाट लगता है। वही उस स्थान का भगोरिया हाट होता है। भगोरिया हाट से पूर्व का हाट त्योहारिया हाट लगता है। जिसमें भगोरिया हाट की तैयारी के लिये आवश्यक खरीददारी के लिये ग्रामीण जन आते है। भगोरिया हाट के बाद वाला हाट उजाडिया हाट होता हैं जिसमें अपेक्षा कृत कम लोग जाते है।

भगोरिया पर्व कब से मनाया जा रहा है। इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। इस संबंध में जो भी जानकारी मिलती वह जनश्रुतियों के माध्यम से मिली है। इन जनश्रुतियों के अनुसार एक समय इस क्षेत्र में भयंकर अकाल पडा । दो तीन वर्षो तक वर्षा नहीं हुई , अनाज नहीं पैदा हुआ, पीने के पानी का संकट भीषण था। मवेशी पशु–पक्षी तक त्राहि–त्राहि करने लगे । ऐसे समय में भगोर (झाबुआ जिले का एक ग्राम) में राजा ने पूजा अर्चना की और मन्नत मांगी यदि अकाल की काली छाया हट गई, तो प्रतिवर्ष देवता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मेले का आयोजन किया जायेगा, जिसमें ग्रामवासी मिलकर देवता की पूजा अर्चना कर आभार एवं कृतज्ञता प्रकट करेगें । ईश्वरीय कृपा से अकाल खत्म हुआ और अच्छी फसलें हुई । तब सबसे पहला मेला भगोर में लगा जिसमें बच्चे, युवा, वृद्ध स्त्री पुरूष नये वस्त्र पहन कर ढोल मादल आदि पारम्परिक वाद्य यंत्रों के सांथ गाते बजाते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की सर्वप्रथम भगोर में मेला लगने के कारण ही इस पर्व का नाम भगोरिया रखा गया ।

भगोरिया हाट के दिन ग्रामवासी प्रात: काल से ही हाट में जाने के लिये उत्साहित रहते है। परिवार के वृद्धजन प्रात: स्नान करके देवी– देवता की पूजा करने के बाद भगोरिया हाट में गाने की तैयारी करती है। भगोरिया पर्व पर नृत्य देवता भंगरा देव की पुजा की जाती है। उन्हें पकवान अर्पित किये जाते हैं। पूजा कार्य सबसे सम्मानित वृद्ध कराता है। उत्सव कर प्रारम्भ प्रसाद वितरण से होता है। युवक युवतियाँ अपने हम उम्र साथियों के साथ समूह में तैयार होते है। प्रत्येक समूह अपनी वेश भूषा व श्रृंगार एक जैसा करते है युवतिया एक जैसी औढ़नी, ब्लाउज व लहंगा पहनती है। तथा पुरूष भी एक जैसी वेश भूषा मे ही नजर आते और झुण्डों में परम्परात्मक बाधयंत्रों, ढोल, मांदल, कुंडी, थाली को बजाते हुए नृत्य करते जाते है इस प्राचीन परम्परा को सभी लोग बडे उत्साह के साथ मनाते है। हाट में पहुंचकर झूला झूलते हैं, पान खाते–खिलाते हैं। होली पूजन की सामग्री खरीदते हैं, शक्कर से बनी माजम, हार, कंगन भी विशेष रूप से खरीदते हैं।

भगोरिया पर्व में आधुनिकता का प्रभाव इस परम्परात्मक पर्व को सभी आदिवासी बडे उत्साह से मनाते आए है। मगर आज जब समाज में इतना तीव्र परिवर्तन हुआ है तो फिर जनजातीय समाज इससे कैसे अछुता रह सकता है। सभ्य समाज के सम्पर्क में आने तथा आवागमन के साधनों के विकास सूचना प्रौद्योगिकी का हर व्यक्ति तक पहुँचना और दूरदर्शन का व्यापक प्रभाव होने के कारण आज जनजाति समाज में भी आमूल चूल परिवर्तन देखने को मिलते है जिससे समाज में ही परिवर्तन हमको देखने को नही मिलता बल्कि प्रथाओं और मान्यताओं तथा पर्वो में भी परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता हैं। उसी में से है भगोरिया पर्व जिसमें आधुनिकता की चकाचौंध इतनी देखने को मिलती है की परम्परात्मक रीति रिवाज हमें कही देखने को नहीं मिलते। मिलते भी है तो बहुत कम परम्परात्मक वेष–भुषा की जगह फेशनेवल पोषाकों ने ले ली परम्परात्मक वाद्य यंत्रों की जगह आज आधुनिक इलेक्ट्रिक यंत्रों ने ले ली। रंगीन शर्बत की जगह कोलड्रिंक्स, आईस्क्रीम का सेवन करते है। पान खाने का प्रचलन भी कम हो गया है।

* अतिथिविद्वान (समाजशास्त्र) ** सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय थांदला (म.प्र.) भारत

जब आज भगोरिया अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान छोड़ रहा है। वही आधुनिकता के इस दौर में जनजाति समाज द्वारा इसकी और से आकर्षण खत्म होता नजर आ रहा है। पहले भगोरिया पर्व मनाने के लिये लोगों में महीनों पहले से उत्साह रहता था। और बडी संख्या में लोग इस पर्व को साथ में मिलजुलकर मनाते थे भगोरिया हाटों में बडी भीड़ सुबह से शाम तक देखी जाती थी। निम्न कारणों से सब लागों का आकर्षण कम देखने को मिलता है। सभ्य समाज को देखकर नई पीढ़ी उस परम्परात्मक पर्व को कम पसन्द करने लगी है। आज लोग अपनी परम्परा को भूलकर पश्चिमी संस्कृति अपनाने लगे है। जो कि एक क्षणिक प्रभाव वाली होती है। आज हम जनजाति समाज में ऐसे परिवारों को देख सकते है। जिन्हे स्वयं अपने समाज में प्रचलित रीति रिवाज उनको मनाने के तरीके आदि से परिचित नहीं हैं। यहां तक की स्वयं अपने समाज की भाषा भी आज की नई जनरेशन भूलती जा रही है।

ऐसी अवस्था में हम कैसे कल्पना करे की जनजाति समाज का यह परम्परात्मक पर्व भगोरिया भविष्य में अपनी पहचान बरकरार रख पायगा अत: आज के इस आधुनिक समाज में जो ऊपरी बनावटी चकाचौंध देखने को मिलती है। जिसके पीछे घोर अंधकार ही छुपा हुआ है इस चकाचौंध में जनजाति समाज की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला भगोरिया पर्व भी इस संक्रमण से अछूता नहीं रहा है।

आकर्षर्ण कम होने के निम्न कारण है –

1. धर्म के प्रभाव का कम होना – आज जैसे ही युग परिवर्तन हो रहा है। वैसे ही धार्मिक कट्टरता भी कम होती जा रही है। अब लोग धर्म के वशीभूत नहीं रहे। व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है। किसी एक धर्म का अनुयायी न होकर अपने पसंद के आधार पर धर्म परिवर्तन कर लेते है जिससे उनकी मूल परम्पराओं एवं रीतिरिवाज पर गहरा प्रभाव पडता है।
2. विज्ञान का बोल बाला– आज अधिकतर लोग साक्षर हो गए है। जिससे वह अपनी रूढि वादिता को त्यागकर तथ्यों पर विश्वास करने लगें है। आज सारी परम्पराऐं उसे व्यर्थ लगने लगी है। प्रौद्योगिकी का इतना प्रभाव बढ़ता जा रहा है। कि लोग फेसबुक, वाटस्–अप, तथा अन्य सोशल नेटवर्किंग साइटों का महत्व बढ़ता जा रहा है।
3. सभ्य समाज से सम्पर्क बढ़ना– जनजाति समाज जो जंगलों में दूर दराज के इलाको में निवास किया करता था। वही आज कष्टमय दल–दल से निकलकर बाहर आया है जिससे उसका सम्पर्क सभ्य समाज से बढ़ा और उसकी संस्कृति और रिवाजों को अपनाने की होड लग गई है।
4. फैशन का प्रभाव– जनजाति समाज आज अपने परम्परात्मक वेश भूषा को छोडकर फैशन की और आकर्षित होने लगा है। फैशन का प्रभाव हम भगोरिया मेलों में स्वाभाविक रूप से देखते है जिसमें युवा जहा पहलें धोती, गमछा ,पगड़ी पहनते थे वही आज जिंस टीशर्ट, स्पोर्ट शू, केप, चश्मा तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करते है। युवतियां ब्यूटी पार्लर जाकर श्रृंगार करवाती है। गोदना– गुदवाने का प्रचलन कम हो गया है। शिक्षित जनजातीय वर्ग भीड़–भाड़ में जाना पसन्द नहीं करते हैं। उनमें हाट– मेले के प्रति कोई आकर्षण नहीं होता है।

5. परिवार का प्रभाव कम होना –आज जनजाति समाज ही नहीं, सभी समाजों में यह समस्या देखने को मिलती है। जहां परिवार के सदस्यों पर पूरा नियन्त्रण होता था, वह नियन्त्रण अब कम होता जा रहा है। बच्चे दूर शहरों में रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं जिससे उनके ऊपर परिवार का नियन्त्रण एंव पारिवारिक रीतिरिवाजों का प्रभाव कम होता जाता है। व्यक्ति आज स्वतन्त्र रहना चाहता है।
6. चल चित्रों एवं अन्य साधनों से मनोरंजन का होना –आज दूरदर्शन, मोबाईल हर व्यक्ति तक पहुँच रहा है। जिससे उसका अपने त्योहारों तथा उत्सवों द्वारा होने वाला मनोरंजन आधुनिक साधनों से होने लगा है चल चित्रों के माध्यम से वही चीज उन्हें सुगमता पूर्वक प्राप्त हो जाती है।

निष्कर्ष – इस नवीनता से अनुकूल करने में जनजाति असमर्थ रही है परिणामस्परूप नवीन सांस्कृतिक समस्याओं में जन्म लिया। ईसाई मिशनरियों ने सेवा के नाम पर अपने धर्म प्रचार का कार्य किया और आदिवासिओं के अज्ञान और अशिक्षा का लाभ उठाया।

ईसाई मिशनरियों के प्रभाव के कारण अनेक आदिवासियों में अपनी संस्कृति को त्याग कर पाश्चात्य् संस्कृति को अपनाया। अपने रीति–रीवाजो प्रथाओं युवा ग्रहों को त्याग दिया है और उनकी प्राचीन ललित कलाओं का ह्रास होने लगा है।

इन सब कारणों से निष्कर्ष निकलता है की इस आधुनिकता की चकाचौंध में भगोरिया जैसे जनजाति समाज का प्रतिष्ठित पर्व गुम न हो जाए। ऐसा न हो की हमारी आने वाली पीढ़ी को किसी संस्था या किताबों कविताओं में पता चले की जनजाति समाज का एक पर्व भी हुआ करता था जिसे भगोरिया पर्व कहा जाता था।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. साहित्य भवन आगरा द्वारा प्रकाशित समाजशास्त्र पुस्तक 2009 एंव व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर।

****

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा विषयक विचार : (समग्र सामाजिक विकास के संदर्भ में)

डॉ. उमा लवानिया*

शोध सारांश – स्वामी विवेकानंद ने भारत में हिन्दु धर्म का पुनरूद्धार तथा विदेशों में सनातन सत्य का प्रचार किया। यही कारण है कि वे प्राच्ष्य एवं पाष्चात्य देशों में सर्वत्र समान रूप में श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है। स्वामी विवेकानंद जी अपनी बुद्धि, विवके एवं शैक्षिक ज्ञान से सम्पूर्ण समाज को यह संदेश देते थे कि – किसी बात पर सिर्फ इसी कारण विश्वास न कर लो कि वह किसी ग्रंथ में लिखी है। किसी चीज पर इसलिए विष्वास न कर लो कि किसी व्यक्ति ने इसे सत्य कहा है। किसी बात पर सिर्फ इस कारण भी विश्वास न कना कि वे परम्परा से चली आ ही है। अपने लिये सत्य की स्वयं ही उपलब्धि करो। उसे तर्क की कसौटी पर कसोटी। विवेकानंद जी की विचाराधारा – 'चरित्र गठन' जिसे यप्रतिष्ठित प्रज्ञा' के नाम से अभिहित करते है। समाज के विकास में विवेकानंद जी की युवा वर्ग को प्रेरणात्मक विचारधारा के साथ–साथ स्वयं के उत्तरदायित्व के प्रति सजग रहना एवं आत्मविश्वास भर कर जीवन की कठिन परिस्थितियों से जूझना व समाज को प्रगति पथ पर ले जाना। विवेकानंद जी मानव में यमुझको नहीं तुमको मैं न ही तुम की भावना भर करर एक नि:स्वार्थ मानव बनाना चाहते थे। व्यक्ति कल्याण व समाज कल्याण ही मानव जीवन की कर्मभूमि है, वे विभिन्न धर्म संप्रदायों की भेदभाव पूर्ण बाधाओं को तोड़कर अशिक्षा, दरिद्रता, शोषण को दूर कर पीड़ित मानव सेवा कर उनका उद्धार करने की बात आज के युवा वर्ग जो समाज व राष्ट्र का आधार स्तम्भ है, को देते थे। सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानंद जी की विचारधारा– लोहा जब गर्म होता है तभी उस पर चोट लगानी चाहिए। सुस्ती की कोई जरूरत नहीं है। ईर्ष्या और अंह को सदा के लिए गंगा में डुबो दो। कार्यक्षेत्र में महाशक्ति के साथ आ जाओं। काम, काम, काम, बस यही मूलमंत्र है। शरीर तो एक दिन जाने को ही है, तो फिर यह आलसियों की तरह क्यों जायें ? जंग लगकर मरने की अपेक्षा घिस–पिस कर, कुछ करके मरना कहीं अच्छा है। स्वामी जी का कार्य राष्ट्रीय और साथ ही साथ अंतर्राष्ट्रीय भी था। स्वामी विवेकानंद का जीवन तडित के समान तेजस्वी और तूफान के सदृश वेगवान था। वे अपने लघु कार्यकाल में जो कुछ कर गये वह आगामी अनेक शताब्दियों तक विश्व के इतिहास प्रवाह को दिशा और गति प्रदान करता रहेगा।

शब्द कुंजी – स्वामी विवेकानंद , शिक्षा विषयक विचार , हिन्दू धर्म का पुनरूउद्धार , समाजिक विचार , संपूर्ण समाज को संदेश, रूढीवादीता छूआछूत रहित भावना , चरित्र गठन , योग एवं आध्यात्म , उत्तरदायित्व एवं आत्मविश्वास , ज्ञान योग , भक्ति योग , राज योग , कर्म योग , नये समाज एवं राष्ट्र को नई दिशा।

प्रस्तावना – स्वामी विवेकानंद ने भारत में हिन्दु धर्म का पुनरूद्धार तथा विदेशों में सनातन सत्य का प्रचार किया। यही कारण है कि वे प्राच्श्य एवं पाश्चात्य देशों में सर्वत्र समान रूप में श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है। विवेकानंद जी का जन्म 12 जनवरी 1863 ई0 सोमवार के दिन प्रात:काल सूर्योदय के काल में 6 बजकर 49 मिनिट पर हुआ था। अत: विवेकानंद जी ने इस धरती पर जब पहली सांस ली वह मकर संक्राति का दिन था। महान उत्सव का दिन था।

मनुश्य के जीवन में कब क्या परिवर्तन आ जाये, कुछ हीं कहा जा सकता। बचपन का नटखट, उपद्रवी बालक नरेन्द्र, युवावस्था का तार्किक नरेन्द्र – रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव से ऐसा गंभीर, धीर और दृढवती सन्यासी बनेगा, कौन जानता था। विषम परिस्थितियों में अमेरिका जाकर विश्वधर्म सम्मेलन में भारत की ध्वजा फहराने वाले स्वामी विवेकानंद जी ही है।

स्वामी विवेकानंद जी अपनी बुद्धि, विवके एवं शैक्षिक ज्ञान से सम्पूर्ण समाज को यह संदेश देते थे कि – किसी बात पर सिर्फ इसी कारण विश्वास न कर लो कि वह किसी ग्रंथ में लिखी है। किसी चीज पर इसलिए विश्वास न कर लो कि किसी व्यक्ति ने इसे सत्य कहा है। किसी बात पर सिर्फ इस कारण भी विश्वास न कना कि वे परम्परा से चली आ ही है। अपने लिये सत्य की स्वयं ही उपलब्धि करो। उसे तर्क की कसौटी पर कसो

आज के सामाजिक विकास के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद जी जैसा निर्भीक, जिज्ञासु तीव्र बुद्धि, एकाग्र एवं अद्भुत स्मरण शक्ति का व्यक्तित्व होना आवश्यक है उनके विचारों में रूढिवादिता एवं छुआ–छूत की भावना नहीं थी वे धर्मिक वातावरण में ररहे एवं धार्मिक विचारों विशेष कर शिव के प्रति समपर्ण की भावना लिए हुए थे। स्वामी विवेकानंद जी रामायण, महाभारत एवं पुराणों की कथाओं को ध्या से सुनते थे और उन कथाओं के निचोड को अपनी विलक्षण प्रतिभा से अपने जीवन में उतारते थे।

स्वामी विवेकानंद जी के जीवन को तब एक विशेष दिशा मिली जब वे श्री रामकृष्ण देव के सम्पर्क में आए। विवेकानंद जी की बी.ए. की परीक्षा के पहले ही दिन उन्हें अचानक ईश्वर के प्रति सर्वग्रासी प्रेम की अनुभूति हुई और वे अपने एक सहपाठी के कमरे के द्वार पर खडे होकर भावुकता पूर्वक गाने लगे

हे पर्वतों ! वादलों ! हवाओं !
सब मिलकर उनकी महिमा गाओं !
हे सूर्य ! चन्द्र ! हे तार काओं।
आनन्द पूर्वक प्रभु की महिमा गाओं।

ये भाव आज की युवा पीढ़ी के लिए एक विचार है। स्वामी विवेकानंद ध्यान लीन थे। उन्हें देखकर ऐसा लगा रहा था कि वे किसी महान अंत: प्रयोग में पूरी तरह विलीन हो गये, व्याख्यान ने सम्पूर्ण समाज को प्रभावित किया सभी को अनुभव हुआ कि जब वे व्याख्यान देते थे तो उनकी देह से हलके नीले रंग की विद्युत लहरें निकलती थी।

स्वामी विवेकानंद जी के संबंध में सुभाषचन्द्र बोस का कथन – ''वे एक अति उच्च आध्यात्मिक उपलब्धि – सम्पन्न योगी थे जिन्होंने सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया था एवं अपने जीवन को देश के नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन तथा समग्र मानवता के कल्याणार्थ समर्पित कर दिया था। मैं इन्हीं शब्दों में उनका वर्णन करना पसंद करूँगा। यदि वे आज जीवित होते, तो मैं उनके श्री चरणों में होता।''

स्वामी विवेकानंद जी का विचार था कि प्रत्येक जीवन अव्यक्त ब्रह्म है।

बस एवं अन्त: प्रकृति को वशीभूत करके अपने इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मन:संयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओं। बस यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान पद्धतियां

*सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (म.प्र.) भारत

शास्त्र, मंदिर अथवा अन्य बाह्या क्रिया-कलाप तो उसके गौण व्यौरे मात्र है।

विवेकानंद जी की विचाराधारा - ''चरित्र गठन'' जिसे प्रतिष्ठित प्रज्ञा के नाम से अभिहित करते है। यह जिस प्रकार प्रत्येक के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार व्यक्ति समष्टि समाज में भी इसकी आवश्यकता है धर्म को किसी प्रकार की सामाजिक अथवा राजनीति उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप में लेते है। धर्म का उद्देश्य धर्म नहीं है। जो धर्म केवल सांसारिक सुख का साधन मात्र है वह धर्म नहीं है। जिन लोगों में सत्य, पवित्रता और नि:स्वार्थ परता विद्यमान है, उन्हें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल की कोई भी शक्ति क्षति नहीं पहुँचा सकती। इन गुणों के रहने पर चाहे समस्त विश्व ही किसी व्यक्ति के विरूद्ध क्यों न हो जाय वह अकेला ही उसका सामाना कर सकता है। विवेकानंद जी के अनुसार ''योग एवं अध्यात्म की प्रारंभिक क्रियाएं व्यवहारिक एवं शारीरिक होती हैं। शरीर पर इनके सकारात्मक प्रभाव होते हैं।''

स्वामी विवेकानंद जी की स्पष्ट वक्ता, अनौपचारिकतापूर्ण वार्तालाप तर्कपूर्ण, नपे-तुले शब्दों का प्रयोग, अध्ययन में कुशाग्रवृद्धि एवं शिक्षा के क्षेत्र में जिज्ञासा एवं मन मस्तिष्क को उद्धेलित कर देना आज के सामाजिक विकास की सीढी है। वे दार्शनिक विचाराधाराओं से प्रभावित थे। विवेकानंद के संबंध में जनरल असेम्बली कॉलेज के दर्शन विभाग के अध्यक्ष, विलियम स्टिंग जो कि अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे, नरेन्द्र के बारे में कहा कि दर्शन का ऐसा मेधावी छात्र यूरोप के किसी भी विश्वविद्यालय में देखे को नहीं मिलेगा। पाश्चात्य दार्शनिक विचाराओं ने नरेन्द्र के विचारों को झकझोर दिया। दर्शन शास्त्र नरेन्द्र का प्रिय विषय था उनका निरंतन चिंतन- डिकार्ट का अंहवाद हूम और बेन की नास्तिकता, डार्बिन का विकासवाद स्पेन्सर का अज्ञेयवाद, मिलर का यथार्थवाद इनमें से कौन सत्य है ? इसी जिज्ञासा ने नरेन्द्र के मस्तिष्क को उद्धेलित कर दिया। यह स्वामी विवेकानंद जी के जीवन की अंतरात्मा की तस्वीर है जो युवा वर्ग के प्रणेता कहे जाने वाले युवा वर्ग के लिए ही विकास की दिशा में एक नया संदेश देती है।

स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा संबंधी विचार जिनसे सम्पूर्ण समाज का विकास संभव है-

- उत्तरदायित्व की भावना ।
- आत्मविश्वास।
- कठिन परिस्थितियों से जूझना।
- राष्ट्र निर्माण की भावना।
- समस्त जन समुदाय का एक मत।
- मुझको नहीं तुमको की विचारधारा।
- नि:स्वार्थ सेवा भाव।
- सजातीय मनुष्यों के प्रति सहानुभूति।
- व्यक्ति कल्याण की भावना।
- समाज कल्याण की भावना।
- स्वर्ग और नर्क की चिन्ता छोड़ना।
- स्वंय एवं अहम को भूलना।
- धर्म सम्प्रदाय की बाधाओं को छोड़ना।
- अशिक्षा, दरिद्रता, शोषण को दूर करना।
- पीडित मानवता की सेवा करना।
- बुद्ध की भांति जीवन उत्सर्ग करना।

अत: समाज के विकास में विवेकानंद जी की युवा वर्ग को प्रेरणात्मक विचारधारा के साथ-साथ स्वयं के उत्तरदायित्व के प्रति सजग रहना एवं आत्मविश्वास भर कर जीवन की कठिन परिस्थितियों से जूझना व समाज को प्रगति पथ पर ले जाना। विवेकानंद जी मानव में मुझको नहीं तुमको मैं न ही तुम की भावना भर कर एक नि:स्वार्थ मानव बनाना चाहते थे। व्यक्ति कल्याण व समाज कल्याण ही मानव जीवन की कर्मभूमि है, वे विभिन्न धर्म संप्रदायों की भेदभाव पूर्ण बाधाओं को तोड़कर अशिक्षा, दरिद्रता, शोषण को दूर कर पीड़ित मानव सेवा कर उनका उद्धार करने की बात आज के युवा वर्ग जो समाज व राष्ट्र का आधार स्तम्भ है, को देते थे।

सामाजिक विकास के परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानंद जी की विचारधारा- लोहा जब गर्म होता है तभी उस पर चोट लगानी चाहिए। सुस्ती की कोई जरूरत नहीं है। ईर्ष्या और अहं को सदा के लिए गंगा में डुबो दो। कार्यक्षेत्र में महाशक्ति के साथ आ जाओं। काम, काम, काम, बस यही मूलमंत्र है।

शरीर तो एक दिन जाने को ही है, तो फिर यह आलसियों की तरह क्यों जायें ? जंग लगकर मरने की अपेक्षा घिस-पिस कर, कुछ करके मरना कहीं अच्छा है।

स्वामी जी का कार्य राष्ट्रीय और साथ ही साथ अंतर्राष्ट्रीय भी था। वे मानव प्रेमी थे और वैज्ञानिक अखण्डत्व के आध्यात्मिक आधार पर उन्होंने शांति और विश्व बन्धुत्व की स्थापना की थी और मानव की सेवा को अपने जीवन को उद्देश्य बना लिया था। यही कारण था कि भारत में मानव जाति के कल्याण का ऐसा यंत्र स्थापित किया जिसका कोई शक्ति नाश नहीं कर सकती। स्वामी जी जो मानव जाति एवं समाज को अपनी अन्तर्आत्मा की आवाज से मुरकुराते हुए कहते थे- चेतना की उच्चस्तरीय कक्षाओं से अवतरित होने वाली आध्यात्मिक ऊर्जा मानसिक क्रियाओं एवं भावनात्मक स्थिति में व्यापक परिवर्तन करते हुए उसमें अतींद्रिय बोध के द्वार खोलती है। तब व्यक्ति व्यक्ति नहीं रहा जाता, वह बन जाता है विराट का अभिन्न हिस्सा। तभी उसके अनुभवों में भविष्य दर्शन, दूर बोध-अंतबोध के नए द्वार खुलते है।

निष्कर्ष - स्वामी विवेकानंद का जीवन तडित के समान तेजस्वी और तूफान के सदृष वेगवान था। वे अपने लघु कार्यकाल में जो कुछ कर गये वह आगामी अनेक शताब्दियों तक विश्व के इतिहास प्रवाह को दिशा और गति प्रदान करता रहेगा। विवेकानंद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, और यद्यपि उन्हें एक महान देशभक्त, लेखक, विचारक, वक्ता, मानवप्रेमी आदि विशेषणों से विभूषित किया जा सकता है तथापि मूलत: वे एक सर्व त्यागी ब्रझवेता सन्यायी थे। उनके जीवन का दोहरा तात्पर्य था- एक पूरे विश्व के लिए दूसरा स्वदेश के लिए। स्वामी जी ने कहा था कि जैसे बुद्ध के पास प्राच्य जगत के लिए एक संदेश था वैसे ही मेरे पास पाश्चात्य जगत के लिए एक संदेश है। यदि पश्चिमी दश युद्ध, स्पर्धा, आणविक विध्वंस, आर्थिक वैषम्य आदि खतरों से अपनी रक्षा करना चाहते हो तो उनके लिए स्वामी जी द्वारा प्रचारित विश्व के अखण्डता और मानव के दिव्यत्व का भाव अपनाना अपरिहार्य हो जाता है स्वामी जी भारतीय नव जागरण के अग्रदूत थे। वे भारत की अन्तर्रात्मा के मूर्तरूप थे। अत: अपने राष्ट्रीय जीवन के वैशिष्टम को जानने के लिए हमारी आगामी पीड़ियों को उनके जीवन और वाणी का गहन अध्ययन करना होगा।

स्वामी विवेकानंद जी के उन्तालीस वर्ष (1863-1902) के संक्षिप्त जीवन काल के केवल दस वर्ष ही सार्वजनिक कार्यो में व्यतीत हुए। इतने कम समय में भी उन्होंने भावी पीडियों के लिए शाश्वत महत्व के चार ग्रंथ छोडे- ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मभोग, तथा राजयोग यह सभी हिन्दू दर्शन के असाधारण धर्मग्रंथ हैं। जो आने वाली पीढ़ी, नये समाज एवं राष्ट्र के लिए एक नई दिशा देते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्वामी विवेकानंद - साधना पॉकेट बुक्स, रोशनारा रोड, दिल्ली- 110087
2. राजभोग- रामकृष्ण गठ नागपुर
3. रा.से.यो. स्वयं सेवक दैनन्दिनी- भाग्योदय प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, मथुरा
4. हमारा भारत- स्वामी विवेकानंद
5. विवेकानंद एक जीवनी- स्वामी निखिलानंद
6. अखण्ड ज्योति- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

आधुनिक संदर्भ में महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम

मंजूलता नागरे *

प्रस्तावना – महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नरौबी में की गई थी। वास्तव में यदि विचार किया जाये तो महिला सशक्तिकरण का सामान्य सा अर्थ निकलता है कि महिला को शक्ति संपन्न बनना या सत्ता में महिलाओं की सांझेदारी से है। निर्यण लेने की क्षमता सशक्तिक्करण का एक बड़ा मानक है। सशक्तिक्करण का सीधा सा अर्थ है कि किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता। महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य है। कि महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है। आधुनिककरण में महिलाएं विकास की ओर बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ रही महिलाएं आज घर की चार दीवारी तक ही सीमित नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक क्षेत्रों में नित्य नये आयामों की रचना कर रही है।

1. **राजनैतिक क्षेत्र में –** भारत में महिलाऐ शिक्षित विभिन्न राजनैतिक दलो के अन्तर्गत विभिन्न पदों पर पदस्थ है। कई महिलाऐ तो राजनैतिक दल के निर्माता एवं अध्यक्ष पद पर पदस्थ होने के साथ कई प्रांतो में मुख्यमंत्री के पद पर पदस्थ रही है। जैसे – शीला दीक्षित, जयललिता, मायवती, इनके अलावा कई महिला राजनैतिज्ञ केन्द्र एवं राज्यों में मंत्रीयों के पदो पर पदस्थ है। इनके साथ–साथ प्रधान मंत्री एवं राष्ट्रपति के पद पर पहुँच कर भारत में महिला सशक्तीकरण को नये नये आयाम दिये है।
2. **आर्थिक क्षेत्र में –** आज के आधुनिक भारत में महिलाये घर कि दहलीज को लांघकर आर्थिक क्षेत्र में नित्य नये आयामों कि रचना कर रही है। भारत के निजी बैंक क्षेत्र में तीन प्रमुख बैंको के सी.ई.ओ. के पद पर पदस्थ है। कई कम्पनीयों में महिलाये प्रबंधक एवं जनरल मेनेजर के पद पर कार्य कर रही है। इसके साथ–साथ शासकीय सेवा एवं निजी संस्थाओं में कार्य कर परिवार को आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान कर रही है पैप्सी कम्पनी की सी.ई.ओ. के पद पर भारतीय महिला द्वारा कार्य कर महिला सशक्तीकरण को विश्व में नये अयामों तक पहुचा है।
3. **शैक्षणिक क्षेत्र –** प्राचीन काल में महिलाओं को घर बाहर से बाहर निकलना वर्जित हुआ करता था अत: वे अशिक्षित हुआ करती थी लेकिन समय के साथ–साथ आज के आधुनिकीकरण युग में महिलाएं भी पुरूषो के समान घर से बाहर निकलकर शिक्षा के क्षेत्र तेजी से आगे बढ रही है। डॉक्टर इंजीनियर एवं हर प्रकार की तकनीकि प्राप्त कर रही है। दुनिया के हर विश्व विद्यालय में भारतीय महिलाएं अध्ययन करती हुई पाई जा रही है। इस प्रकार हर प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर शिक्षा के क्षेत्र में महिला सशक्तिकरण को नई उँचाईयो तक पहुचाया है।
4. **खेलकूद के क्षेत्र में –** दशे में विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा आधुनिक भारत में विभिन्न क्षेत्रो में महिला सशक्तिकरण उँचाईयो तक पहुचने के साथ–साथ खेल क्षेत्र में भी नये आयामो को छुआ है। टेनिस में सानिया मिर्जा द्वारा विश्व में एकल पहचान बनाई है। साईना नेहवाल द्वारा बेडमिटंन में विश्व में द्वितीय स्थान प्राप्त किया।पीटी उषा द्वारा एशियाई खेलों में चार स्वर्ण पद जीतकर नये इतिहास रचा इसके अलावा वर्तमान ओलंपिक में मुकेबाजी में पदक जीत कर दुनिया में भारतीय महिलाओं का नाम रोशन किया है।
5. **विज्ञान के क्षेत्र –** में भी भारतीय महिलाओं ने नई नई उँचाइयों को छुआ है। दूसरो एवं कई अनुसंधान केन्द्रो में कई महिलाएं अनुसंधानकर्ता के रूप में कार्य कर नये–नये अविष्कार कर रही है। भारतीय महिलाओं द्वारा अंतरिक्ष के क्षेत्र में भी पुरूषो के समान योगदान रहा है। अभी अभी सुनिता विलियम एवं कल्पना चावला ने अंतरिक्ष में जाकर विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय महिलाओं का नाम बुलंद किया।

महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु उठाये गये कदम – संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के आर्टिकल (55) में कहा गया है कि समानता, स्वतंत्रता, मातृत्व तथा सबको न्याय इसी वैश्विक भावना के साथ स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान में भी स्त्री पुरूष समानता (अनु. 14) की चर्चा की गई है। 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम 1954 के विशेष विवाह अधिनियम 1956 पुनर्विवाह अधिनियम 1956 में पारित हिन्दूदत्तक गृहण एवं भरण पोषण अधिनियम के द्वारा जहां नारी को सामाजिक अधिकार प्रदान किये गये है। वही 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा उसे संपत्ति का अधिकार प्रदान किया गया है। फैक्ट्री अधिनियम 1948 एवं समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 के द्वारा आर्थिक अधिकारों के साथ–साथ इनके सम्मान को भी सुरक्षा प्रदान की गई। शिक्षित एवं अशिक्षित सभी महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त दहेज निषेध एक्त 1961, प्रसूती लाभ एक्ट 1961 एवं अश्लील चित्रण निवारण 1986 भी पारित किये गये है।

भारत सरकार द्वारा 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष घोषित किया गया। स्वयं सिद्धायोजना, महिला समाख्या कार्यक्रम, द्रवाकरा आदि योजनायें प्रारंभ की गई। राज्यो ने भी अपनी अपनी ओर से प्रयास किये जैसे हरियाणा में देवी रूपक योजना एवं छत्तीसगढ़ में दीदी बैंक योजना इत्यादि।

महिलाओं की स्थिति – भारतीय संविधान की प्रस्तावना के अनुसार भारत में महिलओं को पुरूषो के समान अधिकार प्रदान किये गये है। भारतीय संविधान में कही भी महिलाओं को पुरूषों से कम अधिकार प्राप्त नहीं है। किन्तु सामाजिक पारिवारिक रूढिवादी परम्परा के कारण भारत में महिलाओं की स्थिति हर क्षेत्र में पिछडी होने के बावजूद भी आज के भारत मे महिलाऐ शिक्षा के कारण जागरूक हो रही है। और हर क्षेत्र में उन्नति कर महिला सशक्तिकरण को बढ़ा रही है। भारतीय संविधान में महिलाओं को विशेष अधिकार दिये गये है। राजनैतिक क्षेत्र में महिला उचित प्रतिनिधित्व देने के लिए संविधान के 73 वे संशोधन द्वारा सम्पूर्ण देश पंचायतो एवं जिला परिषदों में 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया है। 26 अक्टूबर 2006 को घरेलू महिला, हिंसा महिला, आरक्षण कानून पारित किया गया। सैद्धांतिक रूप से महिलाओं को कानून में पुरूषों के समान सभी अधिकार प्राप्त है। परंतु व्यवहारिक रूप से इनमें बहुत अंतर है। परिवारों में लड़कियों को लड़को के समान शिक्षा खेलकूद खाने–पीने आदि में भेदभाव किया जाता है। आज भी विवाह करते समय लड़के द्वारा लड़की को देखने की परम्परा है। अकसर केवल लड़के से पसंद न पसंद के बारे सहमति ली जाती है। जबकि लडकियों की सहमति या असहमति को नजर अंदाज कर दिया जाता है। शहरीकरण एवं आधुनिकीय

* शोधार्थी,(समाजशास्त्र विभाग) बरकतउल्ला विश्वविधालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

करण के कारण शहरी एवं शिक्षित परिवारों में ही लड़कियों को कुछ छूट एवं सुविधा लड़कों के बराबर प्रदान की जाती है। किन्तु यहां पर भी लड़कियों का देर रात को घर आना लडकों के साथ धूमना या उनके साथ होटलों में खाना खाने पार्टियों में जाने पर लड़कों के समान स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है। अकसर उन्हें जल्दी घर आने को कहा जाता है। आज कल शादी के लिए नौकरी पेशा लड़कियों की मांग बढ़ती जा रही है। किन्तु फिर भी उन्हें घर एवं बाहर दोनों जगह समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जगह-जगह पर उन्हे उत्पीड़न का सामना करना पडता है। किन्तु फिर भी आधुनिक भारत में भारतीय महिलाएं सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठता के नये आयाओं की रचना कर रही है।

अध्ययन विधि – महिला सशक्तीकरण का अध्ययन द्वैतीक आंकड़ों से एकत्रित किया गया जिसमें पुस्तक, समाचार पत्र एकल अध्यापन आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययनका उद्देश्य –

1. वर्तमान स्थति में महिला सशक्तिकरण पर विश्लेषण एवं महिलाओं के लिए निर्मित विभिन्न योजनाओं को जानना।
2. योजनाओं से लाभांवित महिलाओं का मूल्यांकन करना।

21 वी सदी में प्रवेश कर चुके जमाने में अब जबकि लड़कियां पढ लिख रही है, आत्मनिर्भर है, पुराने बंधनो से मुक्त है, विभिन्न संगठन कार्य कर रही है, तब महिलाएँ अधिक सुसंस्कृत और कुशल हो रही है। शायद यही उनके पुर्नजन्म का स्वर्णिम काल है। आज महिलाओं ने पुरूषों की बागडोर संभालना शुरू कर दिया है। इस नवीन परिकल्पना में किरण बेदी, टेसी थॉमस, प्रतिभा पाटिल, मीरा कुमार जैसे कई चेहरे आइकन बनकर उभर रहे है। मणिपुर में दस साल से आमरण अनशन पर अस्पताल में नलियों के सहारे लेटी इरोम शार्मिला ने तो न झुकने और न डिगने की नारी संकल्पना की नई नारी किवंदती गढ़ी है। सूचना के अधिकार को लाने वाली अरूणा राय महिला सशाक्तिकरण की प्रबल परोकार बनी है। भविष्य वक्ताओं ने 21 वीं सदी को नारी सदी कह कर संबोधित किया है। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पंचायतों और स्थानीय निकायों में बढती जा रही है। आज महिलाएं पंचायत चुनाव लड़ते समय यह संकल्प कर चुनाव लडती है कि वह 'एक और भ्रष्ट सरपंच' नहीं बनने देगी। स्कूल कॉलेज पढ़ने वाली लडकियाँ यह तय कर पढाई करती है कि वह दकियानुसी, लालची और आपराधिक समाज का हिस्सा नहीं बनेगी। कार्य क्षेत्र के विभिन्न बैठको में स्वयं बढ़-चढ़कर भाग लेगी न कि उनके पति या संबंधी अपने हस्ताक्षर हेतु किसी को घर न बुलाकर स्वयं अपने कार्यालय में उपस्थित होकर अपने दायित्व का निर्वाहन करेगी। महिलाओं की यह उपलब्धि महिला सशक्तिकरण की देन है। सरकार द्वारा महिलाओं के लिये शिक्षा की समुचित व्यवस्था होने से महिलाओं में दक्षता, कौशल, ज्ञान एवं क्षमताओं का विकास हुआ है। महिलायें विभिन्न योजनाओं व राष्ट्रीय कार्यक्रमों से जुडी, यथा संभव बहुमुखी विकास के मार्ग पर कदम पर कदम बढ़ाया जिसमें वे कामयाब भी हुई है। महिलायें अपनी बुद्धि, योग्यता के आधार पर सभी नौकरियों और व्यवसायों में आगे आने लगीं है। लिपिक, शिक्षिका, अधिकारी, प्रशासनिक सेवाओं में तो महिलायें अपने कदम जमा चुकी है इससे आगे पुलिस, इंजीनियरिंग, पायलट, चिकित्सा, सेना, नर्सिग, पत्रकारिता, सौंदर्य प्रसाधन, विशेषज्ञों आदि के रूप मे भी उल्लेखनीय प्रगति प्राप्त कर ली है। खेलकूद, पर्वतारोहण के क्षेत्र शिक्षित महिलाओं से गौरवान्वित हुये है। एयरहोस्टेस, रिसेप्शनिस्ट, सेल्सगर्ल्स, मॉडल, कला, नत्य संगीत आदि क्षेत्रों में महिलाओं का वर्चस्य स्थापित हुआ है। आज की महिलायें केवल पत्नी, माता आदि संबंधो के द्वारा ही अपना परिचय नहीं देती, बल्कि अपने आपको राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक के रूप में उपस्थित करती है। डेरी पशुपालन, पोल्ट्री, मछली पालन, चटनी, आचार मुरब्बे यानी कि खाद्य परिरक्षण, हथकरघा, दस्तकारी जैसे कामों में ग्रामीण महिलायें पीछे नहीं हैं, लेकिन जो गांव शहरी इलाकों के नजदीक है वहां की महिलाओं को इस नव जागृति और चेतना का लाभ अधिक पहुंचा है, बहुत-सी महिलाओं ने तो अपनी सफलता के रिकार्ड कायम किये है। पश्चिमी उत्तरप्रदेश में एक जिला है बागपत। वहां की बड़ौत तहसील की उषा तोमर ने मिसाल कायम की है। करीब 7 वर्ष पहले अपने इलाके की 15 महिलाओं को लेकर उषा ने स्वयं सहायता के लिये एक छोटा-सा समूह बनाया था। अब वह बढ़कर कई गुना हो गया है जो पूरे जिले में एक आदर्श मिसाल बन गई है। इस समूह ने बड़ा अनोखा काम किया है। एक महिला कृषि प्रसार विद्यालय का गठन किया जो कृषि से जुडी महिलाओं को नई-नई जानकारी देता है। इसके बेहतर परिणाम मिले। पुराने औजारों व पुराने तरीकों से छुटकारा मिला। समय शक्ति व श्रम की बरबादी रूकी। सोचने का ढंग बदला। कम लागत व कम वक्त में ज्यादा फायदा हुआ। क्षेत्र में फूलों व नई सब्जियो की खेती बढ़ी। सदस्य महिलाओं के परिवारों की आमदनी बढ़ी, उनका जीवन स्तर सुधरा है। यह देखकर दूसरी महिलाओं का प्रेरणा मिली है। समूह की सदस्याओं को देख-देख कर गांव की दूसरी महिलायें भी पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टी.वी. आदि से जानकारी लेने में अधिक रूचि लेने लगी है। जो पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी, वे भी शर्म, संकोच और भय छोड़कर अब अक्षर ज्ञान लेने की कोशिश कर रहीं है। इसी तरह एक दो नहीं देश के ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक समूह चल रहे हैं। वे अपनी थोड़ी-थोड़ी बचत इकट्ठी करके जरूरतमंद सदस्याओं की मदद करते हैं। मार्च 2007 तक 68575 समूह बने थे जिसमें 10 लाख महिलायें सदस्य थीं।

निष्कर्ष – स्त्रियों का सामाजिक राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन में प्रतिनिधित्व दक्षता में अभिवृद्धि, सामाजिक सुरक्षा की प्राप्ति को हासिल करके उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है। स्त्रियों का सशक्तिकरण उन्हें क्षितिज दिखाने का प्रयास है जिसमें वे नई क्षमताओं को प्राप्त कर स्वयं को नये तरीके से देखेंगी, घरेलू शक्ति संबंधों का बेहतर समायोजन करेंगी और घर एवं पर्यावरण में स्वायत्तता की अनुभूति करेंगी। लैंगिक असमानता, दहेज, सामाजिक मान्यता एवं समुचित शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कुछ पहलुओं की दिशा में प्रयास करके ही महिला सशक्तिकरण किया जा सकता है। सशक्तिकरण की गतिविधियों के द्वारा नारी समाज के नव जागरण और कल्याण की ठोस शुरूआत की जानी है। महिला सबलीकरण आधुनिक जीवन में सामाजिक न्याय की जड़ो को मजबूत करता हैं। समाज के रवैये में बुनियादी परिवर्तन लाकर महिलाओं के विवेक, समार्थ्य एवं योग्यताओं को मिलने वाली चुनौतियों के बीच उन्हें प्रोत्साहित करना है। अपनी क्षमताओं को पहचान कर और उन्हें काम में लाकर व्यवहार में परिणित करना जिससे वे समाज के उत्थान में योगदान कर सकती हैं। महिलाओं का सशक्तिकरण एक लगातार चलने वाली गतिशील प्रक्रिया है, इसका मूल उद्देश्य यह है कि हाशिये के लोगों को मुख्यधारा में लाया जा सके और सत्ता संरचना में भागीदार बनाया जा सके। आज भारतीय महिलाओं ने देश दुनिया के विभिन्न क्षेत्र में अपना सम्मानित स्थान बनाया है आज महिलायें बेहतर रोजगार के लिये दुनिया के किसी भी कोने में जाने के लिये तैयार हैं आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जहां महिलाओं ने अपनी उपस्थिति दर्ज न कराई हो। राष्ट्र के विकास की अग्रदूत बनी महिलाओं द्वारा देश ही नहीं वरन् विदेशों में भी अपने राष्ट्र का परचम लहराया हैं। समुद्र की गहराइयों से लेकर पहाडों की उंचाइयां भी इन कदमों के सामने छोटी पड़ गई। राष्ट्र की आंतरिक तथा बाह्य गतिविधियां इनसे अछूती न रह पायीं । महिला सशक्तिकरण हेतु अत्यंत आवश्यक है कि प्रशासनिक संरचना के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की गुणात्मक व साथ ही संख्यात्मक सहभागिता भी अनिवार्य रूप से हो। शक्ति संरचना में महिलाओं की सहभागिता को सुनिश्चित करना, उन्हें समानता दिलाने या उनके आनुपातिक व विस्तृत सामाजिक मुद्दो को, महिलाओं व समाज के संदर्भ में समझने का प्रयास भी होगा। एक न्यायोचित व मानवीय सामाजिक व्यवस्था के निर्माण हेतु हमें महिलाओं की सहभागिता के महत्व को समझना होगा।

संदर्भ ग्रथं सूची :-

1. चौहान डॉ. ईश्वरसिंह, 1989 भारतीय समाज, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. पाठक इन्दु, मार्च 2007, राजनीतिक सहभागिता एवं महिला सशक्तिकरण, कुरूक्षेत्र, मासिक पत्रिका, पेज-26
3. दैनिक समाचार पत्र - नव भारत, दैनिक भास्कर, देशबंधु, अमृतसंदेश ।
4. आर्थिक समीक्षा, 2008-2009, भारत सरकार, नई दिल्ली।

'डायन प्रथा' (विचकाफ्ट) : एक सामाजिक विश्लेषण

डॉ. परेश द्विवेदी *

प्रस्तावना – भारत अनेक विविधताओं वाला देश है। यहाँ जनजातीय समुदायों एवं ग्रामीण क्षेत्रों के साथ शहरी क्षेत्रों में भी कई प्रकार के रीति-रिवाजों, परम्पराओं एवं प्रथाओं का प्रचलन है। इनमें धर्म एवं जादू का महत्वपूर्ण स्थान है। सम्पूर्ण भारत में धर्म एवं जादू के सन्दर्भ में अनेक विविधतायुक्त मान्यताओं के साथ उससे सम्बन्धित अनुष्ठान एवं क्रियाविधियों को भारतीयों द्वारा पूर्ण किया जाता है। इन अनुष्ठानों एवं क्रियाविधियों का सम्बन्ध पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा के साथ जुड़ा हुआ है, जिसे पूर्ण करने के दो मार्ग है, पहला मांत्रिक मार्ग एवं दूसरा तांत्रिक मार्ग। मांत्रिक मार्ग की सम्बद्धता धर्म के पवित्र अनुष्ठान से है जबकि तांत्रिक मार्ग को अपवित्र अनुष्ठान से जोड़कर देखा जाता है जिसमें जादू-टोने की क्रियाओं का समावेश होता है। मांत्रिक क्रियाविधियों में यज्ञ, हवन, व्रत, उपवास जैसी क्रियाऐं सम्मिलित होती है।

भारत के लोगों में यह मान्यता है कि नियमित पूजा, अर्चना, आराधना, व्रत, उपवास एवं समय-समय पर यज्ञ-हवन आदि पवित्र मांत्रिक अनुष्ठानों को पूर्ण करते रहने से विपत्तियों से रक्षा के साथ, उपरी हवा, नज़र, भूत-प्रेत, डायन जैसी अपवित्र आत्माओं से सुरक्षा होती है। क्योंकि भारत में लोगों का आत्मा और पुनर्जन्म की धारणा में विश्वास है। ऐसी ही अप्रत्यक्ष रूप से अपवित्र आत्मा के अस्तित्व को डायन के स्वरूप में स्वीकार किया गया है जो प्रथागत मान्यता के रूप में राजस्थान के अतिरिक्त भारत के गुजरात, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, हरियाणा, असम, झारखण्ड, महाराष्ट्र आदि राज्यों में भी देखने को मिलती है। वैश्विक दृष्टि से अफ्रीका में यह प्रथा व्यापक स्तर पर है।

किसे कहते है डायन ? आम मान्यता के अनुसार दो सन्दर्भ डायन की संज्ञा में सामने आते है, पहला, जब किसी मनुष्य की आकस्मिक, असामयिक या अकाल मृत्यु हो जाती है जो कि अप्रत्याशित एवं अप्राकृतिक होती है, उसे दुष्टया भटकती आत्मा की श्रेणी में रखा जाता है। पुरूषों की ऐसी मृत्यु और उनकी भटकती आत्मा को भूत-प्रेत, वीर या जीन कहा जाता है एवं महिलाओं की इस प्रकार की मृत्यु एवं भटकती आत्मा को डायन या चुड़ैल कहा जाता है। दूसरा गरीब, एकल, दलित, विधवा, परित्यक्ता, शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के आधार पर सकारात्मक नहीं दिखने वाली, विचित्र वेशभूषा एवं रहने के ढंग जिसमें नकारात्मक गुण दिखाई पड़ते हो, डरावनी दिखने वाली और बार-बार किसी महिला द्वारा कहीं गई बातों का जो व्यावहारिक रूप में सत्य होती जाती है जिसे सामूहिक मान्यता के आधार पर उचित ठहराकर उस महिला को डायन की संज्ञा दे दी जाती है।

डायन की पहली संज्ञा में आत्मावाद से सम्बद्धता दिखाई देती है और दूसरी संज्ञा में जीवित सत्तावाद का पुट दिखाई देता है। लेकिन दोनों ही संज्ञाओं में काल्पनिकता अधिक है जिसका ना कोई तार्किक या वैज्ञानिक आधार है और ना ही प्रमाण। इस प्रकार डायन प्रथा की अवधारणा का संबन्ध महिलाओं से जोड़कर देखा जाता है जो अप्रत्यक्ष रुप से किसी मृत महिला की आत्मा के रुप में उपरोक्त बताई गई महिलाओं की किसी भी श्रेणी से सम्बन्धित हो सकती है। कभी- कभी तो सहज, सुसभ्य एवं प्रतिष्ठित दिखाई देने वाली महिला जिसके द्वारा सहज में कही गई बात व्यावहारिक रुप से निरन्तर सिद्ध हो जाती है तो उसे भी सामूहिक सहमति के साथ डायन कह दिया जाता है। परन्तु विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित घटनाओं, शोध अध्ययन के निष्कर्षो तथा आम सामाजिक धारणा के अनुसार डायन एक जीवित चरित्र है, न कि मृत।

डायन के संदर्भ में मान्यताएँ – डायन के संदर्भ में इस प्रकार की मान्यता है कि वे महिलाएँ जिनकी अकाल अप्राकृतिक या अप्रत्याशित मृत्यु हो जाती है, तो उनका इस प्रकार असामयिक मृत्यु को प्राप्त हो जाना उनकी अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं, अपेक्षाओं और अधूरी आशाओं की ओर संकेत करती है। मृत्यु के पश्चात उन्हें मोक्ष नहीं मिलता और न ही उनका किसी दूसरी योनि में पुर्नजन्म होता है और यह असन्तुष्ट भटकती आत्मा डायन के रुप में विचरण करती है जो किसी भी जीवित महिला, पुरुष, बच्चों एवं जानवरों को परेशान करने के साथ उसमें प्रवेश भी कर सकती है। इसी प्रकार आर्थिक रुप से कमजोर असन्तुष्ट, दूसरों की प्रगति से नाखुश, ईर्ष्या रखने वाली जीवित महिलाएँ भी तंत्र विद्या के माध्यम से इन मृत आत्माओं के रुप में उपस्थित डायन को वश में करके किसी को भी किसी भी रुप में परेशान करने के साथ शरीर में प्रवेश करा सकती है या स्वयं प्रवेश कर लेती है।

आम भाषा में आत्मा के रुप में एक डायन को डाकन भी कहा जाता है जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वह 70 प्रकार के रुप धारण कर सकती है जिसमें उसके सिकोतरी, मैली, सयानी एवं चुडैल जैसे रुप बलशाली एवं खतरनाक माने जाते है। इन स्वरूपों में एक डायन, वीर (मृत्यु के पश्चात पुरुषों की भटकती आत्मा का एक स्वरूप) का सहयोग लेकर किसी भी हद तक नुकसान पहुँचा सकती है। उनके विचरण का समय दोपहर 12-3 एवं मध्यरात्री 12-3 बजे का माना जाता है तथा यह मगरमच्छ या रीछ पर सवारी करती है।

मौखिक इतिहास एवं दन्त कथाओं के अनुसार जब डायन सवारी करती है तो वह अपने सारे कपडे उतार कर नग्नावस्था में विचरण करती है। इस अवस्था में यदि कोई उसे देख ले तो उसका अनिष्ट हुए बिना नहीं रहता। किसी महिला को डायन बताने का आधार मंत्र शक्ति है। यह मंत्र शक्ति वाणी, झूठन, खाने में किसी प्रकार की मिलावट, बालों के गुच्छे में मांत्रिक क्रियाओं, राई के दाने बिखेरकर, मूठ मारकर, नींबू में आलपिन चुभोकर, वस्त्र पहनाकर

* व्याख्याता (समाजशास्त्र) भूपाल नोबल्स स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

या ऐसे ही अन्य क्रियाओं के माध्यम से प्रवेश करवाई जाती है। ऐसी क्रियाओं में मंत्र शक्ति के प्रवेश को भी वीर कहा जाता है। जब वीर किसी महिला में प्रवेश कर जाते है तो वह डायन बन जाती है। इन क्रियाओं का उद्देश्य किसी का अहित करने के साथ कुफल प्रदान करता होता है। वीर 52 प्रकार के माने जाते है जो हनुमान जी की साधना करने पर ही हाथ लगते है।

एक डाकन के पाँच वीर होते है जिसे वह छिपाकर रखती है और जिसे वह डाकन बनाना चाहती है उसमें उन्हें स्थानान्तरित कर देती है। जो डाकन सौ भक्षण कर चुकी होती है वह सिकोतरी बन जाती है। मैली डाकन से कम परन्तु सयारी से अधिक शक्तिशाली मानी जाती है। सिकोतरी जहाँ अपनी सखी सहेलियों के साथ बड़ा भ्रमण करती है वही मैली किसी को जान से मार नहीं सकती। वह जानवरों एवं बच्चों की आँखें खराब कर सकती है। मैली किसी का झूठन नहीं खाती। सयारी का कार्य क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित एवं छोटा होता है। इन सबमें डायन सर्वाधिक शक्तिशाली एवं अनिष्ठकारी होती है। डायन जब किसी का बिगाड़ा करने के लिए अपनी साधना करती है तो वह अकेले एवं विकृत स्थिति में होती है। उसके मुँह से लार गिरने के साथ चेहरा बदसूरत होता है और आँखें लाल हो जाती है। इनकी सभी क्रियाएँ पुरूषों पर लागू नहीं होती है। परन्तु महिलाओं की मृत्यु तक होने की इसमें सम्भावना रहती है।

डायन की उपस्थिति की पहचान का आधार एवं उपचार – जब कोई महिला अपने दैनिक जीवन के व्यवहार से हटकर अलग प्रकार की क्रियाएँ सम्पन्न करती हुई दिखाई दे जिसमें अचानक शरीर में अकड़न आ जाना, धुनना, नाना प्रकार की वस्तुओं की फरमाइश करना आदि सम्मिलित है, तब यह माना जाता है कि उसमें डायन ने प्रवेश कर लिया है। लम्बे इलाज के बाद भी बीमारी का ठीक न होना, शरीर का गलते जाना, हमेशा सर दर्द रहना, सुस्ती रहना, शरीर का वजन कम होना, काम में मन न लगना, असहज क्रियाऐं करते रहना जैसे लक्षणों की उपस्थिति में डायन का शरीर में प्रवेश मान लिया जाता है। ऐसी स्थिति में उपचार के लिए वर्तमान चिकित्सा पद्धति काम नहीं आती है। यद्धपि चिकित्सा विज्ञान अपने आप में बहुत बड़ा क्षेत्र है परन्तु वह इन सभी बातों को स्वीकार नहीं करता है। तब परम्परागत भोपों, ओझाओं, फकीर या व्यवसायिक तांत्रिक क्रिया करने वालों के साथ देवरों, लोक देवी-देवताओं, मज़ार के स्थान पर जाकर शरण ली जाती है।

सयारी एवं मैली के प्रवेश तक महिलाएँ अपने स्तर पर टोने टोटके करके मनोवैज्ञानिक रूप से राहत पाने का प्रयास करती है। सफलता नहीं मिलने पर भोपों, औझाओं, फकीरों एवं तंत्र क्रियाओं को सम्पादित करने वाले व्यक्तियों से राहत पाने का प्रयास किया जाता है जिसमें ताबीज, काला धागा का पहनना, बलि देना, दारू की बोतल में तांत्रिक क्रियाओं से डायन का बोतल में प्रवेश करवाना जिसे उतारा विधि कहा जाता है, चार रास्तों के चौराहे पर नींबू काटकर फेंकना, लाल कपड़े से ढकी मटकी में उतारा करके रखना, उतारा करने के बाद बोतल या मटकी को पानी में फेंक देना और पीछे मुड़कर नहीं देखना, काजल, बिन्दी, सिन्दुर, चूड़ी, साड़ी आदि का चढावा जैसी क्रियाऐं प्रमुख है।

धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण – यदि लिखित पाठ्य सामग्री में धार्मिक ग्रन्थों का मूल्यांकन किया जाए तो कई सन्दर्भो में ऋषि मुनि एवं असुर दो प्रकार की श्रेणियाँ मिलती है। गाथाओं में असुर वृत्ति को अपवित्र माना गया है। जब-जब भी ऋषि-मुनियों द्धारा पवित्र धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन किया जाता था, तब-तब असुरी वृत्ति ने अपनी तांत्रिक साधनाओं एवं क्रियाओं से ऋषि-मुनियों के पवित्र कर्म एवं तपस्या में विध्न डालकर उन्हें परेशान किया। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें रामायण ग्रंथ से तारका का मिलता है जो अपनी तांत्रिक विधाओं से संत पुरुषों और ऋषि-मुनियों को यज्ञ आदि पवित्र कार्य करने से रोकती थी। ऐसी स्थिति में देवताओं ने विभिन्न स्वरूपों में अवतरित होकर असुरी वृत्ति को नष्ट किया एवं ऋषि-मुनियों की रक्षा की। हनुमान जी, शनि महाराज, भैरव आराधना, गायत्री एवं देवी आराधना में ऐसे सन्दर्भ प्राय: आमजन द्धारा की जाने वाली स्तुति में पाये गये है। ऐसे में यह प्रश्न सामने आता है कि क्या विभिन्न आराध्य देवों की स्तुति के दौरान आने वाले भूत-प्रेतों, असुरी वृत्ति एवं प्रेतात्माओं के सन्दर्भ उनके अस्तित्व को बताते है जिनसे जोड़कर डायन जैसी प्रेतात्माओं के अस्तित्व को वर्तमान में लोगों द्धारा धर्मग्रन्थों में उल्लेखित घटनाओं से जोड़कर देखा जाता है। जादू, टोने-टोटके के प्रसंग भी धार्मिक ग्रन्थों में मिलते है। यमराज की कहानियाँ भी इनके अस्तित्व को बलवती बनाती है। इस सम्पूर्ण धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण को वर्तमान एवं अतीत से किस प्रकार जोड़कर देखा जाए, यह एक विचारणीय बिन्दू है।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा – ईवांस प्रिचार्ड (1940) ने सर्वप्रथम डायन कर्म का विस्तृत अध्ययन किया। उन्हें अफ्रीका में प्रचलित इस विश्वास का पता चला। उनका मानना है कि डायन कर्म एक वास्तविकता है जो कुछ लोगों के शरीर में निवास करती है और उसकी इच्छा के बिना भी कार्य करती है। उन्होंने अफ्रीका की अजाण्डे जनजाति के अध्ययन के बाद बताया कि अजाण्डे लोगों का विश्वास है कि जब आदमी को पता चलता है कि उसमें डायन कर्म करने की शक्ति है तो वह उन व्यक्तियों को कष्ट पहुँचाने की कोशिश करता है जिन्हें वह नापसन्द करता है। जिन जनजातियों में डायन में विश्वास है उनमें इनके रूप और व्यवहार के विषय में धारणाएँ प्रचलित है। डायन कर्म का समय रात्रीकाल है क्योंकि इसी समय गुप्त दुराचार सम्भव है। रात में विचरने वाले प्राणी उससे सम्बन्धित माने जाते है। इनके द्धारा ऐसे कार्य किये जाते है जो सदाचार के विरूद्ध है। जैसे नंगे नाच करना, घर के सामने मल-मूत्र त्यागना। जो आदमी पुरूष या स्त्री डायन बनता है उनका मनहूस, असामाजिक शिकायती रूप प्रत्यक्ष होता है। इस विश्वास में वे सभी लक्षण आ जाते है जो दुराचार की श्रेणी में माने जाते है। डायन कर्म की दुष्टता को मूर्तरूप कहा जाता है अत: समाज से डायनों को हटाने का प्रयत्न किया जाता है। यह अध्ययन डायन के अस्तित्व का समर्थन करता है।

टायलर (1913) ने अपने जीववाद के सिद्धान्त में आत्मा एवं प्रेतों में विश्वास को आधार माना है। टायलर का मानना है कि अमूर्त एवं अभौतिक प्रेतात्माओं के प्रति भय एवं श्रद्धा की अभिवृत्ति आदिम धर्म का मूल एवं प्राचीनतम प्रकार है। ये प्रेतात्माएँ हमारे नियन्त्रण में नहीं होती। इसलिए इनकी पूजा आराधना की जाती है। ताकि ये कोई नुकसान न पहुँचाए एवं यथा आवश्यकता सहायक सिद्ध हो सके। बाद में टायलर ने अपने विचार को सिद्धान्त का रूप देते हुए उसे जडात्मवाद (Animism) की संज्ञा दी जिसमें सभी प्रकार की देवी शक्तियों में विश्वास का समावेश होता है। टायलर ने इसे पुन: दो वर्गों में विभक्त किया –

1. आत्मा का सिद्धान्त – इसमें यह विश्वास था कि मनुष्यों की आत्माएँ होती है, जो मृत्यु के बाद भी शेष रहती है।
2. प्रेतों का सिद्धान्त – जो मूर्त देवी शक्तियों के अस्तित्व पर आधारित है। जब कोई मनुष्य मरता है तो कोई तत्व उसके शरीर से अलग हो जाता है। वैसी दशा बेहोशी, नींद या उन्माद में देखी जा सकती है। इस प्रकार टायलर की व्याख्या एवं मत किसी न किसी रूप में प्रेतात्माओं के जीव सत्तावाद, आत्मावाद एवं प्रेतात्मा के सिद्धान्त का समर्थन करता है।

मेरट (1974) ने भी अपने सिद्धान्त जीवसत्तावाद या मानावाद में स्पष्ट किया है कि आदिम लोगों का सम्पूर्ण धार्मिक जीवन कतिपय ऐसी अलौकिक शक्ति से उत्पन्न होता है जो अबोधगम्म, अव्यक्तिक, अमौलिक और अमूर्त होता है तथा संसार के सभी सजीव एवं निर्जीव पदार्थों में अंतर्निहित रहती है। यह ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से परे होती है, किन्तु मनुष्य के विचारों, क्रियाओं तथा उसके चारों ओर विद्यमान पदार्थ की शारीरिक या प्राकृतिक शक्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है। एक व्यक्ति या पदार्थ में इसकी मौजूदगी के अंशों की तीव्रता में परस्पर फर्क हो सकता है किन्तु तत्वत: यह सभी पदार्थों में होती है। मेरट की व्याख्या भी डायन के अस्तित्व को अमूर्त रूप में स्वीकार करती है।

दुर्खीम (1976) की मान्यता है कि धर्म में केवल पावन (सेक्रेड) विश्वासों का समावेश होता है। ये विश्वास ऐसे देवताओं एवं ईश्वरीय प्रतिमाओं के बारे में होते है जो वस्तुत: समाज के प्रतीकवत होते है। इन विश्वासों को धार्मिक क्रियाओं द्वारा संपादित किया जाता है। अपावन (प्रोफेन) विश्वास और क्रियाएँ पवित्र नहीं होते अत: धर्म में इनका समावेश नहीं किया जाता। ये जादू है। ये व्यक्तिगत अक्खडपन के सूचक और समाज विरोधी होते है। इसलिए ये अपावन है। दुर्खीम की अपावन क्रियाएँ प्रेतात्माओं एवं दुराचारी क्रियाओं की व्यवहारिक मानसिकता को बलवती बनाती है। फ्रेजर (1922) के जादू सम्बन्धी विचार, मैलिनोवस्की (1948) के सफेद एवं काला जादू का वर्गीकरण भी किसी न किसी प्रकार से पावन एवं अपावन क्रियाओं का समर्थन करते है जिसमें फ्रेजर के अनुसार सभी जादुई क्रियाओं में कारण और प्रभाव के बीच सम्बन्धों को सहानुभूति दृष्टि से देखा या मान लिया जाता है। उनके अनुसार जादू भी कारण-प्रभाव संघटकों के अवलोकन और प्रयोगीकरण पर आधारित है। उन्होंने जादू को सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दो भागों में विभाजित कर सैद्धान्तिक जादू को छद्म विज्ञान के रूप में तथा व्यावहारिक जादू को छद्मकला के रूप में अभिव्यक्त किया है। व्यावहारिक जादू के उन्होंने सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का उल्लेख किया है। सकारात्मक पक्ष में मंत्र-तंत्र (सोर्सरी) जादू-टोना (विचक्राफ्ट) को सम्मिलित किया है। नकारात्मक पक्ष में निषेध (टेबू) की चर्चा की है। उनकी विचक्राफ्ट की मान्यता डायन के अस्तित्व का समर्थन करती हुई प्रतीत होती है। मैलिनोवस्की ने अपने वर्गीकरण में सफेद जादू को सामाजिक कल्याण का द्योतक बताया है वही काले जादू को उन्होंने दूसरों को हानि पहुँचाने के रूप में स्पष्ट किया है जिसमें उन्होंने टोना और भूत-प्रेत की सिद्धी को सम्मिलित किया है जो इसके अस्तित्व का समर्थन करती है। दुबे (1951) द्वारा वर्गीकृत संवर्धक, संरक्षक एवं विनाशक जादू के तीन प्रकारों में विनाशक जादू तूफान नियंत्रण के लिए, सम्पति विनाश के लिए, बीमारी बढ़ाने के लिए, किसी को मारने के लिए किये जाते है जो डायन के सन्दर्भ में आम लोगों की मान्यताओं का समर्थन करती हैं। फ्रायड (1960) ने इसकी व्याख्या द्वैद्यवृत्ति (एंबिबलेंस) के सन्दर्भ में की है। अर्थात परस्पर विरोध अर्धमानसिक अवस्थाओं वाली व्याधिग्रस्त दिमागी स्थिति। उनका मानना है कि द्वैद्यवृत्तिापूर्ण संघर्ष से ही सभी प्रकार के टेबू उत्पन्न होते है।

जादू टोने की क्रियाओं से भारतीय जनजातीयों में भी डायन कर्म के प्रचलन का सन्दर्भ मिलता है। जिसमें डायन कर्म प्राय: स्त्रियों द्वारा किया माना जाता है। 'हा' जनजाति में डायन कर्म करने वाली स्त्री को समाज से बहिष्कृत किया जाता है। छोटा नागपुर के उरांव जनजाति में डायन कर्म किया जाता है। इन जनजातियों का मानना है कि खेतों में लगी फसल एवं जीवित मनुष्य को क्षति पहुँचाना, जानवरों को बीमार बना देना, बीमारी, अप्राकृतिक मृत्यु, चेचक, पानी में डूबना, पेड़ों से गिराना आदि डायन द्वारा ही किया जाता है।

राय, ए.सी. (1915) ने उरांव में डायन कर्म की शिक्षा के सम्बन्ध में लिखा है कि डायन कर्म की प्राप्ति गोपनीय अभ्यास द्वारा होती है। अर्द्धरात्री में विशेषकर अमावस्या के दिन सभी पड़ौसी गांव की डायने गाँव की आबादी से दूर एक वृक्ष के नीचे जमा होकर अभ्यास करती है। वहाँ अपने वस्त्रों को उतारकर पुराने झाडू को वस्त्र स्वरूप धारण करती है। डायन कर्म में वे मंत्रोचार, नाच एवं अन्य तकनीक सीखती है। डायन सम्बन्धी अन्वेषकों को देवनारा कहते है। देवनारा, डायन ग्रस्त व्यक्ति को सोका के पास भेजता है, जो निर्भय होकर डायन का नाम उद्घोषित कर देता है। सोका एकमात्र व्यक्ति है जो डायन द्वारा प्रेषित दुष्ट आत्माओं का सामना कर सकता है। डायनों को सामाजिक दुश्मन माना जाता है। बहुत ज्यादा सताये जाने पर गाँव वाले डायन को मार देते है।

उपर्युक्त अध्ययन धर्म एवं जादू के रूप में किसी न किसी प्रकार डायन की अवधारणा, मान्यता, पहचान एवं उपचार के सन्दर्भ में प्रारम्भ में की गई व्याख्या का समर्थन करती है, और इस बात का दावा करती है कि जादू टोने की क्रियाओं एवं अपवित्र कर्म द्वारा अनिष्ठकारी क्रियाऐं डायन कर्म के रूप में की जाती रही है जो प्राचीनकाल से सामाजिक मान्यता प्राप्त डायन प्रथा के प्रचलन को जायज ठहराती है। राजस्थान में भी भील, मीणा, गरासिया, सहरिया जनजातियों के साथ कई ग्रामीण क्षेत्रों एवं अंशत नगरीय आबादी में भी डायन कर्म की उपर्युक्त विश्लेषणात्मक मान्यताओं के साथ डायन प्रथा का प्रचलन पाया जाता है।

वर्तमान प्रवृत्तियाँ – धर्म एवं जादू टोने के विविध अध्ययन डायन कर्म के रूप में डायन प्रथा के प्रचलन को संदर्भित करते है। मान्यताओं के आधार पर इस प्रथा को स्वीकार किया जा सकता है परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जनजातियों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में डायन प्रथा की मान्यताओं में परिवर्तन होकर कई प्रकार की विकृतियाँ आने के साथ यह प्रथा एक कुरीति के रूप में परिवर्तित होती दिखाई दे रही है। इसे महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की श्रेणी में रखा जा सकता है। वर्तमान में एकल, परित्यक्ता, विधवा, गरीब अथवा दलित महिलाओं को डायन, डाकन या चुडैल घोषित करके उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जा रहा है। उनकी अपेक्षाओं को कुचलने के लिए उन्हें पागल या डायन सिद्ध करने का सिलसिला अभिशाप बनता जा रहा है। उनके साथ अमानवीय अत्याचार करना आजकल आम बात हो गई है। महिला हिंसा का तथाकथित डायन रूप जमीन सम्पत्ति हड़पने के साथ पुरानी रंजिश निकालने का हथियार बनता जा रहा है। कई बार तो सम्पत्ति आदि हड़पने के लिए जानबूझ कर डायन करार देने की साजिश रची जाती है और हत्या भी कर दी जाती है। ओझाओं की मिली भगत से आदिवासी बहुल इलाकों में महिलाओं को डाकन करार देकर उन्हें प्रताड़ित करना आज भी जारी है।

ग्रामीण अंचलों में डायन की नृशंस हत्या भी कभी-कभी कर दी जाती है। गांवों में दबंग, उच्च जाति के प्रतिष्ठा प्राप्त धनाढ्य लोग जमीन हथियाने एवं कथित निम्न जाति के लोगों को दबाएं रखने के लिए उन परिवारों की औरतों को डायन घोषित करते है और उन्हें बुरी आत्मा के नियंत्रण में प्रचारित करके सामाजिक घृणा और उपेक्षा का पात्र बनाते जा रहे है। इन लोगों को अपना घर-बार, जमीन-जायदाद कौडियों के भाव बेचकर गांव छोड़ने के साथ निर्वासित जीवन यापन करने को मजबूर होना पड़ रहा है। आमतौर पर जिन महिलाओं को डायन घोषित किया जाता है वे बीमार, उम्रदराज, गरीब एवं पिछड़े वर्ग की होती है। वे मानसिक, शारीरिक और आर्थिक रूप से इतनी

कमजोर होती है कि अपने उपर होने वाले अत्याचार की शिकायत भी नहीं कर पाती है।

डायन को प्रताड़ित करने के मुख्य कारण जमीन, आपसी रंजिश, अंधविश्वास, परिवार के सदस्यों की मृत्यु तथा निसंतानता प्रमुख है। डायन के बारे में यह आम धारणा बनाई जाती है कि वह जादू टोना करने वाली, जानवरों का रूप धारण करने वाली तथा मानव अंगों को खा जाने वाली होती है जिसके लिए गांव, जाति, समाज, परिजन, जाति पंचायत के पंच एवं भोपे मुख्यरूप से जिम्मेदार है। डायन से पीड़ित महिला को कई प्रकार के दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ता है। उसे शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना मिलने के साथ आर्थिक दण्ड भुगतना पड़ता है। सामाजिक बहिष्कार होता है और उनके पशु, खेत व फसल की चोरी के साथ मकान में तोड़-फोड़ कर दी जाती है। वह अपना आत्मविश्वास खोने के साथ भयग्रस्त रहती है। बच्चों की पढ़ाई, विवाह एवं घरेलू आयोजनों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

कानूनी एवं संवैधानिक पक्ष – महिलाओं को डायन कहकर प्रताड़ित करने की घटना मध्यकाल से चली आ रही है। इस सम्बन्ध में 1853 में ब्रिटिश सरकार ने तत्कालीन रियासत के महाराणा को पत्र लिखकर इस कुप्रथा को खत्म करने का आग्रह किया था। इस पर वर्ष 1854 में कानून बनाया गया, जिसमें डायन कहकर प्रताड़ित करने वालों को सामूहिक दण्ड का प्रावधान था। मेवाड़ शासन में तो महिला अत्याचारों के खिलाफ कानून भी बना दिये थे फिर भी डायन प्रथा ने सामाजिक स्तर पर व्यावहारिक रूप से विकराल रूप धारण कर रखा है। डायन का दंश भोगने वाली न तो जीती है और न ही मरती है। लोकतांत्रिक ढंग से जब महिला सरपंच का चुनाव लड़ती है तो वह डायन नहीं कहलाती है। मगर सरपंच बनकर जागरूकता के साथ अपने अधिकारों का उपयोग करती है तो उसे डायन करार दे दिया जाता है।

राजस्थान में राज्य महिला आयोग ने प्रदेश में बढ़ती ऐसी घटनाओं को देखते हुए राज्य सरकार को 'डायन प्रथा निवारक विधेयक' का प्रारूप प्रस्तुत किया। जिसमें ऐसे अपराध को संज्ञेय और गैर जमानती की श्रेणी में लाने की सिफारिश की है। इसी प्रकार राष्ट्रीय महिला आयोग ने डायन कुरीति निवारण विधेयक 2005 का प्रारूप प्रस्तुत कर आरोपी को उम्रकैद की सज़ा की सिफारिश की है। जिसकी विविध धाराओं में अपराध की गम्भीरता के अनुसार सज़ा का प्रावधान है। लेकिन या तो महिलाओं की शिकायतों पर ध्यान नहीं दिया जाता या फिर प्रशासन तभी हरकत में आता है जब शिकायत गम्भीर हो।

निष्कर्ष – धर्म और जादू संकट मोचन के दो तरीके है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनों उपागम सदैव साथ-साथ प्रचलित रहे होंगे। कभी-कभी ये दोनों काफी समान एवं परस्पर एकाकार दिखाई देते है। तथापि ऐसा विश्वास किया जाता है कि जादुई उपागम अधिक आदिम है। मनुष्य ने अनुनय-विनय का तरीका तभी अख्तियार किया होगा जब उसके अहं से चालित जादुई उपागम वांछित परिणाम अनिवार्यत: पैदा करने में असफल रहा होगा। भले ही आधुनिक वैज्ञानिक मानव समाज तर्क के आधार पर धार्मिक मान्यताओं को स्व-विवेक के माध्यम से इसे नकारने का प्रयास करता रहा हो परन्तु डायन के सन्दर्भ में सामाजिक मान्यताओं एवं व्यावहारिक प्रचलन को नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता जो कि प्रथागत रूप से अस्तित्व में है।

प्रथा तो सकारात्मक एवं परम्परागत होती है लेकिन एक जीती-जागती महिला के साथ पाश्विक व्यवहार करने व मानवता के साथ माखौल उड़ाने वाले इस रिवाज को कुरीति ही कहना उचित होगा जिसे रोकने के लिए निचले स्तर पर जाकर प्रयास करने होंगे जिसमें महिलाओं की भूमिका अहम है। जब तक महिलाओं को शिक्षित एवं साक्षर बनाकर उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त नहीं किया जाता तब तक इनकी स्थिति में सुधार लाना मुश्किल है। महिलाओं में उनके अधिकारों एवं कानून के प्रति जागरूकता लाने की जरूरत है जिसमें शिक्षित महिला वर्ग को एकजुटता के साथ इन कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठानी होगी।

महिलाओं पर इस प्रकार के दिन-प्रतिदिन बढ़ते अत्याचारों को रोकने के लिए महिलाओं को सशक्त करने के साथ पुरूषों को भी संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। इस कार्य में पुलिस एवं प्रशासन की सक्रियता और कठोर कानून बनाकर उसके क्रियान्वयन की भी जरूरत है। स्वयंसेवी संगठनों की सहायता लेकर सरकारी एवं निजी स्तर पर गाँव एवं जाति पंचायत के सदस्यों को प्रशिक्षण देकर जागरूकता लाते हुए डायन से सम्बन्धित मान्यताओं में मानसिक परिवर्तन लाया जा सकता है। राज्य एवं राष्ट्रीय महिला आयोग भी संयुक्त कार्यवाही करके अहम भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. इवान्स-प्रिचार्ड, ई.ई. (1940), द नूअर, आक्स्फोर्ड, युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन।
2. टायलर, ई.वी. (1913), प्रिमिटिव कल्चर, मरे, लन्दन, भाग दो।
3. मैरेट, आर.आर. (1947) (1909, में पहली बार प्रकाशित), दि थ्रेशहोल्ड ऑफ रिलिजन, मैथ्युन : लन्दन।
4. दुर्खाइम, ई. (1976) (1912, में फ्रांस में पहली बार प्रकाशित), दि एलिमेंटरी फॉर्म्स ऑफ दि रिलीजस लाइफ, एलन एण्ड अल्विन : लन्दन।
5. फ्रेजर, जे.जी. (1922) (1890, में पहली बार प्रकाशित), दि गोल्डन बाउ, मैकमिलन : लन्दन।
6. मैलिनॉस्की, बी. (1948), मैजिक, साइंस एण्ड रिलिजन, डबलडे एण्ड कम्पनी : न्यू जर्सी।
7. दुबे, एस.सी. (1951), द कमार, युनिवर्सल पब्लिशर्स, लखनऊ।
8. फ्रायड, सिगमंड (1960), (1913 में जर्मन में प्रथम बार प्रकाशित) टोटम एण्ड टैबू, रटलज एण्ड केगल पाल लन्दन।
9. राय, एस.सी. (1915), द उँराव ऑफ छोटा नागपुर, ब्रह्ममो मिशन प्रेस, कलकत्ता।
10. मजूमदार, डी.एन. एवं मदन, टी.एन. (1984), सामाजिक मानवशास्त्र का परिचय (गोपाल भारद्धाज अनुदित) नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
11. उपाध्याय, विजयशंकर एवं शर्मा, विजय प्रकाश (1993), भारत की जनजातीय संस्कृति, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
12. भारती निहारिका, (2007), दक्षिणी राजस्थान की अनुसूचित जनजातियों में प्रचलित मौताणा एवं डायन प्रथा की समस्या का समाजशास्त्रीय अध्ययन, शोध प्रबन्ध, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर।

****

भारतीय संस्कृति पर स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिता

प्रो. श्रीमती विजया वधवा *

शोध सारांश – स्वामी विवेकानंद के मतानुसार प्रत्येक देश की संस्थाऐं वहाँ के सामाजिक पर्यावरण, परम्पराओं तथा रीति रिवाज का परिणाम होती है उसी प्रकार भारत की भी कुछ परम्पराऐं, ऐतिहासिक मान्यताऐं और संस्कृति है जिसके अनुसार हमें विकसित होना चाहिये। भारत भ्रमण के दौरान उन्होनें यह पाया कि अज्ञानता व दरिद्रता भारत में अधिक है जिस पर विजय पाना आवश्यक है। उन्होंनें दलितों को द्ररिद्रनारायण के रुप में देखा और उनकी सेवा को भारतीयों का प्रथम कर्तव्य बताया। विश्व भ्रमण में पाया कि पूर्व व पश्चिम दोनों की ही संस्कृतियों में कुछ श्रेष्ठ है। पूर्व (भारत) की जीवन शक्ति धर्म है जबकि पश्चिम की जीवन शक्ति विज्ञान है। अत: दोनों संस्कृतियों में उन्होनें समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया और इस हेतु एक सेतु की भूमिका निभाई। राष्ट्र निर्माण में बुराईयों का तिरस्कार करने एवं अच्छाइयों करे स्वीकार करने पर बल दिया। सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन में आव्हान किया कि शिक्षा प्राप्ति का सभी को समान अवसर मिलना चाहिये। **शब्द कुंजी** :– संघात, आघात, दरिद्रनारायण, सेतु

प्रस्तावना – भारतीय संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों की सिरमौर थी। भारतीय संस्कृति मानव के निर्माण की अद्भुत मिसाल है। स्वामी जी का विचार था कि हमें अपनी संस्कृति के अनुरुप विकसित होना चाहिये। प्रत्येक देश की संस्थाऐं वहाँ के सामाजिक पर्यावरण, परम्पराओं तथा रीति रिवाज का परिणाम होती है। हमारी भी कुछ परम्पराएँ और ऐतिहासिक मान्यतायें है। हमें उन्ही के अनुरुप विकसित होना चाहिये। भारत में अनेक विदेशियों के संघात हुए भारतीय समाज पर उनका प्रभाव कभी नकारात्मक रहा, कभी सकारात्मक। भारत में सबसे ज्यादा प्रभाव अंग्रेजी संस्कृति का पड़ा क्योंकि इनका उद्देश्य भारत पर शासन करना था। किसी समाज पर शासन करने के लिये आवश्यक है कि उस समाज की संस्कृति पर आघात किया जाये। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज अपनी संस्कृति को भूलने लगा और पाश्चात्य संस्कृति के रंग में रंगने लगा।

व्याख्या – स्वामी विवेकानंद का प्रादुर्भाव उसी समय में हुआ 16 अगस्त 1886 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के बाद लगभग 24 वर्ष की आयु में उन्होंनें प्रण किया कि वे अपना सारा जीवन गुरु के संदेश के प्रचार में लगा देगें। रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के बाद विवेकानंद ने दो बार सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। प्रथम बार 1888 में एंव दूसरी बार 1891 मे। भारत भ्रमण के दौरान उन्होनें भारतीय समाज, जीवन, अध्यात्मक धर्म–कर्म, भूखमरी, अज्ञानता, द्ररिदता तथा भारत का भविष्य को समझने का प्रयास किया। इस दौरान स्वामीजी को वास्तविक भारत के दर्शन हुए।

भारत भ्रमण के बाद विवेकानंद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यदि भारत को फिर से अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत को प्राप्त करना है उसे अपनी अज्ञानता और दरिद्रता पर विजय पाना होगा। उन्होंने दलितों को दरिदनारायण के रुप में देखा और उनकी सेवा को भारतीयों का प्रथम कर्तव्य बताया। स्वयं विवेकानंद के शब्दों में ' हममें से प्रत्येक को दिन रात भारत के इन करोड़ों दलितों के लिये प्रार्थना करना चाहिये जो दरिद्रता पुरोहितों के जंजाल तथा अत्याचार में जकड़े हुए है। दिन रात उनके लिये प्रार्थना करो।' स्वामी विवेकानंद ने भारतीय समाजशास्त्र का कोई शास्त्रीय अध्ययन नहीं किया था फिर भी भारतीय समाज उन्होंनें जितनी गहनता से विश्लेषण किया है उसे देखकर उनकी समाज दृष्टि का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। गंभीर चिंतन के पश्चात् वे एक सन्यासी के स्थान पर महान समाज सुधारक, भगवा वस्त्रो में राष्ट्र–निर्माता में परिवर्तित हो गये। जुलाई 1893 में अन्म में स्वामी जी शिकागों पहुंचे। अमेरिका में भौतिक संस्कृति में पले और बसे अमेरिकावासियों का दिल स्वामी जी ने जीत लिया। अपने छात्र जीवन में उन्होनें जे.एस.मिल, हीगल, स्पेंसर, कॉम्ट के विचारों का अध्ययन किया त्था हर्बर्ट स्पेन्सर के विचारों को पढ़कर स्पेन्सर से उन्होंने पत्र व्यवहार किया और उनकी कुछ मान्यताओं की आलोचना भी की। हर्बर्ट स्पेन्सर स्वामी विवेकानंद की आलोचना से अत्यधिक प्रभावित हुए। स्वामी विवेकानंद पश्चिमी सभ्यता की कार्यशैली भारतवासियों को सीखाना चाहते थे। उन्होंनें लिखा 'पाश्चात्य देशों में भ्रमण करने से विशेष लाभ मेरा ही हुआ हैं।' स्वामी विवेकानंद पूर्व और पश्चिम दोनों ही संस्कृतियों के श्रेष्ठ तत्वों से वे परिचित थे अत: उन्होंने पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस दृष्टि से उन्होंने एक सेतु की भूमिका निभाई। स्वामी विवेकानंद के अनुसार भारत की जीवन शक्ति है उसका 'धर्म' इसी प्रकार पश्चिम की जीवन शक्ति है 'विज्ञान'। उन्होंनें धर्म और विज्ञान के बीच सामंजस्य स्थापित करने पर बल दिया और इस बात का प्रतिपालन किया कि इस सामंजस्य में ही विश्व का कल्याण निहित हैं। अंग्रेजी भाषा अध्ययन पर भी उन्होंने जोर दिया ताकि भारतीय इस सम्पर्क भाषा का लाभ उठाकर वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति के बारे में जान सके। स्वामी विवेकानंद – 'लोग कहते है इस पर विश्वास करो, उस पर विश्वास करो, मैं कहता हूँ पहले अपने आप पर विश्वास करो। सर्वशक्ति तुम में है ..... कहों हम सब कुछ कर सकते हैं।'

भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अपार श्रद्धा उनके राष्ट्र निर्माण संबंधी विचारों के प्रचार की आज की परिस्थितियो में ज्यादा आवश्यकता है, आवश्यकता इस बात की है हम बुराईयों का तिरस्कार करें और अच्छाइयों को स्वीकार करें। विदेशों में अगर कुछ अच्छाईयां है, तो हमें इन अच्छाईयों को ग्रहण करने में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये। भारत को यूरोप से बाहय प्रकृति पर विजय प्राप्त करना सीखना है और यूरोप को भारत से अंतर प्रकृति को जीतने की कला सीखनी है तब न हिन्दू रहेगें न यूरोपीयन, तब रहेगी वह आदर्श मानवता जो बाहय और अंतर दोनों प्रकृतियों पर विजय प्राप्त कर चुकी होगी।

त्याग भारत के आदर्शो में अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि जहाँ प्राचीन काल से कर्मकाण्ड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया। मेरा विश्वास है कि भारतीय राष्ट्र समस्त राष्ट्रों में अत्यधिक सदाचारी और धार्मिक राष्ट्र है। स्वामी विवेकानंद सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का आव्हान किया क्योंकि समाज के सभी सदस्यों को सम्पति, शिक्षा तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये समान अवसर मिलने चाहिये और वे सामाजिक नियम जो इस स्वंतत्रता के विकास के आड़े आते है हानिकर है और उन्हें शीघ्रातीशीघ्र खत्म करने के लिये कदम उठाये जाने चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. स्वामी विवेकानंद और उनका अवदान
2. भारतीय व्याख्यान– प्रकाशक रामकृष्ण, मठ, नागपुर
3. विवेकानंद साहित्य
4. भारतीय नारी 5. विवेकानंद की जीवनी
6. युवकों के प्रति– स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण मठ, नागपुर

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

मध्य प्रदेश में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिकाएँ

डॉ. जितेन्द्र पाटीदार *

प्रस्तावना – पंचायती राज व्यवस्था लोकतंत्र की मूल भावना को साकार करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। ग्रामीण क्षेत्र के स्वामीत्व शासन को पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से ही संचालित किया जाता है। यह एक त्रि–स्तरीय (Three-Tier) अवस्था है। जिसके अन्तर्गत ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतो ब्लॉक स्तर पर क्षेत्र पंचायतो और जनपद स्तर पर जिला पंचायतो का प्रबंध किया गया है। पंचायतो का उल्लेख भारतीय संविधान के भाग–9 में किया गया है। संविधान में यह निर्देश दिया गया हैं कि 'राज्य ग्राम पंचायतो के निर्माण के लिए कदम उठाएगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा जिससे की वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें।

स्वंतत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में पंचायती राजव्यवस्था को दिशा देने का मुख्य श्रेय भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं.जवाहरलाल नेहरू को जाता है। सन् 1952 में उन्हीं की पहल पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया। यद्यपि इस कार्यक्रम को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी किन्तु स्थानीय स्तर पर जनता को शासन के दायित्वो से जोडने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम में अपेक्षित सफलता प्राप्त न होने के बाद भी श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में 1957 में एक अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट में सिफारिश की कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु पंचायत राज संस्थाओं की शुरूआत की जानी चाहिए।

पंचायती राज व्यवस्था का श्री गणेश 2 अक्टूबर 1959 को तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर जिले में किया गया और 1963 तक भारतीय संघ के समस्त राज्यो में पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया है।

पंचायती राज– विकेन्द्रीकृत लोकतन्त्र – पंचायती राज के तहत ऐसी राज व्यवस्था की संरचना तैयार की जाती है, जिसमें 'सत्ता' को लोकतंत्र की जड़ो तक पहुँचाया जाता है, यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें 'जनता की सहभागिता' को ध्यान में रखते हुए ग्रामीण स्तर तक निर्वाचित संस्थाएँ गठित की जाती है, जो स्वयं की व्यवस्था देखने के लिए उत्तरदायी हो इस व्यवस्था के अन्तर्गत चुनावी मुद्दे ग्राम तथा उसके छोटे उपग्रामों से संबधित होते है। पंचायत के चुनाव में ग्रामीण जनता सक्रिय रूप से भागीदार होती है तथा वह लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सहयोगी हो जाती है। फलत: लोकतंत्र राज्य के अन्तिम छोर तक अपनी पहुँच बना लेता है।

पंचायती राज की प्रमुख समस्याएँ – एक और जहां पंचायती राज सत्ता के विकेन्द्रीकरण का द्योतक है वहीं दूसरी ओर यह संस्थाएँ यसमस्याओं का पुलिन्दा बनकर उभरी है। सामाजिक आर्थिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में इनकी प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार है।

सामाजिक समस्याएँ –

- जनता में साक्षरता का अभाव
- राजनीतिक चेतना का अभाव
- नि:स्वार्थ नेतृत्व का अभाव
- भारत का अलोकतंत्रीय सामाजिक तथा पारिवारिक ढांचा
- जातीय, धार्मिक तथा साम्प्रदायिक निष्ठा

प्रशासनिक समस्याएँ –

- पंचायत प्रतिनिधियों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य उचित तथा आवश्यक समन्वय का अभाव
- विकास संबंधी गतिविधियों की आधार भूत इकाई क्या हो खण्ड या जिला पंचायत तथा प्रशासन के कार्यो में अतिव्यापन
- पंचायती राज के कार्यो में अधिकारियों तथा कर्मचारी वर्ग का क्या स्थान तथा दायित्व हो।
- विकास कार्यो में जिला अधिकारी का क्या स्थान तथा दायित्व हो।

आर्थिक समस्याएँ –

- राजस्व स्त्रोतों का अभाव
- अनुत्पादक कार्यक्रम जिससे केवल व्यय की संभावनाएँ।
- वित्तीय वितरण दोषपूर्ण फलत: प्रत्येक प्रयोजना/कार्यक्रम हेतु राज्य के मुखापत्ती
- स्थानीय स्त्रोतों से शुल्क करो आदि को एकत्रित करने में कोई उत्साह नहीं।
- किसी नियोजन के अभाव में स्थानीय संसाधनो के विकास की सम्भावनाएँ लगभग नगण्य

ग्राम स्वराज व प्रमुख प्रावधान – ग्राम स्वराज की इस नई व्यवस्था में ग्राम पंचायत की ग्राम सभा को प्रतिनिधि इकाई माना गया है। प्रत्येक ग्राम की एक ग्राम सभा होगी ग्राम सभा का सदस्य प्रत्येक वह व्यक्ति होगा जिसका नाम उस ग्राम की मतदाता सूची में होगा, महीने में एक बार ग्राम सभा की बैठक आवश्यक रूप से होगी तथा कोरम कम से कम 20 प्रतिशत सदस्यों का होना अनिवार्य होगा। यदि कोरम की पूर्ति नहीं होगी तो सभा स्थगित कर दी जाएगी ग्राम सभा की बैठको में एक तिहाई महिलाओं और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के सदस्यों की उपस्थिति भी अनिवार्य होगी। सभा की अध्यक्षता सरपंच करेगें यदि सरपंच अनुपस्थित है तो उपसरपंच या पंच और इन दोनों की भी अनुपस्थित रहने पर ग्राम सभा पंचो में से ही किसी एक को अध्यक्षता सौप सकेगी।

मध्य प्रदेश में स्थानीय स्वशासन – ब्रिटिश शासनकाल से ही प्रदेश में स्थानीय स्वशासन के लिए प्रयास किये जाते रहे है। मध्य प्रदेश में इसके विकास हेतु संशोधन अधिनियम IV तथा IX,1934, Act XI, XII, XXVII तथा XXXI,1939, Act IV, तथा VIII 1947 Act VI 1945 तथा एक्ट XIV,1947, पारित किये गए थे। इन अधिनियमों ने मध्य प्रदेश में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को सरंचना देना शुरू कर दिया था।

* प्राध्यापक राजनीति विज्ञान शासकीय कन्या महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत

भारत गाँवो का देश है। गाँवो की उन्नति और प्रगति पर ही भारत की उन्नति और प्रगति निर्भर करती है। गांधीजी ने ठीक ही कहा था कि यदि गाँव नष्ट होते है तो भारत नष्ट हो जाएगा। 'भारत के संविधान निर्माता भी इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे। अत: हमारी स्वाधीनता को साकार करने और उसे स्थायी बनाने के लिए ग्रामीण शासन व्यवस्था की और पर्याप्त ध्यान दिया गया। हमारे संविधान में यह निर्देश दिया गया है कि 'राज्य ग्राम पंचायतो के निर्माण के लिए कदम उठाएगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा जिससे कि वे (ग्राम पंचायते) स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सके।'

पंचायती राज में उतार-चढाव – भारतीय संघ के अधिकांश राज्यो ने पंचायती राज संस्थाओं के गठन के लिए अधिनियम पारित किए। राजस्थान सबसे पहला राज्य था जिसने अपने यहां पंचायती राज की स्थापना की। इस योजना का उद्घाटन 2 अक्टूबर 1959 को प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा नागौर में किया गया। 1959 में ही आन्ध्र प्रदेश भी पंचायती राज व्यवस्था को अपने प्रान्त में लागू कर राजस्थान के साथ पहले नम्बर पर आ गया। पंचायती राज संस्थाओं की सरचंना विभिन्न राज्यो/संघ शासित क्षेत्रों में त्रिस्तरीय प्रणाली थी। जबकि 4 राज्यो संघ शासित क्षेत्रों में द्विस्तरीय प्रणाली 9 राज्यो संघ शासित क्षेत्रों में एक स्तरीय प्रणाली थी।

पंचायतो का निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन (खण्ड 3 धारा 12,23 तथा 30) पंचायत के तीनो स्तर के निर्वाचन क्षेत्रों को विभाजित करने की व्यवस्था विधेयको में अद्योलिखित की गई है। प्रारम्भ से ही यह माना गया कि पंचायती राज संस्थाएँ ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर रही है। भले ही 1959 से 1964 तक के इनके कार्यकाल को उत्थान काल (Phase of Ascendancy) कहा जाए तथापि 1965 से 1969 की कार्यावधि को ठहराव काल (Phase of stagnation)एवं 1969 से 1983 की कार्यावधि को ह्रास काल (Phase of Decline) है। लम्बे समय तक विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव तक नहीं करवाएं गए और ये संस्थाएँ निष्क्रिय हो गयी। वैसे 1977 में अशोक मेहता समिति रिपोर्ट में इन संस्थाओं को नया रूप देने हेतु सिफारिशें की गई, किन्तु उन्हें क्रियान्वित नहीं किया जा सकता। वस्तुत: 1983 के बाद पंचायती राज संस्थाओं के जीवनकाल में पुनरोद्रय (Phase of Revival) प्रारम्भ होता है।

पंचायतो में आरक्षण – प्रत्येक पंचायत में क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातयों के लिए स्थान आरक्षित रहेगें। ऐसे स्थानो को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम (Rotaion) से आवंटित किया जायेगा। आरक्षित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेगे।

ग्राम पंचायत –

- एक हजार तक की आबादी वाली ग्राम पंचायत में कम से कम 10 वार्ड
- 1000 से उपर की आबादी वाली ग्राम पंचायत में अधिकतम 20 वार्ड सभी वार्डो की जनसंख्या सामान्यत एक सी होगी।

जनपद पंचायत – प्रत्येक 5000 की आबादी के लिए एक निर्वाचन क्षेत्र होगा, परन्तु जहां खण्ड की जनसंख्या 50,000 से कम है वहां कम से कम 10 निर्वाचन क्षेत्र होगे। किन्तु कुल निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या 26 से अधिक नहीं होगी, सभी क्षेत्रों की जनसंख्या सामान्यत: एक सी होगी।

जिला पंचायत –

- प्रत्येक 50,000 जनसंख्या के लिए एक निर्वाचन क्षेत्र होगा।
- जिले की जनसंख्या 5 लाख से कम होने पर कम से कम 10 क्षेत्र होगे किन्तु कुल निर्वाचन क्षेत्र 35 से अधिक नहीं होगे। सभी क्षेत्रों की जनसंख्या सामान्यत: एक ही होगी।

ग्राम न्यायालयीन व्यवस्था विशेष प्रावधान – जनपद पंचायतो द्वारा आम सहमति से सदस्यों के मनोनयन के बाद इनमें से एक सदस्य को ग्राम न्यायालय के प्रधान के रूप में निर्वाचित किया जायेगा। यह प्रक्रिया पूरी होने के बाद हर जिला कलेक्टर अपने जिले के सभी ग्राम न्यायालयों के शुरू होने एवं कार्य करने की तिथि निश्चित कर अधिसूचित करेगें। हर ग्राम न्यायालय का रजिस्ट्रार होगा कलेक्टर द्वारा ग्राम न्यायालय के लिए मनोनीत सदस्यों को सामान्य प्रक्रिया संबंधित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायेगी। ग्राम न्यायालय का काम वृत्त के मुख्यालय के ग्राम पंचायत भवन में ग्राम न्यायालयों की दो बैठके होगी इनमें प्रकरणों की सुनवाई की जायेगी।

जिला योजना समिति की बैठके एवं गणपूर्ति– जिला योजना समिति संशोधित अधिनियम की धारा 7 यक में प्रदत्त शक्तियों के तहत 30 अप्रेल 1999 को मध्य प्रदेश सरकार ने जिला सरकारो के कार्य संचालन के लिए काम काज प्रक्रिया नियम अधिसूचित किया है, जिसके अनुसार जिला योजना समिति की बैठक प्रत्येक माह में कम से कम एक बार अवश्य होगी, इस बैठक की सूचना संबंधितो को बैठक की दिनांक में न्यूनतम पांच दिन पूर्व अनिवार्य रूप से दी जाएगी। बैठक के लिए गणपूर्ति एक तिहाई सदस्यों से होगी, किन्तु निर्णय बहुमत से होगा बैठक के लिए
प्रस्तावित विषय सूची सदस्य सचिव (जिला कलेक्टर) द्वारा अध्यक्ष (मंत्री) के अनुमोदन से ही तैयार की जाएगी बैठकोंमें विषय विशेषज्ञों एवं संबंधित विभागो के जिलाधिकारीयों को आमंत्रित किया जा सके।

पंचायती राज की उपलब्धियाँ – हमारे देश में पंचायती राज की शुरूआत को एक ऐतिहासिक घटना कहा गया। पंचायती राज संस्थाओं से अधिक प्रशंसा बहुत ही कम संस्थाओ को प्राप्त हुई है। पं. नेहरू ने स्वयं कहा था कि ' मैं पंचायती राज के प्रति पूर्णत: आशान्वित हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि भारत के संदर्भ में यह बहुत कुछ मौलिक एवं क्रांतिकारी है।'

प्रो. रजनी कोठारी के अनुसार यह इन संस्थाओं ने नए स्थानीय नेताओ को जन्म दिया है। जो आगे चलकर राज्य और केन्द्रीय संस्थाओं के निर्वाचित प्रतिनिधियों से अधिक शक्तिशाली हो सकते है। कांग्रेस और अन्य दलों के राजनीतिज्ञ इन संस्थाओं को समझने लगे है। अब वे राज्य विधान मण्डल के बजाय पंचायत समिति और जिला परिषदो को तरजीह देने लगे है। वस्तुत इन संस्थाओं ने देश के राजनीतिकरण, आधुनिकीकरण और सामाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था में जनसहभागिता में वृद्धि करके गांवो में जागरूकता उत्पन्न कर दी है।

पंचायतों की संरचनाएँ – राज्य विधान मण्डलों को विधि द्वारा पंचायतों की संरचना के लिये उपलब्ध कराने की शक्ति प्रदान की गई हैं। परन्तु किसी भी स्तर पर पंचायत के प्रादेशिक क्षेत्र की जनसंख्या और ऐसी पंचायतों में निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त राज्यो में यथा संभव एक ही होगा। पंचायतों के सभी स्थान पंचायत राज्य क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्येक निर्वाचन द्वारा चुने गये। शक्तियों से भरे जायेगें। इस प्रायोजन के लिये प्रत्येक पंचायत क्षेत्र को ऐसी रीति से निर्वाचन क्षेत्रो में विभाजित किया जायेगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या और उसकी आबंटित स्थानो की संख्या के बीच अनुपात समस्त पंचायत क्षेत्र में यथा साध्य एक ही होगा । किन्तु राज्य विधान मण्डल विधि बनकर ऐसी रीति से और ऐसी शर्तो के अधीन रहते हुये। तत्पर कार्य किये।

पंचायती राज संगठन तथा कार्यप्रणाली – लोक तांत्रिक विकेन्द्रीयकरण और विकास कार्यक्रमों में जनता का सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से पंचायत

राज की शुरूआत की गई। पंचायती राज व्यवस्था की तीन सीढ़ीया रही है। ग्राम स्तर पर पंचायत ,खण्ड स्तर पर पंचायत समिति या जनपद पंचायत और जिला स्तर पर परिषद या जिला पंचायत।

पंचायत राज की उक्त योजना का उद्घाटन सर्वप्रथम 2 अक्टोम्बर 1960 को प्रधान मंत्री श्री नेहरू द्वारा राजस्थान राज के नागोर जिले में किया गया। इसके तुरन्त बाद इसे आंध्र प्रदेश में तथा क्रमश: अन्य राज्यो में अपनाया गया। 1963 तक भारतीय संघ के सभी राज्यो में पंचायत राज की स्थापना हो गई। लगभग एक दशक तक पंचायती राज की यह व्यवस्था उचित रूप से चली लेकिन इसके बाद की स्थिति संतोषजनक नहीं रही। जनता की भागीदारी पंचायत राज की समस्त व्यवस्था का मूल तत्व है और पंचायत राज को मूल आधार तभी कहा जा सकता है। जबकि इन संस्थाओ का गठन तथा समस्त कार्य संचालन लोकतन्त्रीय आधार पर हो। भारतीय संघ के अधिकांश राज्यों विशेष या उत्तर भारत के राज्यो में इस व्यवस्था में अनेक समस्याओ ने घर कर लिया। कुछ राज्यो में तो व्यवहार में एक दशक से भी अधिक समय तक पंचायत राज्य संस्थाओ के चुनाव ही नहीं हुये ऐसी स्थिति में केन्द्रीय सरकार के स्तर पर यह सोचा गया है कि पंचायत राज की व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिये, ताकि पंचायत राज व्यवस्था उचित रूप से कार्य कर सके ।

प्रशिक्षण की व्यवस्था – सभी राज्यो में पंचायतो के चुनावो के परिणाम स्वरूप पंचायतो के सभी स्तरो पर चुने हुये प्रतिनिधियों की संख्या करीब चौतीस लाख इसमें से अधिकतर प्रतिनिधि प्रथम बार चुन कर गये है। विशेषकर अनुसूचित जनजातियों, जनजातियों तथा महिलाओं तैतीस प्रतिशत में से चूंकि संविधान ने ग्राम पंचायतो पर आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को बनाने एवं क्रियान्वित करने का दायित्व डाला है। अत: चुने हुये प्रतिनिधियों को विशेष दक्षता प्राप्त करनी होगी, प्रशिक्षण लेना होगा पंचायती राज की सफलता प्रमुखत: इस पर निर्भर करती है कि दायित्वो के निर्वाह के लिये चूने हुए प्रतिनिधियो में कितनी क्षमताएं विकसित की जाती है। इसके लिये समयबंध एवं व्यवस्थित प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। विकास कार्य में लगे कर्मचारियों सर्टिफिकेट कोर्स करना भी आवश्यक कर दिया गया है। अत: सभी स्तर पर पंचायतो में प्रशिक्षण लेना अनिवार्य हो गया हैं।

सुझाव –

- पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बनाने की दिशा में निम्नलिखित सुझाव कारगर सिद्ध हो सकते है।
- पंचायती राज को अधिक प्रभावी बनाने के लिए उन्हें अधिक कार्यपालक अधिकार दिए जाने चाहिए।
- पंचायतो को वित्तीय रूप से दृढता प्रदान करनी होगी।
- वे परियोजनाएँ और कार्य जो जिला परिषद को सौप दिए जाने चाहिए।
- अधिकारीयों/कर्मचारियों को पंचायतो के कार्य निष्ठा और आत्मीयता से स्वीकारने होगे।
- राजनीतिक दलो को पंचायती राज के कार्यो में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं को कर लगाने के व्यापक अधिकार दिए जाने चाहिए, पंचायती राज संस्थाओं को अपने स्वयं के साधन विकसित करना चाहिए।
- राज्य सरकार द्वारा इस संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदानो में वृद्धि करना चाहिए।
- करो की वसुली दृढता व कडाई से की जानी चाहिए।
- पंचायत प्रतिनिधियों के लिए अनिवार्य रूप से उचित एवं व्यवहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- मध्य प्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम–सभा अधिनियम 1993 के प्रावधानो के तहत 2 अक्टूबर 2012 से प्रदेश की ग्राम पंचायतो द्वारा ग्राम सभाओं का क्रमबद्ध आयोजन किया जाएगा।

निष्कर्ष –पंचायती राज संस्थाओं के भारतीय संविधान का हिस्सा बन जाने से अब कोई भी पंचायतो को दिए गए अधिकारों, दायितवों और वित्तीय साधनों को उनसे छीन नहीं सकेगा। 73वाँ संविधान न केवल पंचायती राज संस्थाओं में संरचनात्मक एकरूपता लाने का प्रयास है बल्कि वह सुनिश्चित भी करता है कि इन संस्थानों में समाज के कमजोर वर्गो की हिस्सेदारी रहे। इसमें प्रत्येक पंचायत में पंचायत क्षेत्र में कुछ जन– संख्या में अनुसूचित जाति/जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में अनिवार्य आरक्षण की भी व्यवस्था की गई है। इसमें एक ऐसा भी प्रावधान रखा गया है जिसके अन्तर्गत राज्य विधान मण्डल, यदि उचित समझे तो पिछडी जातियों के नागरिको के लिए आरक्षण का प्रावधान रख सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. जे.के. श्यामसुन्दर – महात्मा गांधी काशी, विद्यापीठ वाराणसी, सन 2000, पृ.12.
2. प्रतियोगिता दर्पण – संतोष कुमार कुंजाम, फरवरी, 1999, पृ. 100
3. के.एल.शर्मा – चन्देरी रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1990, पृ. 20
4. राष्ट्रीय सेवा योजना – दे.अ.वि.वि., इन्दौर, 2003, पृ.11
5. मालवीय राजीव – शिक्षा के नूतन आयाम, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1999, पृ.320
6. एन.एन.आई. – भारत की सामाजिक समस्याएँ, कानिकल पब्लिकेशन प्राथमिक विद्यालय पु. प्रभाग, 2009, पृ.11
7. Website - www.mphighereducation.gov. in
8. Website - www.ugc.ac.in
9. एडगर एक बेकहम – सम्पादक डायवर्सिटी एण्ड हायर एज्यूकेशन ए.व्यू.ऑफ थ्री नैशन्स, 2000, पृ.51
10. दैनिक भास्कर – दिनांक 10–12–2013 पृ. 4
11. नई दुनिया – दिनांक 05–01–2013 तालिका क्रं.1 पृ.3
12. प्राचार्य दिग्दर्शिका – दिनांक 10–03–2000
13. राष्ट्रीय सेवा योजना के दो दशक – राष्ट्रीय सेवा योजना प्रकाशन समिति सीहोर, म.प्र. शासन

भारतीय राजनीतिक दल प्रणाली और चुनाव सुधार

डॉ.अनिल दीक्षित *

प्रस्तावना – 'बिना राजनीतिक दलों के न तो सिद्धान्तों की संगठित अभिव्यक्ति हो सकती है, न नीतियों का व्यवस्थित विकास, न संसदीय निर्वाचन के संवैधानिक साधन का अथवा अन्य किसी मान्यता प्राप्त ऐसी संस्था का नियमित प्रयोग जिसके द्वारा दल सत्ता प्राप्त करते हैं और इसे बनाए रखते हैं।' **आर.एम.मैकाइवर**

लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में जनता की इच्छा द्वारा राज्य के कार्यो की प्रकृति का निर्धारण होता है। चूंकि जनतंत्र में शासन का संचालन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होता है। अत: शासन का आधार जनमत होता है। जनमत के निर्माण में अनेक तत्व कार्य करते हैं और उन तत्वों में राजनीतिक दल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन दलों के बिना लोकतांत्रिक सरकार नहीं चल सकती तथा जनतंत्र के बिना राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो सकता।

'स्वतंत्र राजनीतिक दल ही लोकतंत्र सरकार का दूसरा नाम है' **प्रो. मुनरो**

किसी देश के विधान या कानून के अन्तर्गत राजनीतिक दलों का उल्लघंन नहीं होता, किन्तु व्यवहार में राजनीतिक दलों का अस्तित्व भी इतना ही उपयोगी एवं आवश्यक है जितना कि विधान अथवा कानून। लोकतंत्रीय शासन के अन्तर्गत केवल शासक दल का नहीं, बल्कि विरोधी दल का भी महत्व होता है। विरोधी दल शासक दल पर अंकुश लगाने का कार्य करता है। अत: कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिय शासन व्यवस्था में राजनीतिक दलों का अपना महत्व है इसके बिना जनतंत्र की सफलता संभव नहीं है।

एन.डी.पामर का कहना है कि 'यदि भारत को जनतांत्रिक दिशा में बढ़ना व एक राज्य के रूप में जीवित रहना है, तो उसे एक स्वरूप दलीय व्यवस्था या कोई वैकल्पिक प्रभावशाली व्यवस्था विकसित करनी होगी।'[2]

संसार की विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में दलप्रणाली का स्वरूप और कार्यप्रणाली भिन्न–भिन्न दिखाई पड़ती है। नारमन डी. पामर का कहना है कि – 'जापान, फिलीपींस और इजराइल को छोड़कर एशिया के किसी भी देश में पश्चिमी ढ़ंग की सुसंगठित तथा प्रभावशाली जनतंत्रीय दल प्रणाली का विकास नहीं हुआ है।'[3]

भारत में राजनीतिक दल का जन्म किसी कुलीनतांत्रिक सत्तारूढ़ वर्ग को अपदस्थ करने के लिए नहीं हुआ था अपितु उसका उद्देश्य विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को चलाने के लिए हुआ था। भारत में दल प्रणाली का उद्भव कांग्रेस की स्थापना से माना जा सकता है। आरम्भ में कांग्रेस एक राजनीतिक दल न था। 1885 में इसकी स्थापना एक दबाव गुट के रूप में की गई थी, बाद में कांग्रेस ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और आजादी के बाद कांग्रेस राजनीतिक दल में परिवर्तित हो गई। कांग्रेस का उदय एक 'छत्र संगठन' के समान हुआ जिसका अर्थ है कि कांग्रेस ने सभी वर्गो, जातियों, समुदायों, हितों तथा सिद्धान्तों को मानने वालों को अपने में समा लिया। डॉ. अम्बेडकर ने इसकी तुलना एक धर्मशाला से की थी और कहा था कि 'कांग्रेस एक धर्मशाला के समान है जो मूर्खो, धूर्तो, मित्र और शत्रु, साम्प्रदायिकों एवं धर्मनिरपेक्ष सुधारवादी तथा कट्टरपंथी, पूंजीपति और पूँजीवाद विरोधियों, सभी लोगों के लिए खुली हुई है।'

भारतीय राजनीतिक दल प्रणाली की अपनी एक विशेषता है जो इसे पश्चिमी देशों की दल प्रणाली से भिन्न स्थान प्रदान करती है। भारत का संविधान नागरिकों को संघ बनाने तथा चुनाव में भाग लेने का व्यापक अधिकार प्रदान करता है इसलिए भारतीय दल प्रणाली को खुला राजनीतिक तंत्र कहा जाता है।

आओ हम शुरू करें चुनाव सुधार की यात्रा – बेशक चुनाव सुधार से ही लोकतंत्र को बल मिलेगा। अब भारत को विकास से कोई नहीं रोक सकता, पर इसके लिए जरूरी है कि हम सुधार के दोस्तों और दुश्मनों को ठीक से पहचाने। जो नायक है उन्हें मजबूत करें और जो खलनायक नजर आने लगते हैं, उन्हें सुधारें या सुधार के लिए मजबूर कर दें। सुधार की जो मुहिम दिख रही है, उसे जी जान से जुटकर मुकाम तक पहुँचाएं।

नायकों को करें मजबूत –

राष्ट्रपति – कौन कहता है कि हर राष्ट्रपति रबर स्टाम्प होता है। देश के 13 वें राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने दागियों का बचाव करने वाले अध्यादेश पर आपत्ति जताकर गलत दिशा में जा रही पूरी राजनीतिक धारा को सही दिशा में मोड़ दिया है। वे असली गेम चेंजर या निर्णायक बनकर उभरे हैं उनसे उम्मीदें बढ़ गई हैं।

सुप्रीम कोर्ट – सुप्रीम कोर्ट चुनाव सुधार और राजनीतिक सुधार के मोर्चे पर जनता की नजरों में स्थाई नायक है। उसके कई अच्छे फैसलों को निष्प्रभावी बनाने के लिए केन्द्र सरकार कानून में ही संशोधन करती रही है, दागी मामले में भी सरकार यही चाहती थी, पर नाकाम रही। कोर्ट को सुधार के मोर्चे पर डंटे रहना चाहिए।

जनता – लोकतंत्र की असली नायक है इसे कभी सोया हुआ मानने की भूल नहीं करनी चाहिए। जनता के बीच से ही कुछ लोग चुनाव सुधार के लिए मुहिम चलाते हैं, मीडिया का सहारा लेते हैं, उनकी बात जब सरकार व पार्टियां नहीं सुनती, तो सुप्रीम कोर्ट तक जाते हैं। जनता को अपना नायकत्व बनाए रखना चाहिए।

और खलनायकों को सुधारें –

अपराधी – यह सही है कि पहले हमारे नेता अपराधियों को हांका करते थे और अब अपराधी ही नेताओं को हांकने लगे हैं। खुद नेता बनने लगे हैं। जब संसद में 92 नेताओं के नाम गंभीर किस्म के अपराध दर्ज हों तो क्या ये नेता कभी चाहेंगे कि चुनाव सुधार हो ? अपराधी और भ्रष्ट नेता अब भी शांत नहीं बैठेंगें हमें सतर्क रहना चाहिए।

राजनेता – हमारे राजनेता खुद को जनता से श्रेष्ठ समझते हैं वे जनता को सुप्त, कमजोर और गलत समझते हैं। नेताओं द्वारा स्थापित भारतीय

* सहायक प्राध्यापक शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

राजनीतिक व्यवस्था की खूब निंदा होती है। लोगों से ज्यादातर नेताओं को किसी भी अच्छी कोशिश के खिलाफ खड़े होते देखा है, नहीं। जनमत को जगाना होगा, तभी अच्छे राजनेता आगे आ पाऐगें।

नौकरशाह – तीन साल पहले स्वयं सरकार ने नौकरशाहों के बीच सर्वे कराया था, जिसमें हर तीसरे नौकरशाह ने माना था कि व्यवस्था निष्पक्ष और पारदर्शी नहीं है। नौकरशाहों से शायद हर कोई दु:खी है, नेता भी, व्यापारी भी और जनता भी। नौकरशाह जब ईमानदार नौकरशाहों का ही साथ नहीं देंते, तो क्या कहा जाए ?

चुनाव आयोग को और शक्तिशाली होना चाहिए। लेकिन अभी 16वीं लोकसभा के लिए राजनीतिक दलों ने स्वयं लाभ के लिए संवैधानिक संस्था चुनाव आयोग पर भी सवाल उठाए है।

चुनाव आयोग द्वारा वाराणसी में नरेन्द्र मोदी की रेली को अनुमति न देना सही ही है। चुनाव आयोग भारत की संवैधानिक संस्था है और सभी राजनैतिक दलों को इसका सम्मान करना चाहिए। आयोग के सामने बहुत सारी चुनौतियां हैं जब किसी पार्टी या नेता ने चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल खड़े किए हैं। पहले भी सलमान खुर्शीद, ममता बनर्जी, आजम खान जैसे वरिष्ठ नेता आयोग के निर्णयों का खुलकर विरोध कर चुके हैं। 10 साल पहले ऐसी स्थिति नहीं थी, जैसी कि अब है। आज देश में चुनाव कराना पहले की तुलना में ज्यादा चुनौती भरा हो गया है। आंकड़ों पर अगर गौर करें तो वर्तमान आम चुनाव में देश में लगभग 8 हजार से अधिक उम्मीद्वार अपना भाग्य आजमा रहे हैं। पिछले आम चुनाव से लगभग 10 प्रतिशत उम्मीद्वार इस बार ज्यादा हैं। ऐसे में राजनीतिक दलों के बीच आपसी प्रतिद्धंदिता बढ़ना तो स्वाभाविक ही है। राजनीतिक दल किसी भी तरह से चर्चा में रहकर इसका राजनीतिक लाभ लेने की जुगत में रहते हैं। अब यह देश के मतदाताओं पर निर्भर करता है कि वे कैसे प्रत्याशी को अपना प्रतिनिधि चुनते हैं।

लम्बित चुनाव सुधार और उनकी स्थिति –

राइट टू रिकॉल – जनप्रतिनिधि यदि क्षेत्र में चुनाव जीतने के बाद अपने शपथ और कर्तव्य के अनुरूप कार्य नहीं कर रहा हो और जनता को यह लगे कि वह चुनाव के समय किए अपने वादों से मुकर रहा है, तो मतदाता के पास उसे 'राईट टू रिकॉल' के तहत वापस बुलाने का अधिकार हो।

शपथ पत्र की पड़ताल – उम्मीद्वार शपथपत्र देते समय कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ छुपा ले जाते हैं। उनके दावों की जाँच–पड़ताल की कोई व्यवस्था नहीं है। शपथपत्र में गलत जानकारी देने वाले उम्मीद्वार का नामांकन रद्द करने के साथ ही सजा या जुर्माने दोनों का भी प्रावधान हो।

शैक्षणिक योग्यता – डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक बनने के लिए डिग्री की जरूरत होती है लेकिन नेता बनने के लिए कोई भी डिग्री की जरूरत नहीं है। चुनाव जीतकर जनता के नेतृत्व का सपना देखने वाले उम्मीद्वारों की भी न्यूनतम शैक्षिक योग्यता निर्धारित की जाना चाहिए। इससे राजनीति कुछ हद तक साफ होगी।

दूर रहें दागी – किसी ऐसे प्रतिनिधि को जिस पर अदालत ने अपराधिक आरोप तय कर दिए हों या उसे दो साल या उससे अधिक की सजा सुनाई जा चुकी हो, तो चुनाव आयोग के पास उसकी सदस्यता खरिज करने का अधिकार हो। दागी को टिकट भी नहीं मिलना चाहिए।

50 प्रतिशत + 1 मत – कोई उम्मीद्वार तब तक निर्वाचित घोषित नहीं किया जाय, जब तक वह कुल मतों का 50 प्रतिशत+1 मत प्राप्त नहीं कर लेता। इसके लिए नियम 64 (ए) में संशोधन होना चाहिए। अभी 18 प्रतिशत मत पाकर भी नेता निर्वाचित हो जाते हैं। विधानसभा चुनावों की तो और भी बुरी स्थिति है।

खर्च की निगरानी – चुनाव खर्च की सीमा में पार्टी, रिश्तेदारों, मित्रों के व्यय को शामिल नहीं किया जाता, इसे शामिल किया जाय। भले ही चुनाव खर्च की सीमा बढ़ा दी जाए, पर सभी स्त्रोतों की जानकारी हो। उम्मीद्वार ज्यादा खर्च करे तो चुनाव रद्द करे उसे ब्लैक लिस्ट किया जाय।

अनिवार्य हो मतदान – देश में अनिवार्य मतदान की व्यवस्था लागू होनी चाहिए। मतदाता को कुछ आवश्यक मामलों में मतदान न करने की छूट मिलनी चाहिए। चुनाव में कम वोटिंग का भी फायदा दागी नेता उठा लेते हैं। जिसे रोकने के लिए यह जरूरी है। समाज का शिक्षित वर्ग ही मतदान केन्द्रों तक जाने में पीछे रहता है।

पंजीकृत हो दल – सभी राजनीतिक दलों को चुनाव आयोग में पंजीकृत किया जायें। अनेक नेताओं की पूरी जानकारी पार्टी की वैबसाइट पर मौजूद रहे, ताकि कोई भी उसे देख सके। इससे राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली पारदर्शी होगी और वे जबावदेह बनेंगे।

पेड न्यूज पर रोक – पेड न्यूज रोकने के लिए अधिनियम में संशोधन किया जाना चाहिए। पेड न्यूज में दोषी पाए जाने पर उम्मीद्वार को कम से कम दो साल की सजा का प्रावाधान हो। सरकार की उपलब्धियों का बखान करने वाले विज्ञापनों और समाचारों पर छ: माह पहले से ही रोक लगाई जाए।

क्षेत्रीय पार्टियों पर रोक – आम चुनाव (लोकसभा) में क्षेत्रीय दलों के चुनाव लड़ने पर रोक होनी चाहिए। जब तक वह कुल वोटिंग का 6 प्रतिशत वोट हासिल नहीं कर लेते तब तक उन दलों को चुनाव में भाग लेने से वंचित होना चाहिए। सीमित दलों को भागीदारी से देश के लोकतंत्र को सबल मिलेगा।

सशक्त हो आयोग – चुनाव आयोग को और सशक्त बनाया जाए, ताकि वह चुनाव सुधार के ज्यादा प्रयास कर सके। चुनाव आयोग के सभी सदस्यों को संवैधानिक सुरक्षा दी जाय और आयोग के लिए अलग से सचिवालय हो। आयोग के लिए निर्धारित बजट को बढ़ाया जाय।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि राजनीतिक दलों की भूमिका स्वच्छ व पारदर्शी हो जो जनता को एक नए कल की ओर ले जा सके। उनका विकास व देश का विकास ही मुख्य मुद्दा हो तभी लोकतंत्र का सपना पूरा हो सकता है। थोड़े से सुधार या थोड़ें सी खुशी से अब हमारे देश का काम नहीं चलने वाला, देश को चाहिए, पूरे सुधार और पूरी खुशी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आर.एम.मैकाइबर – द मार्डन स्टेट, पेज – 316
2. एन.डी. पामर – द इण्डियन पालिटीकल सिस्टम, पेज–7
3. एन.डी. पामर – द इण्डियन पालिटीकल सिस्टम, पेज–24
4. पत्रिका समाचार पत्र – 29 सितम्बर 2013
5. पत्रिका समाचार पत्र – 12 मई 2014

****

सभापतियों की नेतृत्व क्षमता का मूल्यांकन : उदयपुर नगर परिषद् के सन्दर्भ में

लक्ष्मी कुँवर चुण्डावत *

प्रस्तावना – भारत एक लोकतांत्रिक देश है जिसमें स्थानीय प्रशासन का अपना विशेष महत्त्व है। इसलिये स्थानीय प्रशासन को प्रजातंत्र के लिये आधारशिला माना जाता है। स्थानीय शासन में नागरिक राष्ट्र के प्रति जागरूक होते हैं एवं विकास के नये आयाम स्थापित होते हैं। दूसरे शब्दों में स्थानीय शासन वह शासन है जिसे निर्णय लेने व कार्य करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। इस प्रकार स्थानीय शासन नागरिकों के सर्वाधिक विकास के लिये अति आवश्यक संस्था के रूप में उभरकर आया है। किसी भी क्षेत्र के विकास में स्थानीय प्रशासन एवं नगरीय निकाय वित्तीय दृष्टि से एवं प्रशासनिक शक्तियों से सुदृढ़ हो तो क्षेत्र विकास के पथ पर अग्रसित रहेगा।

अध्ययन क्षेत्र – प्रस्तुत शोध पत्र में 1994 के बाद के उदयपुर नगर परिषद् के 55 वार्डो द्वारा चुने हुए सभापति की भूमिका एवं विभिन्न विकास कार्यों का साक्षात्कार के माध्यम से सर्वे के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। 1994 के बाद भारतीय जनता पार्टी के क्रमश: श्रीमती किरण माहेश्वरी (1994–1999) श्री युधिष्ठर कुमावत (1999–2004), श्री रवीन्द्र श्रीमाली (2004–2009), श्रीमती रंजनी डांगी (2009–2014) सभापति रहे हैं। 1994 में 2009 के मध्य तीन सभापति अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति अर्थात् बहुमत दल के नेता द्वारा चुने गये जबकि 2009 में श्रीमती रंजनी डांगी प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली द्वारा जनता द्वारा चुनी गई है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं सभापतियों के कार्यो का प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों द्वारा समीक्षात्मक मूल्यांकन कर नेतृत्व की क्षमता का पता लगाया जा सकेगा।

अध्ययन के उद्देश्य –प्रस्तुत शोध पत्र में निम्नलिखित उद्देश्य है –

1. नगरीय शासन के उभरे नेतृत्व (सभापति) की स्थानीय शासन एवं राजनीति में भूमिका को समझना।
2. नगरीय शासन की मजबूती में नेतृत्व की व्यावहारिक स्थिति को जानते हुए उसकी समस्याओं एवं सुझावों को प्रस्तुत करना।

शोध विधि तंत्र – उदयपुर नगर परिषद् 55 वार्डो में विभक्त है। जिसमें 1994 से अब तक के चार सभापतियों को लिया गया है। शोध–पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। जिसमें प्राथमिक आंकड़े साक्षात्कार के माध्यम से एवं द्वितीय आंकड़े उदयपुर नगर परिषद् के विभिन्न प्रकाशनों, संस्थानों एवं विभागों द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदनों से लिये गये हैं।

सभापति की भूमिका का मूल्यांकन (1994 से अब तक) – 1994 के बाद चारों सभापति भारतीय जनता पार्टी के रहे है। शहर की बढ़ती जनसंख्या के अनुरूप तथा शहरी प्रशासन के बढ़ते प्रभाव के कारण उत्तरोत्तर बजट में वृद्धि के साथ विकास के कार्य करवायें।

तालिका– 1 (पीछे देखें)

तालिका 1 के अनुसार 2004–2009 के मध्य सर्वाधिक बजट 17141.42 लाख राशि विभिन्न मदों पर खर्च की गई, जो पूर्व के कार्यकालों से अधिक है। तीनों सभापतियों द्वारा नई, सड़क नाली, नाला मद पर सर्वाधिक खर्च किये गये। श्रीमती किरण माहेश्वरी के कार्यकाल में स्कूल भवन निर्माण, सामान्य विकास कार्यों पर अधिक ध्यान दिया गया वहीं श्री युधिष्ठिर कुमावत के कार्यकाल में सामुदायिक भवन, स्कूल भवन निर्माण एवं सामान्य विकास कार्यों पर जोर दिया गया। जबकि श्री रवीन्द्र श्रीमाली के कार्य में सर्वाधिक प्राथमिकता पेयजल, हैण्डपम्प मद में रही। साथ ही उद्यान सौन्दर्यीकरण, शहर सफाई व्यवस्था, नए वाहन व गैराज व अग्निशमन, चौराहों का विकास, कच्ची बस्ती को पक्का करना, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा शिविर, खेल सुविधा का विस्तार, सिटी बस संचालन आदि को महत्व दिया गया। वर्तमान में श्रीमती रजनी डांगी भी शहर को सफाई व्यवस्था, चौहारों का सौन्दर्यीकरण, चिकित्सा शिविर, दिवाली–दशहरा मेला, सांस्कृतिक आयोजन आदि पर ध्यान केन्द्रीत रहा।

तालिका –2 (पीछे देखें)

प्राथमिक आंकड़ों के आधार पर सभापतियों की भूमिका का मूल्यांकन

1. अपने कार्यकाल में मुद्दों की प्राथमिकता – श्रीमती किरण माहेश्वरी ने अपने कार्यकाल में निम्न मुद्दों को प्राथमिकता दी। उन्होंने सुलभ शौचालय, सफाई, बिजली, सड़क निर्माण, सामुदायिक भवन निर्माण पर जोर दिया। ये उस समय की प्राथमिकता आवश्यकताएँ थी जबकि श्री युधिष्ठर कुमावत ने बताया कि शहर के स्वास्थ्य का ध्यान रखने हेतु कई प्रकार के स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य करवायें। इसमें मुख्यत: साफ सफाई कार्यों को प्राथमिकता दी एवं शहर के लोगों के मनोरंजन हेतु दीपावली दशहरा मेला जैसे कार्यक्रम शुरू करवायें। श्री रवीन्द्र श्रीमाली जी ने सार्वजनिक निर्माण, रोशनी एवं सफाई व्यवस्था पर प्रकाश डाला एवं वर्तमान मेयर श्रीमती रंजनी डांगी ने नालों के निर्माण, सड़क निर्माण, नई सड़के, बिजली, पार्किंग हेरिटेज आदि कार्यों को प्राथमिकता दी है।

2. सभापतियों के कार्यकाल की उपलब्धियाँ – श्रीमती किरण माहेश्वरी ने अपने कार्यकाल की उपलब्धियाँ बताते हुए कहा कि उन्होंने चुंगी कर समाप्त करने पर विशेष बल दिया। जिससे सरकार को करोड़ों का मुनाफा हुआ एवं सुलभ कॉम्पलेक्स का निर्माण करवाना एवं सामुदायिक भवन का निर्माण जैसे कई विकास कार्य करवाये। श्री युधिष्ठर कुमावत ने कहा कि उन्होंने एयरपोर्ट के लिये 1 करोड़ की राशि उपलब्ध कराई। खेल गाँव के लिये राशि उपलब्ध करवाई, नीमच माता पर विद्युत व्यवस्था, जोधसिंह पुलिया का निर्माण, मेलों व समारोह की शुरूवात आदि कई कार्य करवाये। श्री रवीन्द्र श्रीमाली ने अपने कार्यकाल पार्कों के विकास, गुलाबबाग के सर्वांगीण विकास, गौरधन विलास पर स्वर्ण जयन्ति द्वार, डिवाइडर के सौन्दर्यकरण शहर में पौधारोपण जैसे कार्यों पर बल दिया। श्रीमती रजनी डांगी ने नालों के निर्माण, पट्टों का वितरण, पार्किंग स्थल, सफाईकर्मियों की भर्ती आदि कार्य करवायें।

* शोधार्थी (राजनीति विज्ञान विभाग) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

3. सभापतियों के कार्यकाल में कमजोरियाँ – श्रीमती किरण माहेश्वरी का मानना था कि उनके कार्यकाल में कोई कमजोरी नहीं रही उन्होंने सारे कार्य जो योजनाबद्ध रूप से पूर्ण किये है। श्री युधिष्ठर कुमावत ने कहा कि उन्होंने उनके कार्यकाल में वैसे तो सभी कार्यों को क्रियान्वित किया केवल सार्वजनिक तरणताल का निर्माण नहीं हो पाया। श्री रवीन्द्र श्रीमाली ने कहा उनके कार्यकाल की यह कमजोरी रही कि उन्होंने प्रभावी योजनाएँ बनाई लेकिन किन्हीं कारणों से पूर्ण नहीं हो पाई एवं श्रीमती रजनी डांगी ने कहा कि उन्हें पूर्णत: प्रशासनिक सहयोग नहीं मिल पाया जिससे कई कार्य बाधित हो रहे हैं एवं शहर के अतिक्रमण पर नियंत्रण नहीं हो पा रहा है।

4. उदयपुर को बी श्रेणी का दर्जा दिलाने में सभापतियों के प्रयास– उदयपुर को बी श्रेणी का दर्जा दिलाने में सभी सभापतियों ने अपने–अपने स्तर के प्रयास किये इनके विचार इस प्रकार है– श्रीमती किरण माहेश्वरी ने कहा कि इस विषय पर उन्होंने राज्य सरकार को प्रस्ताव बनाकर भेजा था। श्री युधिष्ठर कुमावत ने कहा कि जनसंख्या कम होने से इस श्रेणी में उदयपुर को दर्ज नहीं करा पायें।श्री रवीन्द्र श्रीमाली ने कहा कि इस सम्बन्ध में बोर्ड मिटिंग में समय–समय पर प्रस्ताव भेजा एवं श्रीमती रजनी डांगी ने कहा कि हर स्तर पर जो सूचना मांगी गई प्रेषित की गई। प्रार्थना पत्रों को भेजकर भी हर स्तर पर बी श्रेणी का दर्जा दिलाने के प्रयास किये जा रहे हैं।

सभापतियों के कार्यकाल में बाधाएँ – सभापतियों को अपने कार्यकाल में कई–कई प्रकार की बाधाएं महसूस की जो इस प्रकार है–

1. कम समयावधि का होना।
2. आचार संहिता के कारण वर्तमान कार्यों में देरी होना।
3. विरोधी दल के पार्षदों का व्यवहार कभी सहयोगात्मक रहता है कभी असहयोगात्मक।
4. प्रशासनिक अधिकारियों से तालमेल के अभाव में भी कार्यों में प्रगति नहीं होती।
5. नये पार्षदों के प्रशिक्षण कार्यक्रम निर्धारित समय पर नहीं करवायें जाते।
6. दलीय व्यवस्था के कारण भी असहयोग रहता है।
7. सभापति के चुनाव की प्रक्रिया भी एक प्रकार की बाधा है क्योंकि पहले पार्षद सभापति को चुनकर लाते थे तो पार्षद एवं सभापतियों में तालमेल रहता था लेकिन अब जनता सभापति को चुनकर लाती है तो पार्षदों एवं सभापति के आपसी तालमेल नहीं रहता एवं विकास कार्य अवरूद्ध होते हैं।

सुझाव – शोध पत्र में आधार पर सभापतियों को अपने कार्यकाल में कई प्रकार की समस्याओं से जूझना पड़ा है जिससे विकास कार्य अवरूद्ध होते हैं इन समस्याओं के निराकरण हेतु कई सुझाव दिये गए है –

1. **आचार संहिता** को स्थानीय कार्यों से मुक्त रखा जाए।
2. **चुनाव प्रक्रिया –** चूंकि वर्तमान में सभापति के चुनाव हेतु प्रत्यक्ष शासन प्रणाली की व्यवस्था तो है। यह कुछ हद तो ठीक है लेकिन सभापति अपने पद का दुरूपयोग ना करे इसके लिये उसे समय पूर्व पद से हटाने की व्यवस्था की जानी चाहिये ताकि निरकुंशता न आ पाये।
3. **कठोर प्रबन्धन की व्यवस्था हो –** प्रबन्धन इस प्रकार का होना चाहिये कि निर्धारित समय में अधिक से अधिक विकास कार्य हो पाए।
4. **बजट का आवश्यकतानुसार आवंटन –** जो भी बजट आये उसमें पिछड़े क्षेत्रों के विकास की योजनाएँ बनाकर कार्य किया जाए। विरोधी दल की पार्टी के क्षेत्रों का भी विकास हो।
5. पार्षदों के प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं शिविर समय–समय पर करवाए जाए।
6. दलगत राजनीति से ऊपर उठकर विकास कार्यों को प्राथमिकता दी जाए।
7. समय–समय पर वार्डों का आकस्मिक निरीक्षण किया जाए एवं सम्बन्धित वार्ड पार्षद से समस्याओं की जानकारी लेकर उनका उचित समाधान किया जाए।

निष्कर्ष – उपरोक्त विवेचन के पश्चात् उपलब्ध प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों से यह तथ्य उभरकर आए है कि चारों सभापतियों ने उपलब्ध बजट से तत्कालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपने कार्यकाल को सफल बनाया।

श्रीमती किरण माहेश्वरी (1994–1999) जिनकी प्रमुख उपलब्धि 'चुंगी कर समाप्ति' एक अपूर्व एवं ऐतिहासिक कदम साबित हुआ, जिससे स्थानीय निकायों की वित्तीय समस्या दूर हुई एवं करोड़ों रु. की आय हुई एवं उन्होंने अपने समय के कुल बजट से 1126.12 लाख रुपये नई सड़क, नाली, नाला निर्माण पर व्यय किये।श्री युधिष्ठर कुमावत (1999–2004) के कार्यकाल में उपलब्ध बजट में से सर्वाधिक 3074.45 लाख नई सड़क नाला निर्माण पर व्यय किये एवं आधारभूत ढ़ाँचा इनके कार्यकाल में सुदृढ़ हुआ। श्री कुमावत के जीवन्त जुड़ाव के कारण उदयपुर शहर वासियों एवं कार्यकर्ताओं में लोकप्रिय हुए। इनके कार्यकाल में विकास कार्यों को गति मिली एवं उत्तम नेतृत्व क्षमता के रूप में उभरकर आए।

श्री रवीन्द्र श्रीमाली (2004–2009) अपने कार्यकाल के शहर के प्रमुख उद्यान गुलाबबाग की सौन्दर्यता में चार चांद लगा दिये एवं उद्यान एवं निर्माण एवं विकास पर उन्होंने 500.06 लाख रुपये व्यय किये एवं अपनी छवि एक स्वच्छ एवं ईमानदार कार्यकर्ता के रूप में नागरिकों के सम्मुख रखी।

श्रीमती रजनी डांगी (2009–2014) के कार्यकाल की प्रमुख उपलब्धियों में नालों का निर्माण, पट्टा वितरण, पार्किंग स्थल का पुन: निर्माण, सफाई कर्मियों की भर्ती जैसे कई कार्य उल्लेखनीय है। निष्कर्ष : चारों सभापतियों ने अपने कार्यशैली व नेतृत्व क्षमता व विशेषताओं के कारण नागरीकों में लोकप्रिय रहे हैं। श्रीमती किरण माहेश्वरी कुशल नेतृत्व क्षमता श्री युधिष्ठिर कुमावत सक्रिय कार्यकर्ता व निर्णय लेने की क्षमता श्री रवीन्द्र श्रीमाली स्वच्छ ईमानदार छवी के धनी व श्रीमती रजनी डांगी सकारात्मक सोच की धनी के रूप में अपनी कुशलता को सिद्ध किया है। इन्हीं विकास कार्यों व जनता के जुड़ाव के कारण लगातार इनका दल (भारतीय जनता पार्टी) बहुमत के साथ लगातार चार बोर्डो में विजय रहे हैं। जो कि लोकप्रियता का मापदण्ड दर्शाता है। निश्चित ही तृणमूल स्तर पर किए कार्य नेतृत्व का पहचान दिलाते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–दस्तावेज –

1. उदयपुर सिटी म्यूनिसिपल एक्ट, 12–12–1922, स्टेट प्रेस ऑफ मेवाड़, उदयपुर।
2. उदयपुर नगर परिषद् कार्यालय, नगर परिषद् की साधारण सभा व समितियों की कार्यवाहियों का विवरण, 1994–2004.
3. स्मरणिका, परिषद् की पंचवर्षीय विकास यात्रा, 1994–1999, 1999–2004, 2004–2009, 2009–11, उदयपुर नगर परिषद्, उदयपुर।

पुस्तके –

1 अवस्थी, ए. : ''म्यूनिसिपल गवर्मेन्ट इन इंडिया'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, 1972
2. चौधरी, डी. एस. : ''म्यूनिसिपल एडमिन्स्ट्रेशन इन राजस्थान'', रमेश बुक डिपो, जयपुर, 1970.
3. माहेश्वरी, एस.आर. : ''भारत में स्थानीय शासन'', नारायण अग्रवाल, आगरा, 1984.

4. मुतालिब, एम.ए.खान, ए. अली : द थ्यॉरी ऑफ लोकल गवर्मेन्ट, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 1982.
5. कौशिक एस एल : लीडरशिप इन अर्बन गवर्मेन्ट इन इण्डिया, किताब महल इलाहबाद, 1986

पत्र-पत्रिकाऐं –

1. एहजाद रूमी, फार्म ऑफ अरबन लॉकल गवनमिन्ट इन इण्डियाजनरल ऑफ एशियन एण्ड अफ्रिकन स्टडीज, (अप्रैल 2008 Vol. 43)
2. लिण्डस्ट्रोम, एण्डर, द कम्पेरेटिव स्डडी ऑफ लॉकल गवनमिन्ट सिस्टम : ए रिसर्च एजेन्डा जनरल ऑफ कम्पेटिव पॉलिशश एनालिसिस, केलवर एकेडेमी पब्लिसर्स प्रिन्टेड इन नीदरलैण्डस।

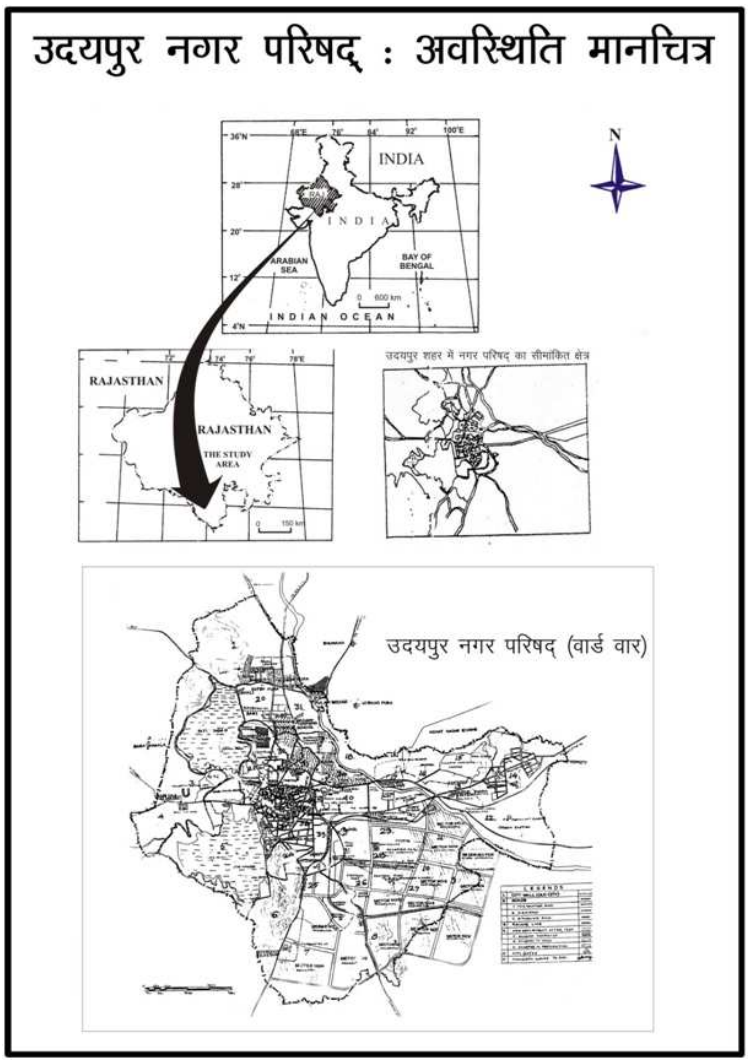

तालिका- 1

1994 से 2009 के मध्य सभापति द्वारा कराये गये कार्य एक नजर में

क्र.सं.	मद का नाम	राशि (लाखों में)		
		1994-99 श्रीमती किरण माहेश्वरी	1999-2004 श्री युधिष्ठिर कुमावत	2004-2009 श्री रवीन्द्र श्रीमाली
1.	नई सड़क, नाली, नाला	1126.12	3074.45	4520.16
2.	स्कूल भवन निर्माण	137.00	484.52	476.04
3.	सामुदायिक भवन	18.42	425.18	507.71
4.	उद्यान निर्माण एवं विकास	57.68	213.07	500.06
5.	पेयजल, हैण्डपम्प, ट्यूबलाईट	23.49	160.58	5932.00
6.	विद्युतीकरण	62.83	88.64	403.35
7.	सामान्य विकास कार्य	503.96	1221.53	1487.03
	कुल बजट	**1924.50**	**5975.28**	**17141.42**

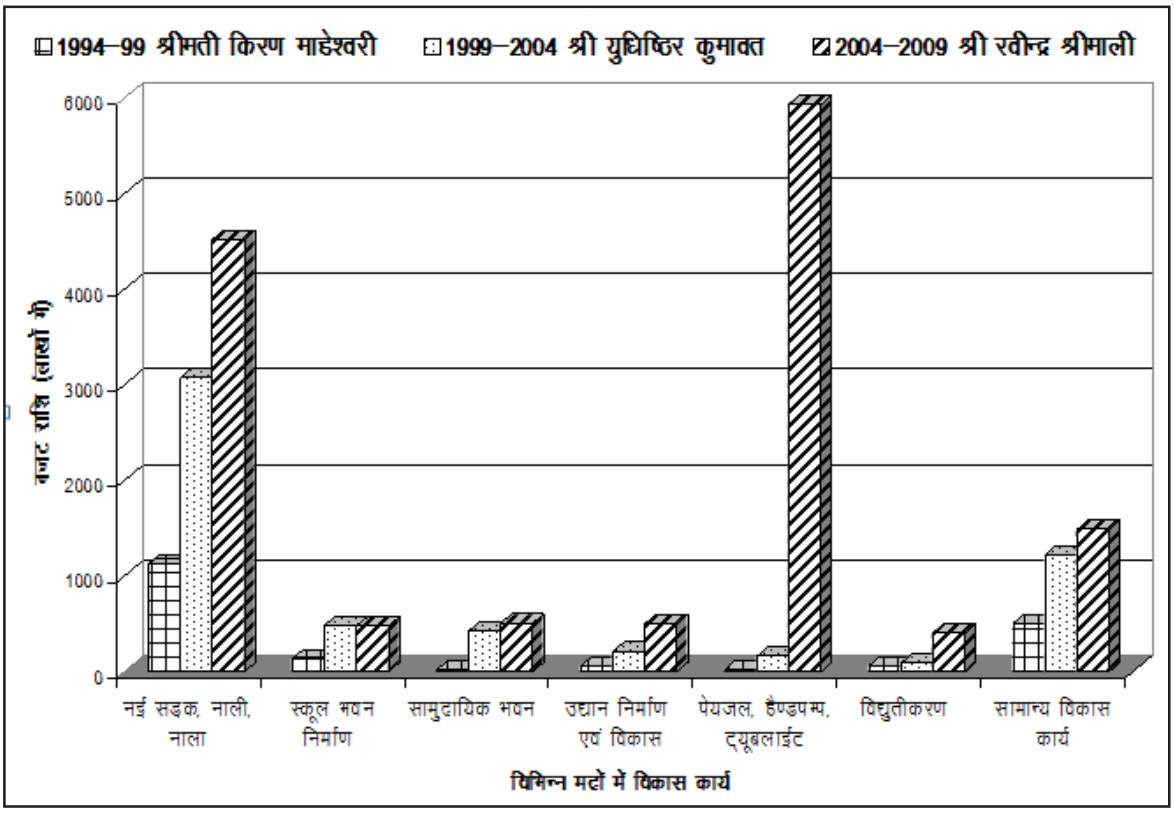

तालिका –2 वर्ष 1994 से 2014 तक उदयपुर नगर परिषद् के सभापतियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र. सं.	सभापतियों से पूछे गये प्रश्न	श्रीमती किरण माहेश्वरी (1994–1999)	श्री युधिष्ठर कुमावत (1999–2004)	श्री रवीन्द्र श्रीमाली (2004–2009)	श्रीमती रंजनी डांगी (2009–2014)
1	किन–किन मुद्दों को प्राथमिकता दी	सुलभ शौचालय, सफाई, बिजली, सड़क निर्माण, सामुदायिक भवन	दीपावली–दशहरा मेला	सार्वजनिक निर्माण, रोशनी एवं सफाई व्यवस्था	नालों का निर्माण, सड़क निर्माण, नई सड़के, बिजली व पार्किंग हैरिटेज
2	आपकी कार्यकाल की उपलब्धियाँ	चुंगी कर समाप्त, सुलभ कॉम्पलेक्स और सामुदायिक भवन	एयरपोर्ट के लिए 1 करोड़ की राशि, खेल गाँव के लिए राशि उपलब्ध कराई, नीमच माता पर विद्युत व्यवस्था, जोधसिंह पुलिया का निर्माण, मेलों व समारोह की शुरूआत	पार्कों का विकास, गुलाबबाग का सर्वांगीण विकास, गोरधन विलास पर स्वर्ण जयन्ति द्वार डिवाइडर का सौन्दर्यकरण शहर में पौधारोपण	नालों का निर्माण, पट्टों का वितरण, पार्किंग स्थल, सफाईकर्मियां की भर्ती
3	कार्यकाल में कमजोरियाँ	कुछ नहीं	सार्वजनिक तरणताल का निर्माण नहीं हो पाया	प्रभावी योजनाएँ बनाई लेकिन किन्हीं कारणों से पूर्ण नहीं हो पाई	प्रशासनिक असहयोग शहर के अतिक्रमण पर नियंत्रण पर नहीं कर पायें
4	उदयपुर को बी श्रेणी में दर्जा दिलाने में सभापति के प्रयास	राज्य सरकार को प्रस्ताव बनाकर भेजा	जनसंख्या कम होने से श्रेणी में दर्ज नहीं करा पाए	बोर्ड मिटंग में समय–समय पर प्रस्ताव भेजा	प्रार्थना पत्र द्वारा जो सूचना मांगी गई हर स्तर पर संकलित कर भेजी
5	घोषणा पत्र को कितना प्रतिशत लागू करने में सफल रहे (प्रतिशत में)	100	99.9	80	80

स्त्रोत : चारों सभापतियों के व्यक्तिगत साक्षात्कार पर आधारित

सन्तमत एवं निमाड़ में संत परम्परा

डॉ. मधू सूदन चौबे *

शोध सारांश – निमाड़ न केवल मध्यप्रदेश की प्रमुख भौगोलिक इकाई है, अपितु यह एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक और सांस्कृतिक इकाई भी है। आदिमानव की क्रीड़ा स्थली के रूप में इसकी पुरातनता असंदिग्ध है। भक्ति आंदोलन मध्यकाल में समाज, धर्म और चिंतन के क्षेत्र में भारत की एक बड़ी विशिष्टता रही है। इसका विस्तार निमाड़ क्षेत्र में भी हुआ। प्रस्तुत शोध पत्र में निमाड़ में भक्ति आंदोलन के दौर से लेकर आधुनिक काल तक प्रवाहित सन्त परम्परा का उल्लेख किया गया है। अनुसंधान के उपरांत यह ज्ञात हुआ कि निमाड़ की सन्त परम्परा समृद्ध रही और आप भी सन्तों का प्रभाव जनमानस पर दृष्टिगोचर हो रहा है।

शब्द कुंजी – निमाड़, सन्त, सन्त परंपरा, निर्गुण, सगुण, नवधा भक्ति, सूफीमत आदि।

प्रस्तावना – सम्पूर्ण विश्व में समय-समय पर मानव जाति के प्रत्येक वर्ग में ऐसे महापुरुष निरन्तर जन्म लेते रहे हैं, जिन्होंने अधिक औपचारिक शिक्षा भले ही न प्राप्त की हो, किन्तु अपनी उदात्त जीवन पद्धति से समाज का नेतृत्व करते हुए लोक मंगल का परम पावन पथ प्रशस्त किया है। 'ऐसे महापुरुषों ने केवल मौखिक उपदेशों के द्वारा ही नहीं, वरन अपने नैतिक और उत्कृष्ट चरित्र तथा अपनी लोक मंगलकारिणी वृत्ति का पोषण करने के लिये कभी-कभी अपने प्राण तक दे डाले, किन्तु वे अनेक तर्जनों, प्रलोभनों तथा भय से कभी अपने सत्पथ से विचलित नहीं हुए। ऐसे ही महापुरुषों को विश्व भर ने सन्त की उपाधि से विभूषित किया।'[1] भारत में अनगिनत सन्त हुये हैं, तो निमाड़ की धरा भी सन्त स्पर्श से सुरभित हुई है।

'सन्त' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत की 'अस्' धातु से है। इसका अर्थ है- 'होना', 'रहना' या 'अस्तित्व होना'। सन्त में सत्ता या अस्तित्व का भाव समाविष्ट है। विश्व में यथार्थ सत्ता ब्रह्म की है, अत: वैदिक साहित्य में इसे ब्रह्म के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है। अन्य मत के अनुसार सन्त शब्द की उत्पत्ति 'शान्त' शब्द से हुई। इसका अर्थ निर्वत्ति मार्गी या बैरागी होता है। कालान्तर में सन्त शब्द के अर्थ का विकास हुआ और यह 'अच्छा', 'सदाचारी', 'शान्त', 'पवित्रात्मा', 'परोपकारी' आदि का द्योतक हो गया। इन अर्थों में सन्त शब्द का प्रयोग धम्मपद, महाभारत, कालिदास और भर्तृहरि की रचनाओं में मिलता है। साधु या महात्मा के अर्थ में सन्त शब्द का प्राचीनतम प्रयोग विट्ठल बारकरी सम्प्रदाय के ज्ञानदेव एवं अन्य सन्तों के लिये हुआ है। हिन्दी के मूर्धन्य कोशकार रामचंद्र वर्मा ने 'सन्त' शब्द का मूल संस्कृत के 'सत्' (एक अर्थ साधु, महात्मा) को माना है। सत् से अनेक शब्द बने हैं, जैसे सदाचार, सद्भाव, सद्गुण, सच्चरित्र, सज्जन आदि। इन सभी सदाचारी शब्दों का मूल सत् है।[2]

रामचरितमानस में सन्तों के लक्षण के सम्बंध में अनेक स्थानों पर उल्लेख आया है।

संतन के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा।।
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहहूँ।।[3]

हे रघुवीर! हे भव-भय का नाश करने वाले मेरे नाथ! अब कृपाकर सन्तों के लक्षण कहिये। (श्रीराम ने कहा) हे मुनि! सुनो, मैं सन्तों के गुण कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

शट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा।।
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी।।[4]

वे सन्त (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर-इन) छ: विकारों को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल, अकिंचन, बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, विद्वान, योगी,।।

श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय 'भक्तियोग' में श्री कृष्ण प्रिय भक्त के नाम से सन्त के कि लक्षण बताते हुए कहते हैं कि किसी भी प्राणी से बैर न करनेवाला, सबसे मित्रता करने वाला, सब पर दया करने वाला, ममत्वहीन, निरहंकार, सुख-दु:खों को समान समझने वाला, क्षमाशील, निरन्तर सन्तुष्ट, एकाग्र मन वाला, संयमी, दृढ़ संकल्प वाला, सदा मुझमें (भगवान में) मन और बुद्धि लगाए रखने वाला, किसी को क्रोध, भय और उद्वेग से मुक्त, कामनाहीन, पवित्र, चतुर, उदासीन, व्यथा से परे, सब कार्यों का आरम्भ छोड़ देने वाला भक्तियुक्त, शत्रु-मित्र का भेद न रखने वाला, मान-अपमान को समान समझने वाला, गर्मी-सर्दी और सुख-दु:ख को एक सा मानने वाला, किसी से कोई लगाव न रखने वाला, निन्दा और स्तुति से प्रभावित न होने वाला, सदा मौन रहने वाला, सभी दशाओं में सन्तुष्ट, कहीं घर बनाकर न रहने वाला और स्थिर बुद्धिवाला मेरा भक्त मनुष्य ही मुझे प्रिय है।[5]

सन्त मत बौद्ध धर्म और उसके साहित्य से अनुप्राणित है। 'बौद्ध धर्म से महायान तथा हीनयान सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। महायान से मंत्रयान और मंत्रयान से वज्रयान और इसी वज्रयान की घोर तांत्रिक प्रक्रिया से नाग संप्रदाय का उदय हुआ और नाथ सम्प्रदाय से प्रेरणामूलक तत्वों को लेकर सन्त मत अवतरित हुआ, बौद्ध धर्म से लेकर नाथ सम्प्रदाय तक इस प्रक्रिया में जो जीवन तत्व उभरे, उन सबका समावेश सन्त मत में हुआ।'[6]

दक्षिण भारत में भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक रामानुज थे, जबकि उत्तर भारत में सन्त परम्परा का प्रारम्भ जयदेव (12 वीं सदी) से माना जाता है। जयदेव से लेकर आधुनिक काल तक हुये सन्तों में सधना, बेनी, नामदेव, त्रिलोचन, रामानन्द, कबीर, सेना, पीपा, रैदास, कमाल, धन्ना, जंभनाथ, नानक, तुलसीदास, अंगद, अमरदास, रामदास, धर्मदास, दादूदयाल, अर्जुनदेव, वषना, गरीबदास, हरिदास निरंजनी, तेगबहादुर, मलूकदास, रज्जब, सुन्दरदास, धरनादास, बूलासाहब, गुलाल साहब, जगजीवनदास,

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शहीद भीमा नायक, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बडवानी (म.प्र.) भारत

दूलनदास, दरियासाहब, गरीबदास, चरणदास, सहजोबाई, दयाबाई, रामहरसदास, पलटू साहब, तुलसी साहब, शिवदयाल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

निमाड़ में सन्तों की सुदीर्घ परम्परा रही है। इनमें भक्ति मत और सूफी मत दोनों परम्पराओं के सन्त रहे हैं। यह परम्परा सन्त ब्रह्मगीर से प्रारम्भ हुई है, जिसे धार्मिक–आध्यात्मिक सन्त रामदास (मौनी बाबा) और सामाजिक सन्त डेमन्या बाबा ने आज भी जीवित बनाये रखा है।

ब्रह्मगीर के शिष्य मनरंगीर और मनरंगीर के प्रसिद्ध शिष्य सिंगाजी एवं जगन्नाथ गिर हुये। सिंगाजी के जीवनकाल में तो उनके अनेक शिष्य बने ही थे, उनके निर्वाण के पश्चात् दीर्घ काल तक कई लोगों ने उन्हें गुरु रूप में स्वीकार किया तथा उनकी शिक्षाओं से मार्गदर्शन प्राप्त किया। यह सिलसिला आज भी जारी है। भावसिंह, कालूजी, दलूदास, खेमदास, धनजीदास के गुरु सिंगाजी थे। सन्त अफजल में निमाड़ में अनामी सम्प्रदाय की स्थापना की। उनके मत को उनके शिष्यों लालदास, कालूदास, खुश्यालदास, दशरथ, नन्दलाल, हरिदास स्वामी आदि ने आगे बढ़ाया। निमाड़ में भक्ति आन्दोलन और सूफी मत दोनों का प्रादुर्भाव एवं विकास हुआ। भक्ति आन्दोलन की दो प्रमुख धाराएँ हैं– निर्गुण एवं सगुण। निमाड़ में इन दोनों का अस्तित्व रहा।

'निर्गुण का शाब्दिक अर्थ होता है– गुण रहित। भक्ति के संदर्भ में गुणों का तात्पर्य जीव और जड़ों के गुणों से है। सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध आदि जड़ के गुण और अविद्या, अल्पज्ञता, रागद्वैश आदि क्लेश जीव के गुण हैं। परमेश्वर इन दोनों श्रेणियों के गुणो से पृथक है, इसलिये उसे निर्गुण कहा जाता है। 'अशब्दमस्पर्श–मरूपम व्ययम्'' आदि औपनिषदिक प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि शब्द, स्पर्श, रूप आदि गुणों से रहित होने के कारण ईश्वर निर्गुण हुये।'[7] निर्गुण धारा दो भागों में विभक्त हुई – ज्ञानमार्गी ओर प्रेममार्गी। ज्ञानमार्गी संतों में कबीर, नानक, रैदास और दादू दयाल प्रमुख हैं। दोनों शाखाएं गुरु और प्रेम को महत्व देती है। ईश्वर को निराकार मानती हैं। माया को साधनापथ का सबसे बडा व्यवधान स्वीकार करती है। रहस्यवादी हैं तथा अव्यक्त सत्ता की ओर संकेत करती है।

दोनों में कुछ अन्तर भी हैं। ज्ञानमार्गी सन्त अन्त: साधना पर बल देते हैं। उनका निर्गुण घट–घट में है। इन्होंने ईश्वर को सत्य और जगत को मिथ्या मानते हुये प्रकृति को उदासीन दृष्टि से देखा। प्रेममार्गियों का ईश्वर प्रकृति के कण–कण में व्याप्त है, इसलिये प्रकृति उनके लिये आकर्षक और स्पृहणीय है। 'ज्ञानमार्गी सन्तों का रहस्यवाद साधनात्मक और प्रेममार्गी सन्तों का रहस्यवाद भावनात्मक है।'[8]

'सगुण का शाब्दिक अर्थ होता है– गुण सहित। जिसमें गुण है, वही सगुण है। 'यो गुणै सह वर्तत्ते स सगुण:' जो ज्ञान, पवित्रता, अनन्त बलादि गुणों से युक्त है, उसे सगुण कहते हैं।'[9] परमात्मा अनन्त कल्याणकारी गुणों से युक्त है। सगुण भक्ति में भगवान के सगुण साकार रुप पर बल दिया गया है। सगुणवादियों ने ईश्वर भक्ति के लिये मूर्ति पूजा को जरुरी माना है।

सगुण शाखा में नवधा भक्ति को अत्यंत महत्व दिया गया है। जिन नौ प्रकार की भक्तियों का उल्लेख किया था, वे इस प्रकार हैं– श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवन, अर्चन, वन्दन, सख्य, दास्य एवं आत्मनिवेदन।'[10] 'भक्ति की ये नव विधाएँ इन्द्रिय, मन और हृदय को भगवान के प्रति निवेदित करती हैं। इनसे भक्त स्वयं को रामार्पण एवं कृष्णार्पण कर देता है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण भगवान की लीला से संबंध रखते हैं। पादसेवन, अर्चन और वंदन भगवान के अवतार और मूर्तरूप से संबंधित हैं। दस्य, सख्य और आत्मनिवेदन भक्त की मनोदशाओं को इंगित करते हैं। वल्लभ मत में भागवत की नवधा भक्ति के अतिरिक्त दशम प्रेमलक्षणा भक्ति का भी प्रावधान किया गया है।'[11]

सगुण भक्ति धारा भी दो भागों में विभक्त हुई– राम भक्ति एवं कृष्ण भक्ति। रामानन्द और तुलसीदास राम भक्ति के तथा सूरदास, मीरा, चैतन्य आदि कृष्णभक्ति के प्रमुख सन्त हुये। इन दोनों धाराओं में जहां समानता है, वहीं अंतर भी है। सगुण राम भक्तों के राम और कृष्ण भक्तों के कृष्ण दोनों विष्णु के अवतार हैं। दोनों के प्रति सगुण भक्ति का विधान है। दोनों के लिये आत्म समर्पण और अत्यधिक निष्ठा प्रदर्शित की गई है।

उपर्युक्त उल्लेखित सगुण एवं निर्गुण प्रवाहों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सगुणोपासक प्राचीन भागवत् सम्प्रदाय के नवीन विकास के अनुयायी हैं, वे प्राचीन धर्म शास्त्रों एवं धर्म शास्त्र प्रवर्तकों के अनुयायी हैं, लोक धर्म एवं व्यक्ति धर्म के समर्थक हैं, रहस्यवाद के विरोधी हैं एवं गुरु को परमेश्वर मानते हैं। 'निर्गुणोपासक नव निर्गुण भक्ति के उपासक हैं, धर्म शास्त्रों एवं धर्म शास्त्र प्रवर्तकों के विरोधी हैं, रहस्यवाद के पूजारी हैं, गुरु और परमेश्वर को अलग–अलग मानते हैं तथा गुरु को परमात्मा से भी अधिक महत्व देते हैं।'[12]

निमाड़ में सन्त ब्रह्मगीर, मनरंगीर, सिंगाजी, कालुजी, भावसिंह, दलूदास, खेमदास, बोंदरू, अफजल, बुखारदास आदि निर्गुण धारा के तथा सन्त रंकनाथ, दीनदास सगुण धारा के प्रमुख सन्त हुये। निमाड़ में सगुण भक्ति धारा का सूत्रपात करने और उसे प्रवाहित करने का श्रेय रंकनाथ को है। जगन्नाथ गिर, धनजीदास, लालदास मूलत: निर्गुणवादी थे, किन्तु सगुण साकार की भक्ति से भी उन्हें परहेज नहीं था।

निमाड़ में सूफी मत का भी प्रभाव रहा। शारीरिक पदार्थों से मन हटाकर ईश्वर के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसी से प्रेम करने वाला व्यक्ति सूफी है। सूफी मत का व्यवहार मुस्लिम रहस्यवाद के लिये हुआ है। सूफी शब्द के मूल स्रोत के संदर्भ में मतभेद है। सूफी शब्द 'सफ़ा' से बना है, जिसका अर्थ पवित्रता होता है। जो लोग पवित्र थे, वे सूफी कहलाये। 'सफा' शब्द निष्कपट भाव के लिये व्यवहृत हुआ है, अत: सूफी ऐसे व्यक्ति को कहना चाहिये जो न केवल परमात्मा के प्रति निष्छल भाव रखता है और अन्य सारे प्राणियों के साथ भी शुद्ध बर्ताव करता है, अपितु जिसके लिये परमात्मा स्वयं भी स्नेह प्रदर्शित करता है। मदीना में मुहम्मद साहब द्वारा बनवाई गई मस्जिद के बाहर 'सुफ्फ' अर्थात् चबूतरे पर जिन गृहविहीन व्यक्तियों ने शरण लेकर ईश्वरोपासना में लीन रहते हुये पवित्र जीवन व्यतीत किया, वे सूफी कहलाये। सूफी शब्द 'सूफ' अर्थात् ऊन से उत्पन्न हुआ है। यह पहले उन व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त किया जाता था, जो मोटे ऊनी वस्त्र पहनते थे। ये लोग भोग–विलास से दूर रहकर सीधा–सादा जीवन व्यतीत करते हुये आध्यात्मिक साधना में लीन रहते थे। सूफी शब्द ग्रीक शब्द 'सोफिया' से बना है। इसका आशय ज्ञान होता है। सूफियों ने सदैव अनुभवसिद्ध ज्ञान को महत्व दिया है।

भारत में हुये अनेक सूफी सन्तों में ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, ख्वाजा फरीदुद्दीन, तपस्वी अबू उस्मान सैयद, रहीम, शेख सादी, जलालुद्दीन रूमी, अमीर खुसरो, शेख फरीद, निजामुद्दीन औलिया आदि विशेष उल्लेखनीय है। निमाड़ में अफजल और उनके शिष्यों ने सूफी मत का प्रसार किया था।

निष्कर्ष – इस प्रकार जिसने परमतत्व का अनुभव कर लिया हो, वह सन्त है। सन्त मत के सामान्य मार्ग में विविध वादों का समन्वय हुआ है। इसमें हिन्दू, मुस्लिम, गोरख पंथी, वेदान्ती, सूफी एवं वैष्णव के धार्मिक सिद्धान्तों

का समावेश दिखाई देता है। निमाड़ में हुए सन्तों ने अकूत वैचारिक सम्पदा छोड़ी है, जो भजनों के स्वरूप में संरक्षित है और उन्नत जीवन के लिए मार्गदर्शन दे रही है। सन्त सिंगाजी के अवदान को सभी इतिहासकारों ने विशेष उल्लेखनीय माना है। उनका प्रभाव निमाड़-मालवा में अभी भी बड़ी षिद्दत से महसूस किया जा सकता है। भक्ति की दोनों शाखाओं और सूफी मत ने मानववाद को बढ़ावा देते हुए जीवन के नए प्रतिमान स्थापित किए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मध्यकालीन हिन्दी सन्त, विचार और साधना, लेखक-, प्रकाशक- हिन्दुस्तान एकेडमी , इलाहाबाद, संस्करण- 1965, पृष्ठ-05.
2. प्रामाणिक हिन्दी कोश, सम्पादक- श्री रामचन्द्र वर्मा, प्रकाषक- साहित्यरत्न माला, वाराणसी, सम्वत्- 2008, पृष्ठ क्र.-437.
3. श्रीरामचरितमानस, रचयिता- गोस्वामी तुलसीदास, टीकाकार- हनुमानप्रसाद पोद्दार,, प्रकाशक- गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण- सं. 2054., पृष्ठ-535.
4. श्रीरामचरितमानस, रचयिता- गोस्वामी तुलसीदास, टीकाकार- हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक- गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण- सं. 2054., पृष्ठ-535
5. श्रीमद्भागवत, रचयिता- वेदव्यास, टीकाकार- हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक- गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण- सं. 2054, पृष्ठ-393.
6. हिन्दी सन्त साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव, लेखक- डॉ. विद्यावती मालविका, प्रकाशक- हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, संस्करण- 1966, पृष्ठ-12.
7. मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साधना, लेखक- डॉ. हरवंश लाल शर्मा, प्रकाशक- मॉडिस्ट प्रिन्टर्स, जालन्धर, . संस्करण- संवत-1963, पृष्ठ-03-04.
8. काव्य में रहस्यवाद, लेखक- डॉ. बच्चूलाल अवस्थी, प्रकाशक- ग्रंथम., कानपुर, संस्करण- 1965, पृष्ठ-163.
9. साहित्य सन्देश : सन्त साहित्य विशेषांक, प्रकाशक- साहित्य कुंज , आगरा, संस्करण- जुलाई-अगस्त, 1958, पृष्ठ-17.
10. श्रीमद्भागवत, रचयिता- वेदव्यास, टीकाकार- हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक- गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण- सं. 2054, पृष्ठ-393.
11. कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, लेखक- डॉ. जगदीश गुप्त, प्रकाशक- हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, संस्करण- 1958, पृष्ठ-206-07.
12. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, लेखक- डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, प्रकाशक- प्रयाग, संस्करण- सम्वत् 2017, पृष्ठ-22.

****

नरसिंहगढ़ के शैलचित्रों का संरक्षण

डॉ. ममता खोईया *

प्रस्तावना – शैलचित्र मानव सभ्यता के विकास के शुरूआती दौर की निशानियाँ है, तब इंसान गुफाओं में रहता था। पत्थर की दीवारों पर कुदरती रंगो की मदद से वह अपनी कल्पनाओं और भावनाओं को आकार देता था। इसमें तत्कालीन जीवन, प्राकृतिक परिवेश और मान्यताओं का चित्रण होता था। यह सिलसिला कई हजार सालों तक चला। इसलिए शैलचित्रों के विषय में भी विकास की छाया नजर आती है। शैलचित्र दुनिया के उन्हीं हिस्सों में मिले है जहाँ बहुत पहले मानव सभ्यता विकसित हो चुकी थी। भारत के अलग–अलग हिस्सों में ऐसे चित्रों की गुफाएँ बड़ी तादाद में है। नरसिंहगढ़ में भी अनेक शैलचित्र स्थित है। नरसिंहगढ़ में स्थित शैलचित्रों की गुफाओं की गणना विश्व के सर्वाधिक पुराने शैलचित्रों में की जाती है। करीब 40 हजार साल पुराने शैलचित्रों का उचित संरक्षण और प्रचार होने से क्षेत्र को पर्यटन उद्योग को बढ़ाया जा सकता है।

इन शैलचित्रों की खोज डॉ.जितेन्द्र दत्ता त्रिपाठी ने की थी। इन्होनें सबसे पहले सन् 1980 के दशक में इन गुफाओं की खोज की। उन्होनें इनकी कालगणना की और गुफाओं को क्रम दिए। वरिष्ठ पुराविद् डॉ. जितेन्द्र दत्ता त्रिपाठी के अनुसार क्षेत्र के शैलचित्र 40 हजार साल तक पुराने है। गणना के आधार पर इन्हे समय और शैली के लिहाज से विश्व प्रसिद्ध भीमबैठका की गुफाओं के शैलचित्रों के समकक्ष रखा है। इनमें हिंगलाज माता, काकशिला, बड़ा महादेव, कोटरा, कोढूपानी, बलबटपुरा और इलाही बड़ली की गुफाएँ प्रमुख है। फिलहाल अतिक्रमण और शरारती तत्वों की हरकतों से यह चित्र तेजी से नष्ट हो रहे है।अनमोल पुरातात्विक धरोहर शैलचित्रों की गुफाओं के बर्बाद होने का सिलसिला थम नही रहा है। इन गुफाओं में बड़े पैमाने पर शैलचित्रों से छेड़छाड़ की गई है। अब शरारती तत्वों ने चित्रों को नष्ट करने का नया तरीका अपनाया है। रंगरोगन पोतने के साथ अब चित्रो को पत्थरों से खरोंच कर नष्ट किया जा रहा है। यही नहीं मामले को ज्यादा संवेदनशील बनाने की गरज से इन चित्रों पर चूना पोतकर धार्मिक प्रतीक भी बनाए जा रहे है। प्रशासन ने अब तक इन गुफाओं के संरक्षण के लिए किसी तरह के एहतियाती कदम नही उठाए है। इससे इन गुफाओं में अतिक्रमण और चित्रों को नष्ट करने की घटनाओं में बढ़ोत्तरी हो रही है।

गुफाएँ क्रमांक आई एफ 14 में मकान का निर्माण किया गया है। आई एफ 13 में तोड़फोड़ की गई है। आई एफ 15,16,17,18 गुफाओं को पोत दिया गया है। इन गुफओं को स्थानीय स्तर पर निम्न तरह से नुकसान होता है–

1. सभी गुफाएँ वन्यक्षेत्र में स्थित है इनके आसपास बिना अनुमति बड़ी तादाद में मकान बनाकर लोग रह रहे है। कई गुफाओं में भी मकान बना लिए गए है।
2. नगर पालिका, वन विभाग, पुरातात्व और राजस्व विभाग का आपस में तालमेल नही है। इससे शैलचित्रों की सुरक्षा की जानकारी लेने वाला कोई नहीं है।
3. शरारती तत्व भी गुफाओं को क्षति पहुंचा रहे है।

इन गुफाओं को नष्ट होने से बचाने के लिए पर्यावरण के लिए कामकरने वाली स्वयंसेवी संस्था 'द नेचर ग्रुप' ने वर्ष 2010 में पहले नरसिंहगढ़ महोत्सव के दौरान तत्कालीन एस.डी.एम. के जरिए सी.एम. को पूरे शैलचित्र क्षेत्र को संरक्षित करने के लिए एक प्रस्ताव बनाकर दिया था। इसमें यह सुझाव थे–

1. विशेषज्ञ की निगरानी में पूरे परिसर को विकसित और संरक्षित करने के काम पर अमल किया जाए।
2. गुफाओं के आसपास से अतिक्रमण हटाया जाए।
3. पहाड़ियों पर पाथ–वे बनाकर सभी गुफाओं को आपस में जोड़ा जाए। इसमें कोढूपानी, बड़ामहादेव, हिंगलाज माता से काकशिला तक के क्षेत्र को शामिल किया जाए।
4. शैलचित्रों की हिफाजत के लिए इन पर कवरिंग की जाए। गुफाओं के बाहरी हिस्से में जालियाँ लगाई जाए। गलियारों में प्रकाश की व्यवस्था हो।
5. पहाड़ियों पर पर्यटकों के लिए पेयजल के पर्याप्त इंतजाम हो।
6. पूरे परिसर की सुरक्षा के लिए चार सुरक्षा गार्डो की ड्यूटी लगाई जाए।

क्षेत्र में स्थित प्राचीन शैलचित्रों को संरक्षित करने की संभावनाओं का परीक्षण करने के लिए केन्द्रीय पुरातत्व विभाग का जांच दल ने मई 2013 ने साइट का सर्वेक्षण किया। इस दल में सहायक पुरातत्वविद् आर.के.पटेल और डॉ. हाशमी शामिल थे। दल ने हिंगलाज माता, काकशिला और कोटरा की पहाड़ियों के शैलचित्रों की जांच की। आर.के.पटेल ने बताया कि शैलचित्रों के साथ पर्यटन की अवधारणा नहीं चलती है। शैलचित्रों को केवल पानी के रिसाव से बचाने की जरूरत होती है इसके अलावा उन्हें प्राकृतिक तौर पर कोई दूसरा खतरा नहीं होता है। वास्तव में शैलचित्रों के लिए सबसे बड़ा खतरा इंसानों द्वारा की गई छेड़छाड़ होती है इसलिए शैलचित्रों वाली जगह इंसानी पहुंच से जितनी दूर रहे उनकी सुरक्षा के लिए उतना ही बेहतर होता है।

जांच दल 'द नेचर ग्रुप' द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव से बहुत प्रभावित हुआ एवं अपने विभागीय अधिकारियों को इसे दिखाने की बात कही। उन्होंने कहा कि कोटरा की पहाड़ियों की दूरी नरसिंहगढ़ की दूसरी गुफाओं से ज्यादा है अगर पूरे क्षेत्र के शैलचित्रों को संरक्षित करना है तो कोटरा को भी नरसिंहगढ़ बेल्ट में ही शामिल कर एक बड़ी योजना का खाका तैयार करेंगे।

दुर्लभ शैलचित्रों से सजी इलाके की दर्जनभर से ज्यादा गुफाएँ तेजी से बर्बाद हो रही है। ज्यादातर गुफाओं के शैलचित्र नष्ट हो चुके है बची हुई गुफाओं में भी यही स्थिति है। इसे नहीं रोका गया तो इलाके की पुरातात्विक विरासत को तो नुकसान होगा ही, साथ ही भविष्य में बेहतर आय का एक जरिया भी हमेशा के लिए खत्म हो जायेगा। गुफाओं तक पहुँच मार्ग गंदगी से भरे हुए है। इससे सैलानी चाहकर भी इन तक नही पहुँच पाते है। मध्यप्रदेश शासन पूरे क्षेत्र को पर्यटन पैकेज से जोड़ने में जुटा है। ऐसे मे पर्यटको को खींचकर यहां तक लाने में शैलचित्र ही सबसे बड़ी भूमिका निभा सकते है। अगर गुफाओं का संरक्षण और व्यापक प्रसार हो जाता है तो यहां भी भीमबैठका की तरह देशी–विदेशी सैलानी बड़ी तादाद में आ सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. सुबोध कपूर–द इंडियन इनसाइकोपीडिया (प्रीहिस्टोरिक रॉक आर्ट ऑफ इंडिया) 2002 नई दिल्ली
2. आर.के.शर्मा एवं के.के. त्रिपाठी–प्रीहिस्टोरक आर्ट इन इंडिया 1996
3. दैनिक भास्कर में प्रकाशित लेख 2013
4. पत्रिका में प्रकाशित लेख 2013

*सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय,सारंगपुर - राजगढ़ (म.प्र.) भारत

मेवाड़ के पर्यटन केन्द्र व चित्तौड़गढ़ में पर्यटकों के आगमन की प्रवृति : एक भौगोलिक विश्लेषण

डॉ. ललित सिंह झाला * सुश्री कीर्ति राठौड़ **

प्रस्तावना – राजस्थान को पर्यटन के क्षेत्र में न केवल देश में अपितु विश्व पर्यटन मानचित्र पर प्रमुखता से जाना जाता हैं। राजस्थान की सदियों से अपनी गौरवगाथा, कला एवं संस्कृति, तीर्थस्थल, प्राकृतिक सौन्दर्य, पशु-पक्षी अभ्यारण्य एवं ऐतिहासिक स्थलों के कारण देश-विदेश में सराहा जाता है। यही कारण है कि राजस्थान आये बिना पर्यटकों की भारत यात्रा अधूरी रहती हैं। पर्याप्त विश्व में सबसे बड़े उद्योग के रूप में उभरा हैं, जिसकी वृद्धि दर की सर्वाधिक हैं। अन्य आर्थिक सेक्टरों की तुलना में पर्यटन में निवेश से सर्वाधिक प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रोजगार सृजित होता हैं। साथ ही उससे बहुमूल्य विदेशों मुद्रा का अर्जन की होता है। प्रदेश के आर्थिक विकास में पर्यटन के महत्व को देखते हुए राज्य सरकार ने पर्यटन विकास एवं पर्यटन को जन उद्योग बनाने की दिशा में अनेक कारगार कदम उठाये हैं। राजस्थान में पर्यटन को व्यावसायिक स्वरूप दिया जा रहा हैं। पर्यटन यहाँ की संस्कृति हैं। राज्य सरकार द्वारा हाल के वर्षों में पर्यटन क्षेत्र के लिए अनेक सुविधाएँ एवं रियायते प्रदान की है। पर्यटन क्षेत्र की ओर अधिक विकसित करने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी दोनों क्षेत्रों द्वारा रचनात्मक प्रयास किए जा रहे हैं।

शोध के उद्देश्य –

1. अध्ययन क्षेत्र मेवाड़ में पर्यटन के दर्शनीय स्थलों का पता लगाना।
2. पर्यटन आगमन के प्रारूप का मूल्यांकन करना।
3. पर्यटन विकास के लिए नियोजन की रूपरेखा तैयार करना।

अध्ययन क्षेत्र –अध्ययन क्षेत्र चित्तौड़गढ़ दक्षिणी राजस्थान में अवस्थित हैं जो कि राज्य का 56.23 वर्ग क्षेफफल हिस्सा है तथा 2001 की जनगणना के अनुसार चित्तौड़गढ़ में 96,028 जनसंख्या निवास करती है। शहर में दो मुख्य नदियाँ बेडच एवं गंम्भीरी बहती है।

चित्र सं. 1 : मेवाड़ व चित्तौड़गढ़ का अवस्थिति मानचित्र

पर्यटक दर्शनीय आकर्षण – चित्तौड़गढ़ 156 ई. पू. मेवाड़ की राजधानी रही है। चित्तौड़गढ़ दुर्ग में विजय स्तम्भ, कीर्तिस्तम्भ, कुम्भा महल, पदमनी महल, मीरा मंदिर, कालका माता मदिर, फतह प्रकाशन संग्रहालय, पर्यटकों का मुख्य आकर्षक स्थल है।

चित्र सं. 2 : मेवाड़ के दर्शनीय स्थल

तालिका 1

पर्यटन आगमन का विश्लेषण – पर्यटकों के आगमन के प्रारूप को देखने पर शोध में पाया गया कि राज्य 1.70 प्रतिशत देशी पर्यटक तथा 3.28 प्रतिशत विदेशी पर्यटक चित्तौड़गढ़ में घूमने आया। पर्यटकों के आने की प्रकृति क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ रही है परन्तु 2010 में तुलनात्मक रूप से पर्यटकों की संस्था कम रही है। पर्यटकों की वृद्धि की प्रवृत्ति एक समान नहीं रही है।

ग्राफ-1 : राजस्थान और चित्तौड़गढ़ में विदेशी पर्यटकों के आगमन का विवरण (2009-2012)

पर्यटन की सफलता वहाँ से आधारभूत सुविधाओं तथा ठहरनें की स्थिति पर निर्भर करती है। चित्तौड़गढ़ में पर्यटक केन्द्र, R.T.D.C. की पद्मनी होटल, 75 शैय्याओं का होटल पन्ना, होटल प्रताप पैलेस स्थित है तथा शहरी क्षेत्र के नजदीक 39 किलोमीटर दूरी केशल विजयपुर व बस्सी हैरिटेज होटल भी विकसित हुई है जो विदेशी पर्यटकों को लुभा रही है।

समस्याएँ –

1. चित्तौड़गढ़ क्षेत्र में मुख्य समस्या साइड सीन का अभाव है केवल दुर्ग के अलावा ऐसा कोई दर्शनीय स्थल नहीं है जो पर्यटकों को बांध सके।
2. चित्तौड़गढ़ में पर्याप्त मात्रा में सुविधाजनक होटलों का अभाव है।
3. पर्यटन विभाग कोई विशेष पैकेज नहीं देता है ताकि पर्यटक संख्या बढ़े।
4. दुर्ग व अन्य दर्शनीय क्षेत्रों में पार्किंग समस्या व गन्दगी की समस्या विद्यमान है।

नियोजन एवं सुझाव –

1. चित्तौड़गढ़ दुर्ग के अतिरिक्त अन्य दर्शनीय स्थल जैस सीता माता अभ्यारण्य, मेनाल अन्य प्राकृतिक स्थलों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
2. पर्यटकों के ठहराव बढ़ाने के लिए सरकार अनुदान देकर तथा आस-पास के पर्यटक स्थलों को विकसित करें।
3. स्थानीय लपकों को अंकुश लगाकर समय-समय में गाइड प्रशिक्षण कार्यक्रम में स्थानीय गाइडों की सहभागिता को बढ़ाया जाए।
4. पर्यटक स्थलों को जोड़ने वाले रास्ते चौड़े व विकसित किया जाए।
5. R.T.D.C. साइड-सीन को अधिक बढ़ावा दें ताकि पर्यटकों का ठहराव बढ़े।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Bhatiya, A.K. (1991), "International Tourism : Fundamentals and Practices,'' Sterling Publication Pvt. Ltd. New Delhi.
2. Bhattarcharya, A.N. (2000), Human Geography of Mewar, Himanshu Publication, Udaipur.
3. Mishra, V.C. (1967), "Geography of Rajasthan", National Book Trust, New Delhi.
4. Negi, J. (1990) : Tourism & Travel, Gitanjali Publishing House, New Delhi.
5. Singh, Ratandeep (1994), "Infrastructure of Tourism in India", Kanishka Publishers, New Delhi.
6. Ziffer, Karen A. (1989), Eco-tourism International Series of working papers on eco-tourism.

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल विभाग) जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.) भारत
** शोधार्थी (भूगोल विभाग) पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

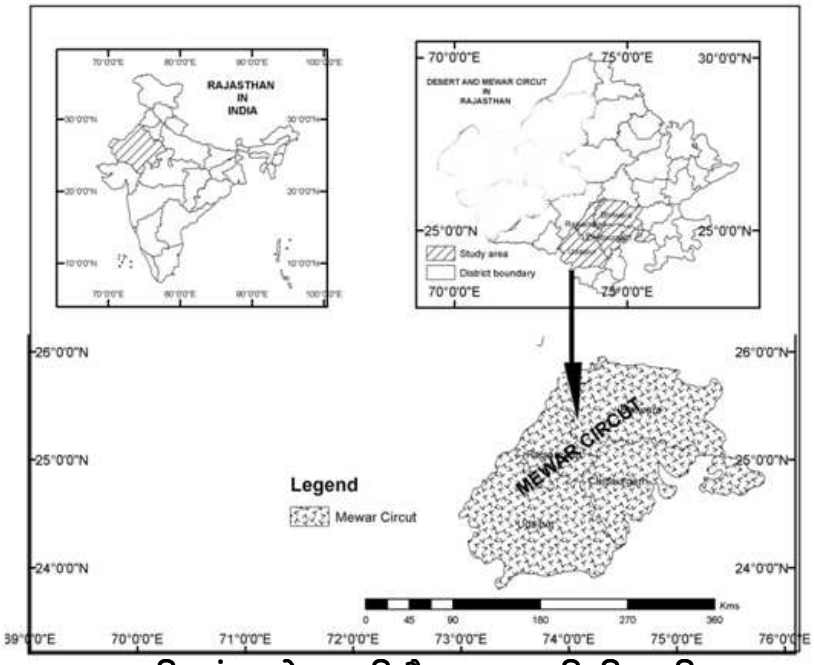

चित्र सं. 1 : मेवाड़ व चित्तौड़गढ़ का अवस्थिति मानचित्र

चित्र सं. 2 : मेवाड़ के दर्शनीय स्थल

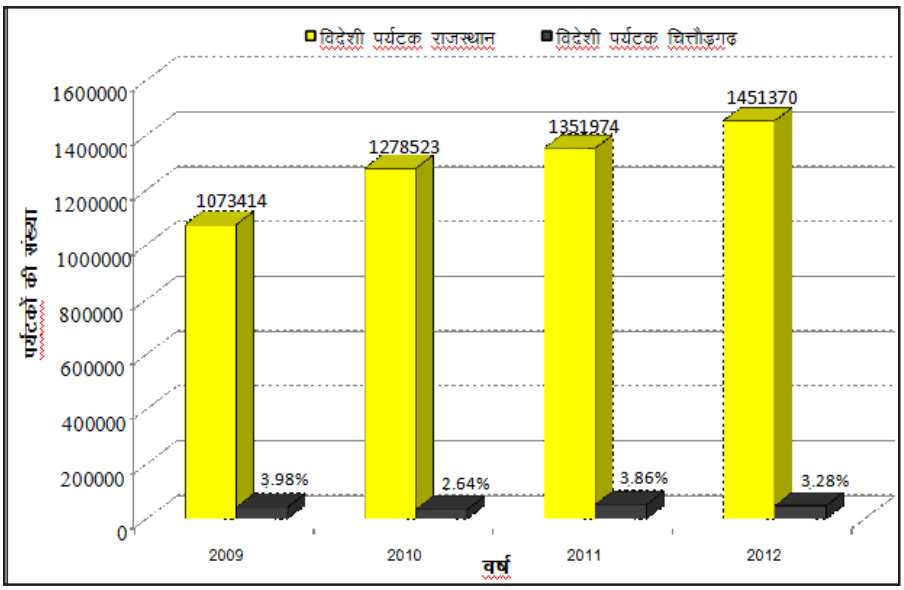

ग्राफ–1 : राजस्थान और चित्तौडगढ में विदेशी पर्यटकों के आगमन का विवरण (2009–2012)

तालिका 1

राजस्थान और चित्तौड़गढ़ में पर्यटकों के आगमन का विवरण (2009–2012)

वर्ष	देशी पर्यटक राजस्थान	चित्तौड़गढ़	%	विदेशी पर्यटक राजस्थान	चित्तौड़गढ़	%
2009	25558691	404075	1.58	1073414	42787	3.98
2010	25543877	393970	1.54	1278523	33719	2.64
2011	27137323	465996	1.71	1351974	52184	3.86
2012	28611831	488652	1.70	1451370	47644	3.28

स्त्रोत :- प्रगति प्रतिवेदन, पर्यटन विभाग राजस्थान (2012–2013)

Self Concept Of Engineering Students As Related With Personality Types

Sunita Dhenwal * Prof. Preeti Mathur **

Abstract- The purpose of this research was to determine the self concept of Engineering students and their personality type. The sample consisted of 100 students from 5 different courses of Engineering by using Stratified random method. The self concept questionnaire by Srivastava and Rastogi (1983) and for personality assessment I/E test by Joshi (1986) was used. Inferential statistics such as t-test was used to analyze the difference between the self concept and personality of the subjects . The t-test analysis showed that there was significant difference in self concept of Introvert and Extrovert subjects. **Keywords-** Self Concept , Personality Type.

Introduction- Self concept is defined as the totality of Individuals thoughts and feelings having reference to person as an object. Self concept holds that an individuals have a concept of self based on who they think they are (the actual self) and a concept who they think they would like to be(the ideal self). Self concept is not inherited but acquired. Self concept is influenced by many factors like, one's home, society, academic achievement,peer group, economic level etc.

Self concepts are central to humanistic theories-which focus upon the individual's subjective perceptions of self and self within the world . Two of most influential humanistic theorists are Carl Rogers and Abraham Maslow.

The personality is composed of traits or specific qualities of behavior, which characterize the individual's unique adjustment to life as shown in his behavior and thoughts . Self concept is dominant element in personality pattern. Eysenck (1967) developed a model of personality based upon three universal traits-

1. Introversion/Extroversion
2. Neuroticism/stability
3. Psychoticism

Robinson(1970) found that engineering students' self concept had a correlation with success criterion .High achievers were found to have significantly more positive self concept thanlow achievers. As suggested by Gaydene,E.Ghesquiere, P.,& Oneghena,P.(2005) to develop positive self concept, parents need to provide a harmonious household climate, full of happiness and adequate necessaities. So,it is proved that self concept and personality are intercorrelated factors.

Looking at the present scenario a study was undertaken to evaluate the self concept of engineering students as related with personality types with following objective-

1. To study relationship between self concept and personality types among the engineering students.
2. To find out the difference between the self concept of engineering students of different courses.

Methodology- The sample of the present study consisted of 100 engineering students of different courses i.e Mining N=10),Civil (N=10),Mechanical (N=10) ,Computer (N=10), & Electrical (N=10).

Research Tools – 1. Self Concept Inventory- It's developed by Srivastava and Rastogi (1983) consists of 45 items having 5 alternatives –Very High,High,Average,Low & Very Low, high scores on it indicates that person have very high self concept. It's reliability is 0.87.

2. Introversion/Extroversion Test- It test was developed by M.C.Joshi(1986). This consists 50 items. There are three options are given "YES","?" or "NO". The reliability of this test is 0.90.

Result –Table showing Mean,Standard Deviation and 't' value of self concept and personality type-

Personality Type	N	M	SD	t
Introvert	27	34.60	6.61	9.74™
Extrovert	73	59.0	12.30	

Significant at .01 level ™

Discussion- The main objective of the study was to find out self concept of engineering students as related with personality type. Analysis of the study showed that high self concept with extrovert personality , According to Azizi et.al.(2005), those who have high self concept usually receive good attention and care from every one who are around them . They have more chance to gain more success.This findings coordinates with study by Mc.Clun,L.A.,& Merrel,K.W.(2008) who studied the relationship between personalities with self concept. Findings further indicated that Introverts had low self concept.

The findings can be applied as a guide for programmers to organize personality growing workshops in colleges and universities; to enhance the high self concept with positive personality to prepare them as the generation of the future technocrates.

References-

1. Gayedene,E.Ghesquiere,P.&Ongheap.(2005)-Journal on personality assessment & self concept.57,110-119
2. Joshi,M.C.-Mannual of Introversion-Extroversion test
3. Mc.Clun,L.A.& Merrel,K.W.(2008)-Theories of personality & self concept and how they affect one's consumption patterns, Columbia University
4. Rastogi & Srivastava,D.N.(1983)- Mannual of Self concept inventory
5. Robinson(1970)-research on personality correlates self concept: A critique.Ind.Educl,Rev:I(I).79-84
6. Yahaya,Azizi(2005)-Relationship between self concept and personality and student's academic performance.University of Technologi,Malayesia.

* Research Scholar ** Prof., Department Of Psychology , Jai Narain Vyas University, Jodhpur (Raj.) INDIA

वैधानिक प्रावधान एवं महिला सशक्तिकरण

सुधा शाक्य *

शोध सारांश – संतुलन, सहनशीलता और सृजन का पर्याय है नारी। भारत में महिलाओं के वैदिक काल में बहुत सम्मान हासिल था, और उस काल में महिलाओं को पुरूष के समान शिक्षा और अधिकार था। धीर-धीरे महिलाओं की स्थिति में गिरावट आई और पुनः महिला सशक्तिकरण हेतु भारत के विभिन्न समाज सुधारक, राजा राम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, आचार्य विनोबा भावे, स्वामी विवेकानंद, सावित्री बाई फुले, महात्मा ज्योतिवा फुले, आदि ने समाज में प्रचलित सती प्रथा, बाल विवाह, महिलाओं की अशिक्षा, पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों को दूर करने हेतु सतत् प्रयास किया था। भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं पर होने वाले अत्याचार और असमानतापूर्ण व्यवहार को रोकने हेतु कई संवैधानिक प्रावधान तथा अधिनियमों को लागू किया। महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा हेतु कई अधिनियम शासन द्वारा बनाए गए जिनमें प्रमुख हैं हिंदु उत्तराधिकारी अधिनियम 1956, विशेष विवाह अधिनियम 1954, प्रसूती प्रसुविधा अधिनियम 1961, ठेका श्रम अधिनियम 1970, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, वैश्यावृति निवारण अधिनियम 1986, स्त्री अभीष्ट निरूपण निषेध अधिनियम 1986 बाल विवाह निषेध अधिनियम 1976, दहेज निषेध अधिनियम सती निषेध आयोग अधिनियम 1987, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990, संविधान के 73 वें व 74 वें संशोधन अधिनियम 1992, प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994, घरेलु हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा हेतु अधिनियम 2005, आदि। वर्तमान व्यवस्था तंत्र में महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शारिरिक एवं मानसिक, शैक्षिक रूप से सशक्त एवं सबल करने हेतु भारत सरकार और शासन द्वारा कई विकास कार्यक्रम व कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जा रहा है, महिलाओं के हित में चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं जैसे-जननी सुरक्षा योजना, सतत् शिक्षा कार्यक्रम, महिला खेलकूद योजना, स्वंय सहायता समूह, बालिक गृह योजना, व्यवसायिक कौशल उन्नयन एवं आय अभिवद्धि प्रशिक्षण शिविर, विधवा पुर्नविवाह उपहार योजना, स्पेशल प्रोग्राम फॉर वूमन डेव्लपमेंट, किशोरी शक्ति योजना, महिला विकास ऋण योजना, नियमित टीकाकरण कार्यक्रम, बालिका संबल योजना, ग्रामीण महिला विकास योजना, स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना आदि।

भारत सरकार द्वारा महिला वर्ष, महिला दिवस, एवं महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित करना तथा योजनाओं का लाभ उन तक पहुंचाना ही पर्याप्त नहीं है। जब तक महिलाऐं स्वंय अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं होगी, साक्षर नहीं होगी, हर क्षेत्र में आगे नहीं आयेगी, तथा अपनी मंजिल स्वंय नहीं तय करेगी, तब तक महिलाओं का सशक्तिकरण संभव नहीं है, इसलिये सरकार के द्वारा विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं का पूर्ण लाभ उठाकर वह अपने जीवन को खुशहाल और सशक्त बना सकती है।

प्रस्तावना – वैदिक काल में नारी को जीवन के सभी क्षेत्रों में बराबरी का दर्जा प्राप्त था, बाद के लगभग 500 ईसा पूर्व स्थिति में गिरावट आनी प्रारंभ हो गई। मध्यकाल में विदेशी आक्रमणों के कारण नारी के सम्मान में भी ह्रास हुआ और भारत में सतीप्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ शुरू हुई अब तक विधवा विवाह स्वीकार्य था पर कट्टरपंथी विचारों के बढतें वर्चस्व ने इस पर भी रोक लगा दी। महिलाओं को कमोवेश दासता और बंदिशों का सामना करने के बाद भी रजिया सुल्तान ने दिल्ली पर शासन किया, गोंड की महारानी दुर्गावती ने 15 वर्ष तक शासन किया, चांदबीबी ने 1590 दशक में अकबर से अहमदनगर की रक्षा की। 19 वीं सदी में सुधार आंदोलन का प्रारंभ हुआ राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले आदि सुधारकों ने महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य किया। 20 वीं सदी में धीरे-धीरि महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया। शिक्षा ग्रहण कर समाज में जागरूकता पैदा की। 1980 के दशक में महिला अधिकारों को गंभीरता से लिया जाने लगा। उन्होंने कैरियर की ओर कदम बढ़ाया और आर्थिक आत्मनिर्भरता को महत्व दिया 1990 के दशक में भूमंडलीकरण का दौर प्रारंभ हुआ महिलाओं के बातचीत से लेकर वेशभूषा तक में आत्मविश्वास देखा गया और 21 वीं सदी में बराबरी से व्यवहार करने की स्थिति बनी, पति अधिक संवेदनशील होने लगे और पत्नी के साथ रिश्तों में सकारात्मक बदलाव देखा गया। महिलाओं की ऐसी स्थिति को ध्यान में रखते हुए सरकार ने उनके उत्थान एवं उन्हें मुख्य धारा से जोड़ने के लिए विभिन्न प्रयास किए।

महिला सशक्तिकरण की भारतीय अवधारणा – भारतीय वेदांत में महिला के 'शक्ति' का पर्याय माना गया है अत: नारी शक्ति स्वरूपा है। शक्ति के अभाव में आदि देव 'शिव' भी 'शव' के समान है शक्ति के समाहित होने पर ही 'शव' 'शिव' बनता है। भारतीय जीवन दर्शन की अवधारण है कि 'नारी परिवार और सामाजिक संरचना की ऊर्जा स्त्रोत है और उसकी शक्ति से ही मनुष्य, परिवार और समाज का सृजन होता है हिंदु धर्म तथा दर्शन में नारी को पुरूष की अर्द्धांगिनी माना गया है। मनुस्मृति के अनुसार भार्या पुरूष का आधा अंग है, उसका सर्वोत्तम मित्र है। भार्या धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल है। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सुधारवादी आंदोलनों ने प्रस्तावित किया कि 'स्त्री का समाज के हाशिये पर रहना हमारे सभी ओर से पिछड़ेपन के कारणों का मुख्य कारण है।' इस मान्यता से ही स्त्रियों में विकास की प्रक्रिया प्रारंभ हुई उनकी सक्रियता बढ़ी तथा समाज और राष्ट्र की मुख्य धारा में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

सशक्तिकरण हेतु महिलाओं के अधिकार – महिलाओं को सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक रूप से समान अवसर प्रदान करने हेतु कुछ कानून बने हैं और इन कानूनों ने भारत में महिलाओं की स्थितियों पर बहुत हद तक असर डाला है। महिलाओं को शासन द्वारा दिए जाने वाले अधिकार इस प्रकार से हैं –

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा महिलाओं को पैतृक संपत्ति में अधिकार दिया गया है।

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अंतर्गत कोई महिला अपना धर्म बदले बिना किसी भी धर्म के व्यक्ति से विवाह कर सकती है।

प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 के अनुसार बच्चे के जन्म के कुछ समय पहले या बाद तक महिलाओं के रोजगार को विनियमित करता है और प्रसूति और अन्य प्रसुविधाएं सुलभ कराना है।

ठेका श्रम अधिनियम, 1970 द्वारा महिला श्रमिकों से बागानों में प्रात: 6 से सायं 7 के बीच 9 घंटे के बाद काम करने पर प्रतिबंध है।

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 के अंतर्गत महिलाओं को भी पुरूषों के समान पारिश्रामिक की व्यवस्था की गई है।

वेश्यावृत्ति निवारण अधिनियम, 1986 के मुताबिक महिलाओं के देह व्यापार पर प्रतिबंध लगाया गया है।

स्त्री अभीष्ट निरूपण निषेध अधिनियम, 1986 द्वारा महिलाओं के अश्लील निरूपण पर प्रतिबंध है।

बाल-विवाह निषेध अधिनियम, 1976 के अनुसार निर्धारित उम्र से कम की बालिकाओं के विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया है।

दहेज निषेध अधिनियम के अंतर्गत विवाह में दहेज के लेन-देन पर प्रतिबंध की व्यवस्था की गई है।

सती निषेध आयोग अधिनियम, 1987 के मुताबिक महिलाओं को पति की मृत्यु के बाद सती होने पर प्रतिबंध लगाया गया है।

संविधान के 73वें व 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 के अंतर्गत महिलाओं को त्रिस्तरीय पंचायती व नगर पालिकाओं में एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था है।

प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम, 1994 के मुताबिक गर्भावस्था में भ्रूण की पहचान करने पर रोक लगाने की व्यवस्था की गई है।

घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा हेतु अधिनियम, 2005 पति या साथ रहने वाले किसी भी पुरूष या उसके संबंधियों की हिंसा या प्रताड़ना से महिला को सुरक्षा प्रदान करता है।

भारत सरकार की ओर से चलाई जा रही महिला सशक्तिकरण हेतु स्त्री-हित की योजनाएं -

जननी सुरक्षा योजना - मातृ मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर में कमी लाने व संस्थागत प्रसव में वृद्धि के लिए यह योजना लागू की गई। इसके अंतर्गत प्रसूताओं को आर्थिक सहायता दी जाती है।

सतत् शिक्षा कार्यक्रम - इस कार्यक्रम के तहत नवसाक्षर के शैक्षिक स्तर में वृद्धि करते हुए उसके जीवन स्तर में सुधार लाकर उसे आत्मनिर्भर बनाया जाता है।

महिला खेलकूद योजना - महिलाओं एवं बालिकाओं को खेलों के प्रति आकर्षित करने के लिए पंचायत स्तर, राज्य स्तर व राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर दिया जाता है।

स्वयं सहायता समूह - गृह उद्योग व उद्यमिता विकास कार्यक्रमों में प्रशिक्षित महिलाओं को स्वयं सहायता समूह गठन के लिए प्रेरित किया जाता है।

बालिका गृह - इसमें उन बालिकाओं को प्रवेश दिया जाता है, जिन्हें शिशु गृह में रहते हुए 5 वर्ष से अधिक समय हो चुका हो।

व्यावसायिक कौशल उन्नयन एवं आय अभिवृद्धि प्रशिक्षण शिविर- नवसाक्षर महिलाओं के आर्थिक उत्थान व उन्हें स्वावलंबी बनाने के लिए योजना शुरू की गई है।

विधवा पुनर्विवाह उपहार योजना- इस योजना के तहत जो विधवा पेंशन पाने की पात्र है यदि वह पुनर्विवाह करती है तो उसे उपहारस्वरूप 15,000 रूपए की राशि देने का प्रावधान है।

विमंदित एवं बालिका गृह - मानसिक रूप से विमंदित महिला शिक्षण, प्रशिक्षण व पुनर्वास के लिए यह योजना प्रारंभ की गई हैं

गृह उद्योग योजना- महिलाओं को घरेलू उद्योगों में नेहरू युवा केन्द्र टी.आई. आदि की ओर से ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिलाने की योजना का उद्देश्य है।

स्पेशल प्रोग्राम फॉर विमेन डेवलपमेंट - विधवा व परित्यक्ता विकास कार्यक्रम में रोजगार के लिए ऋण उपलब्ध करवाया जाना।

महिला विकास ऋण योजना - महिलाओं को अचल संपत्ति के बिना अकृषि कार्य व डेयरी उद्देश्य के लिए ऋण सुविधा दी जा रही है।

नियमित टीकाकरण कार्यक्रम - विभिन्न रोगों से सुरक्षा प्रदान हेतु निवारक टीके लगाए जाते है।

बालिका संबल योजना - योजना का उद्देश्य बालिकाओं को संबल व सुरक्षित भविष्य प्रदान करना है।

ग्रामीण महिला विकास योजना - ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी करना व उन्हें जागरूक करना योजना के उद्देश्य है।

स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना- अधिकारों के लिए संघर्ष, करने वाली महिलाओं को राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता है।

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला सशक्तिकरण की उभरती तस्वीर-

राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं को सशक्त करने हेतु कई अधिकार और योजनाए चलाई जा रही है विद्धानों का मानना है कि किसी संस्कृति को अगर समझना है तो सबसे आसान तरीका है कि उस संस्कृति में स्त्रियों के हालत को समझने की कोशिश करे। कई अध्ययन ये बतलाते है कि महिलाओं की स्थिति में आज कई प्रकार के सुधार आए है -

- गरीब देश जैसे-उगांडा, बुरूंडी और मेक्डोनिया में 30% महिलाए संसद में है।
- भारत में 1982 के बाद स्थानीय स्तर पर राजनीति में प्रतिनिधित्व बढ़ने के बाद महिलाओं ने पुरूष सहयोगियों की तुलना में 60% ज्यादा जल परियोजना शुरू की।
- चीन और वियतनाम जैसे देशों में 70% महिलाएं काम करती है। उनके स्वास्थ में तेजी से सुधार हुआ है। हालांकि इससे उनकी प्रजनन क्षमता घटी है।
- नौकरी करने वाली यानी वर्किंग वूमेन भारत में सबसे अधिक है।
- ब्रिटेन में 1997 के बाद संसद में महिलाओं की हिस्सेदारी 18.2% बढ़ी है, जिससे वहां परिवार से जुड़े मुद्दों जैसे-क्रेडिट, हेल्थ केयर, चाइल्ड केयर और शिक्षा पर सरकार का ज्यादा ध्यान गया है।
- भारत में व्यावसायिक शिक्षा हासिल करने वाली महिलाएं दुनिया के किसी भी मुल्क से ज्यादा है।
- भारत में अमेरिका से ज्यादा महिलाएं डॉक्टर, सर्जन, वैज्ञानिक और प्रोफेसर है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएं पुरूष की तुलना में दो गुना अधिक काम करती है, जहां एक पुरूष प्रतिदिन दस घंटे काम करता है, वहीं एक महिला रोजाना सोलह घंटे काम करती है

- ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में 90.2% कृषि क्षेत्र में कार्यरत है। 75% से 85% कृषि संबंधी कार्यों को वे ही अंजाम देती है।

सुझाव –

- शासन द्वारा चलाई जा रही हितकारी योजनाओं को महिलाओं तक पहुंचाने के लिए महिला अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति होना चाहिए। जिससे अपनी बात आसानी से महिला अधिकारी और कर्मचारियों के समक्ष रख सके।
- हितकारी योजनाओं का व्यापक स्तर पर प्रचार एवं प्रसार संचार के विभिन्न माध्यमों से करवाया जाए जिससे दूरगामी क्षेत्र के रहने वाली महिलाओं तक इन योजनाओं का लाभ पहुंच सके।
- ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में रहने वाली निरक्षर महिलाओं को साक्षर बनाया जाए जिसमें उनके परिवार व अन्य लोगों का विशेष योगदान रहे।
- योजनाओं का क्रियान्वयन ईमानदारी से किया जाए जिससे पूरा लाभ महिलाओं को मिल सके।
- महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु नवीन चिंतन से अन्य कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार कर क्रियान्वित किया जाए।

निष्कर्षत– कहा जा सकता है कि सरकार महिलाओं को हर क्षेत्र में सशक्त करने हेतु प्रयासरत है परन्तु आज स्वयं महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना पडेगा। सशक्त बनकर ही वे देश की सामाजिक, औद्योगिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक संरचना को सुदृढ़ कर सकती है। अपनी गरिमा, प्रतिष्ठा और सुरक्षा, सम्मान हेतु अपने अधिकारों का उपयोग करना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दुबे, आशालता– राष्ट्रीय शोध संगोठी–मानवाधिकार की सार्थकता एवं संरक्षण (शोध संक्षेपिका 16–17 नवम्बर 2007 सागर
2. दैनिक भास्कर– अहा जिन्दगी, मार्च 2012
3. जैन, मुकेश– राष्ट्रीय शोध संगोठी–महिला उद्यमिता: क्षेत्र एवं अवसर (शोध संक्षेपिका) 24–25 फरवरी 2007 जबलपुर
4. शर्मा, श्रीराम– युग निर्माण योजना सितम्बर 2003 मथुरा
5. शर्मा, श्रीराम– नारी हर क्षेत्र में आगे बढ़े, प्रज्ञा लघु पुस्तकमाला 45, मथुरा
6. त्रिपाठी सेवाराम– रचना (द्विमासिक पत्रिका) म.प्र हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल (म.प्र) अंक 104, सितम्बर, अक्टूबर 2013

****

युवा छात्र-छात्राओं में दहेज प्रथा के प्रति अभिवृत्ति

डॉ. ममता बर्मन *

शोध सारांश – विश्वमंच पर भारत की प्रगति खुशहाली और अभूतपूर्व क्षमता का दिग्दर्शन कराने में युवा शक्ति की भूमिका सराहनीय हैं। प्रत्येक युवा एक संम्भाव्य शक्ति है। उसमें नेतृत्व और प्रबंध की क्षमता का अपार भण्डार हैं। समाज में व्याप्त ज्वलंत समस्याओं के समाधान के लिए युवा पीढ़ी को ही आगे आना होगा। विवाह के समय, विवाह के पूर्व या पश्चात् दहेज की मांग करना दण्डनीय अपराध हैं। सामाजिक कुप्रथाओं का विरोध करके युवापीढ़ी जब जनचेतना लाएगी तभी सभी का कल्याण हैं। भारतीय संविधान में अधिकार महिलाओं को पुरूषों के समान दिए हैं। युवा छात्र-छात्राओं में दहेज प्रथा के प्रति अभिवृत्ति का प्रस्तुत शोध में अध्ययन किया गया। शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय नरसिंहपुर (म.प्र.) में अध्ययनरत् 30 युवा छात्र-छात्राओं का प्रतिदर्श का चयन कर डॉ. आर.आर. शर्मा द्वारा निर्मित दहेज अभिवृत्ति मापनी का प्रशासन किया गया। टी-मान की गणना की गई। परिणाम स्वरूप युवा छात्र एवं छात्राओं में दहेज प्रथा के प्रति उच्च मात्रा में नकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई।

प्रस्तावना – आज हमारे देश की बहुसंख्य आबादी युवा है। आने वाले 25 वर्षो में भारत की 70 प्रतिशत आबादी युवा होगी। युवा स्वास्थ्य और ऊर्जा से भरपूर होते हैं। उत्तम शिक्षा एवं योग्यता के आधार पर युवा आबादी को एक बढ़ी उत्पादक शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता हैं।

इक्कसवीं सदी में भारतीय सामाजिक परिवेश आज की अठारहवीं सदी की मानसिकता के साथ महिला हिंसा द्वारा प्रगति में बाधक का कार्य कर रहा है। दहेज मौते स्त्रियों के हिंसात्मक दुर्व्यवहार का ज्वलन्त उदाहरण है। बहुओं को दहेज न लाने पर शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना दी जाती है।

दहेज लेना और देना दंडनीय अपराध है। दहेज कुप्रथा ने सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया है। दहेज निषेध अधिनियम 1961 में लगाया गया। समाज में व्याप्त समस्याओं का निवारण करने के लिए पहले हमें प्रयास करना होगा तभी कानून और शासन का प्रयास सार्थक होगा।

युवा छात्र-छात्राओं में दहेज प्रथा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य हैं। निम्नलिखित परिकल्पना निर्मित की गई-

युवा छात्र-छात्राओं में दहेज के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं होता।

विधि – चयनित युवा छात्र-छात्रा प्रतिदर्श समूह को अध्ययन का उद्देश्य समझाने के पश्चात् डॉ. आर.आर. शर्मा द्वारा निर्मित दहेज अभिवृत्ति मापनी का प्रशासन किया गया।

तालिका – 1

समूह	N= संख्या	M= मध्यमान	टी-मान
व्यस्क छात्र	15	199.6	0.98
व्यस्क छात्रा	15	207.6	

स्वतंत्रता के अंश – 28

0.05 स्तर पर – 2.05

0-01 स्तर पर – 2.76

परिणाम एवं विवचेना – उपकल्पना के सत्यापन के लिए मध्यमान और टी-मान द्वारा प्राप्तांको की गणना की गई। परिणाम तालिका से स्पष्ट है कि प्राप्त टी-मान 0.98 सार्थकता के 0.05 स्तर पर प्राप्त न्यूनतम मान 2.05 से कम हैं। निष्कर्ष स्वरूप कह सकते है कि युवा छात्र एवं छात्राओं में दहेज के प्रति अभिवृत्ति में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया फलत: निर्मित परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है। प्राप्त परिणाम से स्पष्ट है कि युवा छात्र-छात्राओं की दहेज के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं है। अर्थात् इनमें लिंग-भिन्नता नहीं है। युवाओं में दहेज प्रथा के प्रति उच्च मात्रा में नकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई।

वर्तमान में 21 वीं सदी शताब्दी के तकनीकी युग में आधुनिकीकरण, शहरीकरण एवं औद्योगिकरण की प्रक्रिया ने युवाओं के मूल्यों एवं संस्कारों के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की है और युवा शक्ति ने भी अपने आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारों के साथ अपनी भूमिका एवं सक्षमता से समाज में अपनी सक्रियता को स्पष्ट किया हैं। अपनी जागरूकता, कुशलता की प्रमाणिकता से युवाशक्ति बदलाव के प्रतीक के रूप में देखी जा रही है।

महिलाओं के प्रति होने वाले भेदभाव को मिटाने के लिए सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। यह शुरूआत शिक्षा, जनचेतना से ही संभव हैं। पाश्चात्य संस्कृति के सामान्य दबाव के कारण युवाओं में नवीन चेतना का संचार हुआ है। फलत: अनेक कुसंस्कारों तथा अंधविश्वासों से छुटकारा सरल हो गया। शिक्षा, संचार के साधनों में उन्नति, औद्योगीकरण से आर्थिक आत्मनिर्भरता, वैधानिक सुविधाए, अन्तर्जातीय विवाह, सह शिक्षा, आदि ऐसे कारण है जिनके द्वारा नारी समस्याओं के प्रति स्वस्थ जनमत निर्माण करने एवं वर-मूल्य-प्रथा की कटुता घटाने हेतु युवाओं में एक नई चेतना, जागृति और आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ दहेज न देना और दहेज न लेना के संबंध में जागरूकता आई हैं। यह स्वस्थ परम्परा प्रगतिशील समाज के लिए नितांत आवश्यक हैं।

निष्कर्ष – वर्तमान में भारत में युवाओं की छवि दिगभ्रमित युवा की न होकर आत्मविश्वास से भरी महत्वाकांक्षी, सकारात्मक, आत्मनिर्भर स्वतंत्रविचारों वाली, सक्रिय एवं जागरूक स्वअनुशासित सफल युवा शक्ति की होगी। बहुआयामी युवाशक्ति के सदुपयोग से ही समाज अपनी अपनी प्रतिष्ठा गौरव-गरिमा को बनाए रख सकता है।

निष्कर्षत– कह सकते है कि युवा वर्ग में दहेज प्रथा के प्रति उच्च नकारात्मक अभिवृत्ति प्राप्त हुई।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आहुजा, डॉ. राम (2007) – सामाजिक समस्याएँ रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
2. भटनागर सुरश – आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याऐं सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

भारतीय प्रागैतिहासिक शैल चित्रों में मानवाकृतियों का महत्व

डॉ. यतीन्द्र महोबे *

प्रस्तावना – आदिम मानव का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, और कुछ विद्धानों के अनुसार प्रथम मानव 18 लाख वर्ष पूर्व हुआ था। यदि हम कला के इतिहास की ओर नजर डालें तो चित्रकला के क्षेत्र में सबसे पहले 'मानवाकृतियों' की शुरूआत होती है। और यह मानव आकृतियाँ शैल चित्रों के माध्यम से ही प्रकाश में आई।

भारत में चित्रकला का जन्म कब और कैसे हुआ ? यह एक अत्यंत विवादास्पद प्रश्न है, किन्तु प्रागैतिहासिक मानव ने किस प्रकार अपनी संस्कृति, सभ्यता और अपने भाव एवं विचारों का विकास किया, सौभाग्यवश इसके बहुत से तथ्य आज प्रकाश में आ चुके हैं। मध्यप्रदेश में भी ऐसे अनेक क्षेत्र प्रकाश में आ चुके हैं जहाँ प्रागैतिहासिक चित्रों के दर्शन होते हैं ये दुलर्भ कलाकृतियाँ गुफाओं में चित्रित हैं और मध्यप्रदेश के आदमगढ़, रायगढ़,सिंहनपुर, होशंगाबाद और मिर्जापुर के लिखुनिया, कोहर आदि स्थान प्रमुख हैं, जहाँ पहुँचकर इन कलाकृतियों का आनंद उठाया जा सकता है। 'विद्धानों ने इसे 3000 ई. पूर्व के समय का निर्धारित किया। सन् 1880 ई. में पंख–पोशाकयुक्त अनेक चित्र खुदी चट्टानों पर मिले हैं, जो कि प्रागैतिहासिक महत्व की सिद्ध हो चुके हैं। इसके बाद मध्यप्रदेश के सिंहनपुर तथा सरगुजा रियासत के जोगीमारा आदि स्थानों से अनेक चट्टाने उपलब्ध हुई। इन चट्टानों में लाल–पीले रंग से अंकित पशु–पक्षियों के साथ मानव आकृतियाँ एवं असुर आकृतियाँ प्राप्त हुई है।'

भारत में प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज का सर्वप्रथम श्रेय एल्विन कार्यायल तथा जान काकबर्न को जाता है, जिन्होंने सन् 1861–62 के आस–पास भारतीय शिला चित्रों की खोज का कार्य प्रारम्भ किया।

आज चित्रकला आत्म अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम समझी जाती है। लेकिन पाषाण युग में भी मनुष्य आत्म–अभिव्यक्ति हेतु चित्रण करता था। आदिम मानव अपनी आत्म अभिव्यक्ति के लिए स्वयं को पत्थरों की दीवारों पर अंकित किया है। उनका उद्देश्य उस समय कला का विकास करना या फिर उसमें किसी प्रकार का सौंदर्य दिखाना नहीं था अपितु उनका उद्देश्य जंगली जानवरों के साथ स्वयं को दिखाकर यह बताना था कि किस तरह उस दिन के घटनाक्रम में जानवर का शिकार योजनानुसार उसके द्धारा किया गया। ''पाषाण युग के खंडहरों में चित्र आत्म–अभिव्यक्ति का कार्य करते हुए तो आज भी प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके चित्रों में कोई दर्शन नहीं छिपा था।'' चित्रकला की उत्पत्ति का समय प्रागैतिहासिक काल को कह सकते हैं।एक बार प्रकट होकर चित्रकला ने फिर कभी मानव आकृतियों का साथ नहीं छोड़ा और चित्रकला में मानवाकृतियों का अंकन शुरू हुआ और उसमें धीरे–धीरे सुधार होना प्रारम्भ हो गया।

नव पाषाण युग में वह भयानक जीव–जंतु मित्र के रूप में चित्रित हैं। इन चित्रों में आदिमानव ने मानवाकृतियों के साथ पशुओं को चराते हुए, उनका दूध दुहते हुए, घुड़सवारी करते व कृषि कार्य करते चित्रित किया है। स्त्री, पुरूष, बच्चे सभी मानवाकृतियों को तीर–कमान, भाला, लाठी, त्रिशुल, कुल्हाड़ी आदि शस्त्रों के साथ दिखाया गया है। इस शैल चित्र में मानवाकृतियों को आमोद–प्रमोद के साथ भी चित्रित किया है, जो उनके रसिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। 'भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रकला का विकास पश्चिमी देशों की चित्रकला विकास से पृथक रहा है। यूरोप के देशों में प्रारंभिक चित्रांकन में केवल पशुओं का चित्रण मिलता है, जबकि भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रण में पशुओं के साथ–साथ मानव आकृतियाँ भी चित्रित हैं। पश्चिम देशों के शैल चित्रों में पशुओं के सामने मानव को एक निरीह प्राणी की तरह प्रदर्शित किया गया है। जबकि भारत में ऐसी निरीहता का चित्रण नहीं देखा गया। मध्यप्रदेश के सभी शैलाश्रयों में मानव आकृतियाँ प्रारम्भ से ही चित्रित मिलती है। प्रागैतिहासिक काल में मानव की उदर पूर्ति का प्रमुख साधन आखेट ही रहा है। इसी कारण समस्त क्षेत्रों के शैलाश्रयों में मानव आकृतियों को आखेट दृश्य में बहुलता से अंकित किया गया है, यहाँ के शैल चित्रों में मुखौटा युक्त मानव आकृतियाँ मध्य भारत में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में उपलब्ध हैं। मुखौटे का उपयोग नृत्य के संदर्भ में अथवा किन्हीं देवी–देवताओं को प्रसन्न करने तथा आखेट के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाना प्रतीत होता है। शैलाश्रयों में हिरण, बंदर, भालू, बायसन, मगर आदि मुखौटायुक्त मानव आकृतियाँ चित्रित हैं।

इस प्रकार आदिमानव ने चित्रों में मानवाकृतियों को सरलतम रूपों और ज्यामितिय आकारों में संजोया है। यह आश्चर्य की बात है कि मनुष्य एवं पशु जैसे कठिन रूपों का सरलीकरण करने में आदिमानव पूर्ण रूप से सक्षम हुआ, लेकिन इन चित्रों में कहीं भी प्रकृति के दर्शन (बादल, आकाश, पेड़, पौधे, नदी, पर्वत) नहीं होते। कुल मिलाकर आदि मानव ने अपने युग में मानवाकृतियों के माध्यम से मनुष्य के संपूर्ण इतिहास की रचना की है।

उद्देश्य और विकास – आदिकाल में 'कला' जैसे शब्द की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी, जिसे हम प्रागैतिहासिक काल के नाम से जानते हैं। मानवाकृतियों को बनाना आदिम मानव ने शुरू किया। जिसका उद्देश्य अपने दिनचर्या में घटित होने वाले घटनाक्रम को दिखाना तथा जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करना था। ये चित्र कंदराओं और गुफाओं में बनाये जाते थे, जो इनका निवास स्थल हुआ करता था। कलाकार इन चित्रों द्धारा शैलाश्रयों पर एक ही सरल रेखा के माध्यम से बीते दिनचर्या का वृतांत व्यक्त कर देते थे। इन चित्रों को अंकित कर आदिम मानव यह दिखाना चाहते थे कि हमने जंगली पशु को अपने वश में कर लिया है या उन पर जीत हासिल कर ली है। गुफाओं में आदिम मनुष्य द्धारा की गई चित्र–रचना उनके एकांत को तोड़ने वाला कलात्मक अनुभव है।

''उसने अपने परिवेश को एक क्रमबद्ध सीरीज में उस समय चित्रित किया है, जब वह अपने हिलने–मिलने वाली क्रियात्मकता में अपने होने की सतत् अनुभूति में डूबने लगा। प्रारम्भ में वह अपने को ही चित्रित करता रहा। मानवाकृतियाँ ही अपनी सहज प्रतीकात्मकता में उभर कर इस दौर में प्रत्यक्ष होती है। मानवाकृतियों का रेखांकन बिंदुओं और रेखाओं के माध्यम से सीधी, लहरियादार, समकोणीय तथा विषमकोणीय ज्यामितियों से हुआ है। इन्हीं आधारों पर गुफा–चित्रण में आदिम मनुष्य के विकास की कथा को स्पष्टत: देखा जा सकता है।''

आदिम मानव द्धारा खींची सीधी रेखा भी आड़ी–तिरछी रेखा की तरह दिखाई पड़ती थी, जब वह सीधी रेखा खींचने में अभ्यस्त हो गया, उसके पश्चात् उसने अपनी रचना प्रक्रिया में कोणों एवं वृतों को स्थान दिया, और इसी तरह उसने मानव आकृतियों के अंकन में सीधी रेखा, कोणों एवं वृतों का प्रयोग किया। आदिम

* सहायक प्राध्यापक (चित्रकला विभाग) शासकीय कन्या महाविद्यालय ,नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

मानव द्वारा बनाई गई मानवाकृतियों में यथार्थता की झलक नहीं दिखाई पड़ती, क्योंकि वह अपनी मानसिक क्षमता के आधार पर ही अभ्यस्त था, और एक सरल रेखा के माध्यम से ही अपनी भावनाओं को सांकेतिकता के आधार पर प्रदर्शित करता था। यदि इन मानवाकृतियों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाये तो पायेंगे कि एक रेखा के माध्यम से शरीर के मध्यभाग की रचना में रीढ़ का प्रतीक तथा इस खड़ी रेखा के नीचे छोर से निकलती हुई दो रेखायें दोनों पैरों का संकेत करते दिखाई पड़ती हैं। इन दो रेखाओं के अंतिम बिंदु पर कोण बनाती छोटी रेखा पंजों को प्रदर्शित करती है। रीढ़ को प्रतीक करती हुई रेखा के ऊपरी भाग से, दाँये एवं बाँये दोनों छोरों से निकलती रेखा दोनों हाथों को चित्रित करती है। कहीं-कहीं कुहनी के भाग से मुड़ी हुई रेखा भी दिखाई पड़ती है, और उसी रीढ़ को प्रतीक करती हुई मुख्य रेखा के ऊपरी बिंदु को छूती हुई एक गोले सी बनी आकृति सिर की संरचना को प्रदर्शित करती है, और आँख, नाक, कान आदि को दिखाने के लिए यथा स्थान बिंदु को आधार बनाया गया है। इस तरह इन सरल रेखाओं के माध्यम से आदिम युगीन मानवाकृतियों का निर्माण होता है।

आदिम कलाकारों द्वारा बनायी गयीं ये मानवाकृतियाँ विकसित होती गई और उन मानव आकृतियों में गति और भावों का समावेश दृष्टिगोचर होने लगा। धीरे-धीरे मानव का मानसिक विकास बढ़ता गया और मानवाकृतियाँ रेखा से होती हुई त्रिकोण, चतुष्कोण में परिवर्तित होने लगी। इस तरह आदिम मनुष्य ने अपनी कलाकृतियों में मानव के शारीरिक उभार को दिखाने के लिए त्रिकोण एवं चतुष्कोणों का प्रयोग करने लगा। घुटनों, पंजों, कुहनियों आदि के मोड़ को भिन्न-भिन्न प्रकार के कोणों के माध्यम से दर्शाया जाने लगा।

आदि मानव ने शिलाचित्रों में मानवाकृतियों को जो रूप प्रदान किया वह मानव कंकाल की भाँति प्रतीत होती थीं। उसने मानवाकृतियों के स्वरूप में हथेलियाँ एवं पंजों को एक छोटी लकीर के माध्यम से दिखाया है, लेकिन मानवाकृतियों में एक वृतनुमा सिर भी बनाया है, परन्तु उसमें कान, नाक, आँख, मुँह आदि को दिखाने में पीछे रहा। मानवाकृतियों की भाँति उसने उसके संपर्क में आने वाले पशुओं की आकृति भी बनाई है, क्योंकि पशुओं और आदि मनुष्य का सीधा संबंध था। वह उनका शिकार कर उसे अपना भोजन बनाता था, और खाली समय में अपने साथ उस दिन के घटनाक्रम को पत्थरों की दिवारों पर अंकित करता था। धीरे-धीरे उनका मानसिक विकास होना शुरू हुआ और साथ ही साथ चित्रकला में आकृति विधान का पूर्ण ज्ञान आदिम मनुष्य को होने लगा।

समय के साथ-साथ आदिम मनुष्य के मन में 'भय' जैसी अवधारणा पनपने लगी। जंगली-जानवरों का डर, कुछ अदृश्य शक्तियों का भय उसे सताने लगा, वह जादू-टोना तथा विभिन्न कर्मकाण्डों में विश्वास करने लगा। इससे बचाव के लिये उसने गुफाओं में ऐसी आकृतियों का निर्माण किया जिसके प्रति उसमें गहरी आस्था जागृत हुई। ये आकृतियाँ उस आदिम मनुष्य के लिए पूज्यनीय थी, जिसे बाद में देवी, देवताओं की संज्ञा दी जाने लगी। आदिम मनुष्य द्वारा मिश्रित शरीर की भी रचना की जाने लगी, जैसे मत्स्यरानी, नरसिंह, मनुष्यमुखी गाय आदि। ये एक नये तरह के विश्वास की कल्पना कथा थी, और यहीं से धार्मिक विश्वास ने जन्म लेना शुरू किया।किसी जानवर का शिकार करने के लिए योजना तैयार कर सामूहिक रूप से शिकार करना उसमें सामुदायिकता को दर्शाता है। समुदाय में रहकर दुख-सुख बांटना आदिम मनुष्य ने सीख लिया था। अपने खुशी के पल को नृत्य द्वारा जाहिर करना एवं दिवारों पर आखेट चित्रों के साथ-साथ, नृत्य चित्रों को भी आदिम कलाकारों ने दिखाना शुरू कर दिया। अपने चित्रों में नृत्य समूहों को दिखाना, निश्चित रूप से उसके बौद्धिक विकास को परिलक्षित करता है। शिकार करने के पश्चात् सामुदायिक नृत्य के रूप में खुशी जाहिर करना एवं उस खुशी को स्थाई रूप प्रदान करने के लिए गुफाओं में आदिमानव द्वारा नृत्य का चित्रांकन भी किया गया है जो निश्चित रुप से एक सशक्त अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करता है। गुफाओं में अधिकांशत: मानव आकृतियों का अंकन अधिक हुआ है। इस तरह शायद आदिमानव इस समस्त जीवित सत्ता में अपने होने की तलाश करता रहा हो।

मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में अंकित आदिकालीन मानवाकृतियों का अध्ययन करने पर पता लगता है कि ये निरंतर विकास की ओर अग्रसर थी अर्थात भारतीय चित्रकला के विकास का आधार स्तम्भ थी।

शिलाश्रय में नारी आकृतियाँ – अब तक प्राप्त प्रागैतिहासिक शिलाचित्रों में नारी आकृति के अनेक रूप प्रदर्शित है। इन आकृतियों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानों यह एक ही काल में निर्मित नहीं हुई है। इसमें शैलीगत विविधता दिखाई देती है।

इन शिलाचित्रों में अंकित नारी आकृतियाँ अधिकांशत: मानव समूह के साथ प्रदर्शित है, लेकिन इन नारी आकृतियों के रूप-विन्यास में सतत् विकास क्रम निर्मित होता है। तात्कालिक कलाकारों ने मानव आकृतियों की अपेक्षा पशुओं के अंकन में यथार्थता का आभास कराया है। वहीं मानव देह का अंकन हास्यापद एवं बचकाना प्रतीत होता है, अधिकांशत: मानव आकृतियाँ आयताकार देह वाली अंकित हैं। ये आयताकार देह वाली मानव आकृतियाँ आरम्भिक अवस्था की हैं। इन आरम्भिक नारी आकृतियों में लिंग-भेद स्पष्ट नहीं है। पुरूष एवं नारी के रूप को पहचानना अत्यंत कठिन है।

''शिलाचित्रों में नारी की स्थिति का बोध उनकी गतिविधि अथवा वेश-भूषा के द्वारा ही अनुमानित किया जा सकता है। किन्तु लाखाजोर, कठोतिया, जावरा, खरवई के शिलाचित्रों में कतिपय आयताकार आकृतियों की देह में दो छोटे-छोटे त्रिकोणों के आरोपण द्वारा उरोजों का प्रदर्शन हुआ है।''

इन आदिम शिलाचित्रों में विभिन्न स्थानों पर उत्साहवर्धन करती हुई नृत्य समूहों में मानव आकृतियाँ अंकित मिलती है, लेकिन नर-नारी गत भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती। भीमबेठका, लाखाजोर आदि गुफाओं में मानव आकृतियाँ, अंग्रेजी के अक्षर 'ड' रूप में प्रदर्शित है। यद्यपि संभवत: इन समूह नृत्यों में पुरूष एवं नारी दोनों के होने की संभावना व्यक्त की जा सकती है।

''विभिन्न केन्द्रों के कलाकारों ने अपनी अभिरूचि एवं कुशलता के अनुरूप नारी देह को यथार्थवत बनाने का प्रयास किया है। यद्यपि उनमें स्थानीय वैभिन्नय दृष्टिगोचर होता है, तथापि विस्तृत रूप में उन्हें यथार्थवत् नारी रूप ही कहा जायेगा। इस क्रम में नारी को प्राय: वार्तालाप, पशुपालन, मधुसंचय एवं अन्य गृह कार्यों में व्यस्त दिखाया गया है। वे संगीत एवं नृत्य में भी रूचि रखती जान पड़ती हैं। जैसे - पचमढ़ी के एक चित्र में बंदर (अथवा पशु की खाल ओढ़े मनुष्य) को बीन सदृश्य वाद्य बजाते हुए दिखाया गया है, जबकि शैय्या पर लेटी हुई नारी ताली बजाती हुई अंकित है। इसी प्रकार महादेव पर्वत के एक शिलाश्रय में एक स्थल पर बंदरों के साथ नाचती हुई नारी प्रदर्शित है। अन्यतत्र श्यामला हिल के एक चित्र में नारी एक विशाल पक्षी के सम्मुख नृत्य करती हुई चित्रित है। इस क्रम में नारी-आकृतियों की वेशभूषा एवं केश सज्जा में भी पर्याप्त वैभिन्नय दिखाई देता हैं इस क्रम के कलाकारों ने नारी देह को प्रस्तुत करने के लिए प्राय: उरोज एवं स्थूल नितंब के प्रतीकों का अवलंबन किया है। इतिहासयुगीन भारतीय कलागत नारी रूपों के सदृश्य उरोजों का अतिश्योक्तिपूर्ण रूप में अंकन शिलाचित्रों में दिखाई देता है।''

आदिकाल की मानवाकृतियों में कला सौंदर्य –आदिमानव द्वारा चित्रित मानवाकृतियों में भले ही बाह्य सौंदर्य की कमी दिखाई देती है, लेकिन आंतरिक सौंदर्य इन मानवाकृतियों में निश्चित रूप से विद्यमान हैं, सहजता, सरलता एवं प्रस्तुतीकरण का जो सौंदर्य -भाव परिलक्षित होता है, ऐसा सौंदर्य-भाव आज के कलाकारों के प्रदर्शन में नहीं झलकता।

विंध्य पहाड़ों से उपलब्ध मानव अस्थियाँ, मध्यप्रदेश के सिंघनपुर तथा सरगुजा रियासत में अवस्थित जोगीमारा से प्राप्त चित्र- खुदी चट्टानें आदि मानव की कलाप्रियता की व्यापक रूप से पुष्टि करते हैं। इसी प्रकार तमिलनाडू, आंध्रप्रदेश, छोटा नागपुर, उड़ीसा, होशंगाबाद, पंजाब, उत्तरप्रदेश और नर्मदा

उपत्यका आदि विभिन्न स्थानों से उपलब्ध वस्त्रों, पाषाण चित्रों, मृत्तिका पात्रों, लाल-पीले रंगों चित्रित रंगते हुए कीड़ों, पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों आदि की आकृतियों का अध्ययन करके प्रागैतिहासिक भारत के कलाप्रेम का सहज ही में परिचय मिल जाता है। इस प्रागैतिहासिक अवशेषों की गवेषणा करके पुरातत्व विद्धानों का अभिमत है कि आज की ही भाँति आदि मानव भी सौंदर्योपासक था। इसी सौंदर्य प्रेम के कारण ही वह अपने अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने की ओर प्रवृत्त हुआ।

इस समय के कलाकारों का ध्यान मानवाकृतियों में गतिभाव को दिखाने में अधिक था न कि सौंदर्य प्रदर्शन में। आदिकाल के आरंभिक चित्रों में सुगढ़ता एवं सुस्पष्टता का अभाव दिखाई पड़ता है, लेकिन जैसे-जैसे मानव का बौद्धिक विकास होता चला गया, वैसें-वैसे मानव आकृतियों में लय एवं गति की झलक दिखाई पड़ने लगी। आज सौंदर्यात्मक दृष्टि से ये मानवाकृतियाँ इतनी सरल एवं सहज बन पड़ी है कि आज के आधुनिक कलाकार ने इससे प्रेरणा पाकर अपनी कला को नई राह प्रदान की है। ये आकृतियाँ सौंदर्यात्मक दृष्टि से उच्च कोटि की है। एक पैनी नजर डालें तो हम देखते हैं कि साँची के समीपवर्ती नागोरी पहाड़ी के एक चित्रित शैलाश्रय में बनी मानवाकृतियाँ तथा दूसरे शैलाश्रय में बने राजदरबार के दृश्य में अजंता के समतुल्य कला की झलक मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वाचस्पति गैरोला- भारतीय चित्रकला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, वर्ष 1990
2. प्रो0 रामचंद्र शुक्ल- आधुनिक चित्रकला, कला प्रकाशन, 17 नया बैरहना, इलाहाबाद - 1997
3. डॉ0 अजीत रायजादा-होशंगाबाद के शैलचित्र, आर0के0पब्लिशर्स, न्यू अशोक नगर, दिल्ली, 1997
4. डॉ0 श्यामसुंदर दुबे- लोक चित्रकला, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, 337, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 2005
5. डॉ0 कमलेश दत्त पांडे-भारतीय चित्रकला में नारीरूप-विन्यास, ए0के0बुक कार्पोरेशन, नई दिल्ली, 2004

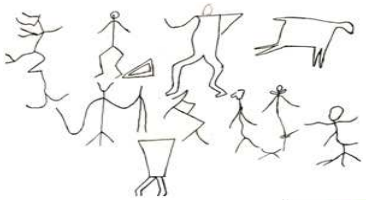

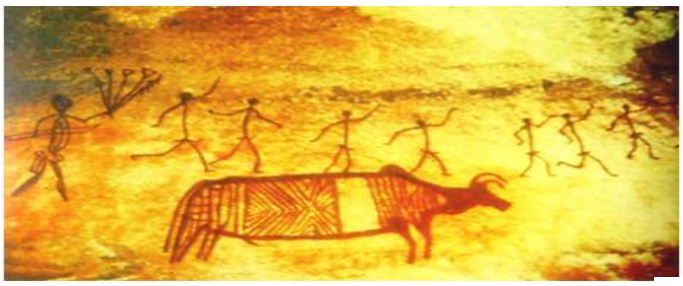

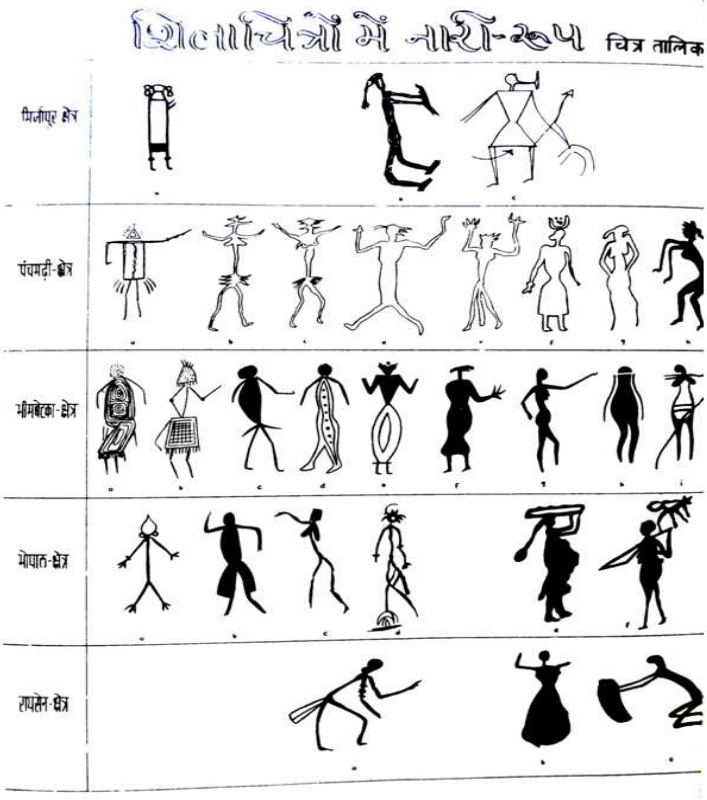

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में चित्रकला के सन्दर्भ

डॉ. नीता तोमर *

शोध सारांश – महाकवि कालिदास की नाट्य रचनाओं में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' सर्वश्रेष्ठ है, जिसे विश्व की सर्वोत्तम नाट्य-कृतियों मे प्रतिष्ठा प्राप्त है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' महाकवि कालिदास की सर्वांग सुन्दर रचना है, जिसमें चित्रकला विषयक अनेक सन्दर्भ उपलब्ध हैं।

प्रस्तावना – 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के आरम्भ में ही महाकवि कालिदास ने जो मंगलाचरण प्रस्तुत किया है, उसमें चित्र के सदृष्य दृष्यात्मकता का दिग्दर्शन कराया गया है, जहाँ अष्टमूर्ति शिव का स्वरूप जैसे साकार हो गया है। महाकवि कालिदास का यह प्रसिद्ध मंगलाचरण निम्नानुसार है–

या सृष्टि: स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्त: श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिन: प्राणवन्त:
प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश: ॥ 1

उक्त मंगलाचरण में महाकवि कालिदास ने कहा है कि शिवजी हमें उस जल के रूप में प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, जिसे ब्रह्मा ने सबसे पहले बनाया। वे उस अग्नि के रूप में दिखाई देते हैं, जो विधि के साथ दी हुई, हवन सामग्री ग्रहण करती है। वे उस होता के रूप में दिखाई देते हैं, जो यज्ञ करता है। महाकवि कालिदास के अनुसार शिवजी चन्द्रमा और सूर्य के रूप में दिखाई देते हैं, जो दिन और रात का निर्धारण करते हैं। वे आकाश के रूप में दिखाई देते हैं, जिसका गुण शब्द है और जो सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। सब बीजों को उत्पन्न करने वाली पृथ्वी के रूप में शिवजी दिखाई देते हैं और जिसके कारण सब प्राणी जीवित रहते हैं उस वायु के रूप में भी वे दिखाई देते हैं। महाकवि कालिदास ने अपने मंगलाचरण में यह कामना की है कि जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु के आठ प्रत्यक्ष रूपों में जो भगवान शिव सबको दिखाई देते हैं, वे सब लोगों का कल्याण करें। महाकवि कालिदास ने अपने इस प्रसिद्ध मंगलाचरण में लोक कल्याण की भावना के साथ अदृष्य शिवतत्व के दृष्यात्मक स्वरूप की ओर जो इंगित किया है, वह चित्रात्मकता के प्रति उनके मन के सहज आकर्षण को ही प्रस्तुत करता है।

प्रस्तावना – चित्रात्मकता के प्रति महाकवि कालिदास का यह सहज आकर्षण 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में अनेक स्थानों पर व्यक्त हुआ है। नाटक की कथा का आरम्भ प्रथम दृष्टि में ही दुष्यन्त और शकुन्तला के एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक आकर्षण से होता है और इस प्रसंग में ही महाकवि कालिदास ने चित्रात्मकता का संकेत प्रस्तुत किया है। नाटक के दूसरे अंक में जब राजा दुष्यन्त विदूषक को शकुन्तला के सौन्दर्य के बारे में बतलाता है तब कहता है कि मित्र शकुन्तला के सौन्दर्य के विषय में और क्या कहूँ। तुम तो बस यही समझ लो कि ब्रह्मा ने जब शकुन्तला को बनाया होगा, तब पहले उसका चित्र बनाया होगा और फिर उसमें प्राणों का संचार किया होगा अथवा ब्रह्मा ने संसार की समस्त सुन्दरियों के रूप को एकत्रित किया होगा और फिर उसमें प्राणों का संचार करके शकुन्तला को बनाया होगा क्योंकि ब्रह्मा की कुशलता और शकुन्तला के सौन्दर्य पर बार-बार विचार करने पर यही लगता है कि यह अनुठी सुन्दरी ही उन्होंनें बनायी है। शकुन्तला के सौन्दर्य संबंधी ष्लोक निम्नानुसार है –

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्या: ॥ 2

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के सर्वोतम समझे जाने वाले चतुर्थ अंक में भी चित्रकला के विभिन्न सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं। कहीं तो महाकवि कालिदास ने पात्रों को भी चित्रोपम् बताया है। कहीं चित्रकला का सन्दर्भ दिया है और कहीं काव्यात्मक वर्णन ही ऐसा प्रस्तुत किया है कि आँखों के समक्ष चित्र साकार हो जाये। चतुर्थ अंक में दुष्यन्त के विरह में निमग्न शकुन्तला को देखकर प्रियंवदा कहती है कि बायें हाथ पर गाल रखे हुए प्यारी सखी कैसी चित्र लिखी-सी दिखाई दे रही हैं –

वामहस्तोपहितवदनाऽऽलिखितेव प्रियसखी। 3

पति-गृह के लिये जाने वाली शकुन्तला को जब अनसूया और प्रियंवदा श्रृंगार करने लगती है, तब आभूषण और श्रृंगार सामग्री तो लता-वृक्षों के फूल पत्तों से बना ली जाती है परन्तु आश्रमवासी कन्याओं ने कभी आभूषण तो धारण किये ही नहीं थे अत: वे शकुन्तला को कैसे आभूषण पहनातीं ! यहाँ चित्र में देखा अनुभव ही, सखियों का सम्बल बनता है और दोनों सखियां शकुन्तला से कहती हैं कि सखी ! हमने तो कभी आभूषण पहने नहीं हैं पर चित्रों में जैसा देखा और जाना है, उसी के अनुसार तुम्हें आभूषण से सजा देते हैं –

अए अणुवज्जुत्तभूसणो अअं जणो। चित्तकम्मपरिअएण अङ्गेसु दे आहरणविरिणओअं करेम्ह। 4

शब्द-चित्रों की प्रस्तुति में तो महाकवि कालिदास की प्रतिभा अद्धितीय है। किसी मार्मिक प्रसंग का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास बड़ी कुशलता से भावाकुल चित्र उपस्थित कर देते हैं, जैसे कि शकुन्तला की बिदाई के समय प्रियंवदा कहती है कि तुम्हारे जाने से केवल तुमही दुखी नहीं हो अपितु समूचा तपोवन भी उदास दिखाई पड़ रहा है। तपोवन की उदासी का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि कालिदास कहते हैं कि हिरणियाँ चबाई हुई कुष के कोर उगल रही हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताओं से पीले-पीले पत्तो ऐसे गिर रहे हैं जैसे उनके आँसू गिर रहे हों –

* गेस्ट फेकल्टी (चित्रकला विभाग) शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

उग्गलिअदब्भकवला मिआ परिच्चत्तणच्चणा मोरा ।
ओसरिअपण्डुपत्ता मुअन्ति अस्सू विअ लदाओ । 5

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के छठे अंक में शकुन्तला के विरह से व्याकुल दुष्यन्त द्वारा अपनी प्रिया का चित्र बनाया जाता है। इस प्रसंग में महाकवि कालिदास ने चित्रात्मकता का अनुपम सन्दर्भ प्रस्तुत किया है। दुष्यन्त का बनाया हुआ चित्र देखकर विदूषक प्रशंसा करते हुए कहता है कि इसके अंग-अंग आपने ऐसे सुन्दर बना दिये हैं कि इसके मन के भाव तक ठीक-ठीक उतर आए हैं। मेरी आँखें तो इस चित्र में बने हुए ऊँचे-नीचे स्थलों में जैसे ठोकरें खाती रह जाती हैं -

विदूषकः - साहु वअस्स। महुरावत्थाणदंसणिज्जो भावाराणुप्पवेसो। खलदि विअ मे दिट्ठी णिण्णुण्णअप्पदेसेसु। 6

दुष्यन्त द्वारा निर्मित चित्र को देखकर सानुमती कहती है कि राजर्षि तो बड़े चतुर चित्रकार हैं, चित्र ऐसा लगता है जैसे शकुन्तला सामने ही खड़ी हो -

सानुमती - अम्मो एसा राएसिरणो णिउणदा।
जाणे सही अग्गदो मे वट्टदि त्ति। 7

दुष्यन्त स्वयं शकुन्तला के सौन्दर्य से ऐसा अभिभूत है कि अपने बनाये हुए चित्र को वह अपूर्ण ही मानता है और कहता है कि यद्यपि मैंने इस चित्र के सबदोष ठीक कर दिये हैं परन्तु फिर भी इन रेखाओं में देवी की सुन्दरता बहुत थोड़ी-सी ही उतर पाई है -

यद्यत्साधु न चित्रे स्यात्क्रियते तत्तदन्यथा।
तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम्। 8

शकुन्तला के चित्र की कमियाँ दिखलाते हुए दुष्यन्त कहता है कि चित्र के कोरों पर मेरी पसीजी हुई ऊँगलियों के काले धब्बे पड़ गए हैं। और मेरी आँखों से जो आँसू गिरा, उससे शकुन्तला के गाल का रंग उभर आया है। अभी इस विनोद स्थान का चित्र पूरा नहीं बन पाया है। इतना कहकर दुष्यन्त चित्र को पूर्ण करने के लिए तूलिका लाने के निर्देश देता है। मूल श्लोक निम्नानुसार है -

स्विन्नाङ्गुलिविनिवेशो रेखाप्रान्तेषु दृश्यते मलिनः।
अश्रु च कपोलपतितं दृश्यमिदं वर्तिकोच्छ्वासात्। 9

विदूषक जब दुष्यन्त से पूछता है कि चित्र में और क्या बनाना रह गया है, तब दुष्यन्त उत्तर देता है -

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
श्रृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्। 10

अर्थात्, अभी मालिनी नदी बनानी है, जिसकी रेती में हँस के जोड़े बैठे हों, उसके दोनों ओर हिमालय की वह तलहटी दिखानी है, जहाँ हरिण बैठे हुए हों। मैं एक ऐसा पेड़ भी बनाना चाहता हूँ, जिस पर वल्कल वस्त्र टँगे हुए हों और जिसके नीचे एक हरिणी अपनी बाईं आँख काले हरिण के सींग से रगड़कर खुजला रही हो।

चित्र और उससे जुड़ी भावनिमग्नता का छठे अंक में महाकवि कालिदास ने अद्भुत् प्रसंग प्रस्तुत किया है, जिसमें इंगित किया गया है कि सर्जक की अभिव्यक्ति भले ही कितनी ही समर्थ क्यों न हो परन्तु उसकी कृति में जितना कुछ व्यक्त होता है, उससे कहीं अधिक अव्यक्त ही रह जाता है। प्रख्यात कवि डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन' के शब्दों में -

कवि की अपनी सीमाएं हैं
कहता जितना कह पाता है
कितना भी कह डाले
लेकिन अनकहा अधिक रह जाता है। 11

डॉ. 'सुमन' की उक्त काव्य भावना के अनुरूप ही 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का चित्रकार दुष्यन्त, शकुन्तला का जो चित्र बनाता है, उसमें उसे स्वयं अनेक कमियों का आभास होता है, तभी तो दुष्यन्त विदूषक से कहता है कि - अभी तो मैं चित्र में वे आभूषण ही बनाना भूल गया हूँ, जो मैं शकुन्तला को पहनाना चाहता था -

शकुन्तलायाः प्रसाधनमभिप्रेतमत्रविस्मृतमस्माभिः। 12

शकुन्तला को पहनायें जाने वाले आभूषणों के बारे में विदूषक द्वारा पूछे जाने पर चित्रकार दुष्यन्त उत्तर देता है -

कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।
न वा शरच्चन्द्रमरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे॥ 13

अर्थात् (दुष्यन्त कहता है कि) अभी तो मैं चित्र में वह सिरस का फूल भी नहीं बना पाया हूँ, जिसकी डंठल शकुन्तला ने अपने कानों पर धर रखी थी और जिसका पराग उसके कपोलों पर फैला हुआ था और अभी तो उसके उरोजों के बीच में चन्द्रमा की किरण के समान पतले तन्तुओं की माला भी नहीं बनायी है।

दुष्यन्त द्वारा बनाये हुए चित्र को देखकर विदूषक कहता है कि इस चित्र में शकुन्तला कमल की पंखुरी जैसी अपनी नरम और लाल हथेलियों से मुख ढ़के हुए भयभीत-सी क्यों दिखाई दे रही है फिर चित्र को ध्यान से देखकर विदूषक कहता है कि अरे देखिये रस का लोभी, रस का चोर, नीच भँवर देवी के मुख पर मंडराये जा रहा है -

भो किं णु तत्तहोदी रत्तकुवलअपल्लवसोहिणा अग्गहत्थेण मुहं ओवारिअ चइदचइदा विअ ट्ठिआ।
(सावधानं निरूप्य दृष्ट्वा) आ एसो दासी एपुत्तो कुसुमरसपाडच्चरो तत्तहोदीए वअणं अहिलङ्घेदि महुअरो। 14

विदूषक द्वारा भंवर की बात कहे जाने पर दुष्यन्त पहले तो उससे ही कहता है कि इस दुष्ट भंवर को भगाओ और फिर स्वयं ही चित्र में चित्रित भंवर को वास्तविक मानकर उसे भगाने का उपक्रम करता है तब विदूषक ही दुष्यन्त को यह ध्यान दिलाता है कि वह तो चित्र है, वास्तविकता नहीं।

अपनी कल्पना का सुख विदूषक द्वारा समाप्त किये जाने पर दुष्यन्त विदूषक से कहता है कि मित्र तुमने यह क्या दुष्कर्म कर दिया! मैं तो बड़ा तन्मय होकर सामने खड़ी शकुन्तला के दर्शन में निमग्न था पर तुमने स्मरण कराके मेरी प्रिया को चित्र बना डाला -

दर्शनसुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।
स्मृतिकारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥ 15

चित्र रचना के साथ ही कपड़े आदि पर रंगों से लिखने का प्रचलन भी महाकवि कालिदास के समय में रहा होगा, इसका आभास उनके साहित्य से होता है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के सप्तम अंक में महाकवि कालिदास ने कहा है –

विच्छित्तिशेषै सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांऽशुकेषु ।
विचिन्त्य गीतक्षममर्थजातं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखिन्ति ।। 16

उक्त श्लोक में देवताओं के राजा इन्द्र का सारथी राजा दुष्यन्त से कहता है कि देवता गण आपके पराक्रम के गीत रचकर कल्पवृक्ष के कपड़ों पर उन रंगों से लिख रहे हैं, जो अप्सराओं के श्रृंगार से बचे रह गये हैं। इस वर्णन से यह आभास भी होता है कि जो सामग्री श्रृंगार–प्रसाधान में उपयोग में लाई जाती थी, उसका प्रयोग चित्र बनाने में भी किया जाता था।

चित्र–निर्माण के साथ ही महाकवि कालिदास के समय में मिट्टी आदि से निर्मित खिलौनों को भी विभिन्न रंगों से चित्रित किया जाता था, इस बात का आभास 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से होता है। मारीच आश्रम में सिंह शावक से खेल रहे बालक सर्वदमन को बहलाने के लिये महर्षि मारीच के आश्रम की तपस्विनी, दूसरी तपस्विनी से रंगीन चित्रित मिट्टी का मोर लाने को कहती है–

ममकेरए उडए मक्कण्डेअस्अ इसिकुमारअस्स वण्णचित्तिदो मित्तिआमोरओ चिट्ठदि। तं से उवहर 17

निष्कर्ष – इस प्रकार निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास ने चित्रात्मकता और चित्रकला के प्रति अपने सहज आकर्षण के अनुरूप विभिन्न सन्दर्भ अपनी सर्वोत्ताम कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में प्रस्तुत किये हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक/1 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 3
2. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय अंक/9 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 33
3. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 60
4. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 67
5. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक/12 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 71
6. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक/6 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 114
7. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक/6 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 114
8. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक 6/14 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 114
9. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक 6/15 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 115
10. महाकवि कालिदास :अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक 6/17 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 116
11. डॉ.शिवमंगलसिंह 'सुमन' : बात की बात : सुमन समग्र : खण्ड–1: पृष्ठ क्र. 329
12. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम्– अंक 6 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 116
13. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 6/18 कालिदास ग्रन्थावली: सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 117
14. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 6 कालिदासग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 117
15. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 6/21 कालिदास ग्रन्थावली: सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 118
16. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 7/5 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 129
17. महाकवि कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 7 कालिदास ग्रन्थावली : सम्पादक – पंडित सीताराम चतुर्वेदी : पृष्ठ क्र. 135

****

भारतीय कला का प्रतीकात्मक स्वरूप

डॉ. नीता तोमर *

शोध सारांश – प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है। जब हम विचार करते किसी ऐसे स्तर पर पहुँच जाते हैं जहाँ सामान्य भाषा पद्धति हमारी अनुभूतियों को व्यक्त करने में असमर्थ रहती हैं, तो हम प्रतीक विधि का आश्रय लेते हैं। वास्तव में प्रतीक जिस आकृति को प्रस्तुत करता हैं, उससे बहुत अधिक अर्थ प्रच्छन्न रूप से उसमें निहित रहता हैं। जुंग के अनुसार–किसी अज्ञात वस्तु के हेतु उसके भ्रम के रूप में रखी आकृति प्रतीक कहलाती हैं। और ऐसा विश्वास किया जाता है कि उस अज्ञान वस्तु का अस्तित्व हैं अवश्य ऐसी वस्तु को प्रतीक के अतिरिक्त अन्य किसी भी विधि से बोधगम्य नहीं बनाया जा सकता।

प्रतीकों का निर्माण केवल संसार में देखे गये रूपों के आधार पर ही नहीं होता। कलाकार अनेक लौकिक वस्तुओं के संयोग से भी प्रतीक–सृष्टि करते हैं, और ऐसी सूक्ष्य आकृतियाँ भी प्रस्तुत करते हैं जिनका सादृश्य कहीं नहीं मिलता। यथार्थ से काल्पनिक और काल्पनिक से सूक्ष्म आकृतियों की ओर प्रतीकों का यह विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ चला हैं। आदिम मनुष्य प्राकृतिक उपादानों (पशु–पक्षी,वृक्ष–वनस्पति, सरिता सागर, पर्वत आदि) को प्रतीकार्थ देता था, तत्पश्चात् अधिक विकसित मनुष्य ने मानव एवं मानवेतर प्रकृति के समन्वय का प्रयत्न किया। आधुनिक युग में सूक्ष्म प्रतीकों का प्रयोग विकसित हो रहा है।[1]

प्रस्तावना – प्रतीक आदिकाल से हमारे विश्वासों में जीवित रहे हैं। हमारे प्रतीकात्मक रूपों का कला तथा दर्शन में प्राय: सभी भारतीय धर्माचार्यों और दार्शनिकों ने समर्थन किया उनकी अभिव्यंजना की और उनके औचित्य को अपने–अपने ढंग से सिद्ध किया। अनुमानत: यदि भारतीय दार्शनिकों और विद्धानों का इन प्रतिकात्मक विश्वासों को इतना संबल प्राप्त न हुआ होता, तो वे कब के विनष्ट हो गये होते। ईसाई धर्म में भी गिरजाघरों ने अनेक आदिम प्रतीकों को अपनी रीतियों–नीतियों में स्थान दिया।

ज्यामितीय प्रतीकों में ईश्वर को, जो निराकार और अज्ञेय हैं, एक शून्य के चिन्ह से ज्ञापित किया जाता हैं। ब्रह्माण में ईश्वर के रूप का प्रतीक समत्रिबाहु त्रिभुज को माना जाता है। इसकी तीनों समान भुजायें उनके त्रिमूर्ति रूप को दिग्दर्शित करती हैं। जब त्रिभुज अपने प्रतीकात्मक गुणों से अंकित होता है तो बुद्धि एवं प्रगति का द्योतक बन जाता हैं। इसी प्रकार स्वास्तिक का चिन्ह सृजनात्मक शक्ति व जीवन का द्योतक हैं। इसे जल का प्रतीक भी मानते हैं। त्रिभुज को उल्टा चित्रित करते हैं, अर्थात् उसके आधार को ऊपर और शीर्ष बिन्दु को नीचे की और बनाते हैं, तो इसे विनाशक तत्व के रूप में अग्नि का द्योतक मानते हैं, जो सब से अधिक भंयकर और विनाशक तत्व हैं। इसी रूप में इसे शिव शक्ति का प्रतीक भी मानते हैं। कमल पर दो त्रिभुजों का विपरीत रूप में अंकन राजकीय शासन का चिन्ह माना जाता हैं, और इसे 'बह्मासन' का रूप भी प्रदान किया जाता हैं। यह ब्रह्माण के तत्वों का भी प्रतीक माना गया हैं। विकासशील शक्तियों का एक और ज्यामितीय प्रतीक चक्र हैं। वायु में इसका रूप 'बवंडर' (चक्करदाआँधी) और जल में'भँवर' के रूप को दर्शित होता हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति में इसका चित्रण कुंडली मारे हुये सर्प के रूप में होता हैं, इसके अतिरिक्त भगवान विष्णु की सर्प शैया, श्री वस्त की आकृति में गोलाकार वक्ष, शालिग्राम की बटिया तथा कमल की मुड़ी हुई गोलाकार डंडी सभी इसी शक्ति का प्रतीक हैं। रहस्मय'ऊँ' इसी आध्यात्मिक प्रतीक द्धारा ऐलीफेन्टा की मूर्तियों में अंकित किया गया हैं। योग–दर्शन के अनुसार ब्रह्माण की चक्र–शक्ति जिसे महाकुंडली की संज्ञा दी गई हैं, मानव–शरीर में अपना निवास करती हैं।[2]

ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति को शिवलिंग द्धारा प्रतीकात्मक रूप प्रदान किया गया हैं। इस प्रतीक के रूप में योनि और लिंग का परस्पर मिलन किया जाता हैं। इस प्रतीक द्धारा जीवन और मोक्ष को दर्शित किया गया हैं। इसकी असीमित गहराई आरम्भिक स्थिति में जनन–क्रिया के आनन्द की भावना हैं और समर्पण में निर्वाण का आनन्द। समस्त भारत में शिवलिंग व्यापक रूप में पूजा जाता हैं।[3]

प्रस्तावना – प्रतीकों का विभाजन अनेक दृष्टियों से हो सकता है –
प्राकृतिक प्रतीक – पशु पक्षी, पुष्प, वृक्ष आदि आकृतियों का आधार लेकर विकसित हुए हैं।

सिंह–शक्ति और दृढ़ता का प्रतीक हैं। प्राय: सभी प्राचीन सभ्यताओं में राज्य चिन्ह एवं धर्म प्रतिकों में इसका अंकन हुआ हैं। मौर्यकालीन सिंह स्तम्भ राज्य शक्ति के प्रतीक का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। चीन में सिंह प्रकृति की भयंकर शक्तियों का प्रतीक रहा हैं।

हाथी–का प्रयोग राज्य शक्ति का प्रतीक हैं, हाथियों की जल क्रीड़ा प्रसिद्ध हैं और वीर पुरूषों की जल–क्रीड़ा से उसकी उपमा दी जाती हैं। मेघों की तथा वीर पुरूषों की गर्जना, मस्ती भरी चाल की उपमा हाथी से दी जाती हैं। वैदिक देवता इन्द्र का वाहन हाथी हैं। बौद्ध साहित्य में श्वेत हाथी,'बुद्ध–सत्व' तथा'अलौकिक का प्रतीक हैं।

वृषभ– इसे भूमि, आर्द्रता, स्वर्ग पिता आदि का प्रतीक माना गया हैं। मैसोपोटामिया में. चन्द्रदेव को वृषभ के रूप में कल्पित किया गया हैं। यह ब्रह्माण की शक्ति का प्रतीक भी रहा है, यह शिव का वाहन और कृषकों का बन्धु हैं। सिन्धु कला की मुद्राओं, मौर्यकालीन स्तम्भों अजन्ता और बाघ के गुहाचित्रों में वृषभ अंकित मिलते हैं।

अश्व– को शक्ति का प्रतीक माना गया हैं। मानसिक रूप में यह उद्धाम वासना का प्रतीक हैं, इसी से भारतीय नीति में इन्द्रियों को घोड़े माना गया हैं।

बकरे– की मुखाकृति का प्राचीन यूनान, क्रीट और चीन में धार्मिक एवं आलंकारिक रूप में अंकन हुआ हैं। भारत मुनि ने नाट्य–देवता के'अजामुख' कहा हैं। संभवत: पितृ–प्रतीक होने के कारण ही इसका यह उपयोग हुआ हैं।

* अतिथि विद्वान (चित्रकला विभाग) शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

मेष– ज्योतिष की प्रथम राशि हैं। यह परब्रह्म और ज्ञान का प्रतीक हैं। पक्षियों में गरूड़ अत्यन्त प्राचीन प्रतीक हैं। भारत में यह विष्णु का वाहन और साप का शत्रु हैं। मिश्र की कला में इसका अर्थ जीवन की उष्णता, उत्पत्ति एवं दिन हैं। यह पिता का भी प्रतीक है। वीरत्व, महत्ता आदि गुण भी इसमें कल्पित किये गये हैं।

शुक्र – का अंकन भारतीय प्रेम–प्रसंगों में हुआ हैं। यह कामदेव का वाहन हैं अत: श्रृंगार प्रतीक हैं।[4]

मयूर– सौंदर्य का प्रतीक एवं सरस्वती का वाहन हैं। अलंकरणों में इसका भारत एवं ईरान में प्रचुरता से प्रयोग हुआ हैं। बाइजेण्टाइन ईसाई कला में भी इसका अंकन हुआ हैं। ऐसा विश्वास किया जाता हैं कि मयूर का माँस कभी खराब नहीं होता अत: ईसाईयों ने इसे निरूपाय आत्मा तथा अमरता का प्रतीक माना हैं। वर्तमान युग में यह भारत का राष्ट्रीय पक्षी हैं। श्रीकृष्ण के चित्रों में मोर पंख को अनिवार्य रूप से अंकित किया जाता हैं वहाँ सम्भवत: यह'घनश्याम' के प्रेमी–भक्त का चिन्ह हैं जिसे इतना आदर दिया गया हैं।

हंस – को नीर–क्षीर विवेकी माना गया है, यह ज्ञान की निर्ममता का प्रतीक और ब्रह्मा तथा सरस्वती का वाहन है। भारतीय कलायें इसका प्रचुरता से अंकन हुआ हैं। श्वेत वर्ण के कारण हंस आत्मा की निर्मलता का प्रतीक हैं।

कपोत – शांति का प्रतीक हैं। यह सन्देशवाहक भी हैं। कपोल–युग्म को श्रृंगार प्रतीक बनाकर प्रेम–प्रसंगों में अंकित किया गया हैं।

कौवा – अपने रंग के कारण सृष्टि के आरम्भ, अन्धकार, उर्वर भूमि आदि का प्रतीक हैं। रहस्मयशक्ति के कारण भविष्य द्रष्टा माना गया हैं।

उलूक को मिश्री कला में रात्रि, मृत्यु, शीत एवं निष्क्रियता का प्रतीक माना गया हैं। अस्त हुए सूर्य का भी यह प्रतीक हैं जो अन्धकार के समुद्र को पार करता हैं। कहीं–कहीं यह बुद्धिमत्ता का भी प्रतीक हैं।[5]

पुष्पों – का भी अनेक विध प्रतीकता के साथ प्रयुक्त किया गया हैं। भारतीय पुष्पों में कमल प्रमुख हैं। जल से सम्बन्धित होने के कारण यह आदि सृष्टि का प्रतीक रहा है, इसी से सृष्टि के देवता ब्रह्मा एवं विष्णु तथा समुद्र में से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी से इसका सम्बन्ध हैं। अपने रूप एवं रंगों के कारण कमल श्रृंगार का प्रतीक है। सृष्टि की उत्पत्ति अथवा जल से सम्बन्धित सभी देवताओं का यह आसन भी हैं। मध्यकालीन यूरोप में यह केन्द्र से सम्बन्धित माना गया हैं। अत: हृदय का प्रतीक रहा है।

वृक्ष – भी प्रतीक रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। केल्टिक संस्कृति में ओक वृक्ष, स्केण्डिनेविया का ऐश वृक्ष, जर्मनी में नीबू का वृक्ष तथा भारत में वट एवं पीपल के प्रति मन में पवित्रता एवं सम्मान का विशेष भाव रहता हैं। परस्पर उलझी हुई शाखाओं वाले वृक्ष अथवा वृक्षों से लिपटी लताएँ श्रृँगार प्रतीक हैं। फूलों एवं फलों से युक्त वृक्ष कामना एवं यौवन को सूचित करता हैं। कतिपय

दैवी प्रतीकों – के द्वारा भी सृष्टि रहस्यों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई हैं। मर्यादा पुरूषोत्ताम राम शील–शक्ति तथा सौन्दर्य के प्रतीक हैं। श्री कृष्ण धार्मिक रूप में ब्रह्मा और कलात्मक रूप में लौकिक आनन्द की प्रतीकता लिये हुए हैं। राधा कृष्ण का रास भी प्रतीक हैं। गौतम बुद्ध'बुद्धत्व' अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने वाली आत्माओं का प्रतीक बन गये हैं, ईसा मसीह संसार की दीनता, प्रेम, सौहार्द और निष्कपटता के प्रतीक बन गये हैं। यूनान के प्राचीन देवता मानवीय गुणों के आदर्श प्रतीक थे। वीनस शारीरिक सौन्दर्य की प्रतीक हैं। ओलम्पस स्वास्थ का प्रतीक है। विष्णु की नाभि का कमल उर्वरता का प्रतीक है।[6]

प्रकृति अथवा दृश्य जगत से लिये गये पदार्थो की प्रतीकता जहाँ केवल प्रासंगिकता रूप में रहती है। वहाँ **ज्यामितीय** अथवा सूक्ष्म प्रतीक प्रधान रूप से सांकेतिक अर्थ वहन कराने के हेतु प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार के असंख्य प्रतीक सारे संसार में फैले हुए हैं –

रंगों की प्रतीकता भारतीय दर्शन में त्रिगुणात्मिका सृष्टि के तीन रंग माने गये हैं। सत्व का सफेद, रजत् का लाल और तमस् का काला। शास्त्रीय आचार्यो ने रसों के भी रंग माने हैं। श्रृंगार का श्याम, क्रोध का लाल, करूण का भूरा, भय का काला, अद्भूत का सुवर्णाभ पीत, हास्य का श्वेत, वीर का गौर वर्ण, वीभस्त का नील एवं शान्त रस का श्वेत वर्ण माना गया हैं। हरा रंग आशा एवं समृद्धि का द्योतक हैं।

उपकरण आदि पर आधारित प्रतीकों में पात्रों का स्थान प्रमुख हैं। जल पूरित अथवा कुम्भ समृद्धि एवं पूर्णता का प्रतीक हैं।[7]

निष्कर्ष : अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि प्रतीकों का अन्त यही पर नहीं होता विश्वभर में अनगिनत प्रतीक पुरातन काल से चले आ रहे हैं और कलाकार तथा कला विचारक नये प्रतीकों का सृजन करते रहते हैं।'शिव' और'शक्ति','बुद्ध' और'ईसा','मैडोना' और'विनस','स्वातिक' और'क्रास' ये सब ऐसे प्रतीक हैं जिन्होंने विशाल जन–समूहों को प्रभावित किया हैं। प्रतीक हमारे अचेतन और चेतन का समन्वय करके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं, श्री असित कुमार हल्दार का यह कथन ठीक ही हैं कि 'आध्यात्मिक तथ्यों को सरलतापूर्वक सीखने और समझने में प्रतीक–भाषा अत्यन्त सरल होती हैं।' इस सरलता के कारण वे समाज पर व्यापक प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. अग्रवाल गिराजकिशोर : कला समीक्षा : पृ.क्र. 122, 123, 124
2. कला सौन्दर्य और जीवन पृ.क्र 367, 368
3. कला सौन्दर्य और जीवन पृ.क्र 368
4. डॉ. अग्रवाल गिराजकिशोर : कला समीक्षा : पृ.क्र. 124, 125, 126, 127
5. डॉ. अग्रवाल गिराजकिशोर : कला समीक्षा : पृ.क्र. 128
6. डॉ. अग्रवाल गिराजकिशोर : कला समीक्षा : पृ.क्र. 131, 132
7. डॉ. अग्रवाल गिराजकिशोर : कला समीक्षा : पृ.क्र. 135

****

शैल चित्रों में रंगों का महत्व

डॉ. नीता तोमर *

शोध सारांश – चित्रकला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है, जितना मानव का इतिहास। मनुष्य ने जिस समय प्रकृति की गोद में नेत्रोन्मीलन किया उस समय से ही उसने निर्माण के तारतम्य से अपने जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने की चेष्टा की और इस निर्माण के कार्य के फलस्वरूप उसने ऐसी कृतियों का सृजन किया जो उसके जीवन को सुखद और सुचारू बना सके। इसी समय से मनुष्य की ललित भावना भी जाग उठी और उसने अपनी मूक भावनाओं को अनगढ़ पत्थरों के यन्त्रों तथा तूलिका से बनी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाकृतियों के रूप में गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित कर दिया।[1]

उसने अपने जीवन की कोमल भावनाओं में आखेट की गति और पशुओं की मनोहारी छवि का अनुभव किया, जिसको उसने रंगों से सनी तूलिका से गुफाओं तथा चट्टानों की कठोर समतल शिलाओं पर उरेह दिया। उसने गुफाओं के धूमिल प्रकाश में अपने जीवन की सरस तथा सरल अभिव्यक्ति तूलिका के माध्यम से खुदरी चट्टानों, तथा गुफाओं की दीवारों पर चित्रों के रूप में अंकित कर दी।[2]

प्रस्तावना – शैलाश्रयीन चित्रकला में रंगों का अत्यन्त महत्व हैं। ये चित्र विभिन्न स्थलों पर विभिन्न रंगों से बने प्राप्त होते है। अधिकांशत: एक चित्र के बनाने में एक ही रंग का प्रयोग किया जाना प्रतीत होता है। परन्तु कतिपय चित्रों का अंकन दो रंगों के द्वारा भी किया गया हैं। प्राकृतिक रूप से अधिक सुलभ होने के कारण गैरिक रंग का प्रयोग चित्रांकन में बहुतायत से किया गया हैं। इसके अतिरिक्त चित्रों के अंकन में कत्थई, गहरा लाल, सफेद, पीला, बैगंनी तथा काले रंग का प्रयोग भी व्यापकता से किया गया हैं। डॉ. वाकणकर ने भीम बैठका में हुए उत्खनन में हैमेटाइड (लाल) रंग के अतिरिक्त अन्य रंग मैंगनीज, पीले, गेरूए व हरे रंग के प्रयोग के प्रमाण पाये हैं। पचमढ़ी एवं उसके आसपास के क्षेत्र में सफेद रंग का व्यापक प्रयोग चित्रों के निर्माण के लिए किया गया हैं। द्विरंगी चित्रों में प्राय: एक रंग से पूरण तथा दूसरे रंग से रेखांकन किया गया मिलता हैं। ये रंग सफेद एवं लाल ही प्रमुखत: मिलते हैं। कतिपय चित्रांकन ऐसे भी मिलते हैं जिनमें बाह्य रेखा तथा आंतरिक रंग पूरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का अंलकरण नहीं मिलता हैं। वर्तमान में चूरना, झलई, बोदलघाट, झुनकर नाला, बंदिनी, कनवार एवं पनारपाली के शैलचित्रों में सफेद या मटमैला सफेद रंग का व्यापकता से प्रयोग किया गया हैं। केवल गज पत्थर शैलाश्रय के शैलचित्रों में सफेद रंग का कोई अंकन दृष्टिगोचर नही होता हैं। यहॉ मात्र लाल, गेरूआ एवं कत्थई रंग का प्रयोग आदिम कलाकारों द्वारा किया गया हैं। कतिपय चित्रांकनों में तो मानव आकृतियों के अंगों, वस्त्रों, आभूषणों एवं शस्त्रों को प्रदर्शित करने के लिए उन्हें लाल रंग से अंलकृत किया गया हैं। चित्रों के अंकन में प्राकृतिक रंग का ही प्रयोग किया गया हैं।[3]

शैलचित्रों में रंग भरने में किसी विशेष तकनीक का प्रयोग नहीं हुआ। आदिम चित्रों में गेरू, रामरज व खड़िया जैसे रंगों का सहज प्रयोग हुआ हैं, पेड़ की टहनी को कूटकर, उसकी तूलिका बनाकर रंगों को फैलाने के लिए प्रयुक्त किया गया हैं।[4]

चित्र प्राय: लाल (गेरू एंव हिरौंजी) काले, (कोयला या काजल), सफेद खड़िया रंगों से बने हैं। इन रंगों को तैयार करने एवं इस्तेमाल करने से पूर्व इन्हें पशुओं की चर्बी में मिलाया जाता था। तूलिका किसी रेशेदार लकड़ी, बॉस या नरकुल आदि को एक सिरे से कूटकर बनायी जाती थी और पशुओं के पुट्ठे की हड्डी की प्याली रंग घोलने के लिये काम में ली जाती थी।[5]

चित्रों के समस्त उदाहरण लाल, काले या पीले और सफेद रंगों से बने हैं। यह चित्र चट्टानों की दीवारों, गुफाओं के फर्शो, भित्तियों या छतों में बनाये गये हैं। अनेक चित्र प्रस्तर शिलाओं पर भी प्राप्त हुये हैं। चट्टानों की खुरदरी दीवारों पर लाल (गेरू या हिरौंजी) काले (कोयला, काजल या कालिख) या सफेद (खड़िया) रंगों को पशु की चर्बी में मिलाकर यह चित्र बनाये गये हैं। इन चित्रों में रेखा या सीमा रेखा की प्रधानता हैं, इस कारण इनको रेखा-चित्र मानना संगत हैं। आकृति की सीमा रेखा को अधिकांश किसी नोकीले पत्थर से खोदकर बनाया गया हैं जिससे वह वर्षा के जल से धुल न जाये और स्थाई बने रहे। सामान्यतया दो तीन रेखाओं से मानव आकृतियों का निर्माण किया गया हैं और कभी-कभी चौखूटे धड़ से मनुष्य आकृति बनाई गई हैं जिसमें कभी तिरछी और कभी पड़ी रेखायें भर दी गई हैं। चित्रों में रंगों का प्रयोग बाल-सुलभ प्रकृति के आधार पर किया गया हैं।

आकृति को भरने के लिए धरातल पर रंगों को सपाट लगाया गया हैं। इन चित्रों में सुगमता से प्राप्त खनिज रंगों का प्रयोग किया गया हैं। इन रंगों में प्रधानता गेरू, हिरौंजी, रामरज, तथा खड़िया का प्रयोग हैं। इन रंगों के अतिरिक्त रासायनिक रंगों में कोयला का काजल का प्रयोग किया गया हैं। अधिकांश आकृतियों के निर्माण में सीधी रेखा वक्र और आयत आदि ज्यामितीय आकारों का प्रयोग हैं। अधिकांश चित्रकारी के उदाहरण रेखा और सपाट रंगों के प्रयोग से बनाये गये हैं फिर भी कहीं-कहीं गोलाई का आभास होता है।[6]

निष्कर्ष – मानव ने रेखा रंग आकार के माध्यम से अपनी प्रगति, आत्मा और युग का सदैव स्वागत तथा अंकन किया हैं। और साथ ही अपने भावों को सरलतम रूपों रंगों में संजोया हैं जो बाल-सुलभ प्रकृति के सुन्दर उदाहरण कहे जा सकते हैं इन चित्रों की सीमा रेखायें गतिशील हैं, यद्यपि यह चित्र असंयत और सरल हैं। मानव ने अपने भावों तथा दैनिक जीवन को शिलाओं पर चित्रित कर कला समीक्षकों को शोध के लिए विषय प्रदान किया हैं। इन शिलाश्रयों के चित्रों की रेखाओं और रंगों में आनन्द और मन्त्र-मुग्ध कर देने के समस्त गुण हैं। कुल मिलाकर इन शिला चित्रों में तूलिका, रंग, रेखाओं के माध्यम से प्रागैतिहासिक युग के मानव का सम्पूर्ण इतिहास संचित हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. वर्मा अविनाश बहादुर : भारतीय चित्रकला का इतिहास : पृ.क्र.10: प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बरेली। 000
2. डॉ. वर्मा अविनाश बहादुर : भारतीय चित्रकला का इतिहास : पृ.क्र.12: प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बरेली।
3. डॉ. रायज़ाद अजीत : होशंगाबाद के शैल चित्र : पृ.क्र. 39, 40 : प्रकाशक: आर.के. पब्लिशर्स दिल्ली।
4. वसीम एम. : चित्रकला : पृ.क्र. 57 : प्रकाशक : उपकार प्रकाशन: आगरा
5. डॉ. प्रताप रिता : भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास : पृ.क्र. 26: प्रकाशक: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
6. डॉ. वर्मा अविनाश बहादुर : भारतीय चित्रकला का इतिहास : पृ.क्र. 20, 21 : प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

* अतिथि विद्वान (चित्रकला विभाग) शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

The Role of Science in Literature with special reference to English Fiction

Dr Rajkumari Sudhir *

Abstract - Indian English novel has gone through a lot of transformation from its initial days to the present times and has attained a whole new intensity in terms of concept, marketing, presentation, business and impact on the Indian culture. Literature has a wide connotation. Henry Hallam imagines that literature comprises of jurisprudence, theology and even medicine. Even a liberal critic would think twice before admitting science into literature. There are also thinkers who held extreme views like Bendetto Crook. He passed a statement of scathing criticism on the die-hard scientists. He strongly believed that:Scientific discoveries are not the light of truth, that truth alone which enlightens and fortifies, the truth which is good for the soul and which scientists and inventors do not give us, but only the geniuses of religion, philosophy and poetry, be they called Jesus of Nazareth, Socrates, Homer or Shakespeare. The discoveries of natural science as Bacon believed, do, indeed, increase man's command over things, that is the power of his hands, but not of his soul (Dowden).

Introduction - Science has its influence on all the aspects of man and his life. Literature also is not left out from the impact of science and the changes it has brought about in man's life. Indian English literature especially fiction has also come under the influence of science.

Literature has a wide connotation. Henry Hallam imagines that literature comprises of jurisprudence, theology and even medicine. Even a liberal critic would think twice before admitting science into literature. But it is an understatement to confess that one is a stranger to science. How can a man of letters remain untouched and uninfluenced by the progress of science? The history of literature, however, tells a different story, although scientists and literary men have often failed to share a common platform. We are at the cross roads of history. We have passed through so many revolutions of ideas, and yet we feel that the revolutions are not revolutionary enough. There have been extreme views held both by men of literature and scientists against each other. There are also thinkers who held extreme views like Bendetto Crook. He passed a statement of scathing criticism on the die-hard scientists. He strongly believed that:

Scientific discoveries are not the light of truth, that truth alone which enlightens and fortifies, the truth which is good for the soul and which scientists and inventors do not give us, but only the geniuses of religion, philosophy and poetry, be they called Jesus of Nazareth, Socrates, Homer or Shakespeare. The discoveries of natural science as Bacon believed, do, indeed, increase man's command over things, that is the power of his hands, but not of his soul (Dowden).

Science and literature are not antagonistic, although their advocates feel shy of each other. Indian novelists also acknowledge their indebtedness to science and the wonderful development that is taking place around us. Science focuses primarily and most successfully on physical facts in search for the laws and principles governing the formation of material objects and material forces, though its researches have now taken it to the borderline where the material opens out into more subtler domains of reality. Literary fiction is an effort to capture the deeper realities of life by focusing not only on material facts, moral principles and mental ideas, but by portraying the chains of action and reaction among and between individuals, society, the forces of nature and in some instances the subtle forces of other planes. Thoughts, beliefs, opinions, attitudes, emotions, sentiments, impulses, desires, aspirations, anxieties, fears and cravings expressed in action are the stuff of literature. Literature focuses on the meeting point between inner subjective intention and material and social results in the external world of living beings, between thought and action, between cause and consequence, between human character and the character of life.

There are also others who have positively looked up on the influence of science on fiction. They accept that science has brought about revolutionary changes in our pattern of life and behaviour. The scientific enquiry of Newton, Colin Maclawin, Thomas Simpson, John Michell, Henry Cavendish, Joseph Priestley, and William Herschel, and others have widened our knowledge of natural phenomena. The Victorian Age marked the beginning of a new chapter in the life of Europe. Educated people sought explanation of things in physical terms. Such investigations had invariably made an impact upon literature. As a result of the influence of science, we have a separate genre in the field of fiction viz., science fiction. John Huntington opines:

If science fiction gives the impression of facing the unknown future with daring and foresight, it is seldom because it really imagines a new future in any radical way, or because it forecasts change with any certainty or

* Asst.Professor (English) Govt.Sarojini Naidu Girls P.G. College, Bhopal (M.P) INDIA

precision, but because, by relying on traditional literary conventions and forms, and by repeating historical and psychological patterns from the past, it manages to domesticate the future to render it habitable and, in spite of a somewhat strange surface, basically familiar (Sahni 306). The impact of the vast and ever widening store of knowledge was writ large in every sphere of literature. But even before the investigation into natural phenomena, man looked far forth into the future and dreamt fantastic dreams. Science fiction, strictly speaking has roots deep in tradition. It was in the eighteenth century that science and technology made a dent into the static life of man, who still hugged their fond belief that man could do nothing before the mighty forces of Nature. They had a calm and quiet resignation to Nature, and could not even dream of the rapid strides of science, which shook the world in an unimaginably short time. Science, no doubt, clips our imagination, for it fosters the spirit of reason. It sounds paradoxical but the fact remains that science widens our imagination.

The idea of progress and a desire to overcome the physical limitations and conquer the unconquerable posed great challenge before man. His desire to plant his feet on the virgin soil, on the planets and satellites began to gain momentum with the possibilities presented by science. So long at the mercy of nature, he was now prepared to accept the challenges posed by nature and began to seek supremacy in every sphere.

When we turn the pages of the history of literature we find that the nineteenth century literature is a literature of change. The onus for these new phenomena can be attributed to the explosive growth of science. Explorers like Dampier, Knox, Le Comte, Hakluyt, etc. have fired the imagination of Daniel De Foe. Mary Shelley's *Franken Stein* can be, in a sense, considered as the first specimen of Science Fiction in English language. The ball was set rolling by De Foe and Mary Shelley and a large number of novelists followed in their footsteps with unequal success. Science fiction, by and large, have grown form an idea of progress. Science has done immense good to humanity. It has ameliorated human suffering. Science fiction is the celebration of the new knowledge that is placed at man's disposal. Science fiction is as much a question as an answer. The answers in most cases are vague. It is a clear indication of the fact that man no longer likes to remain an unreasoning, unthinking and unquestioning being.

References -

1. D'haen, Theo and Iannis Goerlandr, eds. *Literature for Europe?* New York: European Science Foundation, 2009. Google Books. Web.12 Oct.2012.
2. Lem, Stanislaw. *Microworlds: Writings on Science Fiction and Fantasy.* Ed. Franz Rottensteiner. New York: Harcourt Brace and Company, 1984. Google Books.Web.18Aug.2012.
3. Sahani,C.L.and J.N. Mundra.*Advanced Literary Essays.* Bareilly: Prakash Book Depot, 1963. Original from – The University of Virginia. Digitized – 17 Dec 2010. *Books. google.co.in.* Web. 05 Aug. 2011.
4. *Science Fiction.* Encyclopeadia Britannica Online. Encylopeadia Britannica, 2012. Web. 10 Aug. 2012.
5. *Science Fiction*. Project Gutenberg. Gutenberg.Org, 2012. Web.22 Aug. 2012.
6. *Science Fiction*. Wikipedia Encyclopeadia. Wikipeadia. Org. Web.07 Sept. 2012.

****

Conservation Of Depleting Resources In India

V.M. Audichya *

Introduction - The present concern for preservation and conservation of depleting natural resources arises from the hazardous impact on environment because of human actions. Human demands are increasingly day by day with the growth of population .Our resources are limited to meet such increased demands in this modern materialistic age. As early as in 1798, Thomas Malthus in his book '**Essay on Population'** had predicted that human population would grow more rapidly than its food supply. It is evident that the earth has its own definite limits of productivity and tolerance towards pollutants. Reckless and regular exploitation of natural resources is causing serious impact on the purity of environment. We are facing many problems due to over-population, destruction and degradation of wildlife habitats, depletion and contaminated surface and ground water, depletion of non-renewable fuels or minerals, deforestation, soil erosion, loss of biodiversity due to species extinction, conversion of productive crop lands and grassing lands to deserts, desertification, etc.

The Resources are utilized for survival and flourishing. They are present in our environment, so any part in our environment e.g. land, water, air, minerals, forests, wildlife, or even man that one can utilize for promoting one's welfare, come under the category of natural resources.

Some resources are exhausted on utilization while others last for a long period. On this basis these resources have been divided into two types Renewable and Non-Renewable resources. Renewable resources can be renewed along with their utilization. For e.g. plants, domestic and wild animals, the water obtained through water cycle etc.

Non-Renewable resources are those which cannot be reestablished or renewed practically like minerals, coal, and mineral oil etc. Formation of such resources takes several thousand years, therefore if they are utilized on a very large scale; they will deplete fast and cannot be replaced. Soil for e.g. is such a resource that can be kept functional by proper management but its fertility is depleted by over-exploitation.

It is paradoxical that the man who needs the environment most is destroying its sanctity and purity for present monetary gains and endangers his own future generations. The record of the human wastage of the natural resources is black. The occasional killing of grazers, the blind destruction of whales, the excessive catching of fresh water and marine fishes, the extinction of birds, the cutting thousand square miles of forests, the burning of forests by fire, pollution of rivers by sewage water, industrial and agricultural products, careless farming etc. have resulted into wastage of thousands of square miles of agricultural land and silting of rivers. These are some of the examples of the wastage of natural resources whose recompansation is beyond our power.

In India nearly 74.8.m hectares of area is occupied by forest, which are important components of our environment and economy. Besides they check soil erosion, landslides, air pollution and attract rainfall as well. Along with the explosive increase in human and live stock population, the increase in demand of timber, fuel, and the forest continuous to be cut down. The construction of roads on mountains, establishment of mines and industries in forest regions has also led to the rapid cutting down of the forests. As a result of deforestation there is great increase in soil erosion and landslides. In India average 6000 million tones of upper soil is eroded by water every year. Due to lack of vegetation cover on the top soil, there is change in the local climate which is responsible for desertification.

Soil is the basic natural resources. The detachment and transportation of soil particles from their original place to another place by water, wind, snow and gravity results in soil erosion. The quantity of Nitrogen (N2), Phosphorus (P) and Potassium (K) is swept up along with soil is almost double of the fertilizer production of our country every year. Nature takes about 400 years to form 1cm thick layer of soil and only one year is sufficient to destroy it.

Three fourth part of earth is submerged under water but this entire water is not useful for us 97% of total water is present in oceans is useless as it is salty, about 2% water is available in the form of snow and 1% in rivers, lakes, ponds, most of the terrestrial organisms depend on 1% of water.60 % of water is utilized in industries for production of electricity . It's demand is increasing day by day with increase in population. It will not be wrong to say that quantity of available water per individual is decreasing with the increase in population. In addition to this wastage of water is done by man very much. With increasing industrialization there is continuous increase in polluted water. Due to percolation of polluted water in the earth, soil water is also getting polluted. The consumption of minerals such as iron, copper, lead, tin and mineral oils is increasing so much that in near future they will be eliminated from earth.

India is the world's seventh largest energy consumer. Coal is the primary fuel for thermal power plants while gasoline and diesel are primary fuels for vehicular transport. There is also limited usage of natural gas. India has 85.4 million tones of coal, 0.3 billion tones of oil and 243.4 billion meters of gas at its disposal.There is no doubt we have become self reliant in food production to great extent but

*Asst. Prof. (English) Govt. College, Dhana, Distt.Sagar (M.P) INDIA

this fact cannot be ignored that the green revolution through industrialized agriculture involves huge amount of fuels, and chemicals in the form of fertilizers, pesticides and weedicides, which is the chief cause of environmental pollution and it has also decreased the nutritious value of the food products.

There may be slight hesitation in calling agriculture 'Spine of India' yet this fact cannot be denied that 60% people depend on agriculture. Ironically our agriculture is facing crisis due to drastic changes in ecology.

According to our agriculture scientists' coal, petroleum products and natural gases emit 2 crore ton C02 daily, which increase temperature of the earth. It is being predicted that in the coming future temperature of the earth will rise from 1.8 to 4.0. degree centigrade. As the whole world is about to be transformed into ashes. Naturally it will affect our agriculture and greenery.

Due to change in timing of seasonal crops, quality and production has been adversely affected. There is imminent danger of Global Warming on horticulture as well. As per study of National Science Academy if quantity of C02 is doubled in atmosphere, at least five kinds of cancer blooms will be extinct by next century. It is true that plants intake Co2 but its growing level has led to reduction in production up to 20% in wild flowers and 8% in total biodiversity. Last year Agriculture Scientists were stunned to notice that Rhododendron flower of the Himalayan region which used to bloom in March, bloomed 45 days earlier this year. Climate change is not only destroying flowers but is also responsible for receding fragrance in them.

Changing ecology has affected adversely the wheat crop in many countries. Recently International Rice Research Centre's scientists have introduced two genes to make rice nutritious; these are responsible for formation of betaKerotine. Sugar free rice and rice having less GI is also being produced. Similarly, through hydroponic agriculture on roof plants are prepared.

According to Forest research institute Kanpur, we have made progress in the country in the field of Tissue Culture but we are still lagging far behind in preparing the clone of the plants. We will have to work very hard in this direction because many plants are getting destroyed very rapidly. The uncontrolled use of VD seed, pesticide and fertilizers will put an end to our greenery.

These examples help in explaining why most environmental scientists believe that over the next few decades, the danger of degradation and depletion is greatest for potentially renewable resources, these non renewable resources (except for petroleum and some minerals) we cannot find economically and environmentally acceptable substitutes.

The best way for the benefit of human society is the thoughtful conservation of our natural resources. Conservation does not literally mean accumulation, nor does it mean that the resources may not be used nor does it mean control over the supplies. Its appropriate meaning is to ensure the continuous production of valuable plants and other useful matters and their judicious utilization as per requirement.

Though the Government is quite serious in protecting the environment yet it is duty of every industrialist and every citizen to understand the necessity of preserving nature not only for ourselves but for future generations also. In our country, the Supreme Court has also played a very crucial role in preventing the pollution in the cities and preserving the forests.

The following steps may be taken for conservation of our natural resources and protect our environment.

1. Preserving Biodiversity and protecting the soil.
2. Saving energy and reducing outdoor air pollutants.
3. Reducing exposure to indoor pollutants.
4. Saving water.
5. Reducing water pollution.
6. Reducing solid waste and hazardous waste.
7. Communicating with elected officials.

In protecting our natural resources, there should be use of alternative or non-conventional energy sources like hydrogen solar energy and gobar gasses etc. Natural minerals and building material should be used reasonably. Biological manures should be used in agriculture. The forests should be saved and at least 10% of the total available land should be implanted with new trees. The valuable components of nature like soil, water should not be polluted.

Above all we should think about our future generations, minimize our needs and stop exploiting our natural resources mercilessly.

India has contributed several 167 plant species like rice, sugarcane, millets, pulses etc. to the world agriculture. However subsistence agriculture known as rain fed agriculture involving poor and asset less far over has also to be improved and sustained.

Regenerability of renewable resources must not be impaired and technologies using these resources must be environment friendly. Non-renewable resources must be recycled with minimum amount of waste and eco degradation.

A sick earth system will lead to sick environment therefore:

1. People must inculcate a love for earth and its life support system such as air, water, land, soil, and forests including flora and fauna. Every person should learn to take care of the local environment and never damage it.
2. People must exercise population control willingly and its stabilization at the level of caring capacity.
3. Whatever damage occurs during development, the people must owe responsibility to restore degraded ecosystems and protect those that are endangered on other accounts.
4. As the resources of the earth are limited , people must willingly set a limit to its requirements for sustenance, need and comfort, and must not use resources with an element of greed and luxury.

References -

1. Anjaneyulu.Y : 'Introduction to Environmental Science'
2. Awasthy J.K. : 'Environmental Biology and Evolution'
3. Dainik Bhaskar.com
4. Khoshoo T.N.: 'Towards Sustainable Development In India'
5. Pratiyogita Darpan: Magazine

आर्थिक शोषण का स्वरूप : प्रेमचंद का साहित्य और समाज

डॉ. संध्या टिकेकर *

शोध सारांश – इंसानी दुनिया के आर्थिक शोषण का कच्चा चिट्ठा खोलने वाले हिन्दी लेखकों में प्रेमचंद का नाम सर्वोपरि है। मानवीय शोषण के इसी आर्थिक स्वरूप ने प्रेमचंद को सबसे अधिक व्यथित किया था। इसी से उनके लेखन का सबसे बड़ा कारक भी यही रहा है। प्रेमचंद ने आर्थिक शोषण के जितने रूप देखे , उन्हें पूरी सच्चाई के साथ लिखा और पूरे साहस के साथ कहा। इसलिए कि लोग जाने – समझे कि शोषण के सभी रूप किसी भी दृष्टि से मानवीय नहीं हैं , समाज और राष्ट्र ऐसे शोषण से बचें और अपनी शेष संवेदनाओं को संजोकर सुख–शांति प्रेम से जीए। लेकिन खेद कि ऐसा नहीं हो सका।आर्थिक शोषण करने वाली सम्राज्यवादी ताकतें , जो ब्रिटिश काल में प्रबल थी, राष्ट्रों और नामों के परिवर्तन के साथ आज भी विद्यमान हैं।

प्रस्तावना – प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में आर्थिक शोषण के जिन स्वरूपों को खोला है ,थोड़े से परिवर्तन के साथ किन्तु मूलत: वे ही स्वरूप आज भी मिलते हैं। प्रेमचंद हमारा ध्यान इस पूरी श्रृंखला की ओर दिलाते हैं, जो शोषण व्यवस्था से कड़ी दर कड़ी जुड़ी हुई थी। ब्रिटिश हुकूमत आर्थिक शोषण का केन्द्र थी जो राजाओं का शोषण करती थी। राजा ,जमीदारों का ,जमींदार– कारिन्दों और दलालों का तथा दलाल किसानों और मजदूरों का शोषण करते थे।

यदि हम प्रेमचन्द युगीन एवं वर्तमान आर्थिक शोषण के स्वरूप पर विचार करें तो बहुत से समान किंतु गंभीर तथ्य सामने आते हैं। ब्रिटिश हुकूमत में भारतीय राजा और जमींदार आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हुए भी बड़ी दयनीय स्थिति में थे। उनकी दशा पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह थी। ब्रिटिश एजेन्ट्स राजा और जमींदार से कहीं ज्यादा अधिकार शक्ति सम्पन्न थे।

ठीक ऐसी ही दशा आज साम्राज्यवादी ताकतों की मुठ्ठी में बंद राष्ट्रों की है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व एक ग्राम की मधुर कल्पना के पीछे के कडुऐं सच का जहर पीने को आज अनेक राष्ट्र विवश हो चुके हैं। बाजार व्यवस्था से जुड़ने की विवशता तथा विश्वकोष के क्रूर नियमों से बंधे राष्ट्र आज मुक्त होने को छटपटा रहे हैं। आर्थिक शोषण का यह दुश्चक्र प्रेमचंद के जमाने से लेकर आज तक निरंतर बढ़ती विकृतियां के साथ मौजूद है। शिक्षा और तकनीक के बढ़ते दुष्प्रयोग से ये विकृतियां अनेक प्रचलित रूपों में उजागर हो रही है जो चिंतनीय है।

परिचय – इंसानी दुनिया के आर्थिक शोषण का कच्चा चिट्ठा खोलने वाले हिन्दी लेखकों में प्रेमचंद का नाम सर्वोपरि है। मानवीय शोषण के इसी आर्थिक स्वरूप ने प्रेमचंद को सबसे अधिक व्यथित किया था। इसी से उनके लेखन का सबसे बड़ा कारक भी यही रहा है। प्रेमचंद ने आर्थिक शोषण के जितने रूप देखे , उन्हें पूरी सच्चाई के साथ लिखा और पूरे साहस के साथ कहा। इसलिए कि लोग जानें – समझें कि शोषण के सभी रूप किसी भी दृष्टि से मानवीय नहीं हैं , समाज और राष्ट्र ऐसे शोषण से बचें और अपनी शेष संवेदनाओं को संजोकर सुख–शांति प्रेम से जीए। लेकिन खेद कि ऐसा नहीं हो सका।आर्थिक शोषण करने वाली सम्राज्यवादी ताकतें , जो ब्रिटिश काल में प्रबल थीं , राष्ट्रों और नामों के परिवर्तन के साथ आज भी विद्यमान हैं।

प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में आर्थिक शोषण के जिन स्वरूपों को खोला है ,थोड़े से परिवर्तन के साथ किन्तु मूलत: वे ही स्वरूप आज भी मिलते हैं। प्रेमचंद हमारा ध्यान इस पूरी श्रृंखला की ओर दिलाते हैं, जो शोषण व्यवस्था से कड़ी दर कड़ी जुड़ी हुई थी। ब्रिटिश हुकूमत आर्थिक शोषण का केन्द्र थी जो राजाओं का शोषण करती थी। राजा ,जमीदारों का ,जमींदार– कारिन्दों और दलालों का तथा दलाल किसानों और मजदूरों का शोषण करते थे। आर्थिक शोषण अमूमन दो तरीकों से होता था –

आर्थिक शोषण का स्वरूप (तरीका)

अप्रत्यक्ष रूप से — प्रत्यक्ष रूप से

ब्रिटिश हुकूमत

कारिन्दे – दलाल — अधिकारी वर्ग

ऐजेन्ट्स

जनता — अधिनस्थ एवं आश्रित

राजा

जमींदार

कारिन्दे – दलाल

किसान – मजदूर

वर्तमान संदर्भ में यदि इस दृष्टि से स्वरूप पर विचार करें तो चित्र अपनी मूल समस्या के साथ कुछ इस प्रकार उभरता है :–

अप्रत्यक्ष शोषण — प्रत्यक्ष शोषण

सम्राज्यवादी ताकतें — अधिकारी वर्ग — महाजनी व्यवस्था

राष्ट्रों की सरकारें — अधिनस्थ, आश्रित — गरीब , मजदूर

केन्द्र राज्य

जनता

प्रस्तुत संकेत चित्रों के आधार पर यदि हम प्रेमचन्द युगीन एवं वर्तमान आर्थिक शोषण के स्वरूप पर विचार करें तो बहुत से समान किंतु गंभीर तथ्य सामने आते हैं। ब्रिटिश हुकूमत में भारतीय राजा और जमींदार आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हुए भी बड़ी दयनीय स्थिति में थे। उनकी दशा पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह थी। ब्रिटिश एजेन्ट्स राजा और जमीदार से कहीं ज्यादा अधिकार शक्ति सम्पन्न थे। 'रंगभूमि' का क्लर्क, सोफिया को यही बताता है कि 'ऐजेन्ट्स के अधिकार बड़े होते हैं। उसका अधिकार सर्वत्र यहां तक कि राजा के महल के अंदर भी होता है। वह राजा के खाने – पीने, सोने,आराम करने का समय तक नियत कर सकता है। राजा किससे मिले, किससे दूर रहे ,किसका आदर करें ,किसकी अवहेलना

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (म.प्र.) भारत

करे .....यहां तक कि वह राजा के विवाह का भी निश्चय करता है बस ये समझो वह रियासत का खुदा होता है। ' प्रेमाश्रम के राय साहब के इस कथन से कि'सरकार अपना मतलब निकालने के लिए हमें इलाके का मालिक कहती है। इस रियासत ने हमें विलासी,आलसी और अपाहिज बना दिया है। अब हम किसी काम के नहीं रहे' जमीदारों की दयनीय स्थिति की अभिव्यक्ति होती है। ठीक ऐसी ही दशा आज साम्राज्यवादी ताकतों की मुठ्ठी में बंद राष्ट्रों की है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व एक ग्राम की मधुर कल्पना के पीछे के कडुए सच का जहर पीने को आज अनेक राष्ट्र विवश हो चुके हैं। बाजार व्यवस्था से जुड़ने की विवशता तथा विश्वकोष के क्रूर नियमों से बंधे राष्ट्र आज मुक्त होने को छटपटा रहे हैं। पर दूर – दूर तक उनके कठोर बंधन खुलने के कोई आसार नहीं दिखते। अविकसित और विकासशील देशों में अपनी मनचाही भूमि पर मनचाहा उद्योग लगवा कर , देशों के धन और स्वास्थ्य का अधिकाधिक शोषण साम्राज्यवादी ताकतें तेजी से कर रहीं हैं। तकनीक, ईधन और मशीन,उत्पादों को जरूरत मंद देशों तक पहुंचाने की मनमानी कीमतें देने , ढेर सारे प्रतिबंधो को स्वीकारने के सिवा इन देशों के पास और कोई चारा नहीं है।

प्रेमचंद युगीन समाज में राजा, जमींदार उत्सवों मृत्युभोज आदि के समय गरीबों ,दलितों का शोषण कर व्यवस्था को अंजाम देते थे। ऐसे आयोजनों का अतिरिक्त व्यय जनता विविध रूपों में अदा करती थी। 'कायाकल्प' के राजा विशालसिंह के तिलकोत्सव पर दीवान सलाह देता है कि 'मेरी राय में आसामियों पर प्रति हल के पीछे दस रूपये चंदा लगा दिया जाये।हुजूर आसामियों को जितना गरीब समझते हैं , वे उतने गरीब हैं नहीं । एक –एक आदमी लड़के लड़कियों की शादी में हजारों रूपये उड़ा देते हैं। वर्तमान व्यवस्था का परिदृष्य उपर्युक्त स्थिति से कुछ भिन्न नहीं है।लोकतंत्र के अधिकार संपन्न व्यक्तियों के सम्मान समारोह उत्सवों आयोजनों में व्यय के अंधाधुंध राशि की अदायगी जनता अप्रत्यक्ष करों के रूप में कर रही है। अनेक बार कुछ एक अधिकार सम्पन्नों द्वारा बिना कीमत चुकाए वस्तुओं का उपभोग करने के दृश्य आमतौर पर देखने को मिलते है।

पूंजीवादी दुष्प्रभाव को प्रेमचंद ने समय रहते देख लिया था।परिणाम स्वरूप उन्होने दलितों मजदूरों को कलह, अशांति, रोग, अधर्म और दुर्व्यसनों का शिकार होते देखा था। भ्रष्टाचार को समाज में अपने पैर पसारते हुए दिखाने के लिए 'रंगभूमि' के पूंजीपतियों की कूटनीति का उदाहरण पर्याप्त है सार्वजनिक चारागाह के रूप में प्रयुक्त सूरदास की व्यक्तिगत जमीन पर पूंजीपति जॉन एक फैक्ट्री का निर्माण करता है। निर्माण कार्य का विरोध करने पर सूरदास की झोपड़ी को जलाकर खाक कर देता है। सूरदास को गोलियों से भून, सूरदास की मूर्ति स्थापित करवा देता है। फैक्ट्री बनते न बनते पास ही ताड़ी घर, शराब खाना और चकला अस्तित्व में आ जाते है। अधिकारियों के नैतिक पतन के साथ साथ मजदूरों को भी अपनी गिरफ्त में ले लेते है। रंगभूमि का यह सच वस्तुत: आज के उन अनेक स्थानों का सच है जहां नये सिरे से उधोग –धंधे प्रारंभ हुए हैं।

भ्रष्टाचार, पूंजीवाद की विकृति है। आधुनिक जीवन शैली में सम्मिलित , भ्रष्टाचार के बीज इस जीवन में बहुत पहले ही पड़ चुके थे। 'गोदान' के बैंक मैनेजर खन्ना अपने मित्र को ऋण दिलाने के विषय में कहते है– बैंक ने एक तरह से लेन–देन का काम बंद कर दिया है। मैं कोशिश करूंगा कि आपको रियायत दी जाए, लेकिन बिजनेस इज बिजनेस' यह आप जानते हैं , पर मेरा कमीशन क्या रहेगा ? भ्रष्टाचार के इस युग में कुछ अधिक पैसों के लिए वकील आसानी से बिक जाते हैं। ठीक यही स्थिति प्रेमचंद युग के परिवेश में भी थी। आत्मप्रशंसा के वशीभूत होकर वकील साहब दलित की वकालत के लिए तैयार हो जाते हैं। किन्तु रानी गायत्री का 500 रू. का आमंत्रण पाकर दलित का केस अधूरा छोड़कर गोरखपुर चले जाते हैं। भवन के मुंशी को छुट्टी के लिए डॉक्टरी आर्टिफेअर इसलिए नहीं मिल पाता क्यों कि उसके पास डॉक्टर को चढ़ाने के लिए सोलह रूपये नहीं थे। इसी तरह पुलिस का जनता के रक्षक के स्थान पर भक्षक वाला रूप प्रेमचंद युग के देखने को मिलता है। 'प्रेमाश्रम' में लगान वसूली के समय पुलिस कारिंदो की सहायता करती है भीषण गर्मी में जब सार्वजनिक तालाब के पानी पर गौर खां द्वारा लगाई गई रोक का सुक्खू चौधरी विरोध करता है तो पुलिस उसे कोकीन रखने के झूठे आरोप में गिरफ्तार कर लेती है। आर्थिक लाभ के लिए धोखा – फरेब,रसीदों मे हेरा फेरी की प्रवृत्ति इंसानी आचरण का आम हिस्सा है। आज के परिवेश में जिन्हें ऋण दिया जाता है, उन्हें दिए जाने वाले ऋण फार्म में लिखी शर्तें इतनी घनी– बारीक अक्षरों में होती है कि पढ़ने की जिज्ञासा ही दब जाती है। परिणाम स्वरूप दावे की स्थिति में कम्पनी द्वारा उन्हीं नियमों से हवाला देकर, लाभ उठाते हुए ऋण किसान को बताया जाता था 'एक रूपया नजराने का, एक तहरीर का, एक कागज का, एक दस्तूरी का, इस तरह पांच रूपये काट लिये गए हैं। पांच रूपये दस्तावेज के काटने के बाद पांच रूपये तुम्हे दिये गए हैं,लेकिन लिखा पढ़ी में उधारी तो दस रूपये की ही लिखा दी जाती है। 'आर्थिक शोषण का दिल दहलाने वाला चित्रण प्रेमचंद की दृष्टि चिंतन का एक पक्ष है जिसको उन्होंने यथा अवसर चित्रित किया है। वर्तमान शोषण के विद्रूतम स्वरूप यानी भ्रष्टाचार को कभी खत्म न होने वाला मानकर, उसके विरोध के स्थान पर उसे जीवन शैली का अंग बना लिया गया है ,जबकि प्रेमचंद के समय गिने –चुने ही सही ,आर्थिक शोषण का विरोध करने वाले पात्र अवश्यक सामने आते हैं।

यह बात अलग है कि उनके विरोध के स्वर को आतंक से दबा दिया जाता है। जो शोषण के विरोध में कानून बधारता है, हीले –हवाले करता है उस पर तिगुनी चौगुनी नालिष ठोंक दी जाती है, बाकी नुकसान अलग। 'विध्वंस'की संतानहीन भुनगी जमींदार के चपरासी के पूछने पर कि क्यों री दाने भुन गये ? 'स्वाभिमान से जवाब देती है ' भून तो रहीं हूं.....परिणाम स्वरूप भाड़ खोद दी जाती है , झोपड़ी में आग लगा दी जाती है तब भुनगी उसी आग में कूदकर प्राण दे दती है। प्रेमाश्रम का चेतू जब तीर्थयात्रा के लिए हल पीछे पांच रूपया चंदा लगाए जाने का विरोध करता है तो उसे इतना अधिक पीटा जाता है कि वह मर जाता है। 'प्रेमाश्रम' के ही पुलिस के दो सिपाही दुखरन भगत को टेनिस कोर्ट की घास छीलने को बाध्य करते है। उसके मना करने पर उसे जोर से धक्का देकर जूते लगाते है।'कायाकल्पय के मजदूरों द्वारा बेगारी से मना करने पर अंग्रेजी कैम्प की फौज उन्हें गोलियों से भून देती है। राजा के तिलकोत्सव में छाती फाड़ कर काम करने वालों को जब भोजन नसीब नहीं होता तो एक जवान कह देता है ' हम तो बिना खाये आठा दिन से धास दे रहे हैं ,घोड़े क्या बिना खाये एक दिन भी न दौंड़ेंगे ? ठाकुर साहब ने झपट कर चार पांच हन्टर सड़ाप सड़ाप लगा दिए। इस संदर्भ के वर्तमान में इक्का दुक्का दृश्य दिखाई भी देते हैं , आवाज उठाने वालों को मानसिक दृष्टया आत्महत्या की सीमा तक परेशान किया जाता है अथवा गुपचुप तरीके से मार कर मामला रफा दफा कर दिया जाता है।

निष्कर्ष – आर्थिक शोषण का यह दुष्चक्र प्रेमचंद के जमाने से लेकर आज तक निरंतर बढ़ती विकृतियां के साथ मौजूद है। शिक्षा और तकनीक के बढ़ते दुष्प्रयोग से ये विकृतियां अनेक प्रचलित रूपों में उजागर हो रही है जो चिंतनीय है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रेमचंद – रंगभूमि सरस्वती प्रेस, दिल्ली, 1998
2. प्रेमाश्रम – भाग 1,2 का भारती भाषा प्रकाशन दिल्ली 1987
3. कायाकल्प – भाग 1,2 का भारती भाषा प्रकाशन दिल्ली 1987
4. गबन – हंस प्रकाशन इलाहबाद 1985
5. गोदान – सरस्वती प्रेस दिल्ली 1985
6. कर्मभूमि – सरस्वती प्रेस दिल्ली 1985

गुजराती हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता एवं शिक्षण निष्पादन का अध्ययन

डॉ. लाल चंद पटेल *

प्रस्तावना – भाषा व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। व्यक्ति अपने अन्तस को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करना चाहता है। इसी अभिव्यक्ति के साथ उसके अन्दर छिपी अनन्त शक्ति अभिव्यक्ति होती है। भारत एक बहुभाषी देश है जहाँ भिन्न-भिन्न जाति, समुदाय व वर्गों के लोग निवास करते हैं। भारत में एक बहुत बड़ा वर्ग उन लोगों का है जिनकी मातृभाषा हिन्दी है यही कारण है कि हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा घोषित किया गया है। देश के अधिकतर प्रान्तों में हिन्दी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है जिनमें से एक है गुजरात। प्रस्तुत शोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता के आधार पर उनके शिक्षण निष्पादन का पता लगाना था।

शोध उद्देश्य –

1) गुजरात के हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता एवं शिक्षण निष्पादन में संबंध का पता लगाना।
2) गुजरात के हिन्दी भाषा शिक्षकों की उच्च व निम्न स्तरीय भाषाई दक्षता के आधार पर उनकी शिक्षण दक्षता का पता लगाना।
3) गुजरात के हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता एवं हिन्दी शिक्षण निष्पादनता के शैक्षिक निहितार्थ का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ –

1) गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2) गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3) गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता और शिक्षण निष्पादन में कोई संबंध नहीं है।

शोध अध्ययन का परिसीमन –

1) यह शोधकार्य भौगोलिक दृष्टि से गुजरात के साबरकांठा एवं अहमदाबाद जिलों तक सीमित है।
2) प्रस्तुत शोधकार्य में गुजरात के अनुदानित गुजराती माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श – प्रस्तुत शोधकार्य में गुजरात के अनुदानित गुजराती माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत 100 शिक्षकों का चयन किया गया।

उपकरण –

1. भाषाई दक्षता प्रश्नावली
2. शिक्षण निष्पादन अवलोकन प्रपत्र

शोध में प्रयुक्त शब्दों की क्रियात्मक परिभाषाएँ –

1) **भाषाई दक्षता –** यहां भाषाई दक्षता का संबंध गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की हिन्दी भाषा में व्याकरणिक, शाब्दिक, संरचनात्मक, अवबोध एवं अभिव्यक्ति दक्षता अर्थात् योग्यता से है।
2) **हिन्दी शिक्षक –** यहां हिन्दी शिक्षक से तात्पर्य गुजरात में माध्यमिक स्तर पर हिन्दी को द्वितीय भाषा के रूप में पढ़ाने वाले उन शिक्षकों से है, जिनका जन्म गुजरात में हुआ है, जो वही पढ़े लिखे, प्रशिक्षित हुए तथा विद्यालय में कार्यरत हैं।
3) **अध्यापन निष्पादन –** इससे तात्पर्य हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन (क्षमता/योग्यता) से है जो उनके शिक्षण व्यवहार में परिलक्षित होता है। इसमें उनके स्वयं के भाषा कौशल, शिक्षण कौशल यथा श्रवण, कथन, पठन, लेखन एवं सम्प्रेषण कौशल तथा व्याकरण, रचना, गद्य, पद्य, नाटक, संवाद आदि के विधिवत शिक्षण से हैं। इसमें संसाधनों के प्रयोग कौशल तथा विभिन्न शिक्षण उपागमों के प्रयोग भी सम्मिलित है।

शोध विधि –

1) **विधि –** प्रस्तुत शोधकार्य की प्रकृति को ध्यान में रखकर मानकीकृत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकी तकनीक –

1. प्रतिशत
2. मानक विचलन
3. 'टी' टेस्ट
4. सह-संबंध

दत्त विश्लेषण – 'भाषाई दक्षता' एवं 'शिक्षण निष्पादन' से सम्बन्धित प्राप्त दत्तों का विश्लेषण निम्नलिखित तीन आधारों पर किया गया-

1. गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता के मध्य अन्तर।
2. गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन मध्य अन्तर।
3. गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता एवं शिक्षण निष्पादन के मध्य सह सम्बन्ध।

गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता (Linguistic Competence) के मध्य अन्तर – इस विश्लेषण के अन्तर्गत ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों के प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन की गणना की गई जो सारणी संख्या 1 में दर्शाया गया हैं-

*व्याख्याता, विद्यानगरी एम.एड. कॉलेज, हिम्मतनगर (गुजरात) भारत

तालिका संख्या : 1 गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों की 'भाषाई दक्षता' के मध्यमान में अन्तर की सार्थकता

क्र.	समूह	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या (N)	मध्यमान अन्तर	df	t
1.	ग्रामीण	34.2	1.41	50	6.38	98	3.8**
2.	शहरी	40.62	9.37	50			

**0.05 स्तर पर सार्थक तालिका मूल्य 1.98*

***0.01 स्तर पर सार्थक तालिका मूल्य 2.61*

NS *असार्थक*

तालिका संख्या 1 के अनुसार ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों की भाषाई दक्षता के मध्यमान की तुलना हेतु 't' मान का परिकलन करने पर 't' मान 3.86 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर पर सार्थक है। अर्थात् ग्रामीण गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता, शहरी गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों से सार्थक रूप से भिन्न है। मध्यमान प्राप्तांकों को देखने पर भी स्पष्ट होता है कि शहरी गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता, ग्रामीण गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों से तुलनात्मक रूप से अधिक है। अत: यह परिकल्पना कि 'गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है,' अस्वीकार की जाती है। इसका कारण यह हो सकता है कि शहरी क्षेत्र के गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों को अधिक भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। उन्हें छात्रों के समक्ष पूर्ण तैयारी के साथ जाना पड़ता है। उन्हें अधिक संदर्भ साहित्य, शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध होती है।

गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन (Teaching Performance) में अन्तर – गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन अन्तर को सारणी संख्या 2 में दर्शाया गया हैं–

तालिका संख्या : 2 गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों के 'शिक्षण निष्पादन' के मध्यामन में अन्तर की सार्थकता

क्र.	समूह	मध्यमान Mean	मानक विचलन (S.D.)	संख्या (N)	मध्यमान अन्तर	df	t
1.	ग्रामीण	50.05	9.29	20	7.90	38	2.63**
2.	शहरी	57.95	9.27	20			

**0.05 स्तर पर सार्थक तालिका मूल्य 2.02*

***0.01 स्तर पर सार्थक तालिका मूल्य 2.70*

NS असार्थक

तालिका संख्या 2 का अवलोकन करने पर ग्रामीण एवं शहरी गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन के मध्यमान में अन्तर की तुलना हेतु 't' मान का परिकलन करने पर 't' मान 2.63 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है। अर्थात् ग्रामीण गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों का शिक्षण निष्पादन शहरी गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों से सार्थक रूप से भिन्न है। मध्यमान प्राप्तांकों को देखने पर स्पष्ट होता है कि शहरी गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों का शिक्षण निष्पादन ग्रामीण गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों से तुलनात्मक रूप से अधिक है। अत: यह परिकल्पना कि गुजराती भाषी ग्रामीण एवं शहरी हिन्दी भाषा शिक्षकों के शिक्षण निष्पादन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अस्वीकार की जाती है। इसका कारण यह हो सकता है कि शहरी गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों को भौतिक और शैक्षणिक सुविधाएँ अधिक उपलब्ध होती हैं। उनकी बुद्धि लब्धि स्तर उच्च है इत्यादि।

गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों भाषाई दक्षता (Linguistic Competence) एवं शिक्षण निष्पादन (Teaching Performance) के मध्य सहसम्बन्ध – इस विश्लेषण के अन्तर्गत गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकेां की भाषाई दक्षता एवं शिक्षण निष्पादन में सम्बन्ध से सम्बन्धित दत्तों का विश्लेषण किया गया।

तालिका संख्या : 3 गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की 'भाषाई दक्षता' एवं 'शिक्षण निष्पादन' के मध्य सहसम्बन्ध

समूह	N	r	सार्थकता
समग्र चयनित प्रतिदर्श	40	0.081	असार्थक

सारणी संख्या 3 का विश्लेषण करने पर स्पष्ट है कि समग्र चयनित प्रतिदर्श की 'भाषाई दक्षता' एवं 'शिक्षण निष्पादन' के सहसम्बन्ध का मान 0.081 प्राप्त हुआ। तात्पर्य है कि गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों के 'भाषाई दक्षता' एवं 'शिक्षण निष्पादन' में कोई सहसम्बन्ध नहीं है एवं असार्थक है। भाषाई दक्षता के उच्च या निम्न होने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: यह परिकल्पना कि गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता एवं शिक्षण निष्पादन में कोई सम्बन्ध नहीं है स्वीकार की जाती है।

शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications) – भाषा अधिगम प्रक्रिया त्रिध्रुवी प्रक्रिया है शिक्षक शिक्षार्थी पाठ्य सामग्री कक्षा में शिक्षक नायक का अभिनय करता है। अच्छी भाषा सिखाने के लिए भाषा दक्षता अति आवश्यक है शिक्षक जिस स्तर की भाषा जानता है उसी प्रकार की भाषा छात्र सीखते है। अपने जीवन में निष्पादन का अमूल्य महत्व है। हम किसी भी व्यक्ति के कार्य करने की क्षमता का मापन उसके निष्पादन के द्वारा करते हैं–

1) प्रस्तुत शोध अहिन्दी भाषी प्रदेश में कार्यरत अहिन्दी भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों से सम्बन्धित होने के कारण प्रस्तुत शोध से शिक्षा से सम्बन्धित आयोगों, समितियों, संगठनों को भाषा शिक्षकों की भाषाई दक्षता की जानकारी प्राप्त होगी और अपेक्षित परिवर्तन या सुधार लाने की समीक्षा करने का अवसर मिलेगा।

2) 'शिक्षक कभी साधारण नहीं होता बल्कि प्रलय और निर्माण उसकी गोद में पलते हैं।' चाणक्य की इस उक्ति को चरितार्थ करने के लिए शिक्षक को अपने कार्य में दक्ष होना आवश्यक है एक भाषा शिक्षक तभी दक्ष बन सकता है जब वह जिस भाषा से सम्बन्ध रखता है उस भाषा पर उसका प्रभुत्व हो। प्रस्तुत शोध से गुजराती भाषी हिन्दी भाषा शिक्षकों को अपनी 'भाषाई दक्षता' परखने का अवसर मिलेगा और भाषा में सृजनात्मकता लाने के लिए प्रेरित होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Best, J.W. (1961). Research in Education Englowood Chifts. N.J. Prentice Hall, Inc.
2. Kehan, Best, J.W. (2002). Research in Education. New York : Prentice Hall Inc.
3. सुखिया, एस.पी., महरोत्रा, पी.वी., महरोत्रा, आर.एन. (1979). शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर।
4. सक्सेना, एन.आर., मिश्रा, बी.के., मोहन्ती, आर.के. (2003). फण्डोमन्टल ऑफ एज्यूकेशनल रिसर्च. मेरठ : सूर्या पब्लिकेशन।
5. सिंह, ए.बी. (सं.) (1983). अन्य भाषा शिक्षण के कुछ पक्ष. आगरा: केन्द्रीय हिन्दी संस्थान।

निराला के काव्य में निहित प्रगतिशील चेतना-एक अध्ययन

डॉ.सुनीता यादव *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोधपत्र में निराला के काव्य में निहित प्रगतिशील चेतना पर विचार किया गया है। महाप्राण निराला, छायावाद के प्रमुख चार स्तम्भों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। निराला के काव्य में जो प्रवृतियाँ देखने को मिलती हैं वे परम्परा से अलग एक नवीन मार्ग पर अग्रसर दिखाई पड़ती हैं। निराला ने प्रचलित काव्य प्रवृतियों और रुढ़ियों से काव्य को मुक्त किया है। निराला की कविताओं में छायावाद एवं प्रगतिवाद दोनों की प्रवृतियाँ परिलक्षित होती हैं। प्रगतिशील कविता का उद्देश्य समाज सापेक्ष है। कविता को समाज से जोड़ने और प्रगतिशील तत्वों से युक्त करने में निराला का योगदान उल्लेखनीय है।

प्रस्तावना – छायावाद के पश्चात् प्रगतिशील कविता का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार कविता निरन्तर बदलती रहती है, वह प्रगतिवाद के पश्चात् प्रयोगोन्मुख और प्रयोगोन्मुखता की स्थितियों को पार करके सामाजिक प्रतिबद्धता निभाती हुई आज हमारे सामने हैं कविता को समाज से जोड़ने और प्रगतिशील तत्वों से युक्त करने में निराला जी का योगदान उल्लेखनीय है। हिन्दी काव्य जगत में निराला को प्रथम प्रगतिवादी कवि के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

प्रथम प्रगतिशील कवि निराला का जन्म 1896 ई. में पश्चिम बंगाल प्रांत के महिशादल के मेदिनीपुर जिले में हुआ था। 'निराला का व्यक्तित्व विराट था साथ ही उनका वैचारिक आयाम विराटत्व का सतत अन्वेशी था उसी प्रकार उनका कृतित्तव भी बहुमुखी प्रतिभा का द्योतक विराट और महान है'[1]। निराला का काव्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। विषय और शैली की दृष्टि से उनका काव्य बहुआयामी रहा हैं।

निराला के काव्य में सामाजिक बोध, राष्ट्रीयता, सामाजिक विद्रोह, नैतिक, सांस्कृतिक, एवं, मानवमूल्य, रहस्यवाद एवं दर्शनिकता, प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ प्रगतिवादी चेताना थी परिलक्षित होती है। 'जिस समय प्रगतिवादी काव्य प्रारम्भ हुआ उस समय देश में अंग्रेजों के विरूद्ध स्वाधीनता संग्राम का आंदोलन चल रहा था। अंग्रेजों के साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद की नीति के विरूद्ध प्रगतिवाद तनकर खड़ा रहा'[2]। इसीलिए प्रगतिवादी काव्य धारा में सामाज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद के विरोधी विचार परिलक्षित होते है।

प्रगति विचारधारा से प्रेरित कवियों ने सामाजिक विषमता पर आक्रोश व्यक्त किया, शोषण का विरोध किया तथा गरीब एवं दीनहीन दशा का चित्रण करते हुए असहाय व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। निराला ने जो प्रगतिवादी कविताएँ लिखी है, उनमें विशेष रूप से छ: प्रवृतियाँ उभर कर सामने आती हैं।

प्रगतिवादी सामाजिक कविताएँ– निराला की प्रगतिशील सामाजिक कविताओं में 'अनामिका' की तोड़ती पत्थर कविता में समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है कविता का लक्ष्य ही यह है कि कवि इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूरीन के मन की करूणा को प्रकट करना चाहता है। वस्तुत: इलाहाबाद जैसे शहर की भूमिका में पत्थर तोड़ती हुई गरीब मजदूरनी की हालत पर जिस वातावरण का निर्माण हुआ है वह समाज के आर्थिक अभाव का ढाँचा प्रस्तुत करता है–

'वह तोड़ती पत्थर/देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर/नही छायादर पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार/गुरू हथौड़ा हाथ, करती बार-बार प्रहार/ देखा मुझे उस दृष्टि, से जो मार खा कर रोई नही/'[3]

'बेला' की कुछ गजलों में भी निराला की सामाजिक प्रगतिशीलता को देखा जा सकता है– 'भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है/देश को मिल जाएँ वो पूँजीतुम्हारी मिल में है।'[4]

इसी तरह निराला ने 'भिक्षुक' नामक कविता में भी एक गरीब भिखारी की दयनीय दशा का चित्रण किया है। उसके साथ उसके बच्चे सड़क पर पड़ी झूठी पतलों को चाट रहे हैं। कवि की पूरी संवेदना उस भिक्षुक के साथ है 'वह आता/दो टूक कलेजे के करता पछतावा पथ आता/पेट पीठ दोनों मिलकर है एक/ले हाथ चल रहा लकुटियाँ टेक/मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को/मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता।'[5]

'कुकरमुत्ता' मूलत: वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष का काव्य है कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है तथा गुलाब पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक है।

'अबे सुन वे गुलाब/भूल मत जो पाई खुशबू/रंगों आब/खून चूसा स्वाद का तूने अशिष्ट/डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट।'[6]

'नये पत्तेय की कविताओं में जनता के विविध शोषकों का रूप खुलकर स्पष्ट हुआ हैं।'डिप्टी साहब आए कविता में जनता को प्रचलित बेगारी और मुक्तखोरी का जमकर विरोध करते दिखलाया गया है। इस प्रकार निराला की कविताओं में समाजिक प्रगतिशीलता का स्वर अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है।

आर्थिक विषमता –निराला ने अनेक ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं, जिनमें आर्थिक विषमता को प्रगतिशील शैली में प्रकट किया गया है, 'बेला' संग्रह की 'भीख मांगता है अब राह पर' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार 'अणिमा' में संग्रहित 'चुंकि यहाँ दाना है।' शीर्षक कविता में भी व्यंग्यात्मक शैली में आर्थिक विषमता को उजागर किया गया है।इस कविता में पूंजीवादी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए निराला ने कहा है कि पैसे पर भी धन पनप रहा है प्रेम पल्लवित होता है ओर कविता पुष्पित होती है—

'चुंकि यहाँ खाना है/इसलिए/दीन है, दीवाना है/लोग हैं, महफिल है/नग्मे है/ताज है, दिलदार है और दिल है/ शमा है, परवाना है।'[7]

पूंजीवादी सभ्यता पर एक और अन्य व्यंग्य 'गीतगुंज' पुस्तक में 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है' शीर्षक कविता में भी किया गया है, निराला ने

* अतिथि विद्वान (हिन्दी) शासकीय महाविद्यालय, इछावर जिला सीहोर (म.प्र.) भारत

मानवता का प्रचार करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि जब तक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को मनुष्य नहीं समझेगा, तब तक पृथ्वी पर सामाजिक जीवन का स्वस्थ विकास नहीं हो सकेगा। अत: उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है– 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है, कैसा तन मन का जोड़ा है/किस साधन का स्वाँग रचाया, इस बाधा की बनी त्वचा/यह पक पक ऐसा फूटा है जैसे साबुन का फोड़ा है।'[8]

3. राजनीतिक व्यंग्य – निराला ने राजनीतिक गतिविधियों पर भी तीखे व्यंग्य किए हैं, उनकी प्रसिद्ध कविता 'काले–कालेय बादल छाये न आये वीर' 'जवहार लाल नेहरु' की राजनीति से परिपूर्ण कविता है। जिसमें नेहरु जी की राजनीति पर व्यंग्य किया है–

'महगांई की बाढ़ बढ़ आई, गांठ की छूटी गाड़ी कमाई/भूखे नंगे खड़े शरमाये न आये वीर जवाहर लाल।'[9]

'बेला में जो शोषाणवृति के बादशाह और दूसरे के शोषण का लहू पीने वाले शोषकों पर बड़ा तीखा प्रहार करते हुए लिखते हैं–

'खुला भेद, विजयी कहलाये हुए जो/लहु दूसरे का पिये जा रहे हैं।'[10]

'नये पत्ते काव्य संग्रह का प्रकाशन 1946 में हुआ है इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में सामाजिक एवं राजनीतिक व्यंग्य परिलक्षित होते हैं। निराला के इस संग्रह की कविता में अन्याय शोषण की बड़ी तीखी अलोचना करते है। राजनीति, एवं समाज में जहाँ कही भी बुराइयाँ नजर आती है, तो वे व्यंग्य की दुधारी तलवार से अच्छी खबर लेते है। निराला ने देश की राजनीति पर भी व्यंग्य किया है और अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। 'भारत जय विजय कर' शीर्षक कविता में उनकी प्रगतिशील राष्ट्रीयता को आसानी से देखा जा सकता है।

4. धार्मिक व्यंग्य– सामाजिक जीवन में अनेक धार्मिक रुढ़िया व्याप्त है, निराला ने इन रुढ़ियों पर जमकर प्रहार किया है। उनकी 'आरे गंगा के किनारे' कविता में यह स्थिति देखी जा सकती है, उसमें धार्मिक अन्धविश्वास का प्रच्छन्न व्यंग्य है। 'दान' शीर्षक कविता में भी इसी प्रकार का व्यंग्य है, निराला ने 'सरोज स्मृति' के अर्न्तगत भी कतिपय धार्मिक रुढ़ियों को जीवन से निकाल देना चाहते थे जो हमारे ऊपर न केवल बोझ है, अपितु हमारी समस्त चेतना को आत्मसात किए हुए है।

'कान्यकुब्ज कुल कुलांगार/खाकर पत्तल में करे, छेद इन के कर कन्या अर्थ खेद/इस विशाल बेलि में विष ही फल, यह दग्ध मरूस्थल नही सुजल।'[11]

5. नारी चित्रण– सामान्यत: निराला का समस्त काव्य नारी की स्वतंत्रता का पोषक है, उन्होनें प्रगतिशील दृष्टि के आधार पर ही कुछ ऐसी कविताँ लिखी हैं, जो नारी के उत्थान से सम्बन्धित है, 'वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी तथा 'वनबेला' में निराला ने विवाह विषयक सामाजिक रुढ़ियों का चित्रण किया है, ऐसा ही चित्रण जिसके मूल में नारी उत्थान की भावना काम कर रही है, निराला की 'सरोज स्मृति' में देखा जा सकता है वे किसान की 'नयी बहु की ऑखे जैसी' कविता में भी सीधी सरल ग्रामीण नारी का सौन्दर्याकंन करने में पीछे नहीं रहे हैं। सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति रचना में नारी प्रेम की आदर्श की प्रतिष्ठा की है, जो साम्राज्यों को तिलांजली दे सकती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि निराला ने अनेक प्रगतिशील कविताओं की सृष्टि करके नारी के उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया है।

6. मानवतावादी पक्ष– निराला आद्यन्त मानवतावादी कवि थे, उनके इस मानवतावाद को हम उनकी प्रगतिशील कविताओं में भी देख सकते हैं, निराला की भावना सामाजिक और राष्ट्रीय होते हुए भी अन्तत: मानवतावाद में परिणत हो गयी है। निराला की नजर में सुखी विश्व का स्वरुप जिसमें समस्त स्नेह और समानता के रेशमी पाश में बँधे हो, जहाँ ईर्ष्या–द्वेष और ऊँच–नीच के भेदभाव समाप्त हो गये हो तथा मनुष्य–मनुष्य को प्यार करता हो, ऐसी मानवता समाई हुई है। 'आराधना' के एक गीत में उन्होनें मानवतावादी स्वर में स्पष्ट लिखा है–

'ऊँट बैल का साथ हुआ है। कुत्ता पकड़े हुए जुआ है।'[12]

वस्तुत – इन पंक्तियों में मानवतावादी स्वर है। निराला जी ने मानव समाज के उत्थान के लिये ईश्वर से भी प्रार्थना की है। 'अणिमा' के अन्तर्गत ऐसी कविताएँ है, जो निराला के इसी स्वरुप को स्पष्ट करती है। वास्तिवकता यह है कि निराला का मानवतावाद व्यक्ति केन्द्रित ना होकर समाज केन्द्रित है वे छोटे से छोटे मनुष्य को सुखी सम्पन्न और न्याय का प्रतीक देखना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होनें सामाजिक जीवन में व्याप्त विकृतियों को समाप्त करने का बीडा उठाया। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि 'निराला के गीतों में युग–युग से प्रताड़ित और प्रवंचित मानवता पर होने वाले वज्र प्रहार की प्रतिक्रिया दिखलाई देती है। मानवता को कायरता और कामपरता से जगाकर नये युग के निर्माण की कविताएँ करती है। निराला प्राचीन रुढ़ियों का विरोध करके चले है। इस विरोध में नये युग निर्माण की प्रगतिशील कामना दिखलाई देती है।'[13]

निष्कर्षत:– यह कह सकते हैं कि निराला छायावादी पीढ़ी के होते हुए भी पूरी तरह प्रगतिशील कवि थे। उनकी प्रगतिशीलता समाज, जीवन, मनुष्य, राजनीति, धर्म जैसे विषयों से जुडकर अभिव्यक्त हुई है। कविता के अभिव्यक्ति पक्ष में भी निराला ने अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण को अपनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. निराला काव्य में मानवमूल्य और दर्शन – डॉ देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी
2. राग–विराग–रामविलास शर्मा पृ.37
3. तोइती पत्थर–निराला
4. बेला–निराला
5. भिक्षुक–निराला
6. आधुनिक हिन्दी काव्य सरिता–डॉ उमेश चन्द्र मिश्र 'शिव' पृ. 85
7. अणिमा–निराला पृ. 103
8. आराधना–निराला पृ. 72–73
9. जवहारलाल 'बेला'–निराला पृ. 54
10. बेला–निराला पृ. 68
11. सरोज स्मृति–निराला
12. आराधना–निराला पृ. 72
13. कविता समय–सं. डॉ चन्दकान्त पाटील पृ. 12

****

गुप्त जी के काव्य जय भारत में मानवतावाद

छोटे लाल गुप्ता *

शोध सारांश – आधुनिक युग के साहित्य साधकों में मैथिलीशरण गुप्त का नाम अत्यन्त आदर से लिया जाता हैं। वे अपने युग के सर्वाधिक मानतावादी कवि होने के कारण काव्य जगत में अन्य कवियों से श्रेष्ठ आसन पर आसीन हो सके। उन्होंने द्विवेदीयुग से साहित्य सेवा का श्री गणेश किया और सातवें दशक तक साहित्य साधना करते रहे।जातीय गौरव और मानवतावादी चेतना को अभिव्यक्ति देने के कारण वे विशुद्ध मानवतावादी महाकवि कहलाए।

प्रस्तावना – गुप्त जी की साकेत और जयभारत जैसे सांस्कृतिक, चंद्रहास और शक्ति जैसे पौराणिक, रंग में भंग और काबा और कर्बला जैसे ऐतिहासिक, भारत–भारती और स्वदेश–संगीत जैसे राष्ट्रीय, हिन्दू और यशोधरा जैसे धार्मिक, अजित जैसे सामाजिक तथा विश्व–वेदना और पृथ्वीपुत्र जैसे काव्य–ग्रंथों में उदार मानवतावादी विचारधारा का प्रवाह अप्रच्छन्न रूप से दृष्टिगोचर होता है। गुप्त जी ने लगभग पचासकृति–कलियों को राष्ट्र–भारती के श्री–चरणों में अर्पित किया है। अपने समस्त रचनाकाल में उन्होंने अपनी सारस्वत साधना का प्रमुख आकर्षण मानव को स्वीकार किया और सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की महती और आदर्श भावना से अनुप्राणित होकर काव्य की सर्जना करके अपने कविधर्म को सार्थक किया। उन्होंने मानव–जीवन के सभी पक्षों पर अपने उद्गार व्यक्त किए और मानवता का पथ प्रशस्त किया। यद्यपि प्रसाद का दर्शन–गांभीर्य, निराला की विराट कल्पना, पंत का सौंदर्य– बोध तथा महादेवी की अश्रुसिक्त प्रतीक–भावना मैथिलीशरण जी में नहीं है, फिर भी वे जीवन के विविध रूपों के, मानव के रागात्मक संबंधो के कवि हैं। अपने विपुल परिणाम के साहित्य अदभुत प्रबंध–कौशल, भाषा के निर्माण और विकास तथा जीवन को समग्रता में–विश्व में विषम विसदृशताओं को एकरस होकर–ग्रहण करने की क्षमता के कारण, उत्तर भारत की जनता की तीन पीढ़ियों की युग–चेतना को प्रभावित करने वाला भारतीय संस्कृति का अनन्य यह कवि निस्संदेह महाकवि है।[1]

जय भारत गुप्त जी द्वारा महाभारतीय प्रसंगों पर लिखा गया प्रबंध संकलन है। इसमें नहुष के चरित्र से लेकर पांडवों के स्वर्गारोहण तक की कथा को एक ही स्थान पर संग्रहित किया गया है। गुप्त जी ने इस काव्य की रचना एक ही समय पर न कर, विविध प्रसंगों का भिन्न–भिन्न कालों में प्रणयन किया है, फलत: कथानक में क्रमबद्धता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। फिर भी जय भारत अपने संपूर्ण रूप में जैसा भी है, हृदयस्पर्शी और ग्राह्य है। गुप्त जी के इस प्रबंध की सृजन मानवता की उर्वरा भूमि पर हुआ है। इसके समस्त पात्र, साधु और असाधु, प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से मानवता की भावना से प्रभावित हैं। इसे गुप्त जी के मानवतावादी स्वरूप का ही प्रभाव समझना चाहिए कि उन्होंने दुर्योधन जैसे खलनायक को भी परिस्थितियों के ऐसे परिवेश में उपस्थित किया है कि जय भारत के पाठको में उसके प्रति अनायास ही सहानुभूति और करूणा जाग उठती है। जयभारतीय सुयोधन महाभारतीय दुर्योधन की भाँति नितांत क्रूर और दुष्ट शासक नहीं है? वरन एक स्वाभिमानी और तेजस्वी कौरवाधीश है। कर्ण, शकुनि, दु:शासन आदि खल पात्रों के चरित्रांकन में भी कवि की मानतावादी प्रवृत्ति ने बड़ी उदारता बरती है। वास्तव में **'आज के युगधर्म है मानववाद और गुप्त जी ने महाभारत के पात्रों का पुनर्निमाण इसी के आधार पर किया है।'**[2] युधिष्ठिर तो गुप्त जी के सर्वाधिक प्रिय पात्र हैं। युधिष्ठिर के रूप में कवि ने भारत के स्वरूप की कल्पना की है। **'जय भारत अर्थात भारत की जय, युधिष्ठर की ही जय है। जय भारतकार ने युधिष्ठिर को ऐसे उदात्त, आदर्श और भव्य रूप में चित्रित किया है कि वे समस्त मानवता के अग्रगामी प्रतिनिधि के रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते है। और मानवता की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मानवत्व की जय के अधिकारी बनते हैं।'**[3]

गुप्त जी भारतीय संस्कृति के हिन्दू धर्म के और आदर्श मानवीय संस्कारों के आख्याता कवि थे। वे तुलसी की भाँति राम के अनन्य सेवी थे। उन्हें एक ऐसे मानव की प्रतिष्ठापना ही प्रिय थी, जिसका आदर्श मर्यादा–पुरूषोत्तम राम का आदर्श हो। वे रामनुजाचार्य के विशिष्टादवैतवाद से अत्यन्त प्रभावित थे, जिसके अनुसार सभी जीवात्माएँ उस एक परमात्मा रूपी ब्रहम की अंश है। गुप्त जी ने जय भारत के एकलव्य प्रकरण में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है–

'सुनो तात, हम सभी एक हैं भव–सागर के तीर।
हो शरीर–यात्रा में आगे पीछे का व्यवधान,
परमात्मा के अंश रूप है आत्मा सभी समान।'[4]

गुप्त जी ने जीव और ब्रहम् के पार्थक्य को भी सर्वथा अस्वीकार नहीं किया हैं। उनकी नर–नारायण भावना उनके इस विचार को प्रभावित करती है जहाँ वे नर–नारायण के अभेद में नहीं, बल्कि भेद में सुखोपलब्धि का अनुभव करते हैं। यथा–

'हे नारायण क्या और कहूँ
तू निज नर मात्र मुझे रखना,
क्या नहीं एक से दो अच्छे
लीला–रस रहे जहाँ चखना?'[5]

गुप्त जी की मानवतावाद एक प्रकार से धर्म–प्रेरित मानवतावाद के रूप में रूपायित हुआ है। इस प्रकार कुल–धर्म और युग–धर्म के संयुक्त प्रभाव से कवि के जिस जीवन–दर्शन का निर्माण हुआ उसे हम धार्मिक मानववाद या सही शब्दों में वैष्णव मानववाद कह सकते हैं। उनकी नर–नारायण भावना का उत्स भागवत में पाया जाता है जहाँ नर और नारायण को एक ही जीवन–तत्व की दो आकृतियों के रूप में रखा गया है। इस भागवतीय विचारधारा से प्रभावित और प्रेरित होने वाले गुप्त जी के मानवतावाद को विचारक डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भारतीय मानवतावाद की सज्ञां दी है।[6]

अब हम जय भारत की मानवतावादी पृष्ठभूमि पर विचार करेंगे। मानववाद, राष्ट्रवाद और गाँधीवाद की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों का संगम–स्वर ही मानवतावादी स्वर है। आलोच्य काव्य में इन तीनों प्रवृत्तियों का विकास देखने में आता है। मानव की श्रेष्ठता और उसके अद्वितीय शौर्य का वर्णन मात्र ही नहीं, मानव जीवन के विविध व्यापारों और रागात्मक संबंधों की सम्यक व्याख्या भी मानववाद के अन्तर्गत आती है। संस्कृति एवं अतीत के प्रति ममत्व तथा जन्मभूमि और उसके निवासियों के प्रति अपनत्व की भावना में ही राष्ट्रवाद की चरम परिणति होती है। जीव मात्र के प्रति ममता, सत्य–अहिंसा के आदर्शो के प्रति आस्था और मानवीय समानता की भूमिका पर ही गाँधीवाद का स्तंभ खड़ा होता है। जय भारत में गुप्त जी ने मानवतावाद की उपर्युक्त तीन प्रवृत्तियों के अतर्गत मानव–जीवन और मानव–जगत से संबंधित सभी प्रमुख तत्वों का समाहार कर लिया है।

जय भारत में कवि की मानवतावादी भावना के दर्शन प्रथमत: हमें नहुष के चरित्र में होते हैं। नहुष को गिरे हुए निराशा और दीन मनुष्य के रूप में चित्रित करना नहीं वरन उसे तो एक स्वाभिमानी और स्वावलम्बी मानव के रूप में प्रस्तुत करना ही गुप्त जी को अभीष्ट था। नहुष का स्वर्ग से पतन मानव की अंतिम पराजय का सूचक नहीं उसे भविष्य के लिए सावधान करने का हेतु है।[7] उनका नहुष हार मानने वाला इंसान

*शोधार्थी (हिन्दी विभाग) जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार) भारत

नहीं, वह तो संकल्पपूर्वक भावी विजय में अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त करने वाला साहसी और उद्यमी पुरूष है। यथा–

'फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ पुरूष मैं, चढ़के रहूँगा मैं।'[8]

अंतत: नहुष का संकल्प पूर्ण होता है और उन्हीं के वंशज पांडव स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं। गुप्त जी को मनुष्य की शक्ति पर अपार श्रद्धा है। मानव के अग्रगामी चरणों को और उसकी ऊर्ध्वगामी आकांक्षा को रोकने का दु:साहस कौन कर सकता है? उसने अपने अजेय साहस के बल पर ही महासागरों की छाती को रौंदा है और आकाश का हृदय चीरा है। स्वर्ग के देवता भी मनुष्य की इस विकासोन्मुख शक्ति पर विस्मित हैं।

जीवन के विविध व्यापारों एवं रागात्मक संबंधों पर भी जय भारत में यत्र-तत्र प्रकाश डाला गया है। द्रौपदी-सत्यभामा प्रकरण में गुप्त जी ने आधुनिक नारी को लक्ष्य करते हुए एक आदर्श गृहणी के स्वरूप को प्रकट किया है। पत्नी अपने पति को वश में किस प्रकार करे? जादू-टोने से? सत्यभामा के इस प्रश्न का उत्तर गुप्त जी ने द्रौपदी द्वारा अत्यंत सहज भाव से व्यक्त कराया है। पति को वश में करने के लिए पत्नी को समर्पण और सेवा का व्रत लेना पड़ता है, साधना और तपश्चर्या करनी होती है। नारी का समस्त सौंदर्य और श्रृंगार अपने प्रिय के लिए होता है। उनका समर्पण दर्परहित और विनयपूर्वक होना चाहिए।[9]

गुप्त जी ने जय भारत मानवी संबंधों के अनेक चित्र भ्रातृ-प्रेम, गुरू-भक्ति,मैत्री-निष्ठा आदि खींचे हैं। उन्होंनें अपने प्रत्येक पात्र को और पात्रों के परस्पर संबंधों को उनके नैसर्गिक मानवीय रूप से चित्रित किया है।

मानव-भावना के बाद अब हम जय भारत की राष्ट्रीय भावना पर विचार करेंगे। गुप्त जी ने जय भारत में युधिष्ठिर का और युधिष्ठिर के रूप में भारतवर्ष का जयघोष किया है। उनका भारत एक ऐसा भारतीय मानव है जो सत्य-अहिंसा के आदर्शों से अपने जीवन का सबल प्राप्त करता है और स्वाभिमान एवं सम्मान के साथ जीवन बिताता है। जय भारत में युधिष्ठिर के रूप में एक ऐसे ही भारत-नर को प्रस्तुत किया है। उनके जन्मभूमि-प्रेम की भावना का स्वरूप द्रष्टव्य है–

'जीव मात्र को ही निज जन्मस्थान प्यारा है।'[10]

मनुष्य का अपनी धरती के प्रति प्रेम होना अस्वाभाविक नहीं है। **'भूतल या कर्ममयी पृथ्वी के साथ अटूट बंधन यही मानव की मर्यादा है। यहीं के दु:ख-सुखों की गाँठ हमें खोलनी है और इसी धरती के सुखों से सुखी होना है। कवि का काव्य उस खगकुमार के समान है जो ललित स्वर में गाता हुआ व्योम में ऊपर उठता है, किन्तु जिनकी सुरीली तान का लक्ष्य अपना घोंसला ही है, मानो अपनी ही पत्नी और पुत्रों को रिझाना उसके गान की सफलता है।'[11]** अपनी जन्मभूमि के प्रति ममत्व और उसके निवासियों के प्रति अपनत्व की भावना ही राष्ट्रीयता है। राष्ट्रवाद और मानवतावाद एक-दूसरे के पूरक हैं। जो राष्ट्रवादी नहीं होता, वह मानवतावादी नहीं बन सकता और जो मानवतावादी होता है, वह राष्ट्रवादी तो होता ही है। ऐसी राष्ट्रवादिता के क्षेत्र में दर्प, अभिमान और स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार अहंकारशून्य और स्वार्थरहित राष्ट्रीयता का जब विकास होता है तो निस्संदेह उसकी सफल और चरम परिणति मानवतावाद में होती है। गुप्त जी के राष्ट्रीय मानवतावाद की यही पृष्ठभूमि है।

आज भी विश्व की सबसे बड़ी समस्या है- युद्ध का निराकरण। गुप्त जी ने जय भारत में धर्म-रक्षा निमित्त किए जाने वाले युद्ध का स्वीकृति तो अवश्य दी है, परंतु उन्होंनें हृदय से संघर्ष का समर्थन नहीं किया है। कौरव-पांडव-संघर्ष के पूर्व युधिष्ठिर का हृदय भर आता है और वे करूणार्द्र होकर कहने लगते हैं।-

'हे देव, जन के रक्त से रंजित न जन के हाथ हों,
मधु-मूर्ति बालक और वधुएँ, व्यर्थ ही न अनाथ हों।'[12]

धर्मराज युधिष्ठिर महाभारत के संघर्ष का दुष्परिणाम जानते थे। इसलिए उनके हृदय में क्षमा के भाव जगे और उन्होंने हरी-भरी पुण्यभूमि को मरघट में विघटित होने से रोकने के लिए युद्ध को टालना चाहा, लेकिन विस्फोट हुआ और भारतवर्ष की सारी शक्ति अपने ही रक्त में बह चली। महाभारत के इस युद्ध में गुप्त जी ने कुरूवंश का ही नहीं, समस्त आर्यावर्त का विनाश देखा। मानवतावादी कवि को यह विनाश, यह अत्याचार कैसे सहन होता? उन्होंने भगवान कृष्ण से गाँधारी द्वारा प्रश्न करवाया–

'मैं मानती हूँ दुरित-पूरित बंधु-वैर-विरोध था,
पर हाय, क्या अन्याय का अन्याय ही प्रतिरोध था?'[13]

गुप्त जी की मानवता का आग्रह है कि अन्याय का प्रतिरोध न्याय से और हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से हो। वे प्रेम को वैर की शुद्धि मानते हैं। इसी विचारधारा में गाँधीवाद का सार निहित है। गुप्त जी का मानवतावाद बाहरी शत्रुओं पर विजय की अपेक्षा मनुष्य के भीतरी शत्रुओं को परास्त करने का विश्वासी है। यथा–

'बाहर से भी बड़े विपक्षी अपने ही भीतर हैं,
उन पर वही विजय पाते जो आत्मनिरीक्षक नर हैं।'[14]

गाँधीवादी भावना का असली स्वरूप यह है कि सभी प्राणी समान हों। उनमें उँच-नीच का, बडे-छोटे का या अमीर-गरीब का भेद न हो। कर्ण, एकलव्य और हिडिंबा के चरित्रों द्वारा उन्होंने अपनी इस भावना को पुष्ट किया है। मानव ही नहीं, मानवेत्तर प्राणी भी सहृदयतापूर्वक अपनाए जाने के अधिकारी हैं। धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय उस समय करूणा से ओत-पोत हो उठता है, जब मृगी अपने शावक की रक्षा के लिए उनसे प्रार्थना करती है। वह मानव के दानवत्व को फटकारती हुई उसके देवत्व को जगाती है। वन-मृगी नामक प्रकरण में गुप्त जी ने इस प्रसंग का बड़ा ही हृदयद्रावक बिंब खींचा है। वन-मृगी कौंतेय से कहती है–

'जग के जीवों में जन्तु मानव है,
इनमें दोनों आ मिलें देव-दानव हैं।
मैं आज देव के चरण-शरण आई हूँ
पितृहीन दीन शिशु शेष भेंट लाई हूँ।'15

अत: मानव अपने भीतर की दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करके ही अपनी समस्त मानवता की जय का अधिकारी बन सकता है। संक्षेप में, गुप्त जी ने राष्ट्र की संस्कृति के मानवीय महाकाव्य जय भारत में मानवतावाद का जमकर गुणगान किया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. उमाकांत, मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृष्ठ सं0- 497
2. डॉ. नगेंद्र : आस्था के चरण, पृष्ठ सं0-576
3. डॉ. नगेंद्र : आस्था के चरण, पृष्ठ सं0-575
4. जय भारत, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) सं 2014 वि. पृष्ठ सं0-57
5. जय भारत, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) सं 2014 वि. पृष्ठ सं0-445
6. भूमिका मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ सं0-11
7. भूमिका मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ सं0-14
8. जय भारत, पृष्ठ सं0-22
9. जय भारत, पृष्ठ सं0-191
10. जय भारत, पृष्ठ सं0-11
11. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, भूमिका, पृष्ठ सं0-13
12. जय भारत, पृष्ठ सं0-313
13. जय भारत, पृष्ठ सं0-426
14. जय भारत, पृष्ठ सं0-431
15. जय भारत, पृष्ठ सं0-221

आर्य संस्कृति का संवाहक महाकाव्य – उर्मिला

डॉ. गायत्री वाजपेयी *

प्रस्तावना – आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के शीर्षस्थ कवि श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदर्शवादी चिन्ताधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने उन्हें वीररस के स्वदेश प्रेमी कवि के रूप में मान्यता दी हैं,[1] तो डॉ. नगेन्द्र ने उन्हें राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का कवि स्वीकार किया है।[2] उन्होंने लिखा है कि 'नवीन जी न छायावादी हैं और न स्वच्छंदतावादी, उनके काव्य का प्रमुख स्तर राष्ट्रीय सांस्कृतिक ही है।[3] मध्यप्रदेश एवं उत्तरप्रदेश को अपनी लीला व कर्मभूमि बनाने वाले नवीन जी का रचना फलक व्यापक है उन्होंने लगभग दर्जन भर से अधिक काव्यकृतियों का प्रणयन किया है जिसमें 'कुंकुम', 'रश्मिरेख', 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोवा स्तवन', 'उर्मिला', 'प्राणार्पण', सिरजन की ललकारें, 'नूपुर के स्वर', 'नवीन दोहावली', 'यौवन मदिरा', 'प्रलयंकर' आदि प्रमुख हैं। इन समग्र काव्य कृतियों में शीर्ष स्थान की अधिकारिणी कृति 'उर्मिला' है जिसे कवि ने 'परमकाव्य'[4] के रूप में स्वीकार किया है। इस कृति का सृजन कवि की दृष्टि में उनका सर्वोत्कृष्ट कार्य है जिसका शुभारंभ उनके यौवन काल में हुआ और पूर्णता सन्ध्याकाल में हुई। जिसके संबंध में कवि ने ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है – 'प्रशंसा कीजिये–यह है मेरा योग: कर्मसुकौशलम्'[5] सन् 1957 में प्रकाशित 'उर्मिला' महाकाव्य कवि ने कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के लेख 'काव्येर उपेक्षिता' तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेख – 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' से प्रेरित होकर लिखा और अपनी काव्यकृति में इस उपेक्षा संबंधी यत्र–तत्र संकेत दिये तथा यह उद्घोषित किया कि इसी उपेक्षा के निवारणार्थ उन्होंने अपनी लेखनी उठाई है ।

अस्तु उर्मिला के उज्जवल चरित्र प्रकाशन की आत्मिक स्पृहा एवं बाह्यप्रेरणा कवि तूलिका की आधार भूमि बनी और उर्मिला के उदात्त चरित्र का अनावरण तो कवि कलम से हुआ ही अपितु समग्र रामकथा का आकलन भी उर्मिला के सन्दर्भ में हुआ। तथा कवि ने उसे पुनरुत्थानवादी चेतना व सांस्कृतिक सन्दर्भ में जाँच परख कर प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य किया। कवि ने श्रीराम को त्रेतायुग की महान विभूति मानते हुए यह उद्घोषित किया कि त्रेतायुग सक्रान्ति काल है इस युग में आर्य संस्कृति ने एक नवीन करवट ली थी। श्री राम की वन यात्रा का मूलोद्देश्य आर्य संस्कृति की विजय पताका समस्त भूमण्डल पर फैलाना रहा है। कवि ने ग्रन्थ की भूमिका में इस तथ्य का संकेत देते हुये लिखा है कि –'राम की वनयात्रा एक महान अर्थपूर्ण आर्य संस्कृति प्रसार यात्रा थी। इस यात्रा को उन्होंने भारतीय संस्कृति प्रसारार्थ, एक महान यज्ञ के रूप में ग्रहण किया है।[6] 'उर्मिला' के तृतीय सर्ग में वे लिखते हैं –

आर्य सभ्यता आर्य ज्ञान औ
आर्यो की संस्कृत वाणी,
पराऽपरा विद्या का वैभव,
वेद भारती कल्याणी–
आर्यो की ये सब विभूतियाँ,
वन में प्रसारिता होंगीं,
जटिल कुटिल अज्ञान–भावना–
निश्चय पराजिता होंगी।[7]

कवि का मानना है कि राम का भूलोक पर अवतरण ही आज के भौतिकतावाद से त्रस्त एवं अर्थ को सर्वप्राधान्य वरीयता देने वाली चिन्तनधारा को त्याग, प्रेम एवं विश्वास का महत्व समझाने के लिए हुआ है। उनके राम इन तीन सूत्रों के समन्वित सन्देशको लेकर अवधपुरी से लंकापुरी तक यात्रा करते हैं। वे लिखते हैं–

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक
तत्व विचार सिखाने को,
आर्य राम अवतीर्ण हुए हैं,
जग को पन्थ दिखाने को।[8]

आर्य संस्कृति की इस सर्वोपरिता के प्रतिपादन का कार्य 'साकेत' के राम भी करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। गुप्त जी भी नवीन जी की भांति श्रीराम को आर्य संस्कृति का प्रतीक पुरुष निरूपित करते हुए लिखते हैं –

राम नहीं नर एक चिरतंन,
मनन पुरुष हिन्दूमन का,
राम एक उत्कर्ष कल्पना,
इस आदर्ष आर्य जन का,
राम सत्य शिव सुन्दर भावों,
की कल्याणमयी झाँकी।[9]

साकेतकार के राम की सत्य, शिव और सुन्दर भावों से आपूरित यह कल्याणकारी झाँकी का उद्देश्य भी जन–जन तक आर्य संस्कृति के जीवन आदर्श नैतिकता, त्याग, श्रद्धा, विश्वास एवं सदाचरण का प्रसार करना रहा है। उनके राम स्पष्ट रूप से यह उद्घोष करते हैं –

मैं आर्यो का आदर्श बताने आया,
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया
विश्वासी को विश्वास दिलाने आया।[10]

'उर्मिला' महाकाव्य पर विचार करने पर हम पाते हैं कि कवि नवीन ने आर्य संस्कृति की जिन पुनीत किरणों का वितान ताना है उसका मूल प्रेरणास्रोत 'वेद', 'उपनिषद' एवं 'श्रीमद्भगवद्गीता', आदि पौराणिक ग्रन्थ रहे हैं। वेदों से प्रभावित कवि नवीन जी ने तमसो मा ज्योतिर्गमय को आर्य संस्कृति का

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाराजा स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)भारत

महामंत्र स्वीकारते हुये 'उर्मिला' के तृतीय सर्ग में यह कह दिया है कि राम वनयात्रा का मूलाधार यही है यथा –

तमसो मा ज्योतिर्गमय त्वम्,
मृत्योर्मा अमृतं ले चल,
विद्या से संयुक्त मुझे कर,
अमृत चखा हे अचल अटल।

कवि नवीन ने तप को अत्यधिक महत्व दिया है उनका मानना है कि तप की शक्ति अपरिमित है। तप की शक्ति से ही ब्रह्मा अनन्त सृष्टि की रचना करता है। उपनिषेद के 'स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा इम्न सर्वम सृजता।'12 को वे इस ढ़ंग से प्रस्तुत करते हैं –

यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल,
गतिमय सृतिमय चलित हुआ,
अणु–अणु में कण–कण में सन्नत,
प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ।[13]

भारतीय संस्कृति त्याग और तपोवन की संस्कृति है वहाँ परिग्रह नहीं वरन् अपरिग्रह को महत्व दिया गया है। वहाँ आत्मवाद को मूल माना गया है। यथा –

आत्मवाद में है अनन्यता,
का अति रूचिर ज्ञान वैभव,
वहाँ नहीं संचय संचय का
सुन पड़ता है कर्कश स्वर।[14]

आज के भौतिकवादी तथा अर्थ प्रधान युग में संस्कृति को अर्थार्जन के मापदण्ड से आंका जा रहा है जबकि कवि का मानना है कि आर्य संस्कृति के परिपोषकजन अर्थ को जीवन का ध्येय नही मानते। यही कारण है कि उनके राम अर्थवाद के विरोधी हैं। वे कहते हैं –

अर्थ प्रगति का चिह्न नहीं है,
वह है प्रगति–वादी का फेन,
वह तो यों ही उतराता है,
होने को विलीन बैचेन।[15]

कवि 'वसुधेव कुटुम्बकम्' की भावना का पक्षधर होने के कारण मनुष्य मात्र की एकता में विश्वास करता है उसका दृष्टिकोण मानवतावादी है। इसीलिए वह कहता है कि वास्तव में मानवतादर्श की परिपुष्टि विश्ववाद में ही निहित है –

है जग के नागरिक सभी हम,
सब जग भर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है।[16]

संस्कृति के जिस स्वरूप को कवि ने 'उर्मिला' में प्रसारित करवाने का उपक्रम किया है वह उन्होंने अपार्थिव एवं भव्य रूप में ग्रहण की है उनके अनुसार भारतीय आर्य संस्कृति का स्वरूप यह है –

शुद्ध विचार प्रौढ़ता ही है,
भित्ति सभ्यता संस्कृति की,
सदाचरण शीलता मात्र है,
द्योतक संस्कृति मति धृति की।[17]

निष्कर्षत: कवि नवीन जी द्वारा आज के भौतिकतावादी युग में श्रीराम द्वारा सन्देशित संस्कृति का यह स्वरूप निसन्देह प्रेरक है। और कवि की दृष्टि में यह सत कार्य 'यदा यदा हि धर्मस्य' के अनुसार तब ही हो पाता है –

जब कुछ उथल पुथल होती है,
तब मानवता करवट लेती,
नव नव रचना रचती है।[18]

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी – हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी विज्ञप्ति, पृष्ठ 03
2. डॉ. नगेन्द्र– आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृतियाँ, राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, पृष्ठ 19–36
3. डॉ. नगेन्द्र का पत्र 25.08.1962
4. श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी, नई दिल्ली से साक्षातकार दिनाँक 23.05.1961
5. श्री बाल कृष्ण शर्मा नवीन– 'उर्मिला' की भूमिका, पृष्ठ ग
6. श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन – 'उर्मिला' श्री लक्ष्मण चरणार्पणमस्तु, पृष्ठ 06
7. श्री बाल कृष्ण शर्मा नवीन – 'उर्मिला' तृतीय सर्ग, पृष्ठ 198
8. बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' – 'उर्मिला' तृतीय सर्ग, पृष्ठ 263
9. श्री मैथिलीशरण गुप्त– 'साकेत' तृतीय सर्ग, पृष्ठ 295
10. श्री मैथिलीशरण गुप्त – 'साकेत' अष्टम सर्ग, पृष्ठ 166
11. श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन – 'उर्मिला' तृतीय सर्ग, पृष्ठ 198
12. तैत्तरीयोपनिषद 2,6
13. श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' – 'उर्मिला' षष्ठ सर्ग, पृष्ठ 549
14. वही पृष्ठ 548
15. वही पृष्ठ 553
16. वही पृष्ठ 558
17. वही. पृष्ठ 554
18. श्री बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' 'उर्मिला' तृतीय सर्ग, पृष्ठ 222

****

जीवन वृत्तान्तीय आलोचना की अवधारणा

डॉ. मीनाक्षी खरे *

शोध सारांश – जीवन विशेष को आलोचना की ऑख से देखना ही जीवन वृत्तान्तीय आलोचना की मुख्य अवधारणा हैं प्रत्येक कृति, कृतिकार के व्यक्तित्व के मूल्यांकन बिना न तो अच्छी तरह समझी जा सकती हैं और न उसका मूल्यांकन किया जा सकता हैं पश्चिम विचारक ड्राइडन की यह अवधारणा आधुनिक काल की जीवन वृत्तान्तीय आलोचना का मूल आधार बनी। ड्राइडन का यह विचार पश्चिम में अनेक जीवनियों के लेखन में भी सहायक बना।

जीवन वृत्तान्त की आलोचना की यह विधा रचना और रचनाकार को समझने के लिए हर दृष्टि से लाभदायक हैं। इस पद्धति से चरित – नायक का युग परिवेश, उसके जीवन संघर्ष के प्रभाव, उसके मनोजगत कृति –कृतिकार के अन्तर्संबंधी रचना प्रक्रिया कृति की संवेदना यथार्थ आदि को जांच ने परखने का मार्ग सरलता से खुलता है।

प्रस्तावना – जीवन वृक्तान्तीय आलोचना (बायो ग्राफीकल क्रिटिसिज्म) का सुबोध –अर्थ है जीवन और साहित्य के अन्तर्संबंधों को मूल्यांकन की ऑख से देखना जीवन विशेष में अन्त: बाह्य घटनाएँ घटती हैं, जो उतार–चढ़ाव आते हैं, संघर्ष से जो सफलताएँ–असफलताएँ उपजती हैं उससे व्यक्तित्व एवं कृतित्व किस सीमा तक और किस रूप में प्रभावित होता है तथा वह अपने समय और समय से जुडे ल़ोगों को कहाँ तक प्रभावित करता हैं आदि को परखने की प्रणाली का नाम ही जीवन वृक्तान्तीयआलोचना है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जीवन वृक्ताान्तीयआलोचना पद्धति का प्रारंभ 18वीं शती में अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि ड्राइडन के इस मत से माना जाता हैं कि 'प्रत्येक कृति कृतिकार के व्यक्तित्व के मूल्याकंन बिना न तो अच्छी तरह समझी जा सकती हैं और न उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।

ड्राइडन का उपर्युक्त अभिमत पश्चिमी आलोचना जगत् का क्रांतिकारी विचार है क्योंकि पश्चिमी समीक्षा में प्लेटो, अरस्तु, वर्डसवर्थ , कोलरीज, इलियट, और रिचर्ड्स ने समय–समय पर जिस आलोचना पर ध्यानाकर्षित किया था। वह वस्तुत: मात्र साहित्य रचनाओं पर केन्द्रित थी। प्राय: सभी चिन्तकों ने रचना के इर्द–गिर्द न देखकर, केवल रचना के निहितार्थ को ही अपनी दृष्टि में रखने पर बल दिया था। कवि आलोचक इलियट ने 1921 ई. में लिखा था कि 'आलोचना की ईमानदारी इसी में हैं कि वह कवि की ओर नहीं कविता की ओर उन्मुख हो और तभी संवेदना पूर्ण रसास्वाद संभव है।

नई समीक्षा के इलियट और उनके जैसा विचार रखने वाले सभी समीक्षक वस्तुत: प्रभाववादी समीक्षा पर प्रहार करने वाले समीक्षक थे और रचना के मूल्यांकन के लिए किन्हीं बाहरी कारकों के प्रभावों का आधार लेने के खुले विरोधी थे। इलियट ने अपने इस विचार को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया कि 'सच्ची आलोचना और सूक्ष्म मूल्यांकन कवि पर नहीं कविता पर ध्यान केन्द्रित करता है'।

19 वी शतीं में आलोचना की ऑख केवल रचना (साहित्य) मात्र पर केन्द्रित थी 18वीं शती के ड्राइडन का यह अभिमत कि प्रत्येक कृति कृतिकार के व्यक्तित्व के मूल्यांकन बिना न तो अच्छी तरह समझी जा सकती हैं और न उसका मूल्यांकन किया जा सकता हैं। परवर्ती आलोचना पद्धति के विरोध में खड़ा दिखाई देता हैं और आगे चलकर ड्राइडन का यह विचार जीवनी लेखन की प्रेरणा बनकर विकसित हुआ, अंग्रेजी साहित्य में 18वीं शताब्दी से लिखी गई महत्वपूर्ण जीवनियाँ लाइफ ऑफ जॉनसन (वासवेल –18 वीं शताब्दी) लाइफ ऑफ वायरन (थामस मूर 1830) लाइफ ऑफ अर्नाल्ड (एप़ीस्टेनली 1815) लाइफ ऑफ चारलोटब्रान्ट (गास्केल 1855) जो कि पश्चिमी आलोचना–दृष्टिके विस्तार और विकास की ऐतिहासिक घटना हैं।

इसी दृष्टि से प्रेरित होकर भारतीय साहित्य में जीवनी लेखन ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवाकर गद्य की इस नवीनतम् विधा को पुष्ट किया है। कृति और कृतिकार को जीवन वृक्तान्तीय आलोचना की कसौटी पर कसने के लिए कुछ ऐसे मानदण्ड अनिवार्य थे जिनसे जीवनी विशेष के साथ न्याय किया जा सके। इस दृष्टि से जीवन वृक्तान्तीय आलोचना की तीन मुख्य स्थापनाएँ हैं :

1. सर्वप्रथम तो यह कृतिकार का जीवन जिस देश काल में जीता और जागता हैं , उस देशकाल से निरपेक्ष साहित्य का निर्माण नहीं कर सकता। उस देशकाल का परिवेश उसकी चिन्तन – शक्ति, भावानुभूति और विचार का प्रभावित करता है ।
2. दूसरा यह है कि कृतिकार का जीवन और उसकी कृति, दोनों प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में एक दूसरे को व्यक्त करते हैं। कृति कृतिकार की उपलब्धि है और प्रत्येक उपलब्धि जीवन वृत्त से विकसित होकर उसके अंग की पूर्ति करती है। इस दृष्टि से यदि देखा जाए तो प्रत्येक कृति कलाकार के दो पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है ।
3. तीसरा यह कि इस आलोचना – प्रणाली के माध्यम से हम कृतिकार के जीवन में भाग लेकर, उसकी अनुभूति को ग्रहण कर लेने पर, उसकी कृति को अधिक सहानुभूति पूर्ण–दृष्टि के साथ देख और समझ सकते हैं। अस्तु, यदि पाठक के सामने किसी भी रूप में यह दृष्टि प्रस्तुत हो सके तो बहुत – सी ऐसी रचनाएँ जो अधिकांश संदर्भहीन सी लगती हैं, उनका भी महत्त्व पर्याप्त मात्रा में ज्ञात हो जायेगा। अस्तु, विवेचना रूप में जीवन वृक्तान्तीय प्रणाली के दो स्तर हैं। एक तो यह कि प्रत्येक कृति को उनके शिल्प और रूपाकार के आधार पर देखने का प्रयास किया जाए, दूसरा यह कि उस वस्तु परक दृष्टि के साथ उस कृतिकार की मन: स्थिति और परिवेश का भी एक अध्ययन प्रस्तुत किया जाए।

*अतिथि विद्वान (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (म.प्र.) भारत

वस्तुत: आलोचना की उपर्युक्त स्थापनाओं के अनेक लाभ हैं –

1. पाठकों का चरित नायक के युगीन परिवेश से साक्षात् होता है।
2. चरित नायक के जीवन–संघर्ष के वे मोड़. जिनसे उसका व्यक्तित्व और कृतित्व प्रभावित और विकसित हुआ है, स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं।
3. चरित नायक के व्यक्तित्व और कृतित्व को मनोवैज्ञानिक पद्धति से समझने की दृष्टि प्राप्त होती है।
4. कृति और कृतिकार (चरितनायक) के अन्तर्सम्बंध की परख करना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।
5. कृतियों के संदर्भ, कृतियों में छिपी संवेदना, रचना प्रक्रिया का पर्याप्त मात्रा में ज्ञान हो जाता है।
6. चरित नायक के जीवन से जुडी अनेक ऐसी भ्रांतियां (जो लम्बी अवधि के अन्तराल के कारण लगभग विश्वसनीयता तक पहुंच जाती है) का निराकरण होने में सहायता मिलती है।
7. चरित नायक के जीवन के वास्तव्य और उसकी कल्पना शीलता को आँकने का अवसर मिलता है।
8. चरित नायक की सक्रियता और उसके कृतित्व दोनों को समान रूप से देखना संभव हो पाता हैं।

वस्तुतः जीवनी आलोचक द्वारा आलोचना कर्म करते हुए अनेक दृष्टियों का ध्यान में रखना होता है जिसे निम्न आलेख द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

आलेख के अनुसार जीवन वृत्तान्त की आलोचना मूल सात प्रश्नों के आधार पर की जाती है।

1. परिवेश से रचनाकार की संलग्नता पारिवेशक संघर्ष तथा परिवेश का रचना पर क्या प्रभाव पड़ा है ?
2. उपर्युक्त प्रश्नों की पड़ताल के आधार पर जीवन की अन्त: बाह्य घटनाओं ने कृतिकार के मन–मानस को किस रूप में प्रभावित किया है तथा कृतियों में मनोवैज्ञानिक प्रभाव किस प्रकार व्यक्त हुआ है ?
3. कृतिकार (चरित नायक) का काव्यकृति से 'या संबंध है ?
4. कृतिकार (चरित नायक) का सामाजिक से वैयक्तिक स्तर पर संबंध और रचना के स्तर पर कैसा प्रभाव हुआ है और पाठकों की क्या प्रतिक्रिया रही है ?
5. वास्तविक जीवन और कृतियों में परम्परा का निर्वाह कितना हुआ है?
6. व्यक्तित्व और कृतित्व से अभिलक्षित होने वाला दर्शन क्या है ?
7. सृष्टि और कृतिकार का तादात्म्य किस सीमा तक हुआ है तथा कृति में सृष्टि किन–किन रूपों में उपस्थित है ?

निष्कर्ष – जीवन वृत्तान्तीय आलोचना की प्रस्तुत उपर्युक्त पद्धति एक उपयोगी पद्धति सिद्ध हुई है इसलिए पश्चिम से चली इस अवधारणा को हिन्दी के अनेक रचनाकारों ने हाथों–हाथ लिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नई समीक्षा – संपादक महेन्द्री चतुर्वेदी –सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर दिल्ली संस्करण 1980
2. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी – नंद दुलारे वाजपेयी– लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण 1995
3. हिन्दी साहित्यक कोष भाग–एक – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा – ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी संस्करण 1985
4. हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर – मैक मिलन –मैक मिलन इंडिया लिमिटेड इण्डिया प्रेस, मद्रास संस्करण 1965

****

पर्यावरण जागरूता में बाल साहित्य का योगदान

आभा चौहान *

प्रस्तावना – पर्यावरण प्रदुषण आज एक विकट समस्या के रूप में हैं। जल प्रदुषण, वायु प्रदुषण, ध्वनि प्रदुषण, मृदा प्रदुषण आदि हमारे जीवन को प्रभावित कर रहें हैं । इसका निदान जागरूकता से संभव है। बाल साहित्य बालकों का मनोरंजन के साथ शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बाल साहित्य बालको को पर्यावरण के प्रति जागरूक करने में अतुल्नीय योगदान रहा है। आधिकांश बाल साहित्यकार ने इस और ध्यान दिया और पर्यावरण विषयक मनोरंजक कवितायें, नाटक कहानियों आदि की रचना की जो कि बालको को पर्यावरण के प्रति सचेत करती है। श्री प्रसाद के द्धारा रचित इस कविता में बच्चों को सिखाया गया हैं कि पेड़ लगाना चाहिए –

हरे भरे ये पेड़ उगे जो
मुझको काफी भाते हैं
छाया पाते हैं हम शीतल
इनके फल भी खाते है।
पेड़ हमारे साथी ही हैं
इनके बिना अधूरे हम
धरती को शोभा देते हैं
इनसे होते पूरे हम।। 1

इसी प्रकार प्रति प्रवीण खरे ने अपनी रचना 'पेड़' को बड़ी सरलता से बच्चों को बताया है कि पेड़ कटेगे तो शुद्ध हवा प्राप्त नहीं हो पायेगी।

पेड़ आम नीम इमली का पेड़
पेड़! पेड़ है इसे न काटो
इससे अपने दुख को बाटो
ये सब कट जायेंगें
ते हम हवा कहा से पायेगें
शुद्ध हवा न पायेंगे
ते हम कैसे जी पायेंगे
बोलो–बोलो हम कैसे जी पायेगें।। 2

दुर्गा दत्त ओझा कृत 'पानी की आत्म कथा' नामक कहानी में बच्चो को बताया है कि 'जल चेतना' घर में ही संभव हैं।

'जब मुझ में बहुत अधिक रासायनिक, जहरीले तथा गंदगीवाले पदार्थ विसर्जित कर दिए जाते है तो मैं दूषित हो जाता हूँ। मुझ में प्राण वायु (ऑक्सीजन) की कमी हो जाती हैं। बड़े–बड़े कल–कारखानों ने विकास की ऑधी में बहकर मेरा प्रदूषण से जो हाल किया हैं, वह बहुत असहनीय हैं। मैं कभी–कभी तो भूल भी जाता हूँ कि मेरा कोई शुद्ध, साफ तथा निर्मल रूप भी है।

मुझे आज इतना दु:ख तथा सदमा पहुँचा है कि कुछ स्वार्थी लोगो की वजह से मैं पीने के योग्य भी नहीं रह पाता हूँ। लाखो नर–नारी तथा तथा बच्चे मेरे दूषित रूप के उपयोग से मोत का ग्रास बनते हैं। जब असंख्य प्राणि तथा वनस्पति–जगत् विभिन्न प्रलयकारी रोगो के शिकार बनते हैं, तो मुझे बहुत ही हृदयाघात होता है। मनुष्य ने वन–संपदा, हरे–भरे वृक्षो को काट गिराया है। हरे–भरे पहाड़ जो मेरे बादलों के रूप को आकर्षित करके वर्षा कराते थे, आज मरूस्थल हो चुके है। जब मैं नंगे पहाड़ो पर बरसता हूँ तो धरती का भयंकर कटाव होता है। बाढ़ के जल से थल का विनाश होता है। दु:ख तो इस बात का है कि मनुष्य फिर भी मुझे और प्रकृति को ही दोष देता है। प्रकृति के साथ यदि आप मित्रता रखते हैं और इसे सुरक्षित रखते हैं तो प्रकृति अपने अपार स्नेह तथा खजाने को आपकी सेवा में अर्पण कर देगी।' 3

डॉ. शोभा नाथ 'लाल' कृत 'भारत नया बनायेंगे' नामक कविता में मनोरंजक ढ़ग से बताया है इस धरती पर कहीं धुआँ है एवं कहीं कर्ण भेदी आवाज एवं स्वच्छ जहॉ के लिए सभी लालायित हैं। जल, ध्वनि, वायु प्रदुषण के कारण जीवन घट रहा है। कवि बच्चो से आग्रह कर रहा है कि आओं हम सब मिल कर नया भारत बनाने का संकल्प करें। बाग–बगीचे लगाये जिससे वायुमण्डल स्वच्छ होगा, फल खिलेगें, आकाश से पानी बरसेगा, जल, ध्वनि से कोना कोना चहक उठेगा।

कहीं धुऑ दमघोटू देखो
कहीं कर्णभेदी आवाजें।
निर्मल जल खातिर लालायित
तरस रहे सारे दरवाजे।
दूषित जल, ध्वनि–वायु प्रदूषित
जीवन में विष घोल रहे।
हर क्षण जीवन घटता जाए
सिर पर खतरे डोल रहे।
आओ, मिल संकल्प करें हम
भारत नया बनाऍगे।
सुमन तभी मुरझायी बगिया
मै फिर से लहराऍगे।
स्वच्छ वायुमण्डल जल–ध्वनि से
चहक उठे कोना – कोना।
धरती स्वर्ग बनेगी फिर से
अम्बर बरसेगा सोना।। 4

बच्चो को पशु–पक्षी से विशेष लगाव रहता हैं। अधिकांश बाल कविताए भी पशु–पक्षी पर आधारित है। महादेवी वर्मा द्धारा रचित बाल कवि कविता बया सेय दृष्टव्य हैं।

बया हमारी चिड़िया रानी !
तिनके लाकर महल बनाती,
ऊंची डालो पर लटकाती,
खेतों से फिर दाना लाती,
नदियों से भर लाती पानी !
तुझको दूर न जाने देंगे,
दानो से आंगन भर देंगे,

* शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविधालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

और हौज में भर देंगे हम
मीठा-मीठा पानी! 5

ड़ॉ. श्री प्रसाद की एक कथा नामक कविता में बालकों का रोचकता से बताया है कि पशु-पक्षी से प्रेम करना चाहिए उन्हें मारना नहीं चाहिए। इसमें एक नानी बालको को एक कहानी सुनाती है कि एक राजा था उसकी सुन्दर सी रानी थी पहले रानी घर के काम काज करती थी रानी सिर पर गागर रख कर रंगबिरंगी साड़ी पहन कर पानी लेने कुएँ पर गई गागर भरकर रखी तभी वहॉ मोर आया गागर का पानी लुडका कर अपनी प्यास बुझा गया रानी के मन में वह बस गया रानी ने सोचा कि वह मोर उसके महल में होता तो कितना अच्छा होता केओ-केओ गाना गाता मुझको अपना नाच दिखाता। महल जाकर उसने राजा से बोला मुझे मोर मॅगवा दो राजा ने उसे समझाया लेकिन वह ना मानी राजा ने मोर को मार कर रानी के पास भेजा। इससे रानी को बहुत दुख हुआ वह फुट फुट कर रोई। इस कहानी से शिक्षा मिलती है कि पशु-पक्षी को घर में कैद नही करना चाहिये जंगली पशु पक्षी जंगल में ही अच्छे लगते है।

पक्षी कहीं गीत गाते हैं
नाच नाच मन बहलाते हैं
तुमने मर्म नहीं यह जाना
तुमने सुना न इनका गाना
तुम हो केवल क्रुर शिकारी
इनकी छवि न देखते प्यारी।
रानी फूट-फूट कर रोई
रानी गहरे, दुख में खोई
रानी सुखी न फिर हो पाई
रोकर सब जिंदगी बिताई
पक्षी सचमुच होते प्यारे
उड़ते नभ में पंख पसारे
इनसे हम सब प्यार जताऍ
इनको कभी न दुख पहुँचाऍ
नानी कहतीं यही कहानी
कितनी अच्छी थी वह रानी
नानी जब यह कथा सुनातीं
ऑखे ऑसू से भर आतीं ।। 6

हरिकृष्ण तैंलग कृत ने 'बड़ दादा जिंदाबाद: नीम नानी जिदाबाद' नामक रोचक बाल नाटक हैं। इसमें बच्चों को पेड़ का महत्व बताया गया है। 'नीम - पर तुम बूढ़े लोग, ताने देना ही पसंद करते हो। मुझे खाने से बच्चों को कोई नुकसान नहीं होता। मेरा हर भाग: छाल, पत्ते, फूल, फल सभी लाभकारी हैं। उससे कीड़े मर जाते हैं, खून साफ होता है। मेरी दस पॉच कोमल पत्तियों जो रोज खाते हैं उन्हे खून की कमी भी नहीं सताती। अच्छा खासा लोहा है मेरी पत्तियों में।

बरगद - तभी तो छूरी-सी जबान चलती है तेरी।

नीम - पर तुम तो किसी काम के नहीं हो बड़ दादा। न खाने के, ने जलाने के, न छुरी के बेट बनाने के। 'नाम बड़े और दर्शन छोटे' कहावत सुनी हैं, बिलकुल फिट बैठती हैं तुम पर, बुढऊ।

बरगद - (भड़क कर) अरी नीम, तू बढ़ चढ़ कर मत बोल। छोटे मुँह और बड़ी बात। सारा शरीर तो कड़वा हैं, फिर जीभ मीठी कैसे होगी ? सच है- 'नीम न मीठी होय, सीचों चाहे गुड़-घी सें। तू मेरा महत्व क्या जाने ? मेरे दूध और फलो के गुण तो वैद्य ही जानते हैं। मेरे पत्तो से हाथी अपना पेट भरते हैं। पर तू तो बकरी के भी काम की नही।' 7

इस कविता में छोटे बच्चे का मैना से प्रेम दृष्टव्य हे बच्चा मैना के कह रहा हैं कि मै तेरे रहने के लिए एक बाग लगाऊँगा।

आ री मैना आ !

तुझे न तनिक दुखाऊगा मैं
तू रोये तो रोऊँगा मैं
तू गाये तो गाऊँगा मैं
मुझसे मत घबरा !
सुन्दर बाग लगाऊँगा मैं
खोता एक बनाऊँगा मैं
उसमें तूझे बिठाऊँगा मैं
मैं दूँगा पहरा।। 8

बच्चे अकसर तितली पकड़ने दोडते है इस पहेली में समझाया गया है रंग-बिरंगी तितली उड़ती हुई ही अच्छी लगती है उसे पकड़ना नहीं चाहिए।

रंग-रॅगीली नीली-पीली,
रेशम जैसे पॉखें।
फूल-फूल को देखा करतीं,
इसकी नन्ही ऑखें।
छूते ही फुर्र से उड़ जाती,
फिर यह पास न आती।
पर उड़ती ही अच्छी लगती,
फूल-फूल पर जाती।। 9

बच्चों के प्रिय एवं वरिष्ट लेखक देवेन्द्र कुमार के बाल उपन्यास पेड कट रहे हैं एवं 'चिड़िया और चिमनी' में प्रकृति और औद्योगीकरण के बीच बढ़ते असन्तुलन एवं प्रदुषण अंत में उसका व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत किया है।

बाल साहित्य में बाल मनोविज्ञान को दृष्टि में रख कर रोचक तरीके से उपदेश दिये जाते हैं, जो बालको को प्रभावित करते है। बाल कहानी बाल कविता, बाल नाटक, बाल उपन्यास आदि बाल साहित्य की विधाओं में कही न कही बालको को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाने का प्रयास किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ऑगन के फूल - ड़ॉ. श्री प्रसाद पेज 12
2. बाल साहित्य समीक्षा 2011 संपा राष्ट्र बन्धु पेज 11
3. साहित्य अमृत - त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी पेज 64
4. चलो खेलने चॉद पर - ड़ॉ. शोभानाथ लाल पेज 32
5. कुतुबनुमा अक्टूम्बर दिसम्बर संपा राजम नटराजन पिल्लै पेज 43
6. ऑगन के फुल - ड़ॉ. श्री प्रसाद पेज 32
7. पर्यावरण और सन्तुलित भोजन - हरिकृष्ण तेलंगा पेज 11-12
8. मेरा घर - राम वचन सिंह आनन्द पेज 27
9. गीत भी: पहेली भी - ड़ॉ. श्री प्रसाद पेज 9

श्री कृष्ण सरल जी द्वारा रचित क्रांतिगंगा महाकाव्य- एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का अप्रतिम स्मारक

डॉ. रेखा कौशल *

प्रस्तावना – सन् 1994 में प्रकाशित श्रीकृष्ण सरलजी का यह प्रबंध काव्य एक व्यक्ति द्धारा लिखा गया विश्व का सबसे बड़ा प्रबन्ध काव्य है। मैग्जीन आकार की इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या 1052 है। विषय सूची और भूमिका के लभग 75 पृष्ठों को कम कर दिया जाए, तो लगभग 965 पृष्ठों पर कविताओं के पद अंकित हैं। कृति का नाम क्रांति गंगा है। इसलिए कृति में सर्ग के स्थान पर घाट शब्द प्रयुक्त किया गया है। इस कृति में 880 पृष्ठों पर इतने ही विषयों पर काव्य सूक्तियाँ प्रकाशित की गई है। विभिन्न कालों के करीब 250 क्रांतिकारियों के चित्र भी इस पुस्तक में प्रकाशित किये गये हैं।

इस महाकाव्य के प्रारंभ में रचनाकार ने सरल अभिलाषा शीर्षक से लिखी रचना में भारत राष्ट्र के उत्थान, उत्कर्ष व गौरव का सपना सँजोया है तथा सभी देशवासियों के पारस्परिक प्यार से रहने की कामना की है।

स्वयं के बारे में प्रारंभ में ही कवि ने स्पष्ट कर दिया है –

नहीं महाकवि और कवि ही लोगों द्धारा कहलाऊँ
सरल शहीदों का चारण था, कहकर याद किया जाऊँ

क्रांति गंगा क्रम में कविवर श्रीकृष्ण का दसवां महाकाव्य है इस महाकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह आकार में विश्व का सबसे बड़ा प्रबंधकाव्य है। भारत की क्रांति चेतना के इतिहास और क्रांतिकारियों के जीवन पर लिखा गया 1050 पृष्ठों का यह महाकाव्य क्रांतिकारियों की चित्रावली से सज्जित है। क्रांति गंगा के भागीरथ कविवर सरल का क्रांति गंगा महाकाव्य भारतीय क्रांति चेतना का एक प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक दस्तावेज है। अठारह सर्गो जिन्हें कवि ने घाट नाम दिया है, में विभाजित क्रांति गंगा महाकाव्य में ज्ञात-अज्ञात शहीदों के बलिदान का ओजस्वी एवं प्रभावशाली वर्णन किया गया है। महाकाव्य के प्रारंभ में विचार बिन्दु के अंतर्गत सरलजी ने अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं, अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों, विचारों आदि पर प्रकाश डाला है।

क्रांतिगंगा महाकाव्य का प्रथम सर्ग – भारत महिमा घाट भारत के अतीत वैभव एवं सांस्कृतिक गरिमा का चित्र प्रस्तुत करता है। जन-जीवन, जीवन दर्शन, नीति और राजनीति, गुरू-महिमा, सांस्कृतिक धरोहर सोने की चिड़िया, फिरंगी प्रवेश प्लासी की भूमिका जैसे आठ शीर्षक में विभक्त है।

क्रांति-गंगा के द्धितीय सर्ग विद्रोह को तेरह शीर्षकों में विभाजित किया गया है। इस सर्ग में सन् 1764 से लेकर सन् 1855 ई. तक के अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह के घटना-क्रम को रेखांकित किया गया है। बंगाल का प्रथम सैनिक विद्रोह(1764), जंगल महाल का विद्रोह (1767), तिलका मांझी को फांसी (1767), सन्यासी एवं फकीर-विद्रोह (1763 ई. से 1773 ई. तक) राजा नन्द कुमार को फाँसी (5-8-1775) बंगाल का द्धितीय सैनिक विद्रोह (1795), चुआड़ विद्रोह (1795 से 1820), नायक हंगामा (1821), बंगाल का जलियावाला हत्या काण्ड (निहत्थे बंगाली 700 सैनिकों का वध), वीरांगना रानी चेतम्मा (1824), वहावी-विद्रोह (1824-1831), गुजरात का विद्रोह (1836), कोल्हापुर विद्रोह (1824-1831) , गुजरात का विद्रोह (1836) , कोल्हापुर-विद्रोह (1844), संथाल- विद्रोह (1854-1858) जैसे ऐतिहासिक घटना-चक्रों को इस सर्ग के अंतर्गत रखकर कविवर सरलजी ने यह स्पष्ट किया है कि एक ओर जहां अंग्रेजों की सत्ता का दमन-चक्र अपने अन्यायी तेवरों को लेकर चलता रहा है वहीं भारत की क्रांतिधर्मी मानसिकता सदा से ही अंग्रेजी सत्ता का विरोध करती रही है।

क्रांति-गंगा महाकाव्य के तृतीय सर्ग- संग्राम घाट को चौवालीस शीर्षकों में विभक्त किया गया है। इस सर्ग के अंतर्गत सरलजी ने सन् 1857 ई. से लेकर सन् 1883 ई. तक के क्रांतिकारी घटना चक्र का वर्णन किया है। जिसके अंतर्गत सन् 1857 ई. से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1985 ई. के पूर्व तक के क्रांतिकारी घटना चक्र का वर्णन कविवर सरलजी ने किया है।

क्रांतिगंगा चतुर्थ सर्ग- इस सर्ग में क्रांतिघाट को सत्ताईस सर्ग में विभक्त किया गया है। इस सर्ग में 1885 से 1911 ई.वीं. तक के ऐतिहासिक क्रांतिकारी घटचक्र का वर्णन किया गया है। इसके अंतर्गत शेषरूप से गोपनीय क्रांतिसंगठन चापेकर संघ एवं दामोदरहरि चापेकर का बलिदान , दयानन्द सरस्वती एवं स्वामी विवेकानन्द एवं लोकमान्य तिलक आदि आत्म बलिदानियों की राष्ट्र को समर्पित जीवनगाथाओं का उल्लेख है।

क्रांतिगंगा के पंचम सर्ग-क्रांति प्रसार घाट को पचहत्तर शीर्षकों में विभक्त किया गया है। इस सर्ग में सन् 1903 ई. से लेकर सन् 1913 ई. तक के क्रांति चेतना सम्पन्न ऐतिहासिक घटना चक्र में क्रान्तिवीरों की जीवन-गाथाओं एवं बलिदानों को इस सर्ग का वर्ण विषय बनाया है।

क्रांतिगंगा महाकाव्य के षष्ठ सर्ग- प्रथम विश्व युद्ध घाट को सत्तावन शीर्षकों में विभक्त किया गया है। इस सर्ग के अंतर्गत सन् 1914 ई. से लेकर सन् 1915 ई. और उसके पश्चात् तक के क्रांतिकारी ऐतिहासिक घटना चक्र को वर्ण विषय बनाया गया है।

क्रांतिगंगा महाकाव्य के सप्तम सर्ग- प्रजातंत्र संघ घाट के अंतर्गत वर्ण्य विषय को अट्ठाईस शीर्षकों में विभक्त किया गया है तथा सन् 1925 से सन् 1927 ई. तक के क्रांति चेतना सम्पन्न काल खण्ड का इस सर्ग में समावेश किया गया है।

क्रांतिगंगा महाकाव्य के अष्ठम् सर्ग- समाजवादी घाट इक्यावन शीर्षकों में विभक्त किया गया है तथा सन् 1928 से 1931 ई. तक के क्रांतिकारी घटना चक्र का समावेश इस सर्ग में किया गया है। भगतसिंह, सुखदेव और

* पीएच.डी. शाखा,अकादमिक विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

राजगुरू के बलिदान, बलिदानों के मान दण्ड से मन पर जमें हुए हों, जैसे शीर्षकों के अंतर्गत भारतीय क्रांति चेतना के सर्वाधिक तेजस्वी एवं यशस्वी काल-खण्ड के घटना चक्र का वर्णन कवि वर सरलजी ने इस सर्ग के अंतर्गत किया है। अमर शहीद चन्द्र शेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू के तेजस्वी व्यक्तित्व, ओजस्वी चिन्तन तथा प्रेरणास्वरूप बलिदानों को इस सर्ग में रेखांकित किया गया है।

क्रांतिगंगा महाकाव्य के नवम् सर्ग- चटगांव शस्त्रागार घाट को इकतीस शीर्षकों में विभक्त किया गया है। इस सर्ग में सन् 1928 से 1934 ई. तक के क्रांतिकारी घटना चक्र का समावेश किया गया है। इसके अंतर्गत कवि वर सरलजी ने सन् 1928 से सन् 1934 ई. तक के आन्दोलन में मुख्य भूमिका निभाने वाले क्रांतिवीरों के बलिदानों , शौर्य-गाथाओं तथा अंग्रेज शासकों के तीव्रतर होते दमन चक्र इस सर्ग की विषयवस्तु बनाया है।

क्रांति गंगा महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग- कालापानी घाट को नौ शीर्षकों में विभक्त किया गया है। इस सर्ग में सन् 1930 से 1943 ई. तक के क्रांतिकारियों के बलिदानों का वर्णन किया गया है। काले पानी को उजला पक्ष , भानसिंह की तान, पं. परमानन्द की अग्नि परीक्षा, फील्ड मार्शल लद्दाराम का इलाज, महावीरसिंह की क्रांति कहानी, महावीरसिंह , मोहन किशोर और मोहित मैत्रों के आत्म बलिदान, कालेपानी में सावरकर बन्धु, शीर्षकों के अंतर्गत कालेपानी की सजा पाए क्रांतिवीरों की शौर्य गाथाओं एवं आत्म बलिदानों को इस सर्ग की विषय वस्तु बनाया गया है।

क्रांतिगंगा महाकाव्य के बारहवें सर्ग- जन क्रांति घाट को चौदह शीर्षकों में विभक्त किया गया है। इस सर्ग के अंतर्गत भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कालखण्ड सन् 1942 से सन् 1944 इ. तक के क्रान्तिकारी घटना-चक्र का वर्णन कविवर सरलजी ने किया है। क्रांति शान्ति बहनापा, फुलेना प्रसाद श्रीवास्तव का बलिदान, देवशण सिंह का बलिदान, देवीपद चौधरी का बलिदान, बालक ध्रुव का बलिदान कनक लता बरूआ और मुकुन्द कविता के बलिदान, फुलेश्वरी का बलिदान, तिलक डेकाह का बलिदान, कौशल्या कुमार का बलिदान, राज नारायण मिश्रा का बलिदान, लाल पद्मकधरसिंह का बलिदान, वीर हेमू कालानी का बलिदान, जैसे शीर्षकों के अंतर्गत मातृभूमि की बलि वेदी पर निछावर हो जाने वाले क्रान्तिवीरों के बलिदानों का वर्णन इस सर्ग में किया गया है। इसी प्रकार तेरहवे, चौदहवे एंव पन्द्रहवे सर्ग में अनेकानेक घटनाओं का वर्णन कियाा गया है।

क्रांति गंगा काव्य शास्त्रीय लक्षणों और परम्पराओं की लीक से हटकर एवं अपने ही प्रकार का महाकाव्य है जिसमें अनेक क्रांतिकारी चरित नायकों के व्यक्ति एवं कृतित्व का लेखा जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य को साहित्यि महाकाव्य की अपेक्षा भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का काव्यमय इतिहास कहा जाता है। विभिन्न क्रांतिकारियों के जीवन वृक्षों को ओजमयी भाषा शैली में प्रस्तुत कर घटनाओं और पात्रों को रेखांकित किया गया है। अपने विशालकाय स्वरूप तथा कालजयी उदान सूक्तिमय संदेशों ने इसे महाकाव्य की संज्ञा प्रदान की गई है यथा-,

गर्जना और सर्जना धर्म हो यौवन का
वह ध्वंस नहीं, साधक बनकर निर्माण करे,
अपने हाथों का जादू जग को दिखलाए।
वरदान बने सबको, सब का कल्याण करें।

कवि वर श्रीकृष्ण सरल के समस्त महाकाव्यों में प्रसंगानुकूल एवं पृष्ठभूमि के रूपमें प्रकृति के विविध रूपों का सांगोपांग चित्रांण हुआ है। इन महाकाव्यों में संध्या, प्रीति, सूर्य ,चन्द्र , दिन रात प्रकाश अंधकार , नदी , वन, पर्वत, समुद्र, नगर, युद्ध यात्रा विवाह मंत्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि जीवन एवं जगत को अन्त: और कहाच्य प्रकृति का चित्रण विस्तृत रूप से हुआ है। सरलजी के महाकाव्यों के नाम भी प्राय: उनके चरित-नायकों के नाम पर रखे गये हैं।

चूंकि क्रांति गंगा महाकाव्य का नाम कोई एक वीर पुरूष न होकर अनेक क्रांति पंथी बलिदानी वीर पुरूषों को बनाया गया है। इसलिए किसी एक चरित-नायक के नाम पर इसका नामकरण नहीं किया गया है। वस्तुत क्रांतिगंगा महाकाव्य भारतीय क्रांतिकारिता का एक समूचा इतिहास है अत: उसे क्रांति गंगा नाम दिया गया है। अपने स्वदेश गौरव तथा स्वाधीनता के लिए की गई क्रांति को सरलजी गंगा की तरह पवित्र और सतत् गतिशील मानते हैं इसलिए उन्होंने इस महाकाव्य का नामकरण क्रांतिगंगा किया है तथा इसके सर्गों को घाट की संज्ञा दी है। इस महाकाव्य का नामकरण कथावस्तु के आधार पर किया गया है जो काव्य शास्त्रीय लक्षणों के सर्वथा अनुकूल है। साथ ही वर्ण्य विषय की सार्थकता को स्पष्ट करता है।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से सरलजी के सम्पूर्ण महाकाव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं। चूंकि कविवर श्रीकृष्ण सरल प्राध्यापक रहे हैं भाषा शिक्षण उनकी वृति रही है ।अत: उनके महाकाव्यों में भाषा एंवं व्याकरण संबंधी त्रुटियों की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती है। उनके महाकाव्यों की शैली मुख्यत: वर्णनात्मक होते हुए भी उसमें आत्कथात्मक, फ्लैशबैक तथा नाटकीय शैलियों का यथा स्थान प्रयोग किया गया है। सरलजी के महाकाव्यों की भाषा प्रौढ़, प्रांजल, परिष्कृत तथा साहित्यिक है जिसमें मुहावरों, लोकोक्तियों और अलंकरणों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। सरलजी ने अपने महाकाव्यों और अलंकरणों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। सरलजी ने अपने महाकाव्यों में विविध मात्रिक, वार्णिक, भिन्न तुकान्त तथा स्वनिर्मत वीर छन्दों का प्रयोग किया है। सरलजी ने अपने महाकाव्यों में परम्परा प्रयोग, कवि समय तथा आधुनिक चिन्तन के अपने अधिकार का भी भरपूर प्रयोग किया है जिसे उनकी मौलिकता भी कहा जा सकता है। इस प्रकार पूर्वाद्ध एवं पश्चात्य काव्य शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर भी कविवर श्रीकृष्ण सरल के सम्पूर्ण महाकाव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

क्रांतिगंगा महाकाव्य के संपूर्ण वर्णन में महाकवि के प्रभावशाली व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं उनकी सुखद एवं दुखद यात्राओं एवं अनुभूतियों के वृतान्त स्वत: ही हमारे सामने राष्ट्रीय आंदोलन की संपूर्णू तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में क्रांतिगंगा महाकाव्य महाकवि सरल द्धारा रचित एक ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ है जो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का सचित्र चित्रण , अंकन एवं साहित्य के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीमती रमा चतुर्वेदी , अमर शहीदों के युगचारण , सरलजी अभिनंदन स्मारिका, 1991'
2. श्रीमती रक्षा सिसोदिया-'अर्चना-मार्च 1991,
3. कु. गोमती शनकुशल, क्रांति-कवि श्रीकृष्ण सरल
4. धर्मेन्द्र सरल- 'अर्चना मार्च 1991,
5. श्रीकृष्ण सरल-'क्रान्ति-गंगा वर्ष 1994

श्रीकांत वर्मा : एक कर्मठ साहित्यकार

डॉ. सरोज जैन *

प्रस्तावना – यदि नयी कविता की बृहत्त्रयी में मुक्तिबोध, अज्ञेय और शमशेर बहादुर की गणना की जा सकती है तो लघुत्रयी में रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और श्रीकांत वर्मा की। अंतिम तीन कवियों की इस त्रयी को हम दिनमान त्रयी भी कह सकते हैं। [1]

श्रीकांत वर्मा बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने एक कवि के रूप में अपने साहित्य कर्म का प्रारंभ किया था। अपने साहित्य जीवन के विकास क्रम में कविता के साथ ही उन्होंने अन्य विधाओं में भी रचनाएँ की हैं। यह सही है कि भावों की सम्प्रेशणीयता के लिए कविता से अधिक शक्तिशाली माध्यम अन्य कोई विधा नही है, परन्तु रचनाकार को सामाजिक और राजनैतिक दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए गद्य का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है अत: मूलत: और आरम्भत: कवि होने के बाबजूद उन्होंने गद्य विधाओं के माध्यम से अपने चिंतन को व्यक्त किया। श्रीकांत वर्मा कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक, संस्मरण–लेखक, यात्रावृत्त के रचयिता और अनुवादक थे। एक पत्रकार और संवाददाता के रूप में उनके द्वारा लिखे गये रिपोर्ताज आज भी महत्वपूर्ण हैं।

आज का परिवेष उसकी भयावहता, अजनवियत, उदासीनता, आतंक और अन्याय को निर्भय और नंगे रूप में व्यक्त करने के कारण श्रीकांत वर्मा का साहित्य सदैव तीखे विवादों का विषय रहा। वे एक विवादास्पद विचारक के रूप में जाने जाते रहे। यह श्रीकांत वर्मा के साहित्य की जीवन्तत: एवं प्राणवत्ता का प्रतीक माना जाएगा कि ज्यों–ज्यों उनका विरोध बढ़ता गया, त्यों–त्यों वे प्रतिष्ठित होते गए। उनकी कृतियाँ परम्परागत एवं प्रतिष्ठित विधा रूपों का भंजन करने में सदैव सफल रही हैं।

श्रीकांत वर्मा का रचना संसार बड़ा विस्तृत है। उनके द्वारा रचित काव्य संग्रह भटका मेघ (1957), दिनारम्भ (1967), माया दर्पण (1967), जलसाघर (1973) और मगध (1954) हैं। झाड़ी (1964), संवाद (1969) और दूसरे के पैर (1984) उनके कहानी संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने दूसरी बार (उपन्यास, 1968) जिरह (आलोचना 1973), अपीलों का रथ (यात्रा संस्मरण 1975) फैसले का दिन (आन्द्रेवोज्नेसेंस्की की कविताओं का अनुवाद 1970) प्रसंग (प्रतिनिधि रचनाएं 1981), बीसवीं शताब्दी के अंधेरे में (साक्षात्कार और वार्तालाप 1982) अदर वाइज एण्ड अदर पोएम्स (कविता 1972) ए विंटर डवनिंग (कहानी 1973) विटर स्वीट डिजायनर (उपन्यास 1975) और एथोटेट ऑफ राजीव गाँधी (भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गॉधी की जीवनी) नामक किताबें लिखीं।

श्रीकांत वर्मा द्वारा लिखित 'भटका मेघ' की कविताएं अपेक्षाकृत तरुण कवि की कविताएँ हैं। इनमें यौवन सुलभ आक्रोश और विक्षोभ स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह आक्रोश व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी किन्तु कवि की बौद्धिक जागरूकता व्यक्तिगत आक्रोश की सामाजिक व्याख्या करने में सफल सिद्ध हुई है। दिनारम्भ में अधिकांश छोटी–छोटी कविताएं हैं। इनमें संकेत से कहने का लोभ स्वयं उनके लिए खतरा पैदा कर देता है। यही करण है कि दिनारम्भ की कई कविताएं कम शब्दों में ज्यादा तो क्या अपनी बात भी नहीं कह पाती हैं। फिर भी छोटी कविताओं में 'कौंध' मैं हूँ आकाश जागता है बाहर निवासी दिनारंभ व मध्याह्न अच्छी कविताएँ हैं जो अपनी पूरी सजगता के साथ मन को बांधती है –

शहरो में छत्तों में
ह ल च ल
हुई मक्खियाँ
बैठ गयी
मंड रा
अपनी अपनी
मेजों पर। [2]

'माया दर्पण में 69 कविताएं संगृहीत है आक्रोश, व्यंग्य, क्षोभ, खीझ अथवा करुणा कवि के मुख्य संवेदनात्मक स्वर हैं किन्तु 'माया दर्पण' का कवि आक्रोश के स्थान पर अविश्वास और खोखलेपन का कवि बन गया है। इस संकलन की कविताओं की आक्रामक पंक्तियां और उनका नाटकीय शिल्प कवि को नयी कविता का अन्तिम समर्थ कवि बनाता है। अपने परिवेश के पूर्ण अहसास को कवि ने निर्मम और स्पष्ट शब्दो में व्यक्त किया है आक्रामकता कवि का एक आवश्यक हथियार बन गया है –

कुछ लोग मूर्तियाँ बना कर
बेचेगे क्रांति की (अथवा षडयंत्र की)
कुछ और लोग सारा समय कसमें खायेगें लोकतंत्र की। [3]

जलसाघर यकी कविताएं उनकी पिछली कविताओं का उपसंहार कर हिन्दी कविता को एक नया अंदाज और नया स्वर प्रदान करती हैं। 'मगध' काव्य संकलन की पहली कविता रहस्यमय नाटक के सूत्रधार की तरह धीमे–धीमे इस काव्य संसार से परदा उसकर आज के यथार्थ से परिचय कराती हैं। जलसाघर काव्य संकलन 2000 रूपये के अखिल भारतीय तुलसी पुरस्कार से सम्मानित श्रीकांत वर्मा हिन्दी के शीर्षस्थ कवि कथाकार और लेखक के रूप में विख्यात हैं। सन् 1960–70 के मध्य श्रीकांत वर्मा ने जिन कविताओं का सृजन किया उनमें हिन्दी कविता को पुनरूज्जीवन मिला है 'जलसाधर' की कविताएँ उनकी पिछली कविताओं का उपसंहार कर हिन्दी कविता को एक और अंदाज तथा एक और अर्थ प्रदान करती हैं। [4]

कहानीकार के रूप में श्रीकांत वर्मा की प्रसिद्धि उनके द्वारा लिखी गई प्रेम कहानियों को लेकर है। किन्तु ये कहानियां प्रचलित और परम्परागत अर्थ

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय , बीना (म.प्र.) भारत

में प्रेम कहानियां नहीं, प्रेम की प्रक्रिया की कहानियाँ हैं। उन अनिर्णीत स्त्री पुरूषो की कहानियाँ जो प्रेम के बाबजूद भी अकेले है और अपनी तमाम कोशिशो के बाबजूद भी जो अपने को पूरी तरह दे पाते है और न दूसरे को पूरी तरह स्वीकार पाते हैं। झाड़ी नामक कहानी संग्रह की कहानियां प्रभाव अभिव्यक्ति और नये आयामो की अभिव्यंजना के कारण पठनीय होने के साथ-साथ आकर्षण भी हैं संवाद में संकलित कहानियाँ भी असफल दाम्पत्य जीवन और भारतीय जीवन की दरिद्रता, गरीबी तथा मानव की विभिन्न मन:स्थितियों का चित्रण करने वाली है।

श्रीकांत वर्मा द्वारा लिखित 'दूसरी बार' उपन्यास स्वातन्त्रयोतरकाल में दाम्पत्य जीवन की विसंगति को प्रस्तुत करने वाला प्रतिनिधि उपन्यास है। उपन्यास का नायक 'एण्टी हीरोय है जो हिन्दी कथा साहित्य में एक नयी उद्भावना है। पात्रों की मितव्ययिता, कथानक का अभाव, घटनाओं के माध्यम से सूक्ष्म मनोभावों को चित्रित करने की दृष्टि से यह उपन्यास अपने सम सामयिक उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

'जिरह' श्रीकांत वर्मा के आलोचनात्मक निबंधों का एक मात्र संग्रह है। यूरोप के अन्तर्विरोधों का पहली बार श्रीकांत वर्मा जैसे भारतीय लेखक इतनी बारीकी और तटस्थता के साथ विश्लेषण कर सके हैं। श्रीकांत वर्मा द्वारा लिखित 'फैसले का दिन' रूसी कवि आन्द्रेवोज्नेसेंस्की की सत्ताईस कविताओं का हिन्दी अनुवाद है जो उनके असामान्य ज्ञान और उनकी मौलिक प्रतिभा का परिचायक है। इस कविता संग्रह में आन्द्रेवोज्नेसेंस्की की कविताओं का न केवल सामान्य अनुवाद ही किया गया है बल्कि इस पुस्तक के अन्त में की गयी टिप्पणियां भी आन्द्रेवोज्नेसेंस्की की कविताओं को समझने में सहायक सिद्ध हुई हैं। 'फैसले का दिन' वाजनेसेन्सकी की सबसे आक्रामक कविताओं में से है। अपनी इस कविता के जरिये कवि ने स्तालिनऔर उसके उत्तराधिकार की परीक्षा की है आन्द्रेवोजनेसेंकी का कृतित्व काव्य से संबंध है। अपने काव्य सृजन के द्वारा उन्होंने इतिहास विषयक अनेक प्रश्नो के उत्तर दिए हैं। वास्तव में आन्द्रे एक ऐसे 'प्रति' संसार के कवि है जो एक फेंटेसी भी है। इसीलिए वह अधिकाधिक यथार्थ है अधिकाधिक वास्तव है एक गलत दुनिया से निकलकर दूसरी गलत दुनिया में आ पढी मनुष्यता की दु:खभरी चीख है। [5]

इनके अतिरिक्त कृति, संवेद, त्रिज्या, प्रकट, श्रमिकजन जैसी लघु पत्रिकाओं में और दिनमान, धर्मयुग, नईदुनिया, साप्ताहिक, हिन्दुस्तान, कल्पना, वीणा, माध्यम जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं निरन्तर प्रकाशित होती रहीं। कुछ प्रमुख नये कवियो में जगदीश गुप्त, दुष्यंतकुमार श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, कीर्ति चौधरी, अजीत कुमार और लक्ष्मीकांत वर्मा के नाम उल्लेखनीय है कुछ ऐसे भी कवि है जो घेरे बनाकर लड रहे है और कुछ ऐसे है जिनकी लडाई निर्धारित लक्ष्य पर अचूक प्रहार कर रही है। ऐसे कवियो में दुष्यंत कुमार और श्रीकांत वर्मा सर्वाधिक सजग और व्यापक लोकानुभूति से सम्पन्न हैं। [6]

साहित्य के क्षेत्र में श्रीकांत वर्मा की कवि कथाका और आलोचक के रूप में एक विशिष्ट पहचान रही है। वे नयी कविता के सर्वाधिक समर्थ हस्ताक्षरों में से एक थे। हिन्दी व अंग्रेजी में उनकी लगभग 20 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सुमन वर्मा के लेख 'शाम नहीं यह मेरे प्रश्नों की ओर' से प्राप्त जानकारी के अनुसार 'श्रीकांत वर्मा के मरणोपरान्त उनके दो कविता सग्रहों का प्रकाशन हुआ' 'सरहद पर' में संकलित प्राय: सभी कविताएँ स्वयं श्रीकांत वर्मा ने अपने आरम्भिक दिनों में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित करायी थीं जिनका संकलन डॉ. राजेन्द्र मिश्र के सहयोग से हिन्दी की आलोचना पत्रिका पूर्वग्रह ने किया है और उनकी परवर्ती अप्रकाशित कविताओं का संकलन एवं प्रकाशन उनकी पत्नी वीणा वर्मा ने किया है। (साक्षात्कार, जून 1994)

अपने लेखन के लिए श्रीकांत वर्मा को अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् 1974 में जलसाघर पर अखिल भारतीय तुलसी पुरस्कार, 1975 में उत्तर प्रदेश सरकार का पुरस्कार प्रदान किया गया। 1973 में मध्य प्रदेश शासन ने उन्हें उनके साहित्यिक योगदान के लिए सम्मानित किया। 1984 में 'कुमारन आसन स्मृति पुरस्कार' मलयालम के प्रसिद्ध कवि (कुमारन आसन) की स्मृति में यह राष्ट्रीय पुरस्कार श्रीकांत वर्मा को हिन्दी कविता तथा राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए दिया गया। 1784 में 'यूनाइटेड नेशन्स यूथ काउसिल' का'साहित्य पुरस्कार', 1984 में ही 'बीसवी शताब्दी के अंधेरे के लिए' मध्यप्रदेश शासन का 'आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी पुरस्कार' 1985 में 'इंदिरा प्रियदर्शिनी पुरस्कार' प्रदान किए गए। 1981 में श्रीमती इंदिरा गांधी ने उन्हें उनके कृतित्व के लिए मध्यप्रदेश सरकार का शिखर सम्मान प्रदान किया।

श्रीकांत वर्मा ने अपने पचपन वर्षो के जीवन में बहुतेरे उतार चढाव देखे। स्वभाव से अति विनम्र श्रीकांत वर्मा सुरुचिपूर्ण रहन-सहन के लिए जाने जाते थे। बेहतरीन पहनावे अच्छी।शराब इम्पोटेड सिगरेट की आदतों ने उन्हें बाद के वर्षो में जैसे जकड़ सा लिया था। श्रीकांत वर्मा ने एक कविता में लिखा था 'अब मै घर लौट जाना चाहता हूँ' उन्हीं के शब्दों में 'लेकिन अब घर लौट सकना मुश्किल/नामुमकिन है।' नियति की क्रूर विडम्बना ही है कि न्यूयार्क में मृत्यु शैया पर पड़े उनके मन में जब कभी घर लौटने का विचार आया होगा तो उस असाध्य बीमारी के कारण ऐसा भी लगा होगा कि अब घर लौट सकना नामुमकिन है। वे घर लौट नहीं सके।

हिन्दी साहित्य को श्रीकांत वर्मा जैसे साहित्यकार से उत्कृष्ट कृतियों की अपेक्षा थी परन्तु कैंसर जैसे असाध्य रोग ने उन्हें असमय ही हमसे छीन लिया। नई दुनिया दिनांक 19 अक्टूबर 1956 में कवि डॉ. केदारनाथ सिंह हवाले से प्राप्त सूचना के अनुसार मृत्यु से पूर्व वे बनारस के जन जीवन पर आधारित एक उपन्यास 'गंगाधर की लाश' की रचना कर रहे थे। संभव है उनकी अन्य रचनाएं ऐसी भी हो जिन पर वे काम कर रहे थे और उनके प्रकाश में अपने से पूर्व ही वे चल बसे। ऐसी सभी रचनाओं का प्रकाशन साहित्य के अध्येताओं को उपयोगी सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. कांति कुमार जैन नयी कविता पृ. 142
2. श्रीकांत वर्मा दिनारंभ पृ. 33
3. श्रीकांत वर्मा मायादर्पण पृ. 105
4. शीला सन्धू प्रकाशन समाचार अक्टूबर 1976 आवरण पृष्ठ
5. श्रीकांत वर्मा 'फैसले का दिन' भूमिका से उद्दधृत।
6. डॉ. शिव मंगल सिंह सुमन एवं डॉ. विजयबहादुर सिंह पृ. 43

दुष्यन्तकुमार के गजलों में सामाजिक बोध

मनसाराम बघेल *

प्रस्तावना – हिन्दी गजल में दुष्यन्तकुमार त्यागी युग निर्माता के रूप में हमारे सामने आते हैं दुष्यन्तकुमारजी ने गजलें आरंभ से ही लिखी हैं उनका गजल संग्रह यच्साये मे धूपछ साहित्य जगत मे काफी चर्चीत रहा हैं। गजल संग्रह के विषय अन्यंत सीधे–सीधे तथा परिचित एवं भोगे हुये हैं। वे लोकजीवन से जुडे हुये, सामाजिक राजनितिक,आर्थिक विषमता प्रकृति आदि से संबंधित रहे हैं। उन्होंने पनी गजलों में शहरों में आया देहाती आदमी एवं शहरों में रहने वाले व्यक्ति की मानसिकता को जगह दी हैं। इन गजलों के मूल रूप में आम आदमी की समस्या उसका अस्तित्व और राजनितिक हलचलों को चलाने वाले नेतागणों का दायित्व आदि विषयों को बखूबी उजागर किया हैं।

काव्य की दृष्टि से हिन्दी गजल ने सामाजिक संघर्ष चेतना एवं आम आदमी के आस्तित्व आदि अनेक संवेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान कि हैं। इतना ही नहीं जीवन की जटिलताओं सामाजिक संघर्षो, अस्तित्व की लडाई को व्यंग्यात्मक अनुमति हिन्दी गजल को नवीन स्वर प्रदान किया हैं जिसके माध्यम से नवीन जीवन मूल्यों की प्रति स्थापना हो सकी हैं। हिन्दी गजल भाव एवं भाषा की दृष्टि से उर्दू गजल के साम्य रखती हैं। किन्तु हिन्दी गजल की और मूल्याकंन के उद्देश्य से आलोचना की दृष्टि न जाने के कारण अभी यह एक सर्वथा नया विषय हैं। गजलकारों ने अपने में हिन्दी गजल को काव्य रूप दिया हैं जैसे–

'दर्द का इतिहास हैं हिन्दी गजल
एक शाश्वत प्यास हैं हिन्दी गजल
प्रेम,मदिरा,रूप,साकी से सजा
अब नहीं रनिवास हैं हिन्दी गजल'

– घनश्याम रोहिताख [01]

सामाजिक बोध – समाजिक बोध को अभिव्यक्त करने वाले हिन्दी के सर्वप्रथम गजलकार जयशंकर प्रसाद जी हैं। इसके बाद सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और दुष्यन्तकुमार हैं। दुष्यन्तकुमार ने ज्यादातर सामाजिक बोध को लेकर ही गजलें लिखी हैं। सामाजिक व्यवस्था भ्रष्ट हो चुकी हैं। चारों ओर भ्रष्टचार फैला हुआ हैं।

' मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में नहीं,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए'। [02]

दुष्यन्तजी के अनुसार यह आग आम आदमी के संघर्ष की हैं, कुण्ठा की हैं, उत्पीड़न की हैं। जीवन में अक्सर अपने प्रति बीती हुई घटनाओं का ध्यान करना चाहिए क्योंकि उसी से जीवन में आगे बढने की शक्ति प्राप्त होती हैं यह वह आग जो संघर्ष के लिए उकसाती हैं यही आग भविष्य के अंधेरे को प्रकाशमान करती हैं।

आज हमारा समाज किस प्रकार का जीवन जी रहा हैं इसका सामाजिक यर्थाथ दुष्यन्तकुमार ने इन पंक्तियों मे यथार्थ के साथ वर्णन किया हैं आम आदमी अपना जीवन जीते समय यह नहीं देखता की मेरा कर्तव्य क्या हैं। मेरे हक क्या हैं। यह वह देखता नही हैं बल्कि वह सोचता हैं कि हमारा जीवन इस प्रकार का ही हैं ऐसे सोचने वाले लोगों का जीवन का सफर किस प्रकार होता हैं यह त्यागीजी ने व्यक्त किया।

'दुकसदार तो मेले मे लुट गए यारों ,
तमाशबीन दुकाने लगाके बैठ गए।' [03]

आज की सामाजिक व्यवस्था का कारण समाज हैं वर्तमान समाज व्यवस्था के मापदण्ड कुछ बदलते हुऐ नजर आये हैं। वे पतन की ओर जा रहे हैं। वह इन आपत्तियों का सामना नहीं करना चाहते बल्कि जैसा हैं, वैसा ही जीवन जीना चाहते हैं।

'न हो कमीज तो पावोषे पेट ढॅक लेगे'
ये लोग कितने मुनसिब हैं हैं इस सफर के लिए। [04]

सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार होती है इसकी यथार्थ वर्णन इन पंक्तियों में किया हैं वही समाज जो दो राहे चौंराहे में इकट्ठा होकर एक मेले का रूप धारण करता हैं तो वहॉ कोई पटरी या पगदण्डी नही होती हैं बस एक रेटीला सरोवर छोटा हैं। और वहॉ सब जीते हैं देखा जाय तो मेले मे कोई सभ्य नैंतिकता की दुकान चल नहीं सकती। लेकिन उसकी नकल करने वाले तमाशबीन दुकान सजाकर बैठे हैं।

'कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गए,
कहीं पे शाम सिहराने लगाके बैठ गए।' [05]

आम आदमी के जीवन मे कई ऐसी व्यवस्थाऐं होती हैं जो उन्हें दुख ही देती हैं। एक ऐसा अंधकार जिसमें अभाव के अतिरिक्त कुछ अन्य निष्पन्न नहीं होता। 'दिया' शब्द अभाव ग्रस्त जीवन के लिऐ क्या तेल से भीगी बाती आम आदमी के संघर्षमय जीवन की स्पष्टता देती हैं।

दुष्यन्तकुमार जी ने आम आदमी के जीवन की दयनीयता को आवाज दी हैं आज आदमी ने मंहगाई के कारण अपना जीवनयापन अच्छी तरह से नहीं किया हैं उनके लिऐ धूप ही एक सहारा हैं चादर हैं उनकी शाम की जागते हुऐ बैठे बैठे निकल जाती हैं। धुप एक नवीन जीवन के क्षेत्र को जन्म देती हैं।

एक चिनगारी कहीं से ढूँठ लाओं दोस्तों
उस दिये मे तेल से भीगी हुई बाती तो हैं। [06]

परिवर्तन ही संसार का नियम हैं समाज मे बहुत सी बाते हैं जो पुरानी पड चुकी हैं। हमे पुरानी बातो को हटाना चाहिए और नयी नयी बातो का स्वागत करना चाहिए। इसी बदलाव से हमारी उन्नति हो सकती हैं अन्यथा नहीं इसी वास्तविक्ता को दुष्यन्तकुमार जी ने अपनी गजलों के मध्यम से सामाजिक स्थितियाँ को उद्घाटित किया हैं।

निष्कर्ष: इस प्रकार दुष्यन्तकुमार जी ने अपने गजल संग्रह के माध्यम से समाज में पनप रहे सामाजिक बोध को व्यक्त किया हैं। आज की समाज व्यवस्था में चाहे राजनितिक क्षेत्र हो या समाज का कार्यक्षेत्र यहॉ ईमान नाम की कोई चीज नही हैं। चारों और संघर्ष का युग हैं। ओर इस युग मे लोग साम,दाम,भेद का अनुसरण करते नजर आ रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हिन्दी गजल, उद्भव और विकास पृष्ठ – 160
2. साये में धूप दुष्यन्तकुमार जी पृष्ठ – 30
3. साये में धूप दुष्यन्तकुमार जी पृष्ठ – 15
4. साये में धूप दुष्यन्तकुमार जी पृष्ठ – 13
5. साये में धूप दुष्यन्तकुमार जी पृष्ठ – 23
6. साये में धूप दुष्यन्तकुमार जी पृष्ठ – 24

* C/o डॉ. जयराम सोंलकी, 25 सरस्वती कॉलोनी, सेन्धवा, जिला बडवानी (म.प्र.) भारत

तुलसीदास का राजनीतिक चिन्तन

डॉ. मीना भावसार *

प्रस्तावना – गोस्वामीजी की सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है। जन साधारण से लेकर उच्च कोटि के प्रकांड पंडित तक सभी इसका समान रुप से रसास्वादन करते हैं। वस्तुत: वह भारत के कोटि–कोटि जनों का कंठहार है। सात कांड़ों में विभाजित यह ग्रंथ प्रधानत: दोहा, चौपाई में लिखित है, परन्तु बीच–बीच में सोरठा छंद आदि के कारण मनोहारी बन गया है। यह ज्ञान का विशाल भंडार और राजनीतिक विचारों का अनुपम आगार है। एक महान सम्राट के जीवन से सम्बन्धित काव्य में राजनीति की प्रचुर सामग्री का होना स्वाभाविक है। यद्यपि यह भक्ति प्रधान रचना है फिर भी इसमें राजनीतिक विचार सर्वज्ञ सूत्र रुप में दृष्टव्य है जो क्रांति के व्यंजना कौशल के परिचायक है। राजा भानुप्रताप, राजा दशरथ, राजा जनक, वानरराज बाली, सुग्रीव, लंका के राजा रावण और सर्वोपरी राजा राम का चित्रण इस ग्रंथ में हुआ है।

श्रीराम केवल एक महान् योद्धा ही नहीं कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। एन. आर. नवलेकर ने लिखा है कि 'जब मैंने वाल्मीकि द्वारा वर्णित राम के विषय में विचार किया तो मुझे राम भारत के सबसे बड़े राजनीतिक और शैव्य शास्त्र के प्रतिभाशाली ज्ञाता जान पड़े जिन्होंने अत्यधिक आशाहीन परिस्थितियों में काम करके आर्य जाति को दासता के निम्नतर स्तर से स्वतंत्रता की गौरवपूर्ण ऊँचाई तक उठा दिया।' फलत: राजनीति सर्वत्र रुप में चित्रित हुई। राजा, राज्य अमात्य, पुरोहित, दूत, कीर्ति आदि सभी उत्कृष्टतम् और साथ ही व्यावहारिक रुप ग्रंथ की प्रमुख विशेषता है। भविष्य दृष्टा तुलसी ने राम राज्य के रुप में जो भॉवी भारत का स्वप्न देखा वह अनंत काल से यहाँ तक की आज भी हमारे जीवन का लक्ष्य बना हुआ है। मानस के कलि वर्णन में तत्कालीन यवन शासन का सजीव चित्र अंकित हुआ है और उसी की प्रतिक्रिया स्वरुप राम राज्य की कल्पना को बल मिला। वह राम राज्य जहाँ भाई के लिये संघर्ष राज्य एवं समस्त सम्पदा सहर्ष त्याग देता है और स्वयं वनवासी बनता है जहाँ एक नारी के सतीत्व की रक्षा तथा अन्याय और अत्याचार के दमन हेतु आततायियों को यथेष्ट दण्ड़ दिया जाता है जहाँ राजा से लेकर प्रजा तक सभी धर्म कर्त्तव्य का पालन करते हैं जहाँ राजा प्रजा का सेवक होता है और प्रजा भी राजनिष्ठ होती हैं। ऐसा राम राज्य केवल स्वप्न आदर्श की वस्तु नहीं है। नित्यप्रति के जीवन में प्रेरणा स्त्रोत है। राजा और प्रजा प्रमाणिक प्रिय है और प्रजा को राजा।

राजा का परिजन और गुरुजन के प्रति ही नहीं शत्रु के साथ भी व्यवहार दर्शनीय है। शत्रु से घृणा नहीं घृणा उसके कर्म से है। धर्म ही जहाँ सर्वोपरि सत्ता है धर्म से सुशासित राजा राम की युद्ध नीति भी धर्म पर आधारित है। जहाँ कर धर्म सम्मत ही लगाये जाते हैं और राज्य की समस्त आय प्रजा के कल्याण कर कार्यों के लिए व्यय की जाती हैं।

तुलसी के विशाल हृदय में व्यवस्थित मानवता के उत्कर्ष की मंगलाशा, लोक कल्याण की उदात्त भावना और अहितकर तत्व के उन्मूलन की प्रबल कामना ने मानस में अपूर्व गुरुत्व भर दिया है। कोई व्यक्ति जिस दृष्टिकोण को लेकर और चाहे जितनी बार मानस का उदयमन करे उसे वहां नित्य नवीन सौन्दर्य एवं तथ्यों का उन्मेषण होता दिख पड़ेगा। हम नि:संकोच कह सकते है। कि मानस केवल भक्ति दर्शन समाज सुधार एवं काव्य का ही ग्रंथ नहीं है। राजनीति के निर्मल तत्व इसमें भरे पड़े हैं। प्रधानत: राम भक्ति में निमग्न कर देने वाला काव्य रस से अप्लादित कर देने वाला यह अद्धितीय ग्रंथ प्राचीन भारतीय अर्थात् धर्म सम्मत राजनीति का दिग्दर्शन कराने में भी पूर्णरुपेण सफल हुआ है। सात्विक राजस, तामस सभी प्रकार की राजनीति के इससे दर्शन होते हैं, परन्तु गोस्वामीजी की दृष्टि में राजा राम की सात्विक (शास्त्रसम्मत) नीति ही आदर्श नीति है। इसी पर राज्य का उत्कर्ष अभ्युदय आधारित है।

शिवानन्दन सहाय ने लिखा है कि 'मानस केवल कविता रस के प्रेम में ही नहीं पड़ा जाता, यह धर्म का एक अंग और धर्मशास्त्र की एक प्रधान पुस्तक बन गया है। धर्मशास्त्र ही क्यों समाज–नीति, व्यवहारनीति, राजनीति इत्यादि सब नीतियों का शास्त्र कहलाने का यह ग्रंथ अधिकारी है।'

डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है कि 'तुलसीदास ने राजनीति के सिद्धान्तों का निरुपण अधिकत्तर मानस ही में किया है। पहल तो उन्होंने समकालीन परिस्थितियों का चित्रण कर कलियुग के प्रभावा से राजनीति की दुरावस्था का रुप खड़ा किया है। बाद में राम राज्य वर्णन में राजनीति के आदर्श कि ओर संकेत दिया है। मानस में अनेक स्थानों पर राजनीति के सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं।'

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नवेलकर, एन. आर. : ए व्यू एप्रोच टू रामायण, पृ.19
2. सहाय, शिवानन्दन : गोस्वामी तुलसीदास, पृ.223
3. वर्मा, डॉ. रामकुमार : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.436

* विभागाध्यक्ष (हिन्दी) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा (म.प्र.) भारत

पर्यावरण : कसूरवार बदलती जीवन शैली

डॉ. रश्मि जैन *

शोध सारांश – पर्यावरण शब्द प्राकृतिक पर्यावरण के अतिरिक्त जीवन के अन्य अनेक पक्षों से भी संबद्ध है। 'पर्यावरण' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी उसके व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है। 'परि' का अर्थ है 'चारों ओर' और 'आवरण' का मुख्य अर्थ है ढँकना या घेरना अर्थात् हमारे चारों ओर जो कुछ विद्यमान है वह सब हमारा पर्यावरण है। समग्रत: हमारी प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, और राजनीतिक परिस्थितियाँ हमारा पर्यावरण हैं। पर्यावरण उन सभी स्थितियों और प्रभावों का मेल है, जो जीव मात्र के जीवन और विकास को प्रभावित करता है। जिन स्थलों पर पर्यावरणीय परिस्थितियाँ जीवन के अनुकूल होती हैं, वहाँ जीवन स्वस्थ और विकसित होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवन का विकास बाधित होता है। इसलिए मनुष्य चिरकाल से पर्यावरण के प्रति सचेत रहा है और उसने पर्यावरण को जीवन के अनुकूल बनाने के लिए विशेष प्रयत्न किए है। ***अजहर हाशमी के शब्दो*** में 'प्रकृति का पालना है पर्यावरण, जिसमें हरियाली रूपी शिशु किलकारियाँ मारता है। कुदरत की कारीगरी से आकार लेता है यह पालना। जल, वायु और प्रकाश से पोषण पाता है हरियाली रूपी शिशु। पालना और शिशु एक दूसरे से जुड़े हुए है। पालना दरअसल शिशु की आरामगाह भी और आनंदस्थल भी, कसरत कक्ष भी है और क्रीड़ा केन्द्र भी पर्यावरण रूपी पालना जब मजबूत होता है। तभी हरियाली रूपी शिशु हर्षदूत होता है।' हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में कई छोटी छोटी बातों का ध्यान रखकर अपने पर्यावरण को सुरक्षित और बेहतर बना सकते है। वर्ल्ड वाइड फण्ड (WWF) और बीओपी भी इस मुहिम में जुड़ रहे हैं। इनका भी मानना है कि विकास और प्रगति के साथ साथ पर्यावरण संरक्षित करना भी हमारा दायित्व है। आज अमेरिका और यूरोप के साथ विकासशील देशों में मीट, मटन बीफ पोर्क और चिकन के प्रति लोगों का लगाव बढ़ा है। भारत और चीन भी इसमें पीछे नहीं है। आज पूरी दुनिया के युवाओं में जंक फूड का क्रेज है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जंक या फास्ट फूड भले ही शाकाहारी हों लेकिन अपनी निर्माण प्रक्रिया के चलते कई तरह से वातावरण को नुकसान पहुँचा रहें है। होटलो या रेस्टोरेंट में भोजन बनाने की जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह भी काफी हद तक ग्लोबल वार्मिंग बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है। जब मानवीय चेतना प्राकृतिक संसाधनों के प्रति संवेदनशील हो। उनके उचित दोहन के लिए एवं सदुपयोग के लिए सतर्क हो। जिससे पर्यावरण की सुरक्षा को बढ़ावा मिलेगा । भोजन वितरण की समस्या हल होगी तथा खाद्य सामग्री की बर्बादी पर रोक लगेगीं भोजन खाद्य सामग्री की बर्बादी का सीधा मतलब है प्राकृतिक संसाधनों को व्यर्थ करना है। आज पर्यावरण सर्वत्र प्रदूषित है। मनुष्य के चिंतन की दिशा इतनी भोगवादी हो गई है कि उसने अविचार पूर्वक सारा वातावरण विषाक्त बना दिया है। प्रदूषण आज विविध रूपों में जीवन को निगल रहा है। वनस्पतियों की सुरक्षा, जीवों का पोषण और संघीय अनुष्ठानों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन का पूर्ण प्रयत्न भारतीय साहित्य में समाहित है। यदि मनुष्य वनस्पतियों, जीव जंतुओं के प्रति पुन: पूज्यभाव विकसित कर ले तो उसके संवेग और उसकी संवेदनाएँ फिर प्रकृति से रागात्मक संबंध स्थापित कर सकती है और तबवह इस दिशा में यानी पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सच्चा प्रयत्न कर सकता है।

पर्यावरण शब्द प्राकृतिक पर्यावरण के अतिरिक्त जीवन के अन्य अनेक पक्षों से भी संबद्ध है। 'पर्यावरण' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी उसके व्यापक अर्थ की प्रतीति कराता है। 'परि' का अर्थ है यचारों ओर' और 'आवरण' का मुख्य अर्थ है ढँकना या घेरना अर्थात् हमारे चारों ओर जो कुछ विद्यमान है वह सब हमारा पर्यावरण है। समग्रत: हमारी प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, और राजनीतिक परिस्थितियाँ हमारा पर्यावरण हैं। पर्यावरण उन सभी स्थितियों और प्रभावों का मेल है, जो जीव मात्र के जीवन और विकास को प्रभावित करता है। जिन स्थलों पर पर्यावरणीय परिस्थितियाँ जीवन के अनुकुल होती हैं, वहाँ जीवन स्वस्थ और विकसित होता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवन का विकास बाधित होता है। इसलिए मनुष्य चिरकाल से पर्यावरण के प्रति सचेत रहा है और उसने पर्यावरण को जीवन के अनुकुल बनाने के लिए विशेष प्रयत्न किए है। ***अजहर हाशमी के शब्दो*** में 'प्रकृति का पालना है पर्यावरण, जिसमें हरियाली रूपी शिशु किलकारियाँ मारता है। कुदरत की कारीगरी से आकार लेता है यह पालना। जल, वायु और प्रकाश से पोषण पाता है हरियाली रूपी शिशु। पालना और शिशु एक दूसरे से जुड़े हुए है। पालना दरअसल शिशु की आरामगाह भी और आनंदस्थल भी, कसरत कक्ष भी है और क्रीड़ा केन्द्र भी पर्यावरण रूपी पालना जब मजबूत होता है। तभी हरियाली रूपी शिशु हर्षदूत होता है।'

प्रस्तावना – हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में कई छोटी छोटी बातों का ध्यान रखकर अपने पर्यावरण को सुरक्षित और बेहतर बना सकते है। वर्ल्ड वाइड फण्ड (WWF) और बीओपी भी इस मुहिम में जुड़ रहे हैं। इनका भी मानना है कि विकास और प्रगति के साथ साथ पर्यावरण संरक्षित करना भी हमारा दायित्व है। आज अमेरिका और यूरोप के साथ विकासशील देशों में मीट, मटन बीफ पोर्क और चिकन के प्रति लोगो का लगाव बढ़ा है। भारत और चीन भी इसमें पीछे नहीं है। इसे ग्लोबल मार्केटिंग का असर कहें या बदलती जीवनशैली। ग्लोबल वार्मिंग में बड़ा रोल अदा कर रहें माँस उत्पादन में चीन नें सबको धकेल दिया है। दुनिया में माँस की एक चौथाई खपत चीन में होती है। चीन की इस बढ़ती भूख ने दुनिया भर की खेती के पेटर्न को बदलकर रख दिया है। अब सवाल पैदा होता है कि धरती के इस सत्यानाश के लिए जिम्मेदार कौन है? अगर ग्लोवल वार्मिंग को 193 देशों के अनुमोदन वाले संयुक्त राष्ट्र के क्योटो प्रोटोकॉल के तहत अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हुई कई सम्मेलनों के पन्ने पलटेंगे तो वहाँ कुछ मिलेगा! सबकी उंगलियाँ एक दूसरे की तरफ उठी मिलेगीं। इतिहास के पन्नों में जरूर इसका जवाब मिल जाएगा। इसका सीधा सा जबाव है अमेरिका और उसकी सरपरस्ती में विकास की अंधी दौड़ में शामिल यूरोपीय देश और चीन। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक मांस खाने के लिए पशुओं के पालने के दौरान जो तमाम तरह की कृषि और अन्य प्रक्रियाएँ होती हैं वे ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार तीन बड़ी वजहों में से एक है। दुनिया भर के वैज्ञानिक मांसाहार को अलविदा कहकर शाकाहार अपनाने की सलाह दे रहें है। संयुक्त राष्ट्र की हालिया रिपोर्ट में भी कहा गया है कि मौसम के बदलाव के बदतर हालात से निपटने में शाकाहारी भोजन अहम भूमिका अदा कर सकता है।'**वेजीटेरियन बनें और धरती की हरियाली लौटाने में मदद करें।'** मटन, बीफ, चिकन के बारे में बताया गया कि एक भैंस को

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (म.प्र.) भारत

स्लाटर हाउस में भेजने से पहले जितने मूल्य का चारा उसे खिलाया जाता है। उससे विकासशील देशों में दस लोग खाना खा सकते हैं। अपनी परवरिश के दौरान मवेशी हजारों लीटर पानी पी जाता है यही बात चिकन, मटन और पोर्क देने वाले पशुओं पर लागू होती है।

कैलिफोर्निया स्थित लोमा लिंडा यूनीवर्सिटी के अध्ययन से यह बात पता चली है कि शाकाहारी भोजन करने वाले मांसाहारी भोजन करने वालों से ज्यादा लंबा जीवन जीते हैं। शाकाहार करने वालों का रक्त चाप और कोलेस्ट्रॉल नियंत्रण में रहता है। विशेषरूप से पुरूषों को इसका अधिक फायदा मिलता है। शाकाहार की उपयोगिता के संबंध में उल्लेख मिलता है "A vegetarian diet maybe the key to living a longer and healthier life, with men reaping the most benefits, according to new research. Vegetarian diets have been associated with reductions in risk for several chronic diseases, including hypertension, metabolic syndrome and diabetes. Mellitus and is chemic heart disease (IHD), according to the study." (Hindustan times 05 Jun 13) आज पूरी दुनिया के युवाओं में जंक फूड का क्रेज है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। वैज्ञानिकों का मानना है कि जंक या फास्ट फूड भले ही शाकाहारी हों लेकिन अपनी निर्माण प्रक्रिया के चलते कई तरह से वातावरण को नुकसान पहुँचा रहे हैं। होटलो या रेस्टोरेंट में भोजन बनाने की जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह भी काफी हद तक ग्लोबल वार्मिंग बढ़ाने के लिए जिम्मेदार है। होटल व रेस्टोरेंट में खाना बनाने के लिए आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल किया जाता है। जो ग्लोबल वार्मिंग बढ़ाने के लिए उत्तरदायी है।

आजकल भोजन और खाद्य सामग्री को उसके उत्पादन में खपने वाले कुल पानी के नजरिए से देखा जा रहा है। इसे वर्चुअल वाटर 'आभासी जल खपत' कहा जाता है। मसलन एक किलो गेहूँ के उत्पादन में 1400 लीटर, चावल में 2850 लीटर, आलू में 1000 लीटर और सेब में 700 लीटर पानी की खपत होती है। देखा गया है कि मांसाहारी खाद्य सामग्री पानी की ज्यादा खपत करती है: जैसे एक किलोग्राम बकरी के मांस और चिकन के उत्पादन पर क्रमश: 4000 और 4600 लीटर पानी खर्च होता है। शाकाहार पर जोर देने का शायद एक कारण यह भी है।

खाद्य एवं कृषि संगठन एफ.ए.ओ. के आँकडे बताते है कि दुनिया में हर साल लगभग 1.3 विलियन टन भोजन की किसी न किसी कारण से बर्बादी होती है। यह मात्रा मानव उपयोग के लिए तैयार किए गए कुल भोजन की लगभग एक तिहाई है। अकेले अमेरिका में हर साल लगभग 30 प्रतिशत भोजन कूड़ेदान के हवाले कर दिया जाता है। अपने देश की बात करें तो कुल खाद्य उत्पादन का लगभग 40 फीसदी हिस्सा अनेक कारणों से व्यर्थ चला जाता है। इस बर्बादी की कीमत 50 से 55 हजार करोड़ रूपये बताई जाती है। विवाह और सामाजिक उत्सवों के दौरान तैयार किए गए भोजन का लगभग 20 फीसद भाग कूड़े में फेंक दिया जाता है। (डॉ. जगदीप सक्सेना, राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली, 05 जून 13)

हम जब एक कप कॉफी पी रहे होते है तो एक तरह से 140 लीटर पानी की खपत भी करते है और एक लीटर दूध के पीछे 1000 लीटर 'वर्चुअल वाटर' मौजूद होता है। अब जरा सोचिए कि अगर हम इन खाद्य सामग्रियों की थोंड़ी मात्रा की भी बर्बादी करते है तो पानी की कितनी बड़ी मात्रा व्यर्थ चली जाती है। दूसरी ओर भोजन और खाद्य सामग्री की बर्बादी पर खर्च हुई ऊर्जा,प्राकृतिक संसाधनों और उन करोड़ो किसानों की भावनाओं का अपमान है। कुछ देशों ने इस पर रोक लगाने के लिए कानून बनाए है लेकिन इन्हें लागू करना कठिन साबित हो रहा है। यह तब संभव है। जब मानवीय चेतना प्राकृतिक संसाधनों के प्रति संवेदनशील हो। उनके उचित दोहन के लिए एवं सदुपयोग के लिए सतर्क हो। जिससे पर्यावरण की सुरक्षा को बढ़ावा मिलेगा । भोजन वितरण की समस्या हल होगी तथा खाद्य सामग्री की बर्बादी पर रोक लगेगी। भोजन खाद्य सामग्री की बर्बादी का सीधा मतलब है प्राकृतिक संसाधनों को व्यर्थ करना है। कृषि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने वाली सबसे प्रमुख मानवीय गतिविधि है। वैश्विक स्तर पर लगभग 25 फीसदी भूमि का उपयोग खाद्य उत्पादन के लिए किया जाता है, जिसमें 70 फीसद मीठे पानी की खपत होती है। एक तरफ बढ़ती भूख दूसरी ओर भोजन की बर्बादी। यह सामाजिक बुराई के तौर पर उभरी भोजन की बर्बादी पर्यावरण के लिए भी गंभीर समस्या है। जब कहीं अनाज की एक दाना भी बर्बाद होता है तो पर्यावरण पर गहरी चोट पडती है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने इसके प्रति जागरूकता लाने के लिए विश्वव्यापी अभियान छेड़ रखा है, जिसके अंतर्गत भोजन बर्बादी के दूरगामी प्रभावों और परिणामों कों बताया जा रहा है। जब भी कहीं खाद्य सामग्री की बर्बादी दिखाई दे तो सोचें कि इससे कितने भूखों को भोजन उपलब्ध कराया जा सकता है। और यह भी कि पानी सहित कितने प्राकृतिक संसाधनों का विनाश हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण कार्यक्रम ने संदेश दिया है कि 'कुछ भी खाने से पहले सोचो और पर्यावरण के संरक्षण में योगदान करो।'

'सोचें खाएँ, बचाएँ अपना फुडप्रिंट घटाएँ।' **"Think Eat - Save Reduse foodprint"**

विश्वखाद्य संगठन का अनुमान है कि दुनिया भर में उत्पादित होने वाले अन्न का एक तिहाई हम संभाल नहीं पाते या बर्बाद हो जाता है। 'दुनिया के सात लोगो में सें एक को हर रोज भूखे सोना पड़ता है। और 5 साल से छोटे लगभग 20 हजार बच्चे हर रोज भूखें के कारण दम तोड़ देते है।' यदि इस पर अंकुश नहीं लगाया गया तो 2050 में धरती की नौ अरब आबादी को भोजन और पोषण मुहैया कराना नामुमकिन होगा। आज पर्यावरण सर्वत्र प्रदूषित है। मनुष्य के चिंतन की दिशा इतनी भोगवादी हो गई है कि उसने अविचार पूर्वक सारा वातावरण विषाक्त बना दिया है। प्रदूषण आज विविध रूपों में जीवन को निगल रहा है। प्रकृति रूपी मुर्गी से नित्य एक अंडा पाने का धैर्य उसमें नहीं है, वह उसका पेट चीरकर एक साथ सार अंडे खाने को आतुर है।

बापू ने कहा था – 'यह पृथ्वी, हवा, भूमि और जल हमारे बापदादाओं की विरासत नहीं है। ये हमारी आने वाली नस्लों के कर्ज है, जिसे हमें अदा करना है। इसलिए हम अपने बच्चों को जब प्रकृति की विरासत सौंपें तो उसी रूप में सौंपें जैसे हमारे पुरखों नें हमारे हवाले किया था। इस दुनिया में इंसान की जरूरतों का तो पूरा इंतजाम है लेकिन उसकी लालच पूरी करने का कोई प्रबंध नहीं है। वनस्पतियों की सुरक्षा, जीवों का पोषण और संघीय अनुष्ठानों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन का पूर्ण प्रयत्न भारतीय साहित्य में समाहित है। यदि मनुष्य वनस्पतियों, जीव जंतुओं के प्रति पुन: पूज्यभाव विकसित कर ले तो उसके संवेग और उसकी संवेदनाएँ फिर प्रकृति से रागात्मक संबंध स्थापित कर सकती है और तबवह इस दिशा में यानी पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सच्चा प्रयत्न कर सकता है। **'धरती कहे पुकार के'** की करूण चीख से मानव मन स्पंदित हो जाए तभी वह जागेगा। यह पर्यावरण संरक्ष्रण सिर्फ एक दिन का अभियान नहीं है, यह प्रति दिन किए जाने वाले छोटे छोटे प्रयासों का जीवन भर चलने वाला चक्र है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हिन्दी भाषा और संवेदना: संपादक डॉ. अवधेश शुक्ल, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल द्वितीय संस्करण 2013
2. पर्यावरण चेतना – संपादक प्रो. धनंजय वर्मा म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल प्रथम संस्करण 2004
3. पर्यावरण अध्ययन – डॉ. एस.एम. सक्सेना कैलाश पुस्तक सदन भोपाल
4. राष्ट्रीय सहारा, नई दिल्ली
5. हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली (अंग्रेजी)
6. हिन्दुस्तान ,नई दिल्ली
7. नवभारत टाइम्स,नई दिल्ली
8. परिवार राजस्थान पत्रिका विशेष परिशिष्ट, 5 जून 13

भवभूतेः पाण्डित्यम् – वैदिक, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र के विशेष संदर्भ में

डॉ. बालकृष्ण प्रजापति *

शोध सारांश– भवभूतेः नाटकानाम् अध्नसमये नाट्यशास्त्रस्य अध्ययनं आवश्यकमेव इति। भारतीय संस्कृत नाट्य परम्परा प्रचीनापि समृद्धाप्यस्तीति विज्ञा विदन्ति। भवभूते ग्रन्थ सम्पदा, पाण्डित्यंचात्रनिरूपितम्। पाण्डित्यपि पृथक–पृथक शीर्षकाधारणे–उपनिषदानाम् ज्ञानम्, दर्शनस्य पाण्डितम्, धर्मशास्त्रस्य पाण्डितम्, पदज्ञत्वम्, वाक्यत्वम्, प्रमाणत्वंचोपन्यस्तम्। भवभूतिना पदे–पदे धर्मशास्त्रम्, उपनिषदरहस्यम्, वेद वैदिकज्ञान रहस्यमर्मस्थापनम्, अन्येषामपि, विषयाणाम् सूक्तयो भवभूतेःनार्ट्यसाहित्ये विद्यमानाः। भवभूतेः साहित्ये तस्य पाण्डित्यप्रमाणं सूचयन्त्यः सूक्तयः पदे–पदे विलसन्ति। असौ तात्विकः विवेचनं कलाकारः। विविध शास्त्राणामेकत्र समन्वयः तस्य नाटकेषु दृश्यते तदन्यत्र नास्तीति वक्तुं शक्यत एव।

शब्द कुंजी – उत्तररामचरितम्, नाट्यशास्त्रस्य, पाडिण्त्यम्, विद्याः, उद्गीथ, समांसमधुपर्क, धर्मशास्त्रस्य,

प्रस्तावना – संस्कृतनाट्य परम्परायां महाकवेः भवभूतेः स्थानमन्यतमं विद्यते। भूवभूतिः संस्कृतनाट्यसाहितयस्यजाज्जवल्यमानं नक्षत्रमिति। यावन्तिरूपकाणिजगतीहो पलभ्यन्ते तत्र भवतोभवभूतेरमृतधारावर्षिलेखसम्भूतमुत्तररामचरितन्तु रमणीयतया, करूणरसपरिपाकेन च सरसहृदयैर्विद्वदिभः भृशमेवाद्धतम् कतिपयैरालोचकैस्तु कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर्महाकविरित्युक्त्वा कालिदासपि भवभूतेः श्रेष्ठवमंगीकृतम्। कालिदासस्य मुखादपि केनापि भवभूतिप्रियेण कविना भवभूतेर्महत्वमित्थं प्रस्तुतम –

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।

नास्त्यत्रसन्देहलेशोपि यदुत्तररार्चारितं हि भवभूतेरूत्कृष्टतमं रूपकं विद्यते। एतस्मिन्नाट्यग्रन्थरत्ने भवभूतेः नाट्यप्रतिभायाश्चरमनिदर्शनं प्राप्यते। अत्रखल्वस्य नाट्यकला स्वीयंचरमप्रकाशं विकिरन्ती दृग्गोचरीभवति। यद्यपि प्रकृतेर्गभीरत्वात् सहजातप्रातिभज्ञानत्वाद भवभूतेः मालतीमाधव–महावीरचरितोत्तरामचरिताभिर्धयेषु त्रिष्वापि रूपकेषु भवप्रप्रणता, नाट्यदर्थनकला, प्रकृतिचित्रणपटुता, वीक्ष्यते परं उत्तररामचरिते तु तस्य प्रभावोतितरामेव परिस्फुरति। संस्कृतसाहित्यस्य कृतेतो भवभूतिः गौरवभूतोस्ति। तस्यप्रतिभायाः कमनीयं लास्यन्तु स्पृहाया वस्तु। भवभूर्तिवेदेषु निष्णातः दर्शनेषुदक्षः मीमांसायां पटुः तस्यपाण्डित्यमागधम्, अबाधमपि।

यद्वेदाध्नं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
ज्ञानंतत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद्गुणो नाटके ।।

तस्याभिरूपरूपकेषु भवभूतेवैदिज्ञानगरिम्णः सूचनानाटकेषु भृशमनुभूयते। उत्तरामचरितस्य चतुर्थ अंके न मांसो मधुपर्को भवति इतिसूचयति। क्वचिद्व्याकरणस्य, क्वचिद्दर्शनस्य, क्वचिद्वेदानाम्, क्वचिद्धर्मशास्त्रस्य भवभूतेर्भारती रहस्यमुद्घाट्यति।

भवभूतिर्व्याकरण–न्याय–मीमांसानामपूर्वः पण्डिततोस्ति। श्रीकण्ठपदलांच्छनो भवभूर्तिनाम। पदवाक्यप्रमाणज्ञो – भवभूर्तिनामादि उल्लेखेन पाण्डित्यस्यैव परिचयः प्राप्यते। विद्धतातुतस्य पैतृकीसम्पदिवभाति। समस्तेषुश्शास्त्रेषु भवभूतेरप्रतिहतगतिः। वाणीअनुचरीव तस्यानुसरणं करोति, तदनुसरति, तमनुसरति। तस्यसारस्वतप्रवाहो विराम प्रवाहितोद्यापि वर्तते। गहनेषु शास्त्रेष्वपि निरतत्वाद् भवभूतिर्नासीच्छुषकदयः। वेदाभ्यासजडत्वेनहि अपितु तस्यात्मा भावेषु तिष्ठति। अयं महाकविः रससिद्धो महाकविः यद्यपि तस्य नाटकेषु सरसताक्षुण्णा तथापि तस्यवैदग्ध्यं पाण्डित्यपरिवेष्टितम् भवति, भावुकता भावितम्भवति। वेदानाम्, उपनिषदाम्, निरूक्तस्य, वेदान्तस्य, व्याकरणस्य, योगस्य, सांख्यस्य, तंत्रजातकयोः, धर्मशास्त्रस्य, न्यायस्य, मीमांसायाः, राजनीतेः, कामसूत्रस्य, नाट्यशास्त्र च पाण्डित्य परिपूतान्युदाहरणानि पदे पदे विलसन्ति कतिपयान्युदाहरणानि प्रेक्षणीयानि –

वैदिक पाण्डित्यम् – उत्तररामचरितस्य द्वितीयसर्गस्य द्वादशलोके वैराजलोकस्य वर्णनं

विद्यते द्वयमपिप्रियंनः तदनुभूयताभुग्रस्य तपसः परिपाकः –

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजानामतेलोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः ।।

शुभसमाचार श्रवणेन प्रसन्नो भगवान् – उग्रस्य तपसः फलमनुभवेति शम्बूकं प्रत्याह। वैराजाः तैजसाः लोकास्तुभ्यं निर्धारिताः सन्ति। यत्रानन्दा आत्मसाक्षात् कृतानि सुखानि, मोदाः, दिव्यसुखानि, पुण्याः परमोत्तमाः सम्पदः सन्ति। विश्वाः मंगलकारकास्ते लोकाः परमतपसः फलकत्वेन त्वया सुचिरमनुभूयन्ताम् । विराजः–ब्राह्मण इमे वैराजः। ब्रह्मसम्बन्धी लोकः, लोकाः भुवनानि। तेजोमयाः सुचिरमनु भूयन्ताम्। ऋग्वेदस्य नवम–मण्डले यत्रा–नन्दाश्च मोदश्च मुदाः प्रमुद आसते। इत्यानुसारमनुसृत्य वैदिक–वैदग्धतायाः प्रमाणं प्रस्तौति। अन्यच्चापि भद्राह्येषा वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता इति ऋग्वेदोक्तमन्त्रस्य भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिता धिवाचि इत्यस्य रूपान्तरणमात्रम्।

महावीरचरिते –

ब्रह्मद्विषोह्येष विहन्तिसर्वा
नाथर्वणस्तीव्र इवाभिचार

तभाच – बिभ्रदिवाथर्वणो निगमः इत्यस्मादस्य अथर्ववेद वैदुष्यं संसूच्यते। अश्वमेघ यज्ञस्य, द्वादशवार्षिकसत्रस्य, समांसमधुपर्कस्य च प्रसंगाः तस्य वेदज्ञत्वं ध्वनयन्ति। कुत्रचिद्भवभूतेर्वाक्य रचनापि

* सहायक प्राध्यापक संस्कृत, शासकीय एस.जी.एस.पी.जी. महाविद्यालय, गंजबासौदा (म.प्र.) भारत

वैदिकशैल्याश्छायेव प्रतिभाति। उदाहरणर्थम् अक्षरंतेज्योतिः प्रकाशताम्। स त्वां पुनातु देवः परोरजाय एष तपति।

देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्तेपति
स्वां मैत्रावरूणो भिनन्दतु गुरूर्यस्ते – गुरूणामपि।
ऐन्द्रावैष्णवमाग्नि मारूतमथो सौपर्ण मोजोस्तुते
देयादेय च रामलक्ष्मण धनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम् ॥

महान ऐवश्र्य शाली भगवानादिवराहः, तवाहितस्यैव पराभवं र्कतुं कल्पताम्। सुसज्जितो भवतु नतु हितस्य पराभवाय एतेन परमहितस्य लवस्य पराभवो भवितुमेव नार्हति इति व्यज्यते–

क्वचित्तु – अजितं पुष्यमूर्जस्वि ककुत्स्यस्येव ते महः। श्रेयसे शाश्वतो देवो वराहः परिकल्पताम्॥ देवः सूर्यः यस्तव वंशस्यादिपुरूषः संग्राम भूमौ समवतीर्णस्य ते प्रीणयिता भवतु। वैदिक शब्दावली तु अनायासेनैव तस्यवाक्येषु सरति।

यथा जनकस्य एतस्मिन् कथने – अन्धतामिस्त्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते। एतैः प्रमाणैभर्वभूतेर्वेदेषु पाण्डित्यं सिद्ध्यति।

उपनिषदांपाण्डित्यम् – उत्तररामचरितस्य द्वितीयेके तृतीये च श्लोके उद्गीथविदोवसन्ति इत्युक्त्वा भवभूतिः छान्दोग्योपनिषदः स्मरणं कारयति –

आस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथ विदो वसन्ति।
तेभ्योधिगन्तुं निगमान्तविद्यांवाल्मीकि पार्श्वादिह पर्यटामि॥

आत्रेयीवचनम् आस्मिन प्रदेशे अगस्त्यप्रमुखाः भूयांसः उद्गीथविदः वसन्ति। तेभ्यः निगमान्त विद्यायाः अधिगमनस्य सूचनात्र दीयते। कां पुनरत्रधभवतीम् परिचय प्राप्तेराधारभूतः शिष्टाचारः। उद्गीथविदः – उंद्गीथं विदन्ति इतिजानन्ति इति उंद्गीथविदः विद्धातोः क्विबन्तत्वात् उंद्गीथ शब्द अर्थः ओंकारः प्रणवः। अयमोंकारः ब्रह्मणः प्रतीकभूतः यस्य सततस्तध्यानधर्मस्य फलं, ब्रह्मत्वस्योपलब्धिः। अयं निखिलः संसारः ओंकारमयः इतिमत्वा, इतिकृत्वा वा साधकः परमतत्वं प्राप्नुयात् निगमान्ताविद्येति पदेन भवभूतिरूपनिषद्विद्यायाः ज्ञानस्य परिचयः प्रयच्छति। निगमशब्दस्य अर्थः वेदि इति। वेदास्तु मन्त्र ब्राह्मणयोः सारस्वतं संकलनभूताः। ब्राह्मणानामन्तिमंरूपमेव आरण्यकत्वेन ज्ञायते धुनापि आरण्येकषूपनिषदां रहस्यं निगुढम्। उपनिषत्सु ब्रह्मसम्बन्धिज्ञानस्यमूलं सुरक्षितमस्ति। उपनिषत्सु स्थिता विद्या वेदान्त विद्या, निगमान्तविद्येति नाम्ना सिद्धा, प्रसिद्धा च। अनेन भवभूतेरूपनिषद्विद्यायाः पाण्डित्यं प्रदर्शितम्॥ बाल्मीकेर्ब्रह्मशब्दज्ञानप्रकाशप्रसंगे उपनिषदां ब्रह्मविद्याया एवं निर्देशोस्ति ।–

द्वयमपि प्रियं नः तदुनभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः ।
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः ।
वैराजानामतेलोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः ॥

श्लोकेस्मिन् तैत्तिरीयोपनिषदः आनन्दो ब्रह्मति व्यजानात् इत्यस्य साक्षात्प्रभावोस्ति। न केवलं शब्दार्थे अपितुं भावार्थेपि प्रभावोदृश्यते। आनन्दाः आत्मानुभवजन्याः हर्षाः मोदाश्च दिव्यविषयानुभवजन्याः हर्षाः इत्यर्थे। महावीरचरितस्य प्रथमे श्लोके –

अथस्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्य ज्योतिषे नमः॥

अत्रापि खलु औपनिषद्ब्रह्मणो निर्देशः एव। स्वस्मिन्नवस्थितः, उत्पत्तिविनाशरहितः, जरामृत्योः दुःखात्पापात् च विमुक्तः, चैतन्यात्माकज्योतिप्रकाशकः, पूवर्सपरोत्पत्ति विनाशक्रमहीनः, सनातनः, दीप्तिमान् ब्रह्म एवं प्रणम्यः। अत्र विशुद्धं दार्शनिकं वेदान्तविद्यान्वितं चिन्तनं भवभूतिना प्रस्तुतम्।

पन्थानोदेवयानाः इत्यत्र देवयान उपनिषदां वर्ण्यविंषयः। याज्ञवल्क्येन जनकस्य ब्रह्मपारायणत्वम् बृहदारण्यकस्य प्रसंगमनुसरति।

एष वः श्लाघ्य सम्बन्धी जनकानां कुलोद्भवः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ॥

ब्रह्मपरायणं वेदोपनिषदं। याज्ञवल्क्यः शुक्लयजुर्वेदस्य प्रधानोऋषिः। जनकस्यगुरूः। बृहदारण्यके उपनिष्दि एतयोश्चर्चायाः प्राप्यन्ते। जनकोह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नुवाच नमस्तेस्तु याज्ञवल्क्यानु मा शाधीति। आढयः सन्नधीतवेदः उक्तोपनिष्टक इतो विमुच्यमानः क्वगमिष्यसि इति नाहं तद्भगवन्वेद यत्र गमिष्यामीत्यर्थं वैतेहं तद्वक्षामि यत्र गमिष्यसि।

ब्रह्मपारायणं समस्तब्रह्मविद्यायाः रहस्यम्। अनेनभवभूतेरूपनिषद्विद्यायाः पाण्डित्यं प्रकाशितं भवति।

दर्शनशास्त्रे पाण्डित्यम् – भवभूतेः रूपकेषु स्थाने–स्थाने, पदे–पदे, दार्शनिक–शब्दानां पारिभाषिकानांच प्रयोगबाहुल्यं तस्य दर्शनेषु पाण्डित्यं प्रमाणयति। उत्तररामचरितस्य तृतीये के वेदान्तस्य विवर्तवादस्य काव्यात्मकं **व्याख्यानमिवभाति –**

एको रसः करूणएव निमित्तभेदाद् भिन्नः पृथक पृथगिवाश्रयते विवर्तान।
आवर्तवुद्वुदतरंगमयान्विकारा नम्भोयथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥

अस्मिन् श्लोके करूणरसस्यैव प्राधान्यं निरूपयता भवभूतिना विवर्तान् इतिपदेन दर्शनशास्त्रीयं ज्ञानमपि स्थापितम् । अत्र विवर्त शब्दः विकारेर्थे प्रयुक्तः इति टीकाकारः। परन्तु विमर्शेन तु दार्शनिकभाव एवाकर्षणकृदिति। आवृर्त्त बुदबुदातरंगमयान एकमेवजलम्, आवर्तः अम्भसांभ्रमः, बुदबुदाः जलस्फोटाः तरंगश्चेति नानारूपं धत्ते। परन्तु तात्विकदृष्ट्याभेद एवेति अत्र विवर्त बुद बुद्तरंगयोः प्रगोगेण स्वस्य विदग्धतायाः परिचयो भवभूतिना प्रदत्त इति सूच्यति।

अपरन्च –

विद्याकल्पेन मरूता मेद्यानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि पविलयः कृतः॥

यथा सर्वेपि विवर्ताः ब्रह्मणि विलीना भवन्ति। तथैवामी मेघा अपि विलीना इति भावः। विद्याकल्पेन ज्ञानतुल्येन तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेयनाय इति मगवर्ता श्रुतिर्ज्ञानमन्तरा ब्रह्मात्मकानुभूतिर्नैव सम्भ्वतीत्याह। उपनिषदां ज्ञानस्य प्रमाणमिदम् यथा सर्वमपीद मिथ्याभूतं जगद् ब्रह्मण्येव विलीनं भवति। ब्रह्मणि एव विवर्तः जगदस्ति। विलये च तद् ब्रह्मण्येव विलीयते। तथैव मिथ्यात्मका मेघा विद्यासदृशेन विलीनाः इति। अत्रापि विवर्तशब्दः शास्त्रीये अर्थे एवं प्रयुक्ताः। अतिथिसेवा, अनुष्ठानस्य नित्यता धर्मशास्त्रीयो विषयः –

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्यमपकर्षति।
संकटा हयाहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता॥

सन्ध्यावन्दनाग्निहोत्रादिकर्मविधानं धर्मशास्त्रीयम्। वर्णाश्रमव्यवस्थाया वर्णनमपि धर्मशास्त्रीयो विषय :–

पुत्रसंक्रान्तलश्रमीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिधृतम्।
धृतंवाल्ये तदार्येण पुण्यमादण्यकव्रतम् ॥

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसा श्रितरूणि तनोवनानि।
येष्वातिथेयपरमायमिनो भजन्तेनीवारमुष्टिपचना गृहिणे गृहाणि ॥

अतिथिसत्कारपरायणतोदाहरणमिदम । यमनियमपालनपरायणस्तापसा

गृहस्थधर्मावलम्बिनो जना निवसन्ति। यमेषु-अहिंसा सत्यमस्त्येय ब्रह्मचर्या परिग्रहाः यमा इति स्मृतिः। धार्मिककृत्येषु पत्न्याः सहभागिता, कन्यापक्षस्यकृते वरपक्षस्य पूजनीयतापि धर्मशास्त्रायविषयः -

कन्यायाः किलपूजयन्ति पितरो जामातुरासं जनं।
सम्बन्धे विपरीतमेव तद्भूदाराधनं ते मयि॥
त्वं कालेन तथाविद्योप्यपहतः सम्बन्धवीज च तत्।
घोरेस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्॥

राज्ञै श्च प्रजानुरंजनमपि - जामातृयज्ञेन वयं निरूद्धारस्तवं बाल एवासि नवं च राज्यम्।

युक्तः प्रजानामनुरंजनेस्यातस्माद्यशा यत्परमं धनं वः॥

अत्रधर्मान्न प्रमादितव्यमित्यादेः श्रुतेः निर्देशः युद्धक्षेत्रेपि पदातिना सह न युद्धमित्याचारः। नरथिनः पादचार मभियुंजन्ति। आदि प्रसंगेषु भवभूतेधर्मशास्त्रीयं पाण्डित्यं चकास्ते।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. महाकवि भवभूति डॉ. राय - भूमिकायामुदधृतम्
2. सुकवि समीक्षता आ.उपा.पृ.323
3. उत्तररामचरितम् - 2/12
4. महावीरचरितम् - 1/62
5. उत्तररामचरितम - 5/27
6. उत्तररामचरितम - 2/3
7. उत्तररामचरितम - 2/12
8. महावीरचरितम - 1/1
9. उत्तररामचरितम - 4/9
10. वृहदारण्यकोपनिषद - 4/2/1
11. उत्तररामचरितम - 3/47
12. उत्तररामचरितम - 6/6
13. उत्तररामचरितम - 5/पृ.370
14. उत्तररामचरितम - 1/8
15. उत्तररामचरितम - 1/22.25
16. उत्तररामचरितम - 4/17
17. उत्तररामचरितम - 1/11

****

नीतिशतक काव्य परम्पराया: विवेचनम्

डॉ.बाल कृष्ण प्रजापति *

शोध सारांश – सस्कृत भाषा में शतक काव्य परंपरा प्रचलित है। फिर भी परंपराओं से विरचित ग्रंथों में परस्पर साम्य नहीं है। यहां काव्य रचना का उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं है। अपितु देश भक्तस्य सरलभाषाया भवेत इति अस्ति। आचार्य भर्तृहरि के शब्दों का चयन भी सामान्य ही है। इस प्रकार नीतिशतक काव्य में दैनिक जीवन के उपयोगी तत्वों का मार्गदर्शक एवं तत्वों का विवेचन किया गया है। भर्तृहरि ने मानव जीवन को परम लक्ष्य सत्यं शिवम् सुन्दरम् का समावेश किया है। नीति शतक नीति विषयक सिद्धान्तों को प्रकट करता है। यह शतक सरल सरस रचना है।

शब्द कुंजी – भर्तृहरि, मानवीय, भारतीय संस्कृति, लोकप्रियता, मानव जीवन, नीतिशतक, मानव समाज, नैतिकता, विद्या, सज्जनता, मूर्खता, आभूषण, दुर्जनता आदि।

प्रस्तावना – भर्तृहरि भारतीय संस्कृति के जगमगाते नक्षत्र थे। मानवीय प्रकृति को यथावत् प्रस्तुत करते हुए मनुष्य जीवन का आदर्श प्रस्तुत करने में उनके श्रृंगार, नीति, वैराग्य शतक चिरकाल तक समाज को प्रेरणा देते रहेगें, इसलिए समूचा संसार उनका ऋणी है। भर्तृहरि का नाम संस्कृत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, इसलिए इनके द्वारा रचित तीनों शतक लोकप्रिय हैं। भर्तृहरि के शतकों की लोकप्रियता किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं रही है। परन्तु सारे भारत में इनकी लोकप्रियता निर्विवाद है। भर्तृहरि के शतक जहां भारतीय जनमानस में अपना स्थान बनाने में सफल हुए हैं वहीं इनकी ख्याति विदेशों में भी हुई है। संस्कृत साहित्य के रसकों के लिए जहां तीनों शतक आकर्षण के केन्द्र हैं वहीं भारतीय लोक कथाओं में भी भर्तृहरि का प्रमुख स्थान है। सामान्य जन साधारण के अनुसार भर्तृहरि राजा थे। लोग उन्हें राजा भर्तृहरि के नाम से जानते हैं। मालवा प्रदेश की परम्परा में उन्हें महाराज विक्रमादित्य के बडे. भाई के रूप में याद किया जाता रहा है। भर्तृहरि के सुभाषितों के लोकप्रियता में निहित मानवता की बहुमुखी आकांक्षाओं का सशक्त प्रतिबिम्बन उपदेशपरक शैली में संस्कृत में लिखी कविताएं हैं, जिनमें जीवन मूल्यों की समग्रता प्रतिबिम्बत है। पूर्व कवियों ने अपनी रचनाओं में जिन विविध मानवीय आकांक्षाओं का प्रासंगिक रूप में कहीं कहीं उपदेश देने की चेष्टा की वे सभी जीवन मूल्य इन सुभाषितों में सूक्ष्मता से समाहित हो गये हैं।

श्रृंगार, नीति, वैराग्य शतक में भर्तृहरि ने मानव जीवन को परम लक्ष्य सत्यं शिवम् सुन्दरम् का समावेश किया है। जैसे त्रिलोकी पावनी गंगा हिमालय से निकलर आर्यावर्त की पृष्ठभूमि को पल्लवित कर असीम सागर में विलीन हो जाती है उसी प्रकार यह शतक त्रय नैतिकता के सुन्दर विचारों से मानव वर्ग को चरित्र निर्माण कर वीर गति को प्रदान करती है।[1] भारतीय संस्कृति के निचोड़ पुरूषार्थ चतुष्टय को प्रतिपादित करने की इच्छा से भर्तृहरि ने तीनों शतकों की रचना की थी। जिससे नीतिशतक– धर्म और अर्थ को, श्रृंगार शतक– काम को और वैराग्य शतक– मोक्ष को उद्घाटित कर सके।

नीतिशतक में कवि ने जीवन के गूढ़ रहस्य एवं प्रत्यक्ष सत्य को मुहावरेदार शैली में चित्रित किया है। समाज के लिए उदात्त चरित्र का आदर्श प्रत्येक श्लोक में पिरोया है। इससे तत्कालीन समाज में व्याप्त अनैतिकता का भी अनुमान लगाया जा सकता है। इसी कारण वे मानवीय गुणों के के प्रति आग्रह प्रकाश करते हैं। जिनका अनुशीनल मानव समाज के लिए कल्याणकारी है। भर्तृहरि का नीतिपरक ज्ञान बेजोड़ है, इनकी नीतियों पर चलकर मनुष्य अपना जीवन धन्य बना सकता है। नीति ही मानव जीवन की आधारशिला होती हैं।[2]

नीतिशतक में अनेक प्रकार के नीति सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। जिनमें विद्या–वीरता–सज्जनता–मूर्खता–साहस–मैत्री– इत्यादि सिद्धान्त विवेचित है। येषां मनुष्यानां समीपे विद्या तपं, दानशीलम्, च नास्ति ते मनुष्या: पशु: सदृशा: सन्ति।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म:।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता।
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।[3]

विद्या धनं सर्वेषु धनेषु उत्तमं अस्ति। यस्य धनस्य हरणं कर्तु न शक्यते। यस्य धनस्य कल्पांतेषु अपि निधनं न भवति। येषां समीपे एतादृशं धनं अस्ति तैसह क: स्पर्धते।

हर्तुयति न गोचरं किमति शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ऽप्यर्थिभ्य: प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धि पराम्।
कल्पान्तेत्वपि न प्रयाति निधनं निद्याख्यमन्तर्धनम्
येषां तान्प्रति मानुमुज्झन नृपा: कस्तै: सह स्पर्द्धते।।[4]

गुणी एवं विद्धान लोग तो सर्वत्र आदर के पात्र होते हैं। इनके पास ऐसा विद्या रूपी धन होता है, जो बांटने से भी कम नहीं होता है अपितु और भी बढ़ता जाता है। अत: ऐसे लोगो को सम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। ऐसे गुणी और विद्धत्जन तो राजा से भी अधिक श्रेष्ठ होते हैं।

मनुष्याणां श्रृंगार: एकया विद्यया एव भवति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते वाग् भूषणं सततं भूषणं अस्ति। अर्थात् भारतीय जीवन में जहां बालक शिक्षा ग्रहण करता है और जीवन के पथ पर अग्रसर होने का मार्ग किस प्रकार टेढ़ा–मेढ़ा है उसे विद्या और बुद्धि द्वारा कैसे सुगम बनाया जाता है। यह सीखता है ज्ञान की महत्ता बताता हुआ यह श्लोक हमें बाह्य आभूषणों की झूठी चमक का बोध कराता है–

केयूराणि न भूषयन्ति पुरूषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजा:।
वाण्येका समलंड्करोति पुरूषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि ततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।[5]
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं
विद्या भोगकारी यश: सुखकारी विद्या गुरूणां गुरू:।
विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यन्ते न हि धनं विद्या विहीन: पशु:।।[6]

विद्या ही वह वस्तु है जो मनुष्य का श्रेष्ठरूप और गुप्त धन है। विद्या ही भोग, यश, और सुख की दात्री है। विद्या, गुरूओं की गुरू है पर देश में विद्या ही बन्धुरूप है। विद्या ही परम देता हैं। विद्या ही राजा द्वारा पूजा जाता है, अर्थात् जिसके पास विद्यारूपी धन नहीं है उसे पशु के समान समझना चाहिए।

प्रियान्याय्या वृत्तिर्मलिनमसभेऽप्यससुकरं
सन्तो नाभ्यर्थ्या:सुहृदपि न याच्य: कृशधन:।

* शासकीय एस.जी.एस.पी.जी.महाविद्यालय,गंजबासौदा, जिला विदिशा (म.प्र.) भारत

विपद्युच्चै स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषमसिधाराव्रतमिदम्।।[7]

ये सज्जना: सन्ति ते समासु वाकपटुतां धारयति। तेषां यषसि अभिरूचि भवति। शास्त्राणां अध्ययनय व्यसनं भवति। सज्जना: नम्रत्वेन उन्नमत्ता: सन्ति। तेषा आचार युक्तं भवति। क्षमारूपी अस्त्रं तेषां समीपे भवति। एतादृशा: सज्जना: पूजनीया: सन्ति। कठोर असिधारा व्रती मनुष्यों में ही न्यायप्रियता होती है। ये विपत्तिकाल में भी निकृष्ट कर्म नहीं करते हैं।

नम्रत्वेनोन्नमत: परगुणकथनै: स्वान्गुणान्ख्यापयन्त:
स्वर्थान्सम्पादयन्तोविततपृथुतरारम्भ यत्ना: परार्थे।
क्षान्त्यैवाक्षेयरूक्षाक्षरमुखरमुखान्दुर्जनान्दूषयन्त:
सन्त:साश्चर्यचर्या जगति बहुमता: कस्यनाभ्यर्चनीया:।।[8]

अपि च– वांछा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषित रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्ति: शूलिनि शक्ति रात्मदमने संसर्ग मुक्ति: खले
एते येषु बसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नम:।।[9]

सज्जनों का स्वभाव होता है सभी से प्रेम, समभाव, मैत्री, सदाचरण आदि और दुर्जनों का त्याग ये सज्जनों के स्वभावगत गुण होते हैं। दिनकर: पदमाकरं विकची करोति जलधर: न अभ्यर्थत: अपि जलं ददाति सन्त: स्वयं परहितेषु कृता: योगा: भवन्ति।

पद्माकरं दिनकरो विकच करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यार्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्त: स्वयं परिहितेषु कृतयाभियोगा:।।[10]

सज्जन पुरूषों में परोपकारिता कूट-कूटकर भरी होती है। उन्हें किसी से प्रेरणा पाने की आवश्यकता नहीं होती है जो स्वभाव से ही परहित में लगे रहने वाले होते हैं।

एते सत्पुरूषा: परार्थघटका: स्वार्थान्परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत: स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमीमानषराक्षस: परहितं स्वार्थाय विध्नन्ति ये
ये निध्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।[11]

यथा नीतिशतके सज्जनानां वर्णनं अस्ति तथैव दुर्जनानां मूर्खाणां व वर्णनं अपि अस्ति। मूर्खाणां दुर्जनानां च वर्णनं एवं प्रकारेण अस्ति। जीवन में दुर्जन का परित्याग क्यों आवश्यक है। नीतिशतक का यह श्लोक स्पष्ट करता है–

दुर्जन: परिहर्तव्यो विद्ययाऽड्.कृतोऽपि सन्।
मणिना: भषित: सर्प: किमसौ न भयंकर:।।[12]

ये अज्ञा: सन्ति तेषा अराधनं सरलं किन्तु ये ज्ञानलवदुर्विदग्धा: सन्ति तान् ब्रहयापि रंजयितुं न शक्नोति।

अज्ञ सुखमाराध्य: सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ:।
ज्ञानलवर्विदग्धं ब्रह्यापि तं नरं रंजयति।।[13]

अस्मिन नीति शतके मूर्खजनस्य चित्तं न आराधयते इति वर्णनं अस्ति। मूर्ख तो मूढ़ होता है और उससे सदाचार विवेक की आशा रखना चिराग तले अंधेरे रखने वाली बात है। क्योंकि विवेकी व्यक्ति ही अच्छे बुरे की पहचान कर सकता है।

लभते सिकतासु तैलमपि यत्नत: पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दित:।
क्वाचिदपि पर्यटछशविषाणमासादयेत्
न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजन चित्तामाराधयेत्।।[14]

ये मूर्खा: सन्ति तेषां पण्डितेषु मौनं विभूषणं अस्ति इति वर्णितं अद्योलिखितं श्लोके अस्ति

स्वायत्तमेकांमगुणं विधात्रा, विनिर्मितम् छादनमज्ञताया:
विशेषत: सर्वविद्धां समाजे, विभूषणं मौनपण्डितानाम्।।[15]

शास्त्रों में अनेकों रोगों की औषधियां वर्णित हैं, लेकिन मूर्खता एक लाईलाज बीमारी है। मूर्खता की शास्त्रों में कोई भी औषधि नहीं है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रा निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषज संग्रहेण विवधैर्मन्त्र प्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।।[16]

येषां समीपे न विद्या न तप:, न दानं, ते मृर्त्यलौके भुविभारभूता: सन्ति। एते मनुष्यरूपेण मृगा: चरन्ति।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म:।
ते मृर्त्यलोके भुवि भारभूता:
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

धीरपुरूषाणां विवेचनं तेषां लक्षणं व विविधेषु श्लोकेषु वर्णितं अस्ति। ते धीरपुरूषा सन्ति ते निन्दास्तुति समये समानमेव व्यवहरन्ति। यदि धनप्राप्ति: भवति धनस्य अभाव: भवति तेषां पदं न विचलित भवति अर्थात् धीर पुरूषों की निन्दा या प्रशंसा से कोई प्रयोजन नहीं होता है वे हर परिस्थिति में सत्यमार्ग से विचलित नहीं होते हैं–

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी: समाविशतु गच्छतु या यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:।।[17]

जैसा कि नीति शतक के श्लोक में कहा गया है कि धीर गंभीर पुरूष अभीष्ट की प्राप्ति हुए बिना किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते हैं। धीर पुरूषाणां तुलना देवै: सह कृता अस्ति। समुद्र मंथन समये देवता: यावत् पर्यन्तं अमृतं न प्राप्तवन्त: तावत पर्यन्तं ते प्रयत्नशीला: आसन्।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषर्न देवा, न भेजिरे भीमविशेष भीतिम्।
सुधां बिना न प्रययुर्विराम, न निश्चितार्थाद्धिरमन्ति धीरा:।।[18]

संस्कृत अत: कहा जा सकता है कि आचार्यों भर्तृहरि के नीति शतक काव्य में प्रचलित नीति को ही मानव जीवन की आधार शिला को स्पष्ट करती हैं। संस्कृत भाषा में अनेक परंपराऐं प्रचलित होने कारण कवि ने नीति शतक में मुक्तक काव्य का प्रयोग किया है। भर्तृहरि के सुभाषितों में जीवन मूल्यों की समग्रता प्रतिबिम्बत है। पूर्ववर्ती आचार्यों ने अपनी रचनाओं में जिन विविध मानवीय आकांक्षाओं का प्रासंगिक रूप में कहीं कहीं उपदेश देने की चेष्टा की वे सभी जीवन मूल्य इन सुभाषितों में सूक्ष्मता से समाहित हो गये हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कालिदास संस्कृत अकादमी शोध पत्रिका 2007 पृष्ठ 94
2. कालिदास संस्कृत अकादमी शोध पत्रिका 2007 पृष्ठ 121
3. नीति शतक श्लोक संख्या 13
4. नीति शतक श्लोक संख्या 16
5. नीति शतक श्लोक संख्या 18
6. नीति शतक श्लोक संख्या 19
7. नीति शतक श्लोक संख्या 30
8. नीति शतक श्लोक संख्या 70
9. नीति शतक श्लोक संख्या 59
10. नीति शतक श्लोक संख्या 75
11. नीति शतक श्लोक संख्या 57
12. नीति शतक श्लोक संख्या 52
13. नीति शतक श्लोक संख्या 3
14. नीति शतक श्लोक संख्या 6
15. नीति शतक श्लोक संख्या 4
16. नीति शतक श्लोक संख्या 12
17. नीति शतक श्लोक संख्या 83
18. नीति शतक श्लोक संख्या 88

रामायणानुप्राणितं संस्कृतनाट्यसाहित्यम्

पं.श्रेयस् श्रीधरशास्त्रिकोरान्ने *

प्रस्तावना – सुविदितमेव लौकिकसंस्कृतसाहित्ये महर्षिवाल्मीकेः आदिकवित्वम्, तद्धिरचितस्य रामायणस्य च आदिकाव्यत्वम्। महाकाव्यमिदं सकलकल्मषनाशनं लोकोपदेशजननं रस-भावसमन्वितम् अलङ्कारसंवलिवतम् आदर्शचरितोपेतं परमानन्दप्रदञ्च विलसतितराम्। वस्तुतो रामायणं न केवलं संस्कृतसाहित्यस्य अपि तु समग्रस्य विश्वसाहित्यस्य मुकुटमणित्वेन विभाति। अत्रादिकविना भुवनत्रयपावनी सर्वजनग्राहिणी सहृदयहृदयहारिणी रम्या रामायणी कथा निबद्धा।

आरचनाकालादेव महाकाव्यमिदं सर्वेषां काव्यानाम् उपजीव्यत्वेन प्रतिष्ठितम्। यथोक्तं बृहद्धर्मपुराणे –

पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम् ।
यत्र रामचरितं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान्।।1

एवमेव महाकविः कालिदासोऽपि रामायणं कविप्रथमपद्धतिरूपेण स्वीचकार –

स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम्।।2

एवमेव ध्वनिप्रस्थापनाचार्यः आनन्दवर्धनोऽपि महर्षिवाल्मीकिमेव आदिकविरूपेण स्तौति –

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।3

एवमेव भोजराजेनापि महर्षिवाल्मीकिः **मधुमयभणितीनां मार्गदर्शित्वेन** सादरं संस्तुतः –

मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः।4

महाकाव्यमिदं परवर्तिनां कवीनां प्रेरणास्थानरूपेण विराजते। स्वयं प्राचेतसवाल्मीकेर्मतमस्ति, यद् रामचरितम् अनाश्रित्य न काव्यानां यशोभाजनत्वं प्रसिध्यति –

न ह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग् राघवादृते।5

संस्कृतसाहित्ये प्रायः सर्वैरपि कविवरैः रामायणात् प्रेरणामवाप्य महनीयकाव्यविधाानां विरचनं कृतम्। अतो रामायणानुप्राणितं सुविपुलं संस्कृतनाट्यसाहित्यमपि महाकविभिः प्रणीतम्, तच्च सङ्क्षेपेणेह निरूप्यते।

रामायणाश्रितं प्रतिनिधिनाट्यसाहित्यम् (देखें)

रामायणाश्रितं महत्तवपूर्णं विलुप्तं नाट्यसाहित्यम्[16] (देखें)

इदमित्थं रामायणं न केवलम् ऐतिहासिकं महाकाव्यम् अपितु आदर्शजीवनस्य प्रेरकमपि वर्तते। अत एव परवर्तिभिः कविवरैः रामायणानुप्राणितं प्रचुरं नाट्यसाहित्यं प्रणीतम्, येन आदर्शसमाजस्य निर्माणार्थं श्लाघनीयः प्रयत्नो विहितः। तथा च संस्कृतसाहित्यस्य श्रीरपि समेधिता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बृहद्धर्मपुराणम् – प्रथमखण्ड – 30.47.51
2. रघुवंशम् – 15.33
3. ध्वन्यालोकः 1.5
4. रामायणचम्पूः 1.8
5. रामायणम् – उत्तरकाण्ड – 98.18
6. संस्कृतसाहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. 491, शारदा निकेतन, (वाराणासी दशम संस्करण) , 2001
7. तत्रैव – पृ. 491
8. तत्रैव – पृ. 544
9. तत्रैव – पृ. 544
10. संस्कृतसाहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 443, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (चतुर्थ संस्करण), 2013
11. तत्रैव – पृ. 411 – 443
12. संस्कृतसाहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला, पृ. 691–93, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, (प्रथम संस्करण), 2009
13. तत्रैव – पृ. 694–95
14. तत्रैव – पृ. 691
15. संस्कृतसाहित्य का इतिहास – डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि पृ. 1345, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2012
16. संस्कृतवाड़.मय का बृहद इतिहास – सं. प्रो. भोलाशंकर व्यास, तृतीयखण्ड – आर्षकाव्य, पृ. 293–99 उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनउ, (प्रथम संस्करण), 2000
17. History of Clasical Sanskrit literature, M.Krishnamachariar, P. 694-95, Motilal Banarasidas, Delhi, 1970

* शोधार्थी, संस्कृत अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

रामायणाश्रितं प्रतिनिधिनाट्यसाहित्यम्

क्र.	नाट्यम्	महाकविः	अङ्कसङ्ख्या	विशिष्टविवरणम्
1	प्रतिमानाटकम्	भासः	7	अत्र रामस्य वनवासादारभ्य रावणवधपर्यन्तं कथा वर्णिता।6
2	अभिषेकनाटकम्	भासः	6	अत्र किष्किन्धा काण्डादारभ्य युद्धकाण्डं यावद् रामकथा निबद्धा।7
3	महावीरचरितम्	भवभूतिः	7	नाटकेऽस्मिन् बालकाण्डादारभ्य युद्धकाण्डपर्यन्तं कथा किञ्चित् परिवर्तनैः सह निबद्धा।8
4	उत्तररामचरितम् भवभूतिः		7	नाटकेऽत्र रामस्य जीवनस्योत्तारभागः उत्कृष्टरीत्या वर्णितः। रामायणवदत्रापि करुणरस एवाङ्गी।9
5	आश्चर्यचूडामणिः	शक्तिभद्रः	7	अत्र रामस्य दण्डकारण्यागमनादारभ्य सीतायाः वह्निविशुद्धिपर्यन्तं कथा वर्णिता। नाटकस्यास्य केरलप्रान्ते कथकलिशैल्यां मञ्चनस्योत्कृष्टपरम्परा वर्तते ।10
6	अनर्घराघवम्	मुरारिः	7	नाटकेऽस्मिन् सम्पूर्णरामकथा वर्णिता। नाटके सत्यपि विशुद्धं काव्यमेवेदम् ।11
7	बालरामायणम्	राजशेखरः	10	महानाटकमिदं नाट्यापेक्षया काव्यमेव। अत्र सीतास्वयंवरादारभ्य साकेतप्रत्यागमनपर्यन्तं कथानकम् उपवर्णितम्।12
8	प्रसन्नराघवम्	जयदेवः	7	नाटकेऽस्मिन् सीतास्वयंवरतोऽयोध्याप्रत्यागमनं यावद् रामकथा विन्यस्ता। दृश्यकाव्यापेक्षया श्रव्यकाव्यसौन्दर्यसमन्वितमेव नाटकमिदम्।13
9	हनुमन्नाटकम् (महानाटकम्)	रामभक्तः श्रीहनुमान्	14	महानाटकमिदं दामोदरमिश्रेण मधुसूदनमिश्रेण च प्रचारितम्। अत्र रामस्य महर्षिविश्वामित्रस्य आश्रमागमनादारभ्य तन्महाप्रयाणपर्यन्तं कथानकं प्रस्तुतम्। समग्रं नाटकं लोकरङ्गमञ्चस्य कथागायनशैल्या लीलानाट्यशैल्या च निबद्धमस्ति। आलङ्कारिकग्रन्थेषु नाटकस्यास्य बहूनि पद्यानि समुद्धृतानि सन्ति।14
10	कुन्दमाला	दिङ्नागः /धीरनागः	6	नाटकेऽस्मिन् रामायणस्य उत्तरकाण्डस्य सीतावनवासप्रसङ्गो वर्णितः। नाटकीयदृष्टया नाटकमिदम् उत्कृष्टमस्ति।15

रामायणाश्रितं महत्त्वपूर्णं विलुप्तं नाट्यसाहित्यम्16

क्र.	नाट्यम्	महाकविः	अङ्कसङ्ख्या	विशिष्टविवरणम्
1	उदात्तराघवम्	मायुराजः	6	नाटकस्यास्योल्लेखः धनिक-कुन्तक-भोजराज-सागरनन्दि- रामचन्द्र-विश्वनाथैर्विहितः। अत्र कथानके छलयुक्तः वालिवधः परित्यक्तः।
2	रामाभ्युदयम्	यशोवर्मा	6	नाटकस्यास्योल्लेख आनन्दवर्धन-भोजराज- शारदातनय-रामचन्द्रैः कृतः।
3	अभिनवराघवम्	क्षीरस्वामी	-	नाटकस्यास्योद्धरणं रामचन्द्र-गुणचन्द्रकृते नाट्यदर्पणेऽवाप्यते।
4	कृत्यारावणम्	-	-	अभिनवगुप्तपादाचार्य-भोजराज-रामचन्द्र- गुणचन्द्र-शिङ्गभूपाल-विश्वनाथैर्नाटकस्यास्य समुल्लेखः कृतः।
5	छलितरामम्	-	-	धनिक-कुन्तक-भोजराज-रामचन्द्र-गुणचन्द्र-विश्वनाथाः नाटकस्यास्य उल्लेखं कृतवन्तः। अस्योदाहरणेन सीतावनवाससम्बद्धं नाटकमिदं ज्ञायते।
6	मायापुष्पकम्	-	-	अभिनवभारत्यां नाट्यदर्पणे च नाटकस्यास्योद्धरणं प्राप्यते।
7	स्वप्नदशाननम्	भीमटः (भीमदेवः)	-	नाटकस्यास्योल्लेखः केवलं साहित्यदर्पणेऽवाप्यते।
8	जानकीराघवम्	-	-	नाटकस्योल्लेखः केवलं साहित्यदर्पणेऽवाप्यते।
9	कनकजानकी	क्षेमेन्द्रः	-	कविकण्ठाभरणेऽस्योल्लेखः प्राप्यते।
10	रघुविलासम्	रामचन्द्रः	8	नाटकस्यास्य नाट्यदर्पणे उल्लेखः प्राप्यते। अत्र वनवासादारभ्य रावणवधपर्यन्तं कथा वर्णिता।
11	राघवाभ्युदयम्	रामचन्द्रः	-	नाटकस्यास्यापि नाट्यदर्पणे उल्लेखोऽवाप्यते।
12	मारीचवञ्चकम्	-	5	शारदातनयकृते भावप्रकाशने सागरनन्दिकृते नाटकलक्षण-रत्नकोशे चास्योल्लेखः प्राप्यते।
13	रामानन्दम्	-	-	श्रीगदिताख्यम् उपरूपकमिदं भावप्रकाशने उल्लिखितम्।
14	शक्तिरामानुजम्	-	-	उत्सृष्टिकाङ्कनामकं रूपकमिदं भावप्रकाशने उद्धृतम्।

15	वालिवधम्	–	–	प्रेङ्खणकम् उपरूपकमिदं भाव–प्रकाशने, नाटकलक्षणरत्नकोशे साहित्यदर्पणे चोद्धृतम् ।
16	दूताङ्गदम्	सुभट:	1	छायानाटकमिदम्। रूपकेऽस्मिन् रावणसदसि अङ्गदौत्यं वर्णितम्।
17	मैथिलीकल्याणम्	हस्तिमल्ल:	–	नाटकेऽस्मिन् कविना सीता–रामयो: आदर्शचरित्रविरुद्धं वर्णनं कृतम्।
18	उन्मत्तराघवम्	भास्करकवि:	–	प्रेक्षणकमिदम्।
19	उन्मत्तराघवम्	विरूपाक्ष:	–	प्रेक्षणकमिदम्।
20	रामाभ्युदयम् :	व्यासरामदेव	–	छायानाटकमिदम्।
21	आनन्दराघवम्	यज्ञनारायण–दीक्षित: (राजचूडामणि:)	–	नाटकेऽस्मिन् सीतास्वयंवरतो रामराज्याभिषेकपर्यन्तं कथा वर्णिता।
22	अद्भुतदर्पणम्	महादेव:	–	रामकथाश्रितनाटकेषु केवलमस्मिन्नाटकेऽङ्गिरसत्वेन अद्भुतरस: प्रयुक्तो दृश्यते।
23	जानकीपरियणम्	रामभद्रदीक्षित:	–	अत्र सम्पूर्णरामकथा रावणवधोपरान्ते वर्णिता। सीता–रामविवाहोऽत्र विश्वामित्राश्रमे वर्णितो वर्तत इति विशेष:।
24	अभिरामराघवम्	विश्वेश्वरपाण्डेय:	–	–
25	रामराज्याभिषेकम्	वीरराघव:	7	नाटकेऽस्मिन् रामकथा श्रेष्ठरीत्या वर्णिता।

रामायणसम्बद्धम् अप्रकाशितं नाट्यसाहित्यम्17

क्र.	**नाट्यम्**	**महाकवि:**
1	रघुवीरचरितम्	चक्रवर्ती वेदान्तसूरी
2	सीताराघवम्	रामपाणिवाद:
3	कुशलवविजयम्	वेङ्कटकृष्ण:
4	रामायणनाटकम्	सोमेश्वरदेव:
5	मुदितराघवम्	शलकृष्ण:
6	सीतानन्दम्	ताताचार्य:
7	अभिराममणि:	सुन्दरमिश्र:
8	रघुवीरचरितम्	सुकुमार:
9	आञ्जनेयविजयम्	भाष्यकर:
10	जनकजानन्दनम्	नृसिंह:
11	प्रौढाभिरामम्	वेङ्कटनाथ:
12	उत्तरचरितम्	रामकृष्ण:

****

महाभारत से अनुप्राणित संस्कृत विदग्ध महाकाव्य

पं.श्रेयस् श्रीधरशास्त्रिकोरान्ने *

प्रस्तावना – महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास विरचित महाभारत भारतीय संस्कृति सनातन वैदिक धर्म एवं साहित्य का सर्वस्वभूत महान् ग्रन्थ है। महाभारत अपने बृहत्-कलेवर के कारण विश्वसाहित्य के वृहत्तम महाकाव्य के गौरवास्पद पद पर भी प्रतिष्ठित है। स्वयं महामुनि वेदव्यास का कथन है-

महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।[1]

महाभारत एक ऐसा आर्षकाव्य है, जिसने संस्कृत-साहित्य की सुदीर्घ परम्परा को प्रेरणा प्रदान की तथा संस्कृत कवियों को किसी न किसी रूप में प्रभावित भी किया। स्वयं महर्षि वेदव्यास ने भी समस्त कविजनों के लिये इसे उपजीव्य कहा है-

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः ॥[2]

संस्कृत-साहित्य में महाकाव्य साहित्य का अनुपम स्थान है। महाकाव्य के सन्दर्भ में काव्यशास्त्र के भामह, दण्डी, रुद्रट तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों ने अपने विचारों का प्रतिपादन किया है।[3] इसी प्रकार आधुनिक भारतीय साहित्य समीक्षकों ने भी उद्भव की दृष्टि से महाकाव्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। तदनुसार उद्भव की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य के दो प्रभेद किये जा सकते हैं- **1. आर्ष महाप्रबन्धकाव्य, 2. विदग्ध महाकाव्य**

रामायण और महाभारत आर्ष वीरयुगीन विकसनशील महाप्रबन्ध काव्य हैं। ये दोनों प्राचीन संस्कृति के द्योतक होने से उद्भव में प्रथम हैं। रामायण और महाभारत के परवर्ती कालिदासादि के महाकाव्य उत्तरकालीन सामन्तयुगीन संस्कृति के द्योतक होने से विदग्ध महाकाव्य हैं।[4]

विदग्ध महाकाव्य इस संज्ञा का प्रयोग मराठी के समीक्षक डॉ. केशवनारायण वाटवे ने संस्कृत महाकाव्यों के अपने विश्लेषण में सर्वप्रथम किया है। विदग्ध महाकाव्य का आशय स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं- **'विदग्ध महाकाव्य'** से आशय है उत्तरकालीन संस्कृति की बदलती हुई धारा में तथा भिन्न परिस्थितियों में पूर्वकालीन काव्यों का आधार विशेष अभिप्राय से लेकर पाण्डित्य तथा चातुर्य और विद्धत्ता से सजाया गया कलामण्डित तन्त्रबद्ध महाकाव्य।'[5] विदग्ध महाकाव्य आर्ष महाकाव्यों से प्रभावित है। प्रकृत में महाभारत से अनुप्राणित के संस्कृत महाकाव्य के विदग्ध काव्य-साहित्य का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. किरातार्जुनीयम् – महाभारत पर आश्रित संस्कृत की विदग्ध महाकाव्यपरम्परा में महाकवि भारवि (550-620 ई.) कृत 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य समुपलब्ध सर्वप्रथम रचना है। यह महाकवि भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। यह संस्कृत महाकाव्यों की **'बृहत्त्रयी'** में परिगणित सर्वप्रथम महाकाव्य है, जिसे संस्कृत महाकाव्य की एक नवीन धारा का प्रवर्तन का श्रेय प्राप्त है। इस महाकाव्य की कथावस्तु का ग्रहण महाकवि भारवि ने **महाभारत के वनपर्व** के अध्याय 27 से 40 पर्यन्त वर्णित कथाप्रसंग से ही किया है। महाकवि भारवि ने महाभारत के इस प्रसंग को अपनी ओजस्वी कल्पनाओं से परिष्कृत करके 18 सर्गों में महाकाव्य रूप में श्रेष्ठ रीति से निबद्ध किया। वीररसप्रधान तथा 1030 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य की कथावस्तु मूलत: इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिये और विख्यास्त्र प्राप्त करने के लिये अर्जुन द्धारा विहित तपस्या एवं किरातावेषधारी शिव के साथ उसके युद्ध तथा प्रसन्न शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्ति से सम्बद्ध है। अत: इस महाकाव्य का 'किरातार्जुनीयम्' यह नाम सार्थक है। यह महाकाव्य अपने **'अर्थगौरव'** के कारण प्रसिद्ध है। यह यथार्थ रूप में महाभारतोक्त पुरुषार्थ जागृति के सन्देश को समाज में संक्रान्त करने में पूर्णरूपेण सफल प्रतीत होता है।[7]

2. शिशुपालवधम् – महाकवि भारवि का ही अनुकरण करते हुए महाकवि माघ (700 ई.) ने भी अपने महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' की कथावस्तु का ग्रहण महाभारत से ही किया। महाकवि माघ ने **महाभारत के सभापर्व** में अध्याय 36 से 45 तक वर्णित युधिष्ठिर के राजसू'ाग में भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रसपर्या का विरोध करने पर चेदिराज शिशुपाल के वध की घटना को आधार बनाकर 20 सर्गात्मक महाकाव्य का प्रणयन किया। महाकवि माघ ने अपनी प्रातिभप्रभा से मूलकथानक को अतीव आलौकित किया, जिसमें पदे-पदे उनके पाण्डित्य प्रकर्ष के दर्शन हमें होते हैं। प्राचीन पण्डितों ने माघ में उपमा की रुचिर योजना, अर्थगाम्भीर्य तथा पदलालित्य इन गुणत्रय को प्राप्त करके इसकी प्रशंसा में कहा है- **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः।'** किरातार्जुनीयम् की अपेक्षा माघ के सर्ग बड़े हैं तथा पद्य भी तदधिक 1650 हैं। मूलत: यह वीररसपरक महाकाव्य है तथापि इसमें विस्तारपूर्वक श्रृंगार-वर्णन उत्कृष्ट रीति से निबद्ध है। यह महाकाव्य किरातार्जुनीयम् महाकाव्य का अनुवर्तक है। विषय संयोजन वर्णन आदि के समान ही महाकाव्य का आरम्भ 'श्री' शब्द से तथा सर्गान्त पद्य में भी 'श्री शब्द का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार महाकवि माघ ने भी महाभारतकार के दुष्टों के दमन की अनिवार्यता के सन्देश को अपनी कृति के द्धारा जन-सामान्य में सफलतापूर्वक सम्प्रेषित किया।[7]

3. भारतमंजरी – महाकवि क्षेमेन्द्र (1000-75 ई.) द्धारा विरचित 'भारतमंजरी'नामक महाकाव्य भी महाभारत से अनुप्राणित है। यह महाभारत का संक्षिप्त रूपान्तर है। इस महाकाव्य में महाभारत की हरिवंशखिलपर्वसहित सम्पूर्ण कथा 19 पर्वों तथा 1092 पद्यों में उपनिबद्ध है। यह महाभारत से प्रभावित पौराणिक शैली में निबद्ध उत्कृष्ट विदग्ध महाकाव्य है, जिसके

* शोधार्थी संस्कृत अध्ययन शाला विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

द्वारा महाकवि क्षेमेन्द्र ने साहित्य-जगत् में महती प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा इसी कृति के कारण उन्हें 'व्यासदास की उपाधि से मण्डित किया गया। [8]

4. नैषधीयचरितम् – महाकवि श्रीहर्ष (1150-1200 ई.) द्वारा विरचित 'नैषधीयचरितम्' नामक महाकाव्य भी महाभारत से अनुप्राणित है। इस विदग्ध महाकाव्य की गणना भारवि एवं माघ की कृतियों के साथ संस्कृत महाकाव्यों की **'बृहत्त्रयी'** में होती है। महाकवि श्रीहर्ष ने महाभारतान्तर्गत **'नलोपाख्यान'** में वर्णित अध्याय 52-79 पर्यन्त नलचरित्र को आधार बनाया। इसमें मूलकथानक के एकदेश का ग्रहण करके राजा नल तथा दमयन्ती की प्रणयकथा का निबन्धन 22 सर्गों तथा 2830 पद्यों में उत्कृष्ट रीति से किया गया है। महाकाव्य का अंगीरस शृंगार है। कल्पना की चमत्कृति, रमणीयता तथा पदलालित्य में यह महाकाव्य अपने पूर्ववर्ती श्रेष्ठ कृतियों किरातार्जुनीयम् तथा शिशुपालवधनम् से भी उत्कृष्ट माना जाता है। अत: संस्कृत-मनीषियों में यह आभाणक है- **'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि:।'** (नैषध काव्य के उदित हो जाने पर कहाँ माघ और कहा भारवि ?)

महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् के द्वारा महाभारतोक्त मानवीय जीवन के पातोत्पात, सच्चरित्रता, कर्त्तव्यपरायणता तथा दाम्पत्य-निष्ठा रूप आदर्शों को समाज में सफलतापूर्वक संक्रान्त किया।[9]

5. युधिष्ठिरविजयम् – महाकवि वासुदेव (900 ई.) ने भी महाभारत की सम्पूर्ण कथा को आधार बनाकर 'युधिष्ठिरविजयम्' नामक यमक काव्य लिखा। इस महाकाव्य में 8 सर्ग तथा 716 पद्य हैं।[10] सम्पूर्ण काव्य 'आर्यागीति' में निबद्ध है। महाभारत युद्ध में कौरवों पर विजय प्राप्ति के उपरान्त युधिष्ठिर का राज्यारोहण एवं प्रजापरिपालन पर्यन्त कथानक इसमें वर्णित है। इसी प्रकार 'महाभारत' के 'नलोपाख्यान' के आधार पर लिखित **'नलोदयम्'** नामक यमक काव्य भी सम्भवत: इन्हीं की रचना है। इस काव्य में 4 सर्ग, 290 श्लोक हैं तथा आर्यागीत छन्द का प्रयोग किया गया है।

6. कीचकवधम् – कविवर नीतिवर्मा (9-10वीं शती वि.) द्वारा प्रणीत 'कीचकवधम्' नामक चित्रकाव्य का आधार भी महाभारत ही है।

7. यमकभारतम् – 'यमकभारतम्' महाकाव्य के प्रणेता माधवाचार्य (1198-1278 ई.) आनन्दतीर्थ हैं। उन्होंने भी महाभारत की कथा को आधार बनाकर आद्यन्त यमकालंकारसमन्वित 'यमकभारत' नामक उत्कृष्ट यमक काव्य की रचना की है। [11]

8. पाण्डवचरितम् – महाकविचन्द्रप्रभसूरि (1250 ई.) ने भी महाभारत कथा से प्रेरित होकर 18 सर्गों में 'पाण्डवचरितम्' नामक महाकाव्य की रचना की। [12]

9. नरनारायणानन्दम् – महाकवि वस्तुपाल (1219-39 ई.) ने भी महाभारत के सुभद्राहरण प्रसंग को लेकर 'नरनारायणानन्दम्' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया। इसमें 16 सर्ग तथ 740 पद्य हैं। [13] इस महाकाव्य में नर एवं नारायण के अवतार अर्जुन तथा कृष्ण की मित्रता का चित्रण करते हुए अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण का प्रसंग वर्णित है। जीवनानुभव से समन्वित सूक्तियों का प्राचुर्य इस महाकाव्य का अद्भुत वैशिष्ट्य है।

10. बालभारतम् – जैन कवि अमरचन्द्र (1260 ई.) द्वारा रचित 'बालभारतम्' नामक महाकाव्य भी महाभारत पर आधृत उत्कृष्ट रचना है। इस महाकाव्य में कथानक महाभारत के पर्वों के अनुसार ही है। इस महाकाव्य में 44 सर्ग हैं तथा 6940 पद्य हैं तथा इसमें सनातन परम्परा सम्मत कथा का ही कवि ने अनुगमन किया है। [14]

11. सहृदयानन्दम् – महाकवि कृष्णानन्द (1300 ई.) ने भी महाभारत के नलोपाख्यान पर आश्रित 'सहृदयानन्दम्' नामक महाकाव्य की रचना की। उन्होंने अपने इस सहृदानन्द महाकाव्य में नल-दमयन्ती की सम्पूर्ण कथा का वर्णन 15 सर्गों में किया है। [15]

12. नलाभ्युदयम् – महाकवि वामन भट्टबाण (1400 ई.) ने भी महाभारत के नलोपाख्यान को आधार बनाकर 'नलाभ्युदयम्' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया। इस महाकाव्य में 8 सर्गों में नल-चरित्र का वर्णन किया गया है।[16]

महाभारत से अनुप्राणित अनेक महाकाव्यों एवं प्रकीर्ण काव्यों का उल्लेख भी प्राप्त होता है, जिसमें अज्ञातकविकर्तृक 'कल्याणनैषधम्' (7 सर्ग) तथा वन्दारुभट्ट (19वीं शती) कृत 'उत्तरनैषधम्' (10 सर्ग) तरुणभारतम्, नरसप्पमन्त्रिकृत-अभिनवभारतम्, हेमचन्द्राचार्यकृत- पाण्डवविजयम् तथा चित्रभानुकृत-भरतोद्योतम्[17] लक्ष्मीदत्तकृत-पाण्डवचरित्रम्, श्रीश्वरविद्यालंकारकृत-विक्रमभारतम्, शिवसूर्य (1450 ई.) कृत-पाण्डवाभ्युदयम् (8सर्ग), वादिचन्द्रसूरिकृत-पाण्डवपुराणम्, कुरूक्षेत्रम् (18 सर्ग), पूर्वभारतम् (21 सर्ग) प्रमुख हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. महाभारतम् - आदिपर्व, 2.274
2. वही, 1.108
3. साहित्यदर्पण: - 6/315-25
4. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा - डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर, पृ. 90, चौ.सं.सी.आ. वाराणसी, 1969, ई.
5. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास - डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 102, वि.वि.प्र. वाराणसी, 2013 ई.
6. किरातार्जुनीयम् - भारवि, निर्णयसागर मुद्रणालय, मुम्बई, 1942 ई.
7. शिशुपालवधम् - माघ, व्या. डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर, चौ.सं.भ. वाराणसी, सं. 2063
8. भारतमंजरी - क्षेमेन्द्र, नि.सा.मु. मुम्बई, 1898 ई.
9. नैषधीयचरितम् - श्री हर्ष, व्या. नारायणराम आचार्य, चौ.वि.भ., वाराणसी, 2004
10. संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास, काव्यखण्ड, सं. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 240, उ.प्र. संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997 ई.
11. वही, पृ. 241
12. वही, आर्षकाव्यखण्ड- सं. प्रो. भोलाशंकर व्यास, पृ. 681, उ.प्र.सं.सं., लखनऊ, 2000 ई.
13. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वाचस्पति गैरोला, पृ. 743, चौ.वि.भ. वाराणसी, 2009 ई.
14. संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास - काव्यखण्ड - सं. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 178, उ.प्र.सं.सं. लखनऊ, 1997 ई.
15. वही, पृ. 179
16. वही, पृ. 325
17. History of classical Sanskrit Literature, M. Krishnamachariar, P. 302, Motilal Banarasidas, Delhi, 1970

संत नामदेव - एक श्रेष्ठ समाज संघटक

डॉ. शैलजा साबले *

प्रस्तावना - भारतवर्ष ही संतांची भूमी आहे. विविध प्रांतातल्या संतांनी तत्कालीन समाजाची गरज लक्षात घेऊन भक्तीयोगाची मांडणी केली. आपापल्या भाषेत अधयात्मिक भक्तीपर रचना लिहिल्या. समाजातल्या सर्व घटकांना एका सूत्रात बांधाण्याचा प्रयत्न केला.

मराठी मुलखात ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि संतांनी भागवत धर्माद्धारे भक्तीप्रसार केला. पंढरपूरचे आद्य दैवत श्री विठ्ठलाची जनमानसात प्रतिष्ठापना केली. संत नामदेवांनी समाजसंवर्धक नीतीचा लोकप्रसार केला. धर्माचा अर्थ स्पष्ट करून धर्म सर्वसामान्यांसाठी आहे, हे स्पष्ट केले. भारतभर भ्रमण केले. उत्तारेत पंजाबपर्यंत जाउऩ वारकरी पंथाच्या समाजहिताच्या तत्वज्ञानाचा प्रसार केला. अतिशय प्रतिकूल परिस्थितीत आणि असहिष्णू अशा इस्लामी राजवटीत त्यांनी ही भक्तीमय गाथा तेवत ठेवली. संत नामदेवांचे जीवन म्हणजे प्रत्यक्षात उतरलेला कर्मयोगच आहे. त्यांची भक्ती डोळस होती. ती केवळ स्वत: साठी नव्हती तर अवघ्या जनलोकांसाठी होती।1

महाराष्ट्रीय संतश्रेष्ठांनी जी उज्ज्वल परंपरा पुढे चालवून महाराष्ट्रात सांस्कृतिक पुनरुत्थान घडविले त्या वारकरी संप्रदायाचा उगम भक्तामाजी अग्रगणी असणाऱ्या पुंडलिक महामुनीपासून झालेला आढळतो. ज्ञानेश्वर-नामदेव, भानुदास-एकनाथ, तुकाराम-निळोबा आणि त्यांच्या समकालीन अनेक संतांनी जी साहित्यनिर्मिती केली, तिची प्रमुख प्रेरणा या संप्रदायाच्या विचारसरणीत आहे. या संप्रदायांचे आद्यपीठ जे पंढरपूर येथे दरवर्षी नियमाने, आषाढी कार्तिकी पंढरीची वारी करणारा तो वारकरी, यावरून वारकरी संप्रदाय हे नाव पडले. 'भागवतधम' असाही त्याचा उल्लेख केला जातो.2

हा भक्तिवादी संप्रदाय असूनही त्यात केवलाद्वैतमताचा आग्रह आहे. तो हरिहराचे ऐक्य प्रतिपादन करतो आणि वेदांना प्रमाण मानतो. 'युगे अठ्ठावीस विटेवरी उभा' असणारा पांडुरंग हे या संप्रदायाचे आद्य दैवत. 'रामकृष्णहारी' हा षडाक्षरी मंत्र, गीता-भागवत, ज्ञानेश्वरी-अमृतानुभव, नाथभागवत, नामदेव आणि तुकोबा यांच्या गाथा, एकनाथ, ज्ञानेश्वर, निळोबा यांचे अभंग हे त्यांचे मान्यवर ग्रंथ. हरिपाठाचे अभंग तर वारकऱ्यांना मुखोद्गतच असतात. पंढरीचा वास चंद्रभागे स्नान आणिक दर्शन विठोबाचेय हीच त्यांची आचारसंहिता पंढरी हे त्यांचे माहेर आहे. 'कीर्तनाच्या सुखे सुखी होतो देव' अशी प्रत्येक वारकऱ्याची मनोमन श्रद्धा आहे. सर्व संतश्रेष्ठांच्या अभंगवाणीत या मूलभूत तत्तवाचे प्रतिबिंब उमटलेले दिसेल. 'दारासुतगृहप्राण' भगवंतासी अर्पण करावे आणि एका विठोबाचे नाम गात रहावे, अशी त्यांची अनन्यसाधारण निष्ठा आहे पण वारकऱ्यांची ही भक्ती प्रवृत्तीपर आहे. विहितकर्मातील सकामतेचा, कर्मठपणाचा ते निषेध करतात. वैदिक परंपरा निष्प्रभ झालेली, कर्मठपणाचे बंड वाढलेले, नीतिमूल्यांचे अध:पतन झालेले अशा परिस्थितीतील महाराष्ट्रात या पंथाने केलेले कार्य सांस्कृतिकदृष्ट्या फार मोलाचे आहे.3

समाज दर्शन - यादव युगात सामान्य समाजाचे जीवन प्राधान्याने धर्मप्रधान होते. पण पुरोहितांच्या वर्चस्वामुळे त्यात कर्मकांड आणि विधिनिषेध यांचे स्तोम फार माजलेले होते. वर्णाश्रमाच्या धारणेमुळे उच्चवर्णियांची सद्दी समाजात निर्माण झाली होती. धार्मिक संस्कार तेच करायचे. ज्ञानाचे अध्ययन-अध्यापन करण्याचीही मिरासदारी त्यांच्याकडेच असायची, ज्ञानग्रंथही सर्वसामान्य जनांना न कळणाऱ्या देववाणीत म्हणजे संस्कृतात असत, अंत्यजांना ज्ञानग्रहणाचा वा मंदिर-दर्शनाचा अधिकार नसे. हळुहळू रुढींनाच धर्माचे माहात्म्य प्राप्त होत गेले. समाजातील अज्ञान आणि अंधश्रद्धा वाढली.4

संत नामदेवांच्या ठिकाणी असामान्य धैर्य होते. त्यांनी केवळ सामाजिक समतेचा उच्चार केला नाही, तर समता प्रत्यक्ष आचरणात आणून दाखविली. त्या काळी समाजावर कर्मकांडांचा पगडा होता. अंधश्रद्धा भरपूर होत्या. कर्मठ धर्मनेते व्रतवैकल्यांबद्दल आग्रह धरीत. त्यामध्ये ऐहिक दृष्टी असायची. अशा धर्मार्तंडांचा अनुभव नामदेवांनी घेतलेला होता.

विपरीत धार्मिक वातावरणावर मात करीत संत नामदेव आपला नामवेदाचा अर्थात सुलभसोप्या नामसाधनेचा विचार मांडतात. प्रतिकूल राजकीय, सामाजिक अन्धार्मिक वातावरणात मराठी आणि अन्य प्रदेशीय लोकजीवनाला नवे वळण लावण्याचे कार्य, ज्या काही थोर संतांनी केले त्यांचे अग्रणी संत नामदेव आहेत.

भक्तीची विचारधारा सर्वप्रथम दक्षिण भारतातून अनेक आचार्य आणि भक्त हरिकथा गाय कांकडून उत्तारेत गेली असे म्हटले जाते. अशा सांस्कृतिक प्रभावाचा एक महत्वाचा दुवा आपल्याला नामदेवांमध्ये दिसून येतो. अद्वैताचे ज्ञान आणि परब्रह्माची सगुण रूपात आराधना असा समन्वयशील भागवतधर्मीय परम्परेचा समर्थ आणि समृद्ध वारसा घेउऩ नामदेव महाराष्ट्रात आणि महाराष्ट्राबाहेर वावरले या अर्थाने ते वैष्णवांचे कुलपुरुष ठरतात. उत्तार भारतीय संत परंपरेचे प्रमुख्य कवी संत कबीरदास, दादूदयाल, मलूकदास, पलटूदास इत्यादि संत नामदेवांचा आदरपूर्वक उल्लेख करतात. गुरू नानकदेव आणि त्यांच्या शिष्यपरंपरेने तर संत नामदेवांच्या विषयींच्या प्रीतीमुळे आपल्या पूर्वपरम्परेतच त्यांना सामावून घेतले आहे.5

कर्मठपणा, व्रतवैकल्ये, संन्यास इ. गोष्टींचा त्याग या पंथाने शिकविला. 'मनाचा मार न करिता। आणि इंद्रियां दु:ख न देता' ही ईश्वर आकळिता येतो, असे सांगितले. 'न लगे सायास जावे वनांतरा। सुखें येतो घरा नारायण' हे स्वत:च्या उदाहरणाने पटवून देउऩ, सहज सुलभ सोप्या अशा भक्तिमार्गाचीं शिकवण दिली. 'भक्तीचा डांगोरा पिटला' कोणत्याही जातीच्या मनुष्यास आपली आध्यात्मिक उन्नती साधता येते, असा विश्वास दिला, 'येथे कुलजाति वर्ण अप्रमाण मानून'अंतरी निर्मळ वाचेचा रसाळ। त्याच्या गळा माळ असो नसो अशा कुणाही व्यक्तीस सामावून घेण्यासाठी मनाची विशालता सिद्ध केली. स्त्रीशूद्रादींच्या धर्मभावनेला

* अतिथि विद्वान (मराठी साहित्य) शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

अध्यात्मविचाराची जोड देण्यासाठी, उच्चतर सामाजिक जीवनाची आकांक्षा त्यांच्या मनात निर्माण करण्यासाठी त्यांनी 'ज्ञानाची पव्हे उघडली. युगानुयुगे बंद असलेली उच्च ज्ञानाची कवाडे सर्वांना खुली केली आणि सर्वसामान्यांपर्यंत हे ज्ञान पोहोचावे म्हणून मराठीतून जाणीवपूर्वक ग्रंथरचना केली. पदोपदी आपला भाषाभिमान प्रगट केला. यासोबतच सामाजिक नीतीची शिकवण देणे, हे त्यांचे अगत्याचे कर्तव्य होते. चुकलेल्यांना फजित करणे, पाखांडाचे खंडन करणे, हाच धर्म अशी डोळस दृष्टी संतानी दिली. दया, क्षमा, शांती, अहिंसा या समाजजीवनास आवश्यक असणाऱ्या मूल्यांचे स्मरण घडविले. प्रत्येक भूताला भगवंत मानिले. दुरितांचे तिमिर जाउन 'जो जे वांछील तो ते लाहो' असे मानवतावादावर अधिष्ठित पसायदान मागितले. 'सगुणचरित्रे परमपवित्रे' सादर वर्णन करून भक्तांचे व संतांचे आदर्श लोकमानसासमोर उभे केले.6

सर्वसंग्राहकता, डोळस आणि सश्रद्ध भक्ती, सामाजिक नीतीची शिकवण यांतून या संप्रदायाने समाजाला नवी जीवननिष्ठा दिली. संतसाहित्याच्या चरणाचरणातून या जीवननिष्ठेचे दर्शन घडते. संतसाहित्याची ही फार मोठी फलश्रुती आहे. 'प्रतिपदीं प्रतिपादावे परब्रह्म' हाच त्यांच्या कवित्वाचा खरा धर्म होता. जनांत जनार्दन शोधून या विठ्ठलाच्या गाढ्या वीरांनी भक्तीचा डांगोरा पिटला. त्याचे पडसाद त्यांच्या साहित्यातून उमटलेले आहेत. अशी समर्थ, संपन्न, उदात्ता आणि व्यापक जीवननिष्ठा ही या संप्रदायाची मूलभूत शक्ती असून संतसाहित्याची आदिप्रेरणा आहे.7

संत नामदेव हे 700 वर्षापूर्वी केलेल्या राष्ट्रीय एकात्मतेचे पहिले उद्गाते आहेत. आजच्या काळात संतांच्या या कामगिरीकडे नव्या दृष्टीने बघायला हवे. संतवाङ्मय हा माणसातले सत्व, स्वत्व आणि सजगत्व जागृत ठेवणारा मोठा आधार आहे. राजकीय, सांस्कृतिक, सामाजिक आणि आर्थिक क्षेत्रातली अनागोंदी थांबवायची असेल तर तिथं चांगली माणसं जायला हवीत. आणि माणूसपण जपत काम करणारी चांगली माणसं घडवायची असतील तर संतवाङ्मयाला पर्याय नाही. हे वाङ्मय आजच्या So-Called हायफाय जमान्यातल्या समजुतींप्रमाणे मुळीच outdated नाही तर ते आजच्या वर्तमानातही most relevant आहे. समाज धारणेसाठी अत्यावश्यक आहे. संतसाहित्य हे चांगली माणसं घडवणारं विद्यापीठ आहे. त्याला पर्यायच नाही.8

नामया करितसे विस्तार – जनसामान्यांना ज्ञानेश्वर आपल्या मूळच्याच अलौकिक व तेजस्वी व्यक्तिमत्तवामुळे असामान्य वाटत होते. तर सांसारिक दु:खे आणि व्यवहाराच्या चिंता यांना भक्तीच्या डोहात बुडवून असामान्यत्व नामदेवांनी मिळविले हाते नामदेवांच्या व्यक्तिमत्तवाचा विकास सामान्याकडून असामान्याकडे जाणारा असा आहे. जनसामान्यांना ज्ञानेश्वरांबद्दल आदर वाटतो तर नामदेवांबद्दल जिव्हाळा वाटतो! या काळातील निद्रिस्त, संत्रस्त आणि बेचैन झालेल्या समाजाला नामदेवांनी दिलासा दिला. 'हरिहरा भेद नाही। करू नये वाद' असे सांगून त्यांनी शैव-वैष्णववादावर पडदा टाकला आणि 'आम्हा सापडले वर्म। करू 'भागवत धार्म' असे आपल्या कार्याचे स्वरूप स्पष्ट केले. चंद्रभागेतीरी विठूच्या हरिनामाचा झेंडा रोविला। भक्ती ही स्वतंत्र जीवननिष्ठा मानली. सामान्यांच्या अंत:करणाला स्पर्श करील अशा सुबोध आणि सरस भाषेत त्यांनी भागवत संप्रदायाच्या तत्तवांचा प्रसार केला. भागवत संप्रदायातील नामदेवांचे कार्य तर ज्ञानेश्वरांपेक्षाही मोठे व मोलाचे आहे. परधर्मसहिष्णुता आणि सर्वसमावेशकता यामुळे तर त्याचा विस्तार व लोकप्रियता खूपच वाढली. भागवतधर्माची ही पताका आणि नामभक्तीचा मंत्र त्यांनी पंढरीपासून पंजाबपर्यंत नेउन पोहोचविला. संस्कृत ग्रंथांचा अभ्यास ते करू शकले नसले तरी 'नामाचे प्रबंध' पाठ करावयास विसरले नाहीत. 'नाम हेचि कर्म। नाम हेचि ब्रह्म' त्यांनी मानले. त्यांना इतर अवघे खोटे वाटले आणि हरिनाम तेवढेच गोमटे वाटले. प्रत्येक ईश्वरापेक्षाही नामदेवांना ईश्वरप्रीती अधिक प्रिय होती. त्यांच्या कविमनाचे हे वैशिष्टय म्हटले पाहिजे. या ईश्वरप्रीतीपोटीच मराठीतील पहिल्या भाव-कवितेचा जन्म झाला.9

नामदेवांमुळे मराठी कवितेला अभंगांचा लाभ झाला. हे अभंग सामान्यांच्या भाषेतून गायिले गेले. संस्कृताचा स्पर्श नसलेल्यानांही ते सहज कळले. आपल्या विचारांच्या प्रसारासाठी कीर्तन हा सर्वात चांगला मार्ग त्यांनी चोखाळला. 'नाचू कीर्तनाचे रंगी। ज्ञानदीप लावू जगी' ही त्यांची महत्तवाकांक्षा कीर्तनाद्वारे साकार होऊ शकली. नामदेव या कीर्तनपरंपरेचे आद्य प्रवर्तक ठरतात. नामदेवकालीन समाजात वर्णव्यवस्थेचे पालन कठोरपणे होई. अशा अवस्थेत नामदेवांनी समाजातील या जाति-भेदाला चंद्रभागेच्या वाळवंटापुरती मूठमाती दिली आणि 'देव भावाचा भुकेला। याति कळेनाही त्याला' असे स्पष्ट सांगितले. भागवतधर्माचे हे महत्तवाचे तत्तव होते.10

नामयाचे दर्शन – माळावरच्या उघड्या दगडांना पांघरूण घालावं, भाकरीचा तुकडा पळविणाऱ्या कुत्र्यामागे तुपाची वाणी घेऊन धावावं, देवाजीला आपल्या हाती प्रसाद जेवावयास लावावा; अशा अनेक लोककथा संत नामदेवांच्या उत्कट भक्त-भावनेचा अन् उत्कट आनंदीवृत्तीचा महिमा सांगण्यासाठी रचल्या गेल्या असल्या पाहिजेत. पण उपलब्धा नामदेव काव्यातही त्यांच्या विठ्ठल रंगात रंग असणाऱ्या भावविभोर स्थितीचा प्रभावी प्रत जागोजागी आपल्याला आल्याशिवाय राहात नाही.

'मीपणासहित आनंदी बुडाले। न निघे काही केल्या चित्ता माझे।।'
म्हणणारे नामदेव 'देह जावो अथवा राहो। पांडुरंगी दृढ भावो।।
अशा श्रद्धेने जगण्यातील उत्कट आशय परोपरीने प्रकट करीत होत'
'तीर्थ विठ्ठल। क्षेत्र विठ्ठल। देव विठ्ठल। देवपूजा विठ्ठल। माता विठ्ठल। पिता विठ्ठल। बंधु विठ्ठल। गोत्र विठ्ठल। गुरू विठ्ठल। गुरूदेवता विठ्ठल। निधान विठ्ठल। निरंतर विठ्ठल।'

असे सदासर्वत्र विठ्ठल अनुभवणारे नामदेव त्या मूर्तिभंजनाच्या काळातही आत्मविश्वासपूर्वक सांगत होते, 'नामा म्हणे मज विठ्ठल सापडला। म्हणूनि कळिकाळा पाड नाही।।'

एका अभंगात तर मोठ्या बहारीने नामदेव, आपल्या देहाच्या देव्हाऱ्यातच पांडुरंगाची पूजा मांडतात.

नामदेवांची काव्यरचना आत्मनिष्ठ आहे. त्यामुळे परमेश्वराच्या प्राप्तीसाठी त्यांनी केलेल्या प्रयत्नांचा चढता-वाढता आलेख त्यांच्या अभंगांतून उमटला आहे. 'कुटुंब-काबाडी सदा कानकोंडा' अशी त्यांची आरंभीची अवस्था होती. घर चालविण्यासाठी काबाडकष्ट करणारा एक सामान्य गृहस्थ म्हणून ते जगत होते. त्या स्थितीचा त्यांना उबग आला, प्रपंचातून ते बाहेर पडले, आणि विठ्ठल भक्तीच्या मार्गाला लागले. 'कण्या-भाकरीचे खाणें/गाठीं रामनाम नाणें' असा उल्लेख त्यांनी केला आहे. खिशात पैसा नसल्यामुळे साधेसुधे अन्न खाऊन त्यांना दिवस काढावे लागत होते. पण व्यवहारातल्या संपत्तीपेक्षाही अधिक मोलाचे असलेले रामनामरूपी नाणे त्यांनी घट्ट धरून ठेवले होते. त्यामुळेच 'परब्रह्म होउनि ठेलों' असे समाधान त्यांनी मिळवले. परमेश्वराचा शोध घेता घेता नामदेव स्वत:च

ब्रह्मस्वरूप होऊन गेले. हा अलौकिक शोध घेण्यासाठी नामदेवांनी जी साधाना केली, तिच्यातून त्यांच्या परमार्थ जीवनाची गाथा उलगडत जाते. प्रपंचातल्या लौकिक जीवनापेक्षा त्यांचे पारमार्थिक जीवन उच्च व उदात्ता आहे.12

निष्कर्ष – आपल्या अभंगांच्या आणि कर्तृत्वाच्याद्वारे नामदेवांनी समाजाला मानवता, भूतदया, शांती, सर्वांभूती प्रेमभाव, संतमाहात्म्यातून आदर्श व्यक्ती आणि भक्त यांची मूल्ये शिकविली. निरागसता, कोमलता, मनाचे औदार्य आणि विशालता हा नामदेवांचा स्थायीभाव होता. नामसंकीर्तन आणि विठ्ठलप्रेम हे त्यांचे खरे मार्ग होते. त्यामुळे उच्च-नीच जातीतील भक्त एकत्र आले. त्यात स्त्रियांही आल्या. समाजाच्या अठरापगड जातीतील संत एकत्र आले आणि त्यांनी अभंगरचना केली. काही मुसलमान मराठी संतकवींनीही आपल्या अभंगरचनेचा प्रवाह यात आणून सोडला व चंद्रभागेच्या तीरी आध्यात्मिक लोकशाही उदयाला आली.

मराठीतील पहिले भावकवी, आत्मचरित्रकार, आख्यानकवी, भागवतधर्माचे पहिले संघटक आणि प्रचारक, कीर्तनपरंपरेचे प्रवर्तक, आपल्या शिष्याची समाधी बांधणारे गुरू अशा अनेक दृष्टींनी नामदेवांचे व्यक्तिमत्तव संपन्न आहे. समाजमनस्क अशा नामदेवांनी महाराष्ट्राच्या सांस्कृतिक जीवनाला आकार दिला. नामदेवांच्या संदर्भात हे. वि. इनामदार म्हणतात, 'नामदेव हे थोर भक्त होत' तसेच ते कुशल संघटकही होते. वारकरी संप्रदायाच्या संघटनेचे कार्य त्यांनी ज्ञानेश्वरांच्या हयातीत तर केलेच, पण ज्ञानेश्वरांनी समाधी घेतल्यानंतरही पन्नास वर्षे महाराष्ट्रात आणि महाराष्ट्राबाहेर नामदेवांनी विठ्ठलप्रेमाने भारून जातिनिरपेक्ष अशा अध्यात्मविचारांची मुहूर्तमेढ रोविली. नामसंकीर्तनाची नवी परंपरा सुरू केली आणि वारकरी संप्रदाय हा अतिशय प्रभावशाली बनविला. संतांची अभंगवाणी ही उत्कृष्ट भावकविता आहे याची पहिली प्रचीती नामदेवांच्या अभंगवाणीतून येते.13

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. देवीदास पोटे, मुक्त आनंदधन न्यू एज प्रिटिंग प्रेस प्रभादेवी मुम्बई 2001, भारतीय संत विभाग संत नामदेव।
2. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.68.
3. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.69.
4. देवीदास पोटे, मुक्त आनंदधन न्यू एज प्रिटिंग प्रेस प्रभादेवी मुम्बई 2001, भारतीय संत, पृ.क्रं. 10
5. देवीदास पोटे, मुक्त आनंदधन न्यू एज प्रिटिंग प्रेस प्रभादेवी मुम्बई 2001, भारतीय संत, पृ.क्रं. 11
6. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.69.
7. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.70.
8. देवीदास पोटे, मुक्त आनंदधन न्यू एज प्रिटिंग प्रेस प्रभादेवी मुम्बई 2001, भारतीय संत विभाग संत नामदेव।
9. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.75.
10. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.76.
11. देवीदास पोटे, मुक्त आनंदधन न्यू एज प्रिटिंग प्रेस प्रभादेवी मुम्बई 2001, भारतीय संत, पृ.क्रं. 11
12. देवीदास पोटे, मुक्त आनंदधन न्यू एज प्रिटिंग प्रेस प्रभादेवी मुम्बई 2001, भारतीय संत, पृ.क्रं. 15
13. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाङ:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.76.

****

समर्थ रामदासांचे मनाचे श्लोक - मनाला सामर्थ्यशीलता देणारे, उत्तम साधन

डॉ. शैलजा साबले *

प्रस्तावना - संत मालिकेत समाविष्ट होणारे, परंतु स्वतंत्र असा संप्रदाय निर्माण करणारे रामदास स्वामी हे सोळाव्या शतकातील आगळे कवि होत. 'संत' व 'समर्थ' अशी त्यांच्या व्यक्तिमत्वाची दोन रूपे आपणांस त्यांच्या काव्यात विशेषत्वाने आढळतात बदलता काल व भोवतालची परिस्थिती लक्षात घेरून समाजाला त्यांनी प्रपंच विज्ञान सांगितले ''समर्थे समर्थ करावे। तरीच समर्थ म्हणवावे''[1]

त्या त्यांच्या उक्तीत समाजाला विश्वास देव्याचे सामर्थ्य आहे. रामदासांचा जन्म जांबेस इ.स. 1608 मध्ये झाला. त्यांचे मूळचे नाव नारायण. वयाच्या नवव्या वर्षी (श्रावण शुद्ध अष्टमी) नारायणाला श्रीरामदर्शन व अनुग्रह झाला. तेराव्या वर्षी सावधान हा शब्द ऐकून लग्नमंडपातून पलायन आणि नासिकजवळ टाकळीस पुरश्चरण. इ.स. 1620 ते 1632 ही बारा वर्षे त्यांनी रामजपात काढली. ही बारा वर्षे तीर्थयात्रेत खर्च केली. या यात्रेत त्यांना लोकस्थितीचे समग्र दर्शन घडले.

समर्थ संप्रदाय - सतराव्या शतकातील (शिवराज्यापूर्वीचा) महाराष्ट्र 'अस्मानींसुलतानी' च्या कचाट्यात पूर्णत: सापडला होता. या काळातील राजकीय, धार्मिक, सामाजिक परिस्थिती दु:सह होती. अशा परिस्थितीत वैदिक वर्णाश्रमधर्माचे पुनरूज्जीवन रामोपासनेच्या बळावर करणारा संप्रदाय रामदासांनी सुरू केला. यालाच रामदासी संप्रदाय, समर्थसंप्रदाय किंवा दाससंप्रदाय असे म्हणतात. 'रामे रामदासी उपदेशिले' असा प्रत्यक्ष श्रीरामाने आपणास उपदेश केल्याचे समर्थ सांगतातच. श्रीराम हे गुरू आणि हनुमंत (हनुमंत आमची कुळवल्ली) हे त्यांचे प्रोत्साहक होत. साह्य आम्हांसी हनुमंत। आराध्य दैवत श्रीरघुनाथ असे समर्थ सांगतात. वास्तविक पाहता, समर्थांचा संप्रदाय हा वारकरी संप्रदाया-पासून फारसा भिन्न नाही. पण श्रीराम आणि मारुती यांच्या उपासनेला त्यांनी नवा अर्थ दिला. लोकांतील आळस, शैथिल्य, नाकर्तेपणा झाडून कर्तृत्वाची दिशा त्यांना दाखविली; प्रयत्नवादाचा पुरस्कार केला; आणि कालसापेक्ष भूमिकेतून 'प्रपंचविज्ञान' सांगितले, ही रामदासी शिष्याची लक्षणे होत. आधी ते करावे कर्म। कर्ममार्गे उपासना। उपासकां सापडे ज्ञान। ज्ञानें मोक्षचि पावणेय हे या संप्रदायाच्या आचारधर्माचे सार म्हणता येईल. धर्म, उपासना, कर्म, ज्ञान, व्यवहार, अध्यात्म, राजकारण व रामभक्ती यांचा लोकाद्धारा-साठी प्रसार करणे, हे समार्थांचे व त्यांच्या संप्रदायाचे प्रमुख कार्य. श्रीरामाची उपासना हा या संप्रदायाचा प्रमुख आधार आहे. समर्थांच्या प्रयत्नवादाला परमार्थाचे अधिष्ठान आहे. या संप्रदायात अनेक शिष्य असले, तरी समर्थांच्या दृष्टीतून पुढे कार्य चालविणारा कुणी शिष्य त्यांना लाभला नाही. त्या दृष्टीने हा संप्रदाय व्यक्तिनिष्ठ आहे, असे पांगारकर म्हणतात, तेच खरे समर्थांची विचारसरणी त्यांच्या ग्रंथांत पदोपदी प्रत्यास येते.2

दासबोध व मनाचे श्लोक - माणसाने कसे जगावे, जीवनात काय करावे, काय करू नये, आपला व्यक्तिमत्तव विकास कसा करावा याचे यथायोग्य मार्गदर्शन करणारा ग्रंथ म्हणजे समर्थांचा दासबोध आहे.

मानवी जीवनाशी निगडित असलेला एकही विषय त्यांनी आपल्या लिखाणातून सोडला नाही. त्यात त्यांनी जीवनाच्या सर्वच अंगांना स्पर्श केला आहे म्हणूनच तो मानवी आयुष्यविषयक तत्तवज्ञानाचा उत्ताम ग्रंथ होय. विनोबाजी त्या ग्रंथाला व्यवहार ज्ञानकोश असे म्हणत व्यक्तिमत्तव विकासाची सर्व तत्तवे या ग्रंथात सापडतात. तसेच समर्थांचे मनाचे श्लोकही व्यक्तिमत्तव विकासाची शिकवण देणारे आहेत. समर्थांनी मनाच्या श्लोकांमध्ये मनाची दुर्बलता व समर्थता कश्यात आहे? दुबळेपण कसे घालवावे, सामर्थ्य कारणी कसे लावावे याचे विवरण त्यात आहे. मनाच्या श्लोकांची शिकवण माणसाच्या व्यक्तीमत्वाची जडण-घडण करण्यास उपयुक्त ठरली आहे.3

सुनील चिंचोलकरांनी विद्यार्थ्यांचे रामदास या पुस्तकात मनाचेश्लोक अत:करणाचे ब्युटीपार्लर आहे असे म्हटले आहे प्र.क्रं. 51 समर्थांचे वाङ:मय वाचून एक गोष्ट आपण सर्वाच्या मनावर निश्चित ढसली असेल की, बहिरंग सुधारण्यापेक्षा माणसाचे अंतरंग सुधारले पाहिजे. सध्या रस्त्यावर जागोजागी ब्यूटीपार्लरचे बोर्ड पाहावयास मिळतात. समर्थांचे मनाचे श्लोक हे अंत:करणाचे ब्यूटीपार्लर आहे. घराला रंग द्यावयाचा असल्यास आधी जुना रंग घासून काढावा लागतो. त्यानंतर त्यावर चुन्याचा हात फिरवावा लागतो आणि मग त्यावर आपल्याला जसा हवा तसा रंग देता येतो. त्या प्रमाणे स्वत:मध्ये बदल घडवायचा झाल्यास आपल्याच मनाला उपदेश करून जूने वाईट संस्कार घासून नाहीसे करावे लागतील. त्यानंतर ईश्वरी प्रार्थनेचा चुना त्यावर फिरवावा लागेल आणि शेवटी प्रयत्नवादाने हवा तो रंग देता येईल.

मुंशी प्रेमचंद म्हणतात, दूसरोंको उपदेश देना कितनी आसान बात है। आज सारेजण दुसऱ्याला उपदेश करतात. पण स्वत:मध्ये कुणाही सुधारणा करित नाही. राजकीय पुढारी असो अथवा कीर्तनकार, प्रवचनकार असो-जो तो दुसऱ्याला शिकवीत राहतो. गोंदवलेकर महाराज म्हणतात, जग सुधारण्याच्या नादात तुम्ही स्वत: बिघडणार नाही याची काळजी घ्या. अंत:करणात द्वेष, मत्सर असूया, क्रोधा, अहंकार, स्वार्थ, प्रसिद्धीची हाव, पैशाचा लोभ असे विकार असतील तर माणूस कितीही समाजसेवेचा कांगावा

*अतिथि विद्वान (मराठी साहित्य) शासकीय माधव कला वाणिज्य एवं विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

करीत राहिला तरी समाज बदलणार नाही. म्हणून समर्थ स्वत:च्या मनाला सांगतात. मना सज्जना भक्ती पंथेची जावेय ही शिकवण मनाला देतात.4

श्री मनाचे श्लोक –

गणाधीश जो ईश सर्वा गुणांचा ।
मुळारंभ आरंभ तो निर्गुणाचा।।
नमूं शारदा मूळ चत्वार वाचा।
गमूं पंथ आनंत या राघवाचा।।5

अर्थ – मनाचे श्लोकांमधील हा पहिला श्लोक मंगलाचरण स्वरूप आहे. गणांचा आधीश व गुणांचा ईश, मुळारंभ म्हणजे निर्गुणाचा आरंभ असा गणेश व चारी वाचांचे मूळ अशी शारदा हया उभयवंताना वंदन करून राघवाचा म्हणजे अनंताचा पंथ आचरण करता यावा.

मना सज्जना भक्तिपंथेचि जावे
तरी श्रीहरी पाविजेतो स्वभावें।
जनीं निंघ ते सर्व सोडूनि द्यावें
जनी वंद्य ते सर्व भावें करावे।।6

अर्थ – हे मना! इतर कोणत्याही मार्गाच्या नादी न लागता तू भक्ति मार्गानेच जा म्हणजे अनायास श्री हरिस्वरूपाच्या मुक्कामावर जाऊन पोचशील. एका गोष्टी कडे लक्ष ठेव सज्जनांनी जे वर्ज्य ठरविले आहे तिकडे वळू नकोस आणि जे वंद्य प्रशस्त चांगले म्हटले आहे ते सर्व मनोभावाने करीत जा.

प्रभाते मनी राम चिंतीत जावा।
पुढे वैखरी राम आधी वदावा।।
सदाचार हा थोर सोडूं नये तो।
जनीं तोचि तो मानवी धन्य होतो।।7

अर्थ– प्रभातकाली (नित्यकर्मादि आरोपून) श्रीरामाचे ध्यान करावे. मनात आधी रामाचे रूप आणावे, त्याचे चिंतन करावे आणि मग वाणी ने त्याचे भजन करावे. सदाचाराला कधीच न सोडील तोच ह्या लोकी धन्य होईल.

मनावासना दुष्ट कामा नये रे
मना सर्वथा पापबुद्धी नकोरे।
मना सर्वथा नीति सोडूं नको हो
मना अंतरी सारविचार राहो।।8

अर्थ– हे मना! दुष्ट वासना किंवा पापबुद्धी मुळीच धरू नकोस. स्वधर्मे कर्मे व नीती ह्यानां सोडूं नकोस. अंतरात जो सारभूत परमात्मा आहे त्याचाच विचार करीत जा.

देहे त्यागिता कीर्ति मागें उरावी।
मना सज्जना हेचि क्रिया धरावी।।
मना चंदनाचे परी त्वां झिजावें।
परी अंतरी सज्जना नींववावें ।।9

अर्थ – मना! जन्मभर अशी सत्क्रिया करावी, चांगली कामे करावी ज्याने देहत्यागानंतर लोक आपली कीर्तीच गात राहतील. स्वत: काया-वाचा-मनाने परकार्यार्थ चंदनासारखे झिजावे आणि अंतरी संतोष ठेवावे.

समर्थाचिया सेवका वक्र पाहे।
असा सर्व भूमंडली कोण आहे?
जयाची लीला वर्णिती लोक तिन्ही।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ।।10

अर्थ – माझा हा राम परमसमर्थ आहे. रामाच्या सेवका कडे वाकड्या नजरेने पाहील असा त्रिभुवनांत कोण आहे? रामाची लीला त्रैलोक्यातले देव, मानव, दानव (सात्तिवक, राजस व तामस तीन्हीं प्रकृतिचे) गाऊन राहिले आहेत.

मनाच्याश्लोकांचा विस्तृतअर्थ – प्रत्येकाला निरंतर सुख पाहिजे असते, पण जगात सर्व सुखी असा कोणी नाही, पूर्व संचितानुसार सर्वांना आपापल्या वाट्याचे सुख-दु:ख भोगावे लागतात, देह बुद्धिच्या पोटात सुख-दु:ख शोक-चिंता ह्याविषयांच्या कल्पना उद्भवतात, म्हणून विवेकाने देहाचे ममत्व सोडावे व विदेहीपणाने मुक्तिसुख भोगावे, ही मृत्यु लोकची रीती ध्यानात आणून वैराग्याची जोड विवेकाला द्यावी, जन्म मृत्यु सर्वाच्याच मागे लागले आहेत, कोणाबद्धल शोक करू नये, कसलीही चिंता करू नये, जेव्हा जे प्राप्त होईल ते समाधानाने भोगून सारावे व जन्म-मरणाच्या यातनांतून सुटण्यासाठी रामाला भजावे व निर्भय व्हावे.11

सगुणभक्ती ने रामाला कसे भजावे हे सांगतात. रामाचे पद निर्भय आहे, कोदंडपाणी रामाला कामही भितो, भक्तरक्षणार्थ रामाचे ब्रीद असून कालसत्तोला न जुमानता त्याने सारी अयोध्या वैकुंठास नेली, त्या समर्थाच्या सेवकाकडे वक्रदृष्टीने पाहणारा विश्वात कोणी नाही, रावणाच्या बंदीतून त्याने देवांना सोडविले, अहिल्याशिळा उद्धरिली, विभिषण-हनुमंतांना चिरंजीवी पद दिले, भक्तांच्या योग-क्षेम वाहण्याची त्याची प्रतिज्ञा आहे, भावासरसा तो भक्तांना संकटी तारतो : नुपेक्षी कदा रामदासाभिमानी म्हणून तू परमसमर्थ व भक्तवत्सल रामाला शरण जा.12

मना रामाचे एकेक चरित्र पाहा, थक्क होउन जाशील. वेद शास्त्र पुराणे ज्याला मानतात त्याला आपले चांचल्य देऊन त्याच्या पदी निश्चळ हो, सर्वसुखागर अशा त्या दीनानाभाच्या स्वरूपी रमून राहा, रामावाचून गोष्टी बोलू नकोस, ऐकू नकोस, राम नाही तेथे जाऊ नकोस, एक क्षण व्यर्थ रामावाचून व्यर्थ दवडू नकोस.

रामाला भजतात ते त्या सर्वोत्तमाचे दास त्रैलोक्यात कसे धन्य होतात ते पहा. त्यांची राहणी किती सोज्जवळ, त्यांची सुखावस्था किती रमणीय त्याची निर्भयता केवढी! रामभक्त मनी व लोचनी (आत-बाहेर) रामालाच पाहतात, त्याचे ज्ञान अगाध व भक्ती सौज्वळ असते, ते सगुणाचा प्रेमतंतू कधी तोडीत नाहींत देवकार्यात काया-वाचा-मनाने झिजतात, अखंड रामनाम घोष करतात, स्वधर्माने चालतात, बोलण्यासारखे वागतात, ज्ञान स्वच्छ असून सगुणाला भजतात, नि:संशय व निर्विकार असतात, स्वार्थादिकांचा विटाळ त्यांच्या मनाला होत नाही. मधुर वाणी ने बोलतात, एकांतात आत्म चिंतन करितात, नाना मतांच्या व कल्पनांच्या जाळ्यात न सापडता ते आपली निष्ठा स्थिर ठेवतात, रामभक्ति सुखा शिवाय त्यांना कसलीच इच्छा नसते ते दयाशील आसतात. हे सर्वोत्तामाच्या दासांचे गुण आपल्या अंगी असावेत. हे गुण रामाच्या उपासनेने मिळतात असतात म्हणून मना। तू रामाला भज व त्याचे चिंतन करित जा.

निष्कर्ष – एकवीससमासी व दासबोध यांतील विचार सामान्य जनतेसाठी सोप्या भाषेत पण त्रुटितपणे मनाच्या श्लोकांतून रामदासांनी सांगितले आहेत. भिक्षा मागत असताना रामदासी शिष्याने प्रत्येक घरासमोर उभे राहून एक श्लोक म्हणावा व पुढे जावे म्हणजे प्रत्येक घरात एकेक विचार दिल्याचे कार्य होईल, या हेतूने मनाच्या श्लोकांचे लेखन झाले. समाजमनास बोध असे त्याचे स्वरूप आहे. या श्लोकांची रचना भुजंगप्रयात वृत्ताात असून त्यांची संख्या 205 आहे. त्यांचे रचनास्थळ आणि काळ निश्चतपणे सांगता येणे कठीण आहे. मना सज्जना भक्तिपंथेचि जावेय असा भक्तिमार्गाचा उपदेश या श्लोकांतून त्यांनी सांसारिकांना केला आहे व पुढे रामभक्ती सुचविली आहे. आठव्या श्लोकात श्रीरामचरित्र आले आहे. संकटकाळात मना श्रेष्ठ धारिष्ट जीवी धरावेय, असे ते सांगतात. मना चंदनाचे परि त्वां झिजावेय अशी लोकसेवेची शिकवण देउन मरावे परि कीर्तिरूपे उरावेय अशी आदर्श

जीवनाची कल्पना ते मांडतात. या जगी सर्व सुखी असा कोणी नसल्याने, मना! तू श्रीरामाचे नाव घे. तारण्यास तो समर्थ आहे. समर्थाचिया सेवका वक्र पाहे। असा सर्व भूमंडळी कोण आहे? असा धीर ते देतात. क्रियेवीण वाचाळता व्यर्थ आहे. या सारख्या स्पष्टोक्तीतून त्यांनी कर्तव्याची आठवण दिली आहे. सर्वाना सहज समजेल, रूचेल, पचेल असा उपदेश अत्यंत सोप्या शब्दांत मनाच्या श्लोकांतून रामदासांनी केला आहे.13

लहानपणापासूनच मराठी माणूस पहिले धार्मिक व्यावहारिक दृष्टया जे शिकते ते मनाचे श्लोक. ज्याचा अर्थ माझ्या दृष्टया मनापासून निघणारे मनांत पोहचणारे समर्थ रामदासांचे मनाचे श्लोक माणसाला उपदेश करण्याच्या हेतून लिहिले गेले आहे. त्यांची भाषा सहज, स्वाभाविक, सरल आणि सर्वसाधारण माणसाला समजू शकेल अशी आहे.

रामदासांनी मनाच्या श्लोकामध्ये मनाला निवेदन केले आहे की तू सज्जनांच्या पथानी जा, निदंनीय आहे ते सोडून दे, अनीति ने वागू नको अविचार मनात आणू नको, नीतिवंत जे आहेते धरून ठेवं राखून ठेव. रामाला रोज नियमानें नमन कर म्हणजे चित्ता एक होईल, मनाला शांत ठेवून बोल मानवी देह घेतला तर त्याला सार्थक कर, जीवन धन्य कर, विकार दु:ख निर्माण करत असतात मत्सर, द्वेष, गर्व करू नको. जें जें श्रेष्ठ धारण करण्या सारखे आहे, सदाचार आहे ते ग्रहण कर. सहनशीलता ठेव, नम्रता ठेव. नम्रतेंने, प्रेमळतेंने बोल. टोचून बोलू नको. आपल्या बोलण्याने समोरच्याचे मन दुखवू नको : लोकाना आनंद दे. कामे अशी करावी की आपल्या गेल्या नंतर लोकांसाठी ती कीर्ति रूपाने उरतील, नेहमी परमार्थ, लोकाचे हितच करावे. मनांत स्वार्थ बाळगू नको, कारण स्वार्थ बुद्धि असली की वाईट, अनीति, अनाचार आणि पाप घडतो.

श्री समर्थकृत मनाचे श्लोक महाराष्ट्रात चांगले माहीत आहे. आपल्या मनाशी बोलायला व मनाशी बोलताना मनोवाचातीत अशा राघवाचा पंथ शोधावयाला ह्या श्लोकांनी लोकांना शिकविले आहे. हे 205 मनाचे श्लोक बिनमोल मोत्याचे दानेणे आहेत. समर्थांच्या प्रतीतिचे हे बोल अतिशय साधे, सोपे व प्रासादिक आहेत. म्हणायला गोड, पाठ करावयाला सोपे, ऐकावयाला मधुर मनाला सुख-शांतिदायक असे हे श्लोक लोकप्रिय झाले. ज्याप्रमाणे सूर्यबिंब दिसते लहान पण प्रकाशाने त्रिभुवन व्यापून टाकते; त्याप्रमाणे मनाचे श्लोक आकाराने छोटे पण श्रुति-स्मृति-पुराणांचे सार त्यात प्रगट झाल्याने ते आत्मज्ञान करण्यास पूर्ण समर्थ आहे.

हया श्लोकांमधे आधी केले मग सांगितलेय अशा स्वानुभावाचा रंग भरला आहे. मनाच्या इतर प्राण्यांपेक्षा मनुष्याला श्रेष्ठत्व आले आहे. मानव म्हणजे मन असलेला. मनन करणारा प्राणी तो मनुष्य. इतर प्राण्यांस ही मन असते पण मनुष्याला जे मन दिले आहे ते सारख्या विश्वाला गवसणी घालण्या इतके समर्थ आहे. मन, बुद्धि, विवेक, विचारशक्ति, ज्ञान हे मनुष्यात अधिक आहे. सुख-दु:खाला कारण मन. मन हे ओढाळ गुरू आहे, त्याला गोड बोलून न्यावे तिकडे ते जाते हा मनाचा फार उत्ताम गुण आहे. त्याच्या गुणानुरोधानेच त्याला वळविले पाहिजे.

अशा प्रकारे रामदासांनी मनाच्या श्लोकांच्या माध्यमातून माणसाला कसं असावं, कसं वागांव आणि कस वागू नये व्यवस्थित पणें सांगितले आहे. साधयासुधया माणसांना हे समजू शकेलं अशी भाषा आणि उदाहरणें त्यांनी दिली आहेत. श्लोक लिहिण्याच्या हजारों वर्षानंतर ही ते प्रासंगिक आहेत. आज ही मुलांचे, विद्यार्थी चे चरित्र घडविण्या करितां आई आधी मनाचे श्लोक मुलांना शिकवते त्यामुळेते मोठे झाल्यावर एकदा तरी अनीति ने वागताना त्यांना हे श्लोक चिंतन करण्यास भागी पाडतात आणि त्यांच्या हातून असेकाहीही वाईट घडूनये असा मार्ग प्रशस्त करतात.

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाड:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.139.
2. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाड:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.141.
3. समर्थरामदास स्वामी, जन्मोत्सव चतु:शताब्दी विशेषांक, विवेक व्यासपीठ प्रकाशित पुणे, पृ.क्रं. 50.
4. सुनील चिंचोलकर, विद्यार्थ्यांचे श्रीरामदास मोरया प्रकाशन पुणे, पृ.क्रं.51.
5. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 111.
6. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 111.
7. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 112.
8. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 113.
9. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 112.
10. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 114.
11. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 112-116.
12. गं.बा.सरदार, रामदास दर्शन माडर्न बुकडेपो प्रकाशन पुणे पृ. 116-117.
13. ल.रा.नसिराबाद, प्राचीन मराठी वाड:मयाचा इतिहास-फडके प्रकाशन, कोल्हापूर पृ.क्रं.145.

****

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम

विवेक नागर *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध महिलाओं के प्रति होने वाली घरेलू हिंसा को रोकने एवं महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से बनाये गये कानून 'घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 एवं नियम 2006' की विधिक एवं न्यायिक विवेचना प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन में नीमच जिले में गत वर्षो में घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत प्राप्त प्रकरणों की स्थिति भी जानने का प्रयास किया गया है। आशा है यह शोध पत्र घरेलू हिंसा अधिनियम के प्रावधानों को जन साधारण तक पहुँचाने में सफल होगा।

प्रस्तावना – प्राचीन भारतीय आध्यात्मिकता ने 'धरा' को जीवनाधार माना और पुरूष को धर्म। इसी 'धरा' को माता के रूप में सम्मान दिया व विश्वधात्री के नाम से इसकी स्तुति की।

सामाजिकता के संदर्भ में नारी की परिवार में अपनी विशिष्ट स्थिति, सम्मान व प्रतिष्ठा थी । मनु के स्मृतिकाल तक नारी 'दैवी' स्वरूपा मानी जाती थी और मान्यता थी कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता:। काल के कुचक्र ने सामाजिक व्यवस्था को पुरूष प्रधान बना दिया और तभी से नारी के सम्मान का पतन होने लगा और नारी को पति की सम्पत्ति मानकर सामाजिक विधान के अर्थ को अनर्थ में बदलकर कुप्रथायें चली और आदर्श भारतीय आध्यात्मिकता नारी के संदर्भ में देह तक सिमट कर रह गयी ।

वर्तमान में भारत में महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में व्यापक रूप से विद्यमान है। हालांकि महिला उत्पीड़न रोकने के लिये कई कानून बने लेकिन महिलाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा के मामले रूके नहीं या उनसे बच निकलने के रास्ते तलाश किये गये। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक कमेटी ने 1989 में यह अनुषंसा की कि समस्त देशोंको महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने का कार्य करना चाहिए। खास तौर से जब वह हिंसा परिवार के भीतर घटित हो रही हो। इन परिस्थितियों में घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए और समाज में घरेलू हिंसा रोकने के लिए संसद ने घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 पारित किया।

उक्त अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार ने घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण नियम 2006 बनाए।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है।

- घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 का सरल एवं बिन्दूवार विवेचन करना ताकि आमजन को इस कानून के प्रमुख प्रावधानों से अवगत कराया जा सकें।
- घरेलू हिंसा अधिनियम के क्रियांवयन हेतु म.प्र. में की गयी कार्यवाही का अध्ययन।
- घरेलू हिंसा अधिनियम के संदर्भ में प्रमुख न्यायिक निर्णयों का विवेचन।
- नीमच जिले में घरेलू हिंसा के दर्ज प्रकरणों की स्थिति ज्ञात करना।

समंको का संकलन – यह अध्ययन सम्पूर्ण मध्यप्रदेश एवं नीमच जिले के विशेष संदर्भ में किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक समंको का उपयोग किया गया है, जो राज्य महिला आयोग भोपाल, पुलिस अधीक्षक कार्यालय, जिला नीमच एवं महिला एवं बाल विकास विभाग जिला नीमच से प्राप्त किये गये है। इन समंको का विश्लेषण इस अध्ययन में किया गया है।

विश्लेषणात्मक विवेचन – क्या है घरेलू हिंसा ?

घरेलू हिंसा को इस अधिनियम में व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है। इसकी धारा 3 के अनुसार परिवार में किसी भी महिला के साथ उसके पति अथवा अन्य परिजनों द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक ऐसा कार्य 'घरेलू हिंसा' माना जायेगा जिससे महिला का परिवार में जीना दूभर हो जायें।

अथवा

जिससे उसे शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो साथ ही इसमें हर तरह की प्रताड़ना व क्रुरता भी सम्मिलित की गई है। अत: निम्नलिखित प्रकार के कृत्यों को घरेलू हिंसा माना जायेगा।

1. शारीरिक हिंसा – जैसे मारपीट करना, धक्का देना या अन्य रीति से शारीरिक पीड़ा या क्षति पहुँचाना आदि।
2. लैंगिक हिंसा – जैसे बलात् मैथुन, अश्लील तस्वीरों को देखने के लिए मजबुर करना आदि।
3. मौखिक और भावनात्मक हिंसा – जैसे अपमान, गाली गलौच, पुरूष संतान ना होने के लिए दोषी करार देना, दहेज ना लाने के लिए अपमानित करना, अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने से रोकना, आत्म हत्या की धमकी देना।
4. आर्थिक हिंसा – जैसे अनुरक्षण के लिए धन उपलब्ध ना कराना । खाना कपड़े दवाईयाँ इत्यादि उपलब्ध न कराना। वेतन, पारिश्रमिक को ले लेना आदि।

इस कानून की विशेषताऐं – इन कानून के तहत घरेलू हिंसा के लिए दोषी व्यक्ति को तत्संबंधी विधि में ना केवल सजा संबंधी प्रावधान है बल्कि पीड़ित महिलाओं को चिकित्सकीय सुविधा, आश्रय की सुविधा और बच्चों के बारे में संरक्षण के भी प्रावधान है।

उक्त अधिनियम में यह भी व्यवस्था है कि जहाँ पारिवारिक जीवन पुनर्स्थापित हो सकता है वहाँ सलाह मशवरा या अन्य प्रकार के समझोते कराये जायें। सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान घरेलू हिंसा की भविष्य में रोकथाम का हैं पीड़ित महिलाओं के लिए न्यायालय एक संरक्षणात्मक आदेश भी जारी कर सकता है। न्यायालय यह आदेश भी दे सकता है कि वह घरेलू हिंसा

*शोधार्थी म.प्र. भोज मुक्त विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत

ना करें और यदि घरेलू हिंसा की घटना हो चुकी है तो उसके लिए पीड़ित पक्षकार को आर्थिक प्रतिकर भी देने का प्रावधान है।

इन कानून के अनुसार महिला के साथ हुई घरेलू हिंसा के साक्ष्य के प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही है । महिला द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों एवं बयानों को ही विश्वसनीय माना जायेगा क्योंकि अदालत का मानना है कि अंदर हुई हिंसा के साक्ष्य मिलना मुश्किल है, पीड़ित महिला के बयान के आधार पर ही मजिस्ट्रेट आदेश दे सकता है कि हिंसा रोकी जावे और महिला को संरक्षण प्रदान किया जावें।

यदि मजिस्ट्रेट को पीड़ित व्यक्ति या दोषी से आवेदन प्राप्त होने पर यह समाधान हो जाता है कि परिस्थितियों में सुधार हुआ है तो पूर्व आदेश में परिवर्तन, संशोधन या निरस्त किया जा सकता है।

प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट इस अधिनियम की धारा 18 से 23 तक के अधीन संरक्षण एवं सहायता हेतु निम्नलिखित आदेश पारित कर सकता है –

1. धारा 18 के अंतर्गत संरक्षण आदेश
2. धारा 19 के अंतर्गत निवास आदेश
3. धारा 20 के अंतर्गत मौद्रिक अनुतोष
4. धारा 21 के अंतर्गत अभिरक्षा आदेश
5. धारा 22 के अंतर्गत प्रतिकर आदेश
6. धारा 23 के अंतर्गत अन्तरिम एवं एक पक्षीय आदेश

यदि मजिस्ट्रेट को पीड़ित व्यक्ति या दोषी से आवेदन होने पर यह समाधान हो जाता है कि परिस्थितियों में सुधार हुआ है तो पूर्व आदेश में परिवर्तन संशोधन या निरस्त किया जा सकता है। घरेलू हिंसा के प्रकरण के साथ अन्य कानून के अंतर्गत कार्यवाही भी एक साथ चल सकती है।

पीड़ित महिला घटना स्थल या वर्तमान में जहाँ निवासरत हो, केस दर्ज करा सकती है। इस कानून के अंतर्गत महिलाओं को जो सबसे बड़ा अधिकार मिला है, वह यह है कि वह जिस रिश्तेदार के साथ रह रही है, विवाद होने पर उस महिला को वहाँ से हटाया नहीं जा सकता ।

इस कानून की एक विशेषता यह भी है कि अब मामला दर्ज करने के लिए पीड़ित को पुलिस के आश्रित नहीं रहना पड़ेगा और संरक्षण अधिकारी ही पीड़ित महिला की हर तरह की सहायता करेंगे।

उक्त अधिनियम में पीड़ित व्यक्ति और घरेलू रिश्तेदार को भी परिभाषित किया गया है। पीड़ित व्यक्ति के अंतर्गत वे सभी महिलाएँ आती है जो किसी गृह में रिश्तेदारी के संबंधों के कारण रह रही है और जिनके विरूद्ध किसी तरह की कोई हिंसा उस घर में कोई हो। घरेलू रिश्तेदारी से आशय है कि कोई व्यक्ति आपसी रिश्तेदारी के कारण किसी मकान में साथ रह रहा हों या एक माता–पिता की संतान हो या उनके बीच विवाह हुआ हो या उन्हे गोद लिया गया हो या वे संयुक्त परिवार के सदस्य के रूप में निवास कर रहे हो।

राज्य शासन घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं के लिए ' आश्रय गृह' निर्धारित करेगा जहाँ पीड़ित महिलाओं को सुरक्षा व अन्य सुविधाएँ उपलब्ध होगी। उक्त अधिनियम में समाजसेवी संस्थाओं एवं गैर शासकीय संस्थाओं की सेवाएँ भी ली जा सकती है। अत: घरेलू हिंसा का शिकार महिलाओं को यह अधिनियम संरक्षण और सहायता का अधिकार देता है।

उपचार – अधिनियम के अंतर्गत एक या अधिक अनुतोषो को प्राप्त करने हेतु धारा 12 के अंतर्गत आवेदन पत्र स्वयं व्यथित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी और से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा या संरक्षण अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

यदि महिला के विरूद्ध घरेलू हिंसा की जाती है, तो वह निम्नलिखित में से कोई भी आदेश प्राप्त कर सकती है।

1. अपने को या अपने बच्चों के विरूद्ध घरेलू हिंसा के किसी कार्य को करने से रोकने के लिये:
2. अपने स्त्री धन, आभूषण आदि का कब्जा देने के लिए,
3. शांति पूर्ण निवास में बाधा न डालने के लिए,
4. जिस घर में वह रह रही है उसके व्यय न करने के लिए
5. सुरक्षा अपेक्षाओं के लिए,
6. निवास या कार्य स्थल से दूर करने से रोकने के लिए
7. विवाह के संबंध में बाते करने या किसी भी व्यक्ति से विवाह करने के लिए मजबुर करने से रोकने के लिए
8. अपने या अपने बच्चों के भरण–पोषण, प्रतिकर आदि के लिए।

घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 एवं नियम 2006 का क्रियान्वयन – महिलाओं के विरूद्ध शारीरिक, यौनिक, मानसिक या भावनात्मक हिंसा या फिर जबरदस्ती या मनमाने तरीके से स्वतंत्रता का हनन न हो, इन सबके संरक्षण एवं सहायता के लिये तथा घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 एवं नियम 2006 के क्रियान्वयन के लिये मध्यप्रदेश सरकार ने ''उषा किरण योजना'' प्रारंभ की है।

इस योजना का लाभ घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाएँ और बच्चे ले सकते है, इसके अंतर्गत हेल्प डेस्क, शेल्टर होम्स आदि की व्यवस्था की गयी है।

कैसे काम करेगी योजना –

हेल्प डेस्क – जिला स्तर पर शासकीय अथवा अशासकीय रूप से 24 घंटे चालु रहने वाला एक हेल्प डेस्क स्थापित किया जायेगा। इसके दूरभाष नम्बर पर कोई भी महिला फोन कर सकती है ऐसी स्थिति में महिला को तत्काल संरक्षण अधिकारी के समक्ष सहायता के लिये पहुँचाया जा सकेगा।

शेल्टर होम्स – महिलाओं और बच्चों के लिये समस्त जिलों में शेल्टर होम्स स्थापित किये जा रहे है। इन शेल्टर होम्स के द्वारा, अस्थाई आश्रय, कानूनी सहायता, चिकित्सा सहायता, पुलिस सहायता, 24 घंटे हेल्प लाइन आर्थिक सहायता, पुनर्वास जैसी सेवाऐं दी जायेगी। इन सेवाओं के प्रभावी एवं सुचारू प्रबंधन हेतु महिला एवं बाल विकास विभाग, गृह (पुलिस) विभाग, विधि विभाग एवं अन्य संबंधित विभाग उत्तरदायी होंगे।

संरक्षण अधिकारी – घरेलू हिंसा रोकथाम के लिये महिला एवं बाल विकास परियोजना अधिकारियों को संरक्षण अधिकारी बनाया गया है।

नीमच जिले में घरेलू हिंसा से संबंधित दर्ज प्रकरणों की स्थिति –

(अ) म.प्र. राज्य महिला आयोग भोपाल में दर्ज प्रकरण –

वर्ष	दर्ज प्रकरण
अप्रैल 2011 से मार्च 2012 तक	05
अप्रैल 2012 से मार्च 2013 तक	01
अप्रैल 2012 से मार्च 2013 तक	01

स्त्रोत – कार्यालय म.प्र. राज्य महिला आयोग भोपाल

(ब) पुलिस में दर्ज प्रकरणों की संख्या –

वर्ष	दर्ज प्रकरण
2011	10
2012	16
2013	37

स्त्रोत – कार्यालय पुलिस अधीक्षक जिला नीमच (म.प्र.)

(स) महिला एवं बाल विकास विभाग जिला नीमच में दर्ज प्रकरणों की स्थिति –

वर्ष	दर्ज प्रकरण
2006 से मार्च 2014	232

स्त्रोत : महिला एवं बाल विकास विभाग, जिला नीमच (म.प्र.)

म.प्र. राज्य महिला आयोग भोपाल, नीमच पुलिस एवं महिला एवं बाल विकास विभाग नीमच के समक्ष उपरोक्तानुसार दर्ज प्रकरणों की स्थिति से स्पष्ट है कि नीमच जिले में घरेलू हिंसा की घटनाऐं हो रही है। आवश्यकता इस बात की भी है कि घरेलू हिंसा के प्रकरणों में पुलिस परामर्श केन्द्र एवं संरक्षण अधिकारी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करे तो परिवार को बिखरने से बचाया जा सकता है।

न्यायिक दृष्टिकोण – घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 के विभिन्न प्रावधानों का न्यायालयों द्वारा निर्वचन किया गया हैं – माननीय सर्वोच्य न्यायालय ने **एस.आर.बत्रा बनाम तरूणा बत्रा** [1] एवं **रजाक खान बनाम शहबाज खान** [2] के निर्णयों में कहा है कि वैकल्पिक आवास की मांग पत्नी केवल पति के विरूद्ध कर सकती है। साझेदारी की गृहस्थी का भवन (जिसमें घरेलू हिंसा हुई हो) से तात्पर्य ऐसे भवन से होगा जो पीड़ित महिला के पति का हो या संयुक्त परिवार की संपति हो तथा जिसमें पति सदस्य हो।

इसी प्रकार माननीय म0प्र0 उच्च न्यायालय ने **अजयकांत बनाम श्रीमती अलका शर्मा** [3] के निर्णय में निर्धारित किया है कि घरेलू हिंसा अधिनियम में परिवाद केवल पुरूष के विरूद्ध हो सकता है।

तहमीना कुरेशी बनाम शाजिया कुरैशी [4] के प्रकरण में पति की महिला रिश्तेदार के विरूद्ध पत्नी द्वारा आवेदन दायर किया गया कि अधिनियम के अधीन आवेदन केवल वयस्क पुरूष के विरूद्ध दायर किया जा सकता है। पति के रिश्तेदार के विरूद्ध परिवार में महिला सदस्यों को शामिल नहीं किया जा सकता।

रामलाल बनाम श्रीमति रेखा [5] के प्रकरण में निर्धारित किया गया कि अधिनियम प्रवृत्त होने अर्थात 26.10.2006 से पूर्व कारित हिंसा के लिये परिवाद खारिज किये जाने योग्य है।

वर्तमान न्यायिक दृष्टिकोण – घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 की धारा 2 (थ) इस अधिनियम के अधीन अपराध में पुरूष भागीदार अथवा पति के महिला नातेदार परिवाद से अपवर्जित नहीं है जैसा कि जस्टीस अलथॉमस कबीर एवं सायरीक जोसफ (माननीय सर्वोच्य न्यायालय) ने **संध्या मनोज वानखेड़े विरूद्ध मनोज भीमराव वानखेड़े एवं अन्य** [6] के प्रकरण में निर्धारित किया है।

माननीय सर्वोच्य न्यायालय ने हाल ही में **इन्द्रा सरमा बनाम वी.के.वी. सरमा** [7] के प्रकरण में अधिनिर्धारित किया है कि समस्त लिव–इन रिलेशनशिप 'विवाह की प्रकृति में संबंध' नही होते है क्योंकि यह विवाह की अंतर्निहित या आवश्यक प्रकृति नहीं रखता है और ऐसे संबंध घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(च) के अंतर्गत 'घरेलू नातेदारी' की परिभाषा के भीतर नहीं आयेगा।

1. (2007) 3 एस.सी.सी. 169
2. आई.एल.आर. (2008) एम.पी. 963
3. (2007) (4) एम.पी.एच.टी. 62
4. एम.पी.एल.जे. 2010 (2) 127
5. म.प्र. विकली नोट्स 2010 (II) 6
6. म.प्र. विकली नोट्स 2011 (II) सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 102
7. लेटेस्ट सुप्रीम कोर्ट टुडे 2014 (I) पृष्ठ 53

निष्कर्ष – इस प्रकार इस अधिनियम के अंतर्गत घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओ के संरक्षण हेतु व्यापक प्रावधान किए गए है और परिणाम स्वरूप महिलायें संरक्षण अधिकारी की सहायता ले सकती है तथा घरेलू हिंसा के कारण हुई शारीरिक एवं मानसिक क्षति के लिए प्रतिकर भी प्राप्त कर सकती है।

घरेलू हिंसा के प्रकरणों में पीड़ित महिला को साक्ष्य की पुष्टि में अन्य सबूत देना भी अनिवार्य नहीं है। यदि महिला की स्वयं की साक्ष्य विश्वसनीय है तो उस साक्ष्य पर न्यायालय भरोसा कर सकता है।

इस प्रकार इस कानून में महिलाओं को विशेष अधिकार दिए गए है। परन्तु महिलाओं का भी उत्तरदायित्व है कि उनके द्वारा इन प्रावधानों का दुरूपयोग ना हो और निर्दोष व्यक्ति को उत्पीड़ित ना किया जाये। अत: निश्चित ही इस कानून के व्यापक प्रचार–प्रसार व प्रभावी क्रियान्वयन से महिलाओं के प्रति उत्पीड़न के मामलों में कमी आयेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 एवं नियम 2006
2. 'नईदुनिया' (मालवा–इन्दौर, नीमच) दिनांक 22 मई 2010
3. म.प्र. हाइकोर्ट टुडे
4. म.प्र. विकली नोट्स
5. म.प्र. लॉ जर्नल
6. सुप्रीम कोर्ट केसेस
7. इंडियन लॉ रिपोर्टर
8. मनु स्मृति आदि
9. लेटेस्ट सुप्रीम कोर्ट टुडे

****

पर्यावरण प्रदूषण से, जैव समुदाय पर उत्पन्न संकट के निवाराणार्थ, संवैधानिक प्रावधान एवं न्याय निर्णय : एक विश्लेषण

लीना अग्रवाल *

प्रस्तावना – पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश इन पाँच तत्वों से मिलकर, पर्यावरण बनता है। जिसमें जलचर, थलचर, नभचर व जीव-जन्तुओं के साथ नदी, पहाड़, जंगल व समुद्र शामिल है।[1]

सबसे पहले रीटर ने वर्ष 1868 में Ecology शब्द का प्रयोग किया।[2] इसके 20 वर्ष बाद- 1886 में,-अर्नस्ट हेकज ने Ecology शब्द का उपयोग किया।

किसी भी पहाड़, वन, मरूस्थल,तालाब आदि में रहने वाले जैव समुदाय पर इन स्थानों के भौतिक वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण के अजैविक घटक जैसे-प्रकाश, जल, ताप-खनिज का प्रभाव तो जैव समुह पर पड़ता ही है, परंतु जैव समुदाय भी अजैविक घटकों को प्रभावित करता है। यही नहीं, जैव समुदाय के जीवधारियों के बीच अंतर्कियाएं निरंतर होती रहती है। इस प्रकार रचना और कार्य की दृष्टि से, जैव समुदाय एवं वातावरण, एक तंत्र की भांति कार्य करते हैं। इसे ही पारिस्थितिक तंत्र कहा जाता है।

पारिस्थितिक तंत्र दो माने गये हैं-

1. प्राकृतिक तंत्र-

(अ.) **स्थलीय-** (वन, चारागाह, मरूस्थल)

(ब) **जलीय-** (1) स्वच्छ जल (प्रवाहित नदी, झरना और सरिता)

(2) स्थिर जल (झील या तालाब)

(3) समुद्र (सागर, महासागर)

2.कृत्रिम तंत्र- मानव निर्मित(कृषि भूमि, नहर, बांध) पारिस्थितिक घटकों का अध्ययन, दो रूपों में हमारे सामने रहता है-

1. **स्वपोषीय** जो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। जैसे सभी हरे पौधे।
2. **परपोषी-** जो भोजन के लिए दूसरे जीवों पर निर्भर रहते हैं।

वायु जल, या भूमि के भौतिक,रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाले, ऐसे अनचाहे परिवर्तन, जो मनुष्यों के साथ अन्य जीवधारियों की जीवन परिस्थितियों, औद्योगिक प्रक्रियाओं एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए हानिकारक हो, प्रदुषण की परिभाषा में आते हैं।[3] जिसके मुख्य 6 प्रकार है-

1. **वायू प्रदुषण-** भौतिक,रासायनिक व जैविक गुणों का ऐसा अवांछनीय परिवर्तन, जिससे हमारी प्राकृतिक संपदा नष्ट हो। शहरों में 60 प्रतिशत वायू प्रदुषण- कार, ट्रेक्टर, ट्रक,स्कूटर आदि ऑटोमोबाईल इंजिनों के कारण फैलता है।
2. **जल प्रदुषण-** पानी में घरेलु अपमार्जकों, फास्फेट, नाईट्रेट अमोनिया के यौगिक तथा एल्किल, बैंजीन सल्फोनेट से, नदियां, तालाब व झीलें प्रदुषित होते हैं, क्योंकि इनमें ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। दुनिया के भयानक औद्योगिक त्रासदी को 28 साल हो गये हैं। पर यूनियन कार्बाईड भोपाल के आसपास का पानी अब भी जहरीला है। सुप्रीम कोर्ट में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी की रिपोर्ट से यह बात सामने आई है।[4]
3. **मृदा प्रदुषण-**कृषि के लिए कीटनाशी व खरपतवारनाशी दवाओं का प्रयोग, पौधों तथा मृदीय जीवों को हानि पहुंचाता है। रासायनिक अवशिष्टों के फलस्वरूप मृदा की विषाक्ता बढ़ती है, जो मनुष्यों पर विपरीत प्रभाव डालती है।
4. **ध्वनि प्रदुषण-**जरूरत से ज्यादा शोर(80 डेसीबल से अधिक) मानव में अस्वस्थता व बैचेनी उत्पन्न करता है। शोर 130-140 डेसीबल हो तो पीड़ा और दर्द देने लगता है।
5. **रेडियोधर्मी प्रदुषण-**नाभिकीय विस्फोट,एक्स किरणों के कारण ट्यूमर व कैंसर रोग को जन्म देते हैं।[5]
6. **ई वेस्ट-** केन्द्र ने राज्य सरकारों को कलेक्शन सेंटर खोलने हेतु निर्देश दिए थे। म.प्र. की डेडलाईन जुलाई-2012 में खत्म। पर सेंटर तो दूर कंटेनर तक नहीं पहुंचे। ई वेस्ट से भूजल प्रदुषण खतरनाक स्तर तक बढ़ता है। यह न तो मिट्टी में मिलता है और न ही पानी में गलता है।[6]

प्रदुषण के विरूद्ध पारित अधिनियम –

1. **वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम-1972-** देश की पारिस्थितिकीय और पर्यावरणीय सुरक्षा सुनिश्चित करने की दृष्टि से, वन्य प्राणियों पक्षियों और पादपों के संरक्षण हेतु इनसें संबंधित या प्रासंगिक या आनुषांगिक विषयों के उपबंधन हेतु यह अधिनियमित किया गया है।इस अधिनियम में पशु, स्तनधारी पशु, रेंगने वाले पशु, जलचर प्राणी मत्स्य, अन्य कारटेड्स तथा पृष्ठ वंशरहित जीव आते हैं। जिन्हे पकड़ना, शिकार, फुसलाना, जाल में फंसाना,हांकना, चारा देकर ललचाना, शरीर के किसी भाग को ले जाना, क्षतिग्रस्त करना, वन्य प्राणियों के अण्डों को नुकसान पहुंचाना, घोंसलों को छेड़ना, प्रतिबंधित है।
2. **जल प्रदुषण (निवारण तथा नियंत्रण)अधिनियम-1975** पानी को प्रदुषित होने से बचाने नियंत्रण, जल की स्वास्थ्यप्रदता बनाये रखने, उसे पूर्वावस्था में लाने तथा पूर्वोक्त प्रयोजनों को कार्यान्वित करने की दृष्टि से जल प्रदुषण निवारण तथा नियंत्रण बोर्डो की स्थापना,शक्तियां और कृत्य के साथ, ऐसे बोर्डो को प्रदत्त एवं समनुदेशित करने हेतु अधिनियमित किया गया हैं।
3. **वायु प्रदुषण(निवारण तथा नियंत्रण)अधिनियम-1981** ठोस, तरल या गैसीय पदार्थ के, जिसमें शोर शामिल है, वायुमण्डल में विद्यमान होने से, जो मानव जीवन या दूसरें जीवों, पौधों, संपत्ति अथवा पर्यावरण के लिए हानिकर हो सकते हैं, वायू प्रदुषण माना जायेगा। इसमें धुंआ,गैस, विदिष्ट वस्तु के ज्वलन या उपयोग के लिए, प्रयोग में आने वाले वायु प्रदुषण सम्मिलित हैं।
4. **ध्वनि प्रदुषण(विनियमन और नियंत्रण) नियम -2000** विभिन्न स्रोतों से लगे स्थानों में, परिवेशी ध्वनि स्तरों की वृद्धि पर अन्य बातों के

* शोधार्थी, बरकतउल्ला विश्वविधालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

साथ-साथ, औद्योगिक कार्यकलाप, सन्निर्माण कार्य,पटाखे, जनरेटर सेट, लॉउडस्पीकर सेट,लोक संबोधन प्रणाली, संगीत,यातीय हार्न की यांत्रिक युक्तियों का, मानव स्वास्थ्य पर, हानिकाकर प्रभाव पड़ता है और स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इसी के संबंध में, परिवंशीय वायु क्वालिटी मानकों के, अनुरक्षण के उद्देश्य से, नियमों का निर्माण किया गया है।

मानव जीवन के लिए, पर्यावरण का प्रदुषण से मुक्त रहना,आवश्यक है। अनुच्छेद-21 में **'प्राण के अधिकार'** के अंतर्गत, प्रत्येक नागरिक को पानी, हवा व ध्वनि प्रदुषण से बचाने हेतु, अनुच्छेद-32 के अधीन, लोकहितवाद दायर करने का प्रावधान, किया गया है।इससे संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय-

1. **रूरल लिटीगेशन एण्ड एंटाईटिलमेंट केन्द्र, देहरादून बनाम उत्तरप्रदेश राज्य**[7] के वाद में, शीर्ष अदालत ने, पत्थर खुदाई से वातावरण प्रदुषित हो रहा था और निवासियों को हानि पहुंच रही थी। न्यायालय ने जांच हेतु समिति बनाकर, रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, खुदाई का काम रोक दिया।

2. **एम.सी.मेहता बनाम भारत**[8] के वाद में, दिल्ली के आवासीय क्षेत्र में स्थित, श्रीराम फूड एण्ड फर्टिलाईजर कंपनी की ईकाई को, ओलियन नामक खतरनाक गैस का, उत्पादन करने से रोक दिया। क्योंकि कंपनी ने, सुरक्षा उपायों की अनदेखी की थी।

3. **एम.सी.मेहता बनाम भारत संघ**[9] के मामलें में, कानपुर के निकट जाजमउ में स्थित, चर्मशोधन शालाओं को, तत्काल बंद करने का आदेश दिया। क्योंकि चमड़े से निकलनें वाले, अपशिष्ट जल से गंगा का पानी, प्रदुषित हो रहा था।

4. **एम.सी मेहता बनाम भारत संघ**[10] के वाद में दिल्ली शहर को डीजल पैट्रोल चलित वाहनों से, प्रदुषण मुक्त करने हेतु, केन्द्रीय मोटरयान अधिनियम-1989 का पालन, सख्ती से करने, सिनेमाघरों मे दो स्लाईड प्रदुषण बाबत् दिखाने, फरवरी-1992 से छोटी फिल्में बनाने, रेडिया व दूरदर्शन पर, प्रत्येक 5-7 मिनिट बाद कार्यक्रम चलाने, स्कूल,कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में, प्रदुषण को अनिवार्य विषय बनाने व पढ़ाई कराने के निर्देश दिए।

5. **इनरी ध्वनि प्रदुषण**[11] के मामले में, शीर्ष अदालत ने, यह निर्णय दिया कि- प्रत्येक व्यक्ति को, ध्वनि प्रदुषण रहित वातावरण में, जीवन बिताने का अधिकार है। प्रकरण में-13 वर्ष की बालिका के साथ, बलात्कार हुआ। किन्तु पड़ोस में धार्मिक समारोह पर, जोर से बजने वाले, लाउडस्पीकर की आवाज से, उसके चिल्लाने को किसी ने नहीं सुना। बालिका बलात्कार के बाद, आग लगाकर मर गई।

6. **इन्टेलेक्चुअल फोरम-तिरूपति बनाम आंध्रप्रदेश राज्य**[12] के प्रकरण में, तिरूपति के दो ऐतिहासिक तालाबों की भूमि को, सरकार ने भवन निर्माण हेतु, देने का आदेश दिया था। उच्च न्यायालय ने, जल स्रोतों व पर्यावरण संरक्षण की तुलना में, आर्थिक विकास को महत्व देते हुए, सरकार के पक्ष में फैसला दिया। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने, आवास के अधिकार को, पर्यावरण के संरक्षण से अधिक न मानकर, तालाब को पुनर्जीवित करने व भवन निर्माण रोकने का आदेश दिया।

7. **कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा संयंत्र में सुरक्षा के अनिवार्य उपाय न किए गए तो उसे रोका जा सकता है।**[13] उच्चतम न्यायालय के न्यायमुर्ति, के.एस.राधाकृष्ण और दीपक मिश्रा की खण्डपीठ ने 27 सितम्बर 2012 को कहा कि-संयंत्र के आसपास रहने वाले लोगों की सुरक्षा के प्रति हमें सर्वाधिक चिंता है।

अंतर्राष्ट्रीय संस्था **डारा** ने - 2030 तक, 10 करोड़ लोगों की मौत की चेतावनी दी है। उसने पर्यावरण संतुलन पर, 20 देशों के कहने से, सर्वे कराया था, जिसमें 184 देशों को, शामिल किया गया। 2010 से 2030 के बीच, असंतुलन पर पड़ने वाले प्रभावो बाबत,रिपोर्ट में बताया गया कि- इससे हर वर्ष, विश्व में 50 लाख लोगों की मौत होती है।हालत न सुधरे, तो यह संख्या-2030 तक, हर वर्ष 60 लाख पर पहुंच जाएगी।

बिगड़ते पर्यावरण से, वैश्विक जी.डी.पी. को, हर साल करीब 84.21 लाख करोड़ का घाटा हो रहा है।रिपोर्ट में 5 देशों को, सबसे अधिक प्रदुषण फैलाने वाला माना गया[14]-

देश	प्रदुषण मिलियन टन	एक वर्ष मे स्थिति प्रतिशत में	
		बढ़ा	घटा
चीन	7711	+13.3	-
अमेरिका	5425	-	-7.0
भारत	1602	+8.7	-
रूस	1572	-	-7.4
जापान	1098	-	-9.7

भारतीय संसद ने मानव जीवन को, प्रदुषण से मुक्ति दिलाने हेतु कई अधिनियम पारित किए। संसद ने इस प्रकार यह सुनिश्चित किया कि- सरकारे इन्हें लागू करें व नागरिकों के स्वास्थ्य की सुरक्षा हो, लेकिन सरकारों ने इन्हें गंभीरता से लागू नहीं किया। इससे जैव समुदाय के जीवन,स्वास्थ्य व जीव जंतुओं के साथ, प्राकृतिक संपदाओं की भी, रक्षा नहीं की जा सकी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सामान्य अध्ययन संस्करण - 2012 प्रोजेक्ट एडीटर - पूर्णेन्दू कुमार
2. विधिक एवं समसामायिक निबंध संस्कण - 2012 लेखक - मुकेश नाथ, हिमांशु शर्मा
3. सामान्य अध्ययन संस्करण - 2013 प्रोजेक्ट एडीटर - पूर्णेन्दू कुमार
4. दैनिक भास्कर, उज्जैन - 26.09.2013
5. सामान्य अध्ययन संस्करण - 2013 प्रोजेक्ट एडीटर - पूर्णेन्दू कुमार
6. पत्रिका - भोपाल 13.09.2012
7. 1985 - 2 एस.सी.सी. - 431
8. 1986 - 2 एस.सी.सी. - 176
9. 1988 - 2 3 म. नि. प. - 229
10. 1951 - 2 ?स.सी.सी. - 137
11. ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3036
12. ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 10350
13. दैनिक जागरण भोपाल, 28.09.2012
14. उर्जा नियत्राण सूचना - वर्ष 2008 - 09 संयुक्त राष्ट्र संघ

देह व्यापार को मजबूर बाँछडा समुदाय - नीमच जिले के विशेष संदर्भ में

विवेक नागर *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध मे बाँछड़ा समुदाय की देह व्यापार एवं आपराधिक संलिप्तता की प्रवृति के पीछे मौजूद कारणों तथा इस समुदाय के लिये किये गये सरकारी प्रयासों का विवेचन किया गया है। इस अध्ययन में नीमच जिले के संदर्भ में बाँछड़ा समुदाय की स्थिति ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना – मध्यप्रदेशमें अनुसूचित जाति के रूप में दर्ज 'बाँछड़ा' समुदाय मुख्य रूप से नीमच, मंदसौर, रतलाम, उज्जैन, इन्दौर और शाजापुर जिले में फैला है। देह व्यापार में संलग्न बाँछड़ा समुदाय के डेरे नीमच, मंदसौर और रतलाम जिले की जावरा तहसील में फैले है। अन्य जिले के बांछड़ा अपने को इस धंधे से अलग बताते है और वे अपनी पहचान भी छिपाते है।

नीमच जिले में बाँछड़ा जाति के लोग मुख्यत: नीमच-महू हाइवे, नीमच-सिंगोली रोड़, नीमच-मनासा रोड़ आदि के आस-पास बसे हुए मिल जायेंगे। चुकि ये लोग सड़क के किनारे बसे है इसलिये इन पर आपराधिक गतिविधियों में संलिप्त रहने के आरोप लगते रहे हैं लेकिन यदि हम इनके कार्यकलापों और आमदनी के साधनों व उनके द्वारा किये जाने वाले व्यवसायों पर गहराई से चिंतन करें तो ऐसा स्पष्ट परिलक्षित होता है कि यह जाति अभिशप्त है और इस समुदाय के लोगों के मानवाधिकारों का पग पग पर हनन हो रहा है।

गत वर्षो में बाँछड़ा समुदाय के ये डेरे (बस्तियाँ) मानव तस्करी का अड्डा भी बनते जा रहे है। पहले समुदाय की महिलाऐं ही देह व्यापार करती थीं परन्तु अब छोटी उम्र की लड़कियों को अपहरण कर या खरीदकर देह व्यापार करवाये जाने के प्रकरण भी सामने आये है। विभिन्न स्त्रोंतो से यह भी पता चलता है कि 'परम्परा' तो इस समुदाय की यह रही है कि परिवार में सबसे बड़ी लड़की को इस कार्य के लिये आरक्षित रखा जाता है और बाद में छोटी लड़कियो को विधिवत विवाह करके ससुराल भेजा जाता है, लेकिन गुजारे लिये जब कोई साधन नहीं मिला तो नाबालिक लड़कियों को भी इस धंधे में झोंक दिया जाने लगा।

अध्ययन का उददेश्य – प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित उददेश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है।

- बाँछड़ा समुदाय के नीमच तथा पास के अन्य जिलो में बसाहट की स्थिति तथा कारणों को ज्ञात करना।
- इस समुदाय की आपराधिक संलिप्तता की स्थिति ज्ञात करना।
- इस समुदाय के कल्याण के लिये किये गये शासकीय प्रयासों की स्थिति ज्ञात करना।

समंको का संकलन – यह अध्ययन नीमच जिले के विशेष संदर्भ में किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में द्वितियक समंको का उपयोग किया गया है। ये समंक पुलिस अधीक्षक कार्यालय जिला नीमच एवं समाचार पत्र 'नई दुनिया' से प्राप्त किये गये है।

बाँछड़ा समुदाय का इतिहास – भारत में कतिपय जातियाँ देह व्यापार से जुड़ी हुई रही हैं। इन जातियों में बाँछड़ा जाति भी प्रमुख रही है। बाँछड़ा जाति के बारे में प्राय: विभिन्न स्त्रोतों से पता चलता है कि ये जाति लम्बे समय से मध्यप्रदेशऔर राजस्थान के सीमावर्ती भागों में बसी है। आपराधिक प्रवृति होने के कारण इसी जाति के पुरूष प्राय: चोरी, डकैती आदि अपराधों में लिप्त रहते है। बाँछड़ा जाति की महिलाऐं देह व्यापार से जुड़ी रही है।

नटनागर शोध संस्थान सीतामऊ के निदेशक डॉक्टर मनोहर राणावत बताते है कि 'बाँछड़ा समुदाय के बारे में कोई लिखित ऐतिहासिक तथ्य तो नहीं है लेकिन मुगल काल में भी सेना के साथ-साथ डेरे चला करते थे जो सैनिको की आवश्यकताओं की पूर्ति कराते थे - ये किसी जाति विशेष के नहीं होते थे। इसी तरह अंग्रेजों ने अपनी छावनियों के निकट इस समुदाय के लोंगो को आश्रय दिया ताकि उनके सैनिकों की वासना पूर्ति होती रहे। इसी तरह ये नीमच आ गये। स्वतंत्रता के बाद भी बाँछड़ा जाति अपने देह व्यापार की व्यवस्था को 'व्यवस्था'मानकर इसे परम्परा से जोड़ने लगी।

पहले यह कहा जाता था कि परिवार की बड़ी बेटी परम्परानुसार देह व्यापार अपनाती है जबकि अन्य लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था किन्तु कालान्तर में इस परम्परा का कढ़ाई से पालन नहीं किया गया।

मानवाधिकारों के संदर्भ में – क्या कोई सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति, सामान्य परिस्थितियों में दलदल में स्वेच्छा से कूदने को तैयार हो जायेगा। इसका उत्तर होगा नहीं।

बाँछड़ा समुदाय की देह व्यापार एवं आपराधिक प्रवृति के मूल में गरीबी, अनपठ ता, कुसंगति तथा समाज के तथाकथित सभ्य समाज का असहयोगात्मक व दोहरा रवैया भी है। मुख्य बात यह है कि ये लोग भी इन्सान है और इन्सानी अधिकार अर्थात मानव अधिकार चाहते है।

समाज के सर्वाधिक कमजोर व अभिशप्त तबके को जब तक सम्पन्न समाज के लोग अपनी विकृत दृष्टि से बाहर आकर नहीं देखेंगे तब तक यह समुदाय इस अंधकार पूर्ण जीवन जीने को विवश है। जिनके मानवाधिकारों की रक्षा की जाने की सख्त जरूरत है। नीमच जिले के मानव अधिकार आयोग मित्र श्री भानू दवे कहते है कि योजनाऐं बनाने से या पकडकर जेल में धकेलने से काम नहीं बनेगा। बाँछड़ा समुदाय के मानवाधिकारों को लेकर आयोग भी चिंतित है। इन्हें स्वेच्छा से पढ़ाई एवं रोजगार के अन्य साधन अपनाने हेतु प्रेरित करने की आवश्यकता है।

बाँछड़ा समुदाय के लिये किये गये शासकीय प्रयास – प्रशासन द्वारा बाँछड़ा और उनकी तरह ही देह व्यापार करने वाली प्रदेश अन्य जाति की महिलाओं को वेश्यावृति से दूर करने के लिये समय-समय पर कई योजनाऐं प्रारंभ की गई। नीमच जिले एवं अन्य सीमावर्ती जिलो में भी कई प्रशासनिक एवं पुलिस अधिकारीयों ने इस दिशा में सराहनीय प्रयास किये लेकिन ये शासकीय योजनाऐं अधिक सफल नहीं हो सकी।

* शोधार्थी , म. प्र. भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय, प्राचार्य ज्ञानमंदिर (विधि) महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

प्रमुख शासकीय प्रयास – महिलाओं के कल्याण के लिये शासन ने कई योजनाऐं लागू की इनमें प्रमुख हैं–

1. 1992–93 में अविभाजित मंदसौर जिले के कलेक्टर श्री मनोज श्रीवास्तव ने फैमिली प्लानिंग ऐसोसिऐशन ऑफ इण्डिया के माध्यम से बाँछड़ा बहुल गांव नीलकंठपुरा (जिला नीमच) को मॉडल के रूप में शामिल कर, परिवारों को जरूरी संसाधन और प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की थी। महिलाओं को सिलाई मशीन और घर दिए गए।
2. वर्ष 2001 में कलेक्टर प्रभात पाराशर एवं तत्कालीन पुलिस अधीक्षक सोनाली मिश्रा ने निर्मल अभियान चलाया। इस अभियान के तहत देह व्यापार में लिप्त महिलाओं और युवतियों को सुधार के लिये कस्तुरबा ग्राम इन्दौर भेजा गया।
3. 2009 में तत्कालीन कलेक्टर डॉ. संजय गोयल ने महिला एवं बाल विकास विभाग के माध्यम से योजना बनाई। इसमें 8वीं और 10वीं तक पढ़ी लिखी युवतियों की सरकारी सेवा से जोड़ा जाना तय किया गया। कई युवतियों को नर्सिंग प्रशिक्षण करवाकर नर्सिंग सेवा में भी लगाया गया।
4. वर्ष 1992 में वैश्यावृति उन्मूलन और वैश्यावृति समुदाय से जुड़े परिवारों के कल्याण, पुनर्वास व उत्थान हेतु म.प्र. सरकार ने जाबालि योजना का निर्माण किया। इनके अतिरिक्त भी कई शासकीय सामाजिक कल्याण की योजनाऐं लागू की गयी लेकिन इन योजनाओं का कोई अधिक लाभ दिखाई नही देता है।

मानव तस्करी का अड्डा बनती बाँछड़ा समुदाय की बस्तियाँ –वर्ष 2010–11 में मंदसौर के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक जी.के. पाठक ने नीमच मंदसौर जिले के बाँछड़ा डेरो से लगभग 57 बालिकाओं को मुक्त कराया था। इसकी पड़ताल में मानव तस्करी की बात सामने आयी थी। ज्यादातर मामलों में बालिकाओं को छोटी उम्र में ही खरीद कर लाया गया था।

वर्ष 2010 से 2012 तक उन्मुक्त कराई गई बालिकाएँ	62

स्त्रोत – नईदुनिया समाचार पत्र दिनांक 21.07.2013

वर्ष 2013 में मानव दुर्व्यापार के तहत पंजीबद्ध प्रकरणों की स्थिति

थाना	कुल पंजीबद्ध प्रकरण	कुल आरोपी	कुल उन्मुक्त कराई गई बालिकाऐं
कुकडेश्वर	01	02	01
जीरन	01	01	01
जावद	01	02	01
	03	05	03

स्त्रोत – पुलिस अधीक्षक कार्यालय, नीमच

इस प्रकार पुलिस विभाग से प्राप्त जानकारी से स्पष्ट है कि बाँछड़ा समुदाय के लोग मानव तस्करी तथा बच्चियों के अपहरण को भी अंजाम दे रहे है।

नीमच जिले में बाँछड़ा समुदाय की स्थिति – नीमच जिले में बाँछड़ा समुदाय की स्थिति निम्न तालिका से स्पष्ट होती है।

समुदाय	बाँछड़ा
काम	मूलत: देह व्यापार एवं अन्य कार्य
नीमच जिले में गांव	लगभग 24
देह व्यापार	लगभग 20 में
लिप्त	लगभग 2500
महिलाऐं	लगभग 1000
युवतियाँ	लगभग 1500
नाबालिक युवतियाँ	30 से 40 फीसदी

स्त्रोत – नईदुनिया समाचार पत्र दिनांक 21.07.2013

सुझाव –

1. बाँछड़ा समुदाय को शिक्षित करने की आवश्यकता है।
2. इस समुदाय के लोगो को रोजगार मूलक ट्रेनिंग दी जाना चाहिए।
3. एड्स जैसी घातक बीमारियों के बारे में स्वास्थ्य विभाग द्वारा बाँछड़ा बस्तियों में जागरूकता अभियान चलाये जाने की आवश्यकता है।
4. मानव तस्करी रोके जाने हेतु प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। इस हेतु पुलिस विभाग को बाँछड़ा समुदाय की महिलाओं और बच्चियों के डी.एन.ए. टेस्ट करवाने चाहिए।
5. राज्य स्तर पर एवं बाँछड़ा बहुल जिलो में एक अधिकार सम्पन्न संयुक्त कार्यदल का गठन किया जाना चाहिये। जिसमें पुलिस, स्वास्थ्य, महिला एवं बाल विकास विभाग के अधिकारीगण एवं जनप्रतिनिधियों को सम्मिलित किया जावें।
6. पुलिस विभाग द्वारा भी विशेष दल का गठन कर अनैतिक देह व्यापार अधिनियम एवं भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत कठोर कार्यवाही करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष – अधिकांश अपराधों की जड़ विपन्नता है। समाज के सर्वाधिक कमजोर व अभिशप्त तबके को जब तक सम्पन्न समाज के लोग अपनी विद्रूप दृष्टि से बाहर आकर समाज की मुख्य धारा में नहीं जोडेंगे तब तक बाँछड़ा समुदाय मजबूरी में अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर होता रहेगा। बेशक कानून इनके लिये कुछ कर सकता है लेकिन कानून का क्रियान्वयन करने वाले भी तो इसी समाज के लोग है जिनकी दृष्टि में बाँछड़ा समुदाय के प्रति चिंता कहीं से कहीं तक दिखाई नहीं देती ।और यह समाज अंधकार पूर्ण जीवन जीने को मजबूर है। देह व्यापार में लिप्त महिलाओं की मदद की बात तो होती है लेकिन मदद की जरूरत उन्हें अधिक है, जो देह व्यापार से दूर है और गरीबी से जूझ रही है। अनैतिक देह व्यापार निरोधक अधिनियम के होते हुए भी अधिक प्रभावी कार्यवाही न होना एक चिंता का विषय है। इनके मानवाधिकारों की रक्षा की जाने की भी सख्त जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नईदुनिया समाचार पत्र दिनांक 21.07.2013
2. पुलिस अधीक्षक कार्यालय, नीमच
3. Personal survey.
4. www.naidunia.jagran.com
5. www.bmrnewstrack.blogpost.in
6. www.khulasach.blogpost.in
7. maheshsharmaujn.blogpost.in

'सूचना का अधिकार अधिनियम 2005' के क्रियान्वयन में समस्या – विधिक एवं न्यायिक विवेचन

विवेक नागर *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 के क्रियान्वयन में जनसामान्य के समक्ष उत्पन्न होने वाली समस्याओं का विवेचन करता है साथ ही इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों का विधिक एवं न्यायिक विवेचन भी किया गया है। आशा है यह शोध–पत्र सूचना के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में आने वाली समस्याओं को प्रकट करने में सफल होगा ताकि उनका निराकरण हो सके।

प्रस्तावना – स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसका व्यक्ति से अटूट संबंध है। इसी स्वतंत्रता के अधिकार को हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान के भाग–3 में मौलिक अधिकारों के रुप में स्थापित किया है। ये मौलिक अधिकार भारत में 'मानव गरिमा के साथ जीवन' की प्रत्याभूति देते है, क्योंकि इनके उल्लंघन होने पर न केवल उच्च न्यायालयों बल्कि उच्चतम न्यायालयों की शरण में भी पहुँचा जा सकता है।

भारत के संविधान में प्रदत्ता स्वतत्रंता के विभिन्न अधिकारों में 'वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का अधिकार तथा 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता' का अधिकार महत्वपूर्ण है।

प्रजातंत्र को भी यथार्थ में चरितार्थ करना तभी संभव है जब इसकी नींव एक सुसूचित, पक्षपातरहित एवं जागरुक समाज पर आधारित हो। स्वतंत्रता के इन्हीं मौलिक अधिकारों को विस्तृत व आम नागरिकों तक सुगमता से पहुँचाने के लिये संसद ने 15 जून 2005 को 'सूचना का अधिकार अधिनियम 2005' अधिनियमित किया है।

उक्त अधिनियम के पारित किये जाने के पूर्व ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा **पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज विरुद्ध भारत संघ 1** के प्रकरण में सूचना के अधिकार (Right to Information) अर्थात् 'जानने का अधिकार' को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतत्रंता के अंतर्गत मौलिक अधिकार माना गया है।

इसी प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **इशर ऑयल लि. विरुद्ध हेल्थ उत्कर्ष समिति 2** के प्रकरण में यह निर्धारित किया गया है कि अनुच्छेद 21 एवं जानने के अधिकार के बीच गहरा संबंध है, विशेष रुप से तब, जब सरकार के गोपनीय विनिश्चयों से मानव स्वास्थ्य, जीवन एवं आजीविका प्रभावित होती है।

अत: उपरोक्त निर्णयों के आलोक में एवं ' सूचना के अधिकार अधिनियम 2005' पारित होने के पश्चात् लोक प्राधिकारियों के नियत्रंण में होने वाली लोकहित से संबंधित जानकारी तक भारत के प्रत्येक नागरिक की पहुँच सुनिश्चित करने और एक पारदर्शी प्रशासन देने का प्रयास किया गया है जो भारत में लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना व भ्रष्टाचार रोकने की दिशा में एक मील का पत्थर साबित होगा।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है –

- सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के क्रियान्वयन संबंधी प्रमुख प्रावधानों का विवेचन।
- सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के क्रियान्वयन में उत्पन्न व्यवहारिक कठिनाईयों का विवेचन।
- सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 के संदर्भ में प्रमुख नवीन न्यायिक निर्णयों का विवेचन।

विश्लेषणात्मक विवेचन (प्रमुख प्रावधान एवं क्रियान्वयन में व्यवहारिक कठिनाईयाँ) – यह सहज मानवीय स्वभाव है कि हर व्यक्ति द्वारा जो कार्य उचित रुप से नहीं किया गया हो उसे वह छुपाने का प्रयास करता है और उससे संबंधित जानकारी देने से बचना चाहता हैं, और ऐसा ही व्यवहार लोक प्राधिकारियों द्वारा आम नागरिकों के साथ किया जाता रहा है, सूचना का अधिकार अधिनियम इस पर भी अंकुश लगता है।

लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि अन्य अधिनियमों की भांति इस अधिनियम को पारित कर देने मात्र से पारदर्शी, भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन तंत्र की स्थापना हो जायेगी बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि इस अधिनियम का क्रियान्वयन किस प्रकार हो रहा है।

वास्तविकता के धरातल पर देखें तो प्रतिदिन प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा इस सूचना के अधिकार का प्रयोग कर चुके लोगो से चर्चा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संबंधित लोक सूचना प्राधिकारी या तो चाही गई जानकारी आसानी से उपलब्ध नहीं करवाते है या 30 दिवस की अधिकतम निर्धारित अवधि पूर्ण होने पर जानकारी उपलब्ध करवाते है, यहाँ तक कि कुछ कर्मचारियों को सूचना के अधिकार के अतंर्गत आवेदन पत्र देने पर निलंबित करने की चेतावनी तक दे दी जाती हैं।

यद्यपि इस अधिनियम को क्रियान्वित किये जाने के लिये अनेक प्रावधान किये गये प्रतीत होते है, जैसे– इस अधिनियम की धारा 6 (2) के अनुसार सूचना के आवेदन पत्र में सूचना प्राप्त करने का कारण बताना आवश्यक नहीं होगा।

धारा 7 के अनुसार अनुरोध या आवेदन प्राप्ति की 30 दिवस की अवधि में सूचना प्रदान करने या विहित (धारा 8 व 9) प्रावधानों में से किसी एक कारण से ही अनुरोध अस्वीकार किया जा सकता है, यहाँ तक कि इसी धारा में यह भी प्रावधान है कि यदि आवेदित जानकारी किसी व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से संबंधित है तो ऐसे अनुरोध के 48 घंटे के भीतर उपलब्ध करायी जायेगी। इसी प्रकार इस अधिनियम के अध्याय 3 व 4 में क्रमश: केन्द्रीय व राज्य सूचना आयोग के गठन किया गया है तथा अध्याय 5 (धारा 18) में सूचना आयोगों को शक्तियाँ प्रदत्त की गई है। इसमे यह प्रावधान भी महत्वपूर्ण है कि ये आयोग किसी लोक सूचना प्राधिकारी द्वारा

* प्राचार्य, ज्ञान मंदिर विधि महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.), शोधार्थी, मध्यप्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

इस अधिनियम के अंतर्गत सूचना के लिये प्राप्त आवेदनों को लेने से इंकार करने पर या सूचना नहीं देने पर, अपूर्ण या भ्रामक सूचना देने पर 250 रु. से 25000 रु. तक की शास्ति लोक सूचना प्राधिकारी पर आरोपित कर सकते है।

अत: इस अधिनियम के क्रियान्वयन की दिशा में इस अधिनियम में प्रावधान किये गये है लेकिन वास्तविकता यह है कि लोक सूचना प्राधिकारियों द्वारा इस अधिनियम का अर्थान्वयन वास्तविक रुप में नहीं किये जाने से इस अधिनियम के अंतर्गत जन सामान्य को सूचना प्राप्त कराने संबंधी अधिनियम की मूल भावना पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन में प्रमुख समस्या यह भी है कि आम नागरिकों को इसकी व्यापक जानकारी का अभाव हैं, साथ ही विभिन्न लोक सूचना प्राधिकारियों को अपने उच्च अधिकारियों का यह भी भय होता है कि सूचना के अधिकार के अंतर्गत छूट प्राप्त जानकारी उनके द्वारा न दे दी जाए।

इस अधिनियम को उसकी मूल भावना के अनुरुप लागू कराने के लिये आवश्यक है कि जनसामान्य के मध्य इस 'सूचना के अधिकार' का व्यापक प्रचार-प्रसार करने हेतु 'चेतना शिविर' आयोजित किये जाये एवं प्रचार के वर्तमान में उपलब्ध नवीन संसाधनों का उपयोग किया जावे ताकि इस अधिकार से जनसामान्य अवगत होकर उनमें जागरुकता आ सके।

इस अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिये हितग्राहीयों के साथ साथ उन सभी प्राधिकारियों, संस्थाओं जिन पर अधिनियम के पालन में सूचना प्रदान करने व अधिनियम को लागू कराने का उत्तरदायित्व है, को इस अधिनियम से संबंधित विधिक व्यवहारिक प्रक्रियात्मक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए जिसके लिये चयनित विधिवेत्ताओं, प्राध्यापकों व न्यायधीशगणों की सहायता ली जा सकती है। इसके लिये लगभग सभी राज्यों में संचालित हो रहे है न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण संस्थाओं में भी प्रशिक्षण सत्र/कार्यशालाएं आयोजित किये जा सकते है, जिनमें जागरुक नागरिक, गैर शासकीय स्वयंसेवी संस्थाओं एवं समस्त विभागों के प्राधिकारियों अन्य कर्मचारियों को संयुक्त रुप से प्रशिक्षण दिया जाना उचित होगा।

इस अधिनियम के क्रियान्वयन में एक प्रमुख कठिनाई यह भी है कि लोक सूचना अधिकारी द्वारा निर्धारित अवधि में सूचना न देने, चाही गयी सूचना न देने आदि परिस्थितियों में अपीलीय अधिकार उसी विभाग के वरिष्ठ अधिकारी को दिये गये है। अत: प्रथम अपीलीय अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारी के विरुद्ध गंभीर कार्यवाही किये जाने की अधिक संभावना नहीं होती हैं। इसी प्रकार सूचना उपलब्ध करवाये जाने का 30 दिवस का समय बहुत अधिक है जो कम किये जाने की आवश्यकता है।

क्रियान्वयन की दिशा में प्रमुख नवीन न्यायिक निर्णय - सुभाष पोपटलाल दवे बनाम भारत संघ 3 के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि सूचना के अधिकार के अंतर्गत निवारक निरोध विधि के अंतर्गत गिरफ्तार व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य विधियों में गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारण बताये जाने चाहिये।

संजय सिंह ठाकुर बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एवं अन्य 4 के प्रकरण में यह निर्धारित किया गया है छत्तीसगढ़ सूचना का अधिकार (फीस एवं शुल्क) 2005 का नियम 4 उन व्यक्तियों हेतु भिन्न व्यवहार उपबंधित करता है जो गरीबी रेखा के नीचे नहीं है। ऐसा वर्गीकरण युक्तियुक्त है।

यूनियन ऑफ इण्डिया बनाम अनिता सिंह 5 के प्रकरण में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि किसी पासपोर्टधारी की जन्मतिथि एवं निवास का पता व्यक्तिगत जानकारी होने के कारण सूचना के अधिकार की परिधि में नहीं आती है।

निष्कर्ष - अत: निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि सूचना का अधिकार अधिनियम के सफल व प्रभावी क्रियान्वयन में प्रमुख समस्या इसके व्यापक प्रचार-प्रसार न किये जाने, इसके उद्देश्यों के अनुरुप अर्थान्वयन न किये जाने तथा कुछ लोक सूचना प्राधिकारियों द्वारा इसे गंभीरता से न लिये जाने की है साथ ही सूचना के अधिकार अधिनियम का दुरुपयोग व्यक्तिगत द्वेष के कारण भी हो रहा हैं, इसे भी रोके जाने की आवश्यकता हैं। व्यक्तिगत जानकारी को यद्यपि अधिनियम की परिधि के बाहर रखा गया है लेकिन इस अधिनियम में 'व्यक्तिगत जानकारी' को विस्तृत ढंग से परिभाषित और स्पष्ट किये जाने की आवश्यकता है।

तथापि आशा है कि न्यायपालिका या केन्द्रीय एवं राज्य सूचना आयोग के कठोर निर्णयों द्वारा इस अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन होगा और भारत में एक पारदर्शी भ्रष्टाचार मुक्त लोकतंत्र की स्थापना होगी। अत: यह कहा जा सकता है कि 'सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 स्वच्छ लोकतंत्र की दिशा में एक सराहनीय प्रयास तथा महत्वपूर्ण कदम हैं।

संदर्भ :-

1. ए.आई.आर. 2004 सु.को. 1442
2. ए.आई.आर. 2004 सु.को. 1834
3. ए.आई.आर. 2012 सु.को. 3370
4. 2014 (ख) म.प्र. निर्णय सार 84
5. ए.आई.आर. 2014 दिल्ली 23

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सूचना का अधिकार - विष्णु राजगढ़िया एवं अरविंद केजरीवाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. सूचना का अधिकार मार्गदर्शिका - बलवंतसिंह एवं संजय चराटे- चराटे पब्लिशिंग हाऊस, इंदौर
3. सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 - अजीत कुमार वर्मा, इण्डिया पब्लिशिंग कम्पनी, इंदौर
4. सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 - डॉ. अभय सिंह यादव, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन , इलाहाबाद

****

A Study of an Effectiveness of CLT Method of College Students' English Language Teaching

Jaimini K. Surani *

Introduction - Language has the Special Power on human from the birth. The Child's parents and family members continuously try to teach words and languages for making him eligible person in society and for this, parents and gardians use sugar coated words.

Humans journey of life flourishes by the grace of his speech. If the flame of word does not light in the world, the Triloka would be drawn in the darkness. Man is a social animal and to hold on his existence in the society he has to communicate his thoughts with others. The language is the most fundamental medium to communicate. He wants to share his own ideas and thoughts with others. Language is an, essential medium to express one's thoughts. When the language was not in existence, the man was using an exact signs to express his views. Gradually it developed. Slowly, the humans started expressing his own views to others by the medium of language. Thus, language developed more and more and used as a communicative in daily routine life. Now a days, English language learning is increasing more and more very much. English language learning is provided thorough various methods.

Research Problem- A Study of an Effectiveness of CLT Method of College Students' English Language Teaching.

Objectives -

1. To instruct the CLT based Linguistic Competence Programme for Teaching English Language.
2. To examine an effectiveness of CLT based Linguistic Competence Programme in English Language Learning.
3. To recommend making English Language Learning an effective.

Null Hypothesis -

HO_1 There is no significant difference between the mean score of Linguistic Competence of Pre-Test of Experimental Group and Control Group.

HO_2 There is no significant difference between the mean score of Post Test of control Group and Experimental Group.

Sample And Sampeling Teahniques - In the present investigation, objective based technique was adopted to draw the sample. 60 college students were taken as a sample.

Research Mehod - In Present research, experimental method has been used as a research method. This research has been done through the following technique.

Table – 1.1
Two Groups, Random Samples only Pre-Test Post-Test Technique.

Group Pre-Test	Pre-Test	Independent Variable	Post-Test
Experimental ER Group	T1E	X	T2E
Control Group CR	T1C		T2C

Statistical Technique

't' test ('t' value)

Tools

1. Linguistic Competence Test
2. Task Based Linguistic Competence Programme of CLT

Analysis Of Experimental And Control Groups' Linguistic Competence - The main object of the research is to examine the effectiveness of task based learning. After the pre-test the researcher make the students done the Teaching Learning by TBL (Task Based Learning) programme.

Table – 1.2 (see in next page)

The observed value of 't' is found to be 0.62 which is less than the table value of 't' 2.04. The difference is non-significant. Hence, the Null Hypothesis "There is no significant difference between the mean score of Linguistic Competence of Pre-Test of Experimental Group and Control Group" was accepted.

It can be said from the 't' value, that there is no significant difference between the mean score of linguistic competence of control group and experimental group. The mean value shows that the control group and experimental group were kept equal linguistic competence.

Table – 1.3 (see in bottom)

The observed value of 't' is found to be 9.21 which is more than the table value of 't' 2.75. The difference is significant at 0.01 levlel. Hence, the Null Hypothesis " There is no significant difference between the mean score of Post Test of control Group and Experimental Group" was rejected.

* Research Scholar, Master Of Education College,Vidhyanagari, Himatnagar (Gujarat) INDIA

It can be said from the 't' value that there is significant difference between the mean score of linguistic competence of control group and experimental groups' post test. May be its reason is that, experimental groups was treatment by CLT method etc.

Research Findings -

1. There is no significant difference found in the pre-test marks of experimental and control groups' English Language Linguistic Competence.
2. According to the second null hypothesis of the research, the significant difference has been found in the mean score of experimental group and control groups' Post-Test. It means according to the main objective of the research, the experimental group has been given the tryout of TBL and control group learnt independently. It means, we can find the effectiveness of TBL.

Recommendations -

1. Workshop should be arranged at different level for language teaching.
2. The Gujarat Government should try to apply TBL in schools and colleges.
3. The basic facilities should be provided in the schools.
4. The communicative method should be admit to remove the generation gap between teachers-students, students-parents.

References -

1. Paliwal A.K. (1996), "Communicative Language Teaching", Jaipur : Surbhi Prakashan.
2 Littlewood, W. (1981), "Communicative Lang. Teaching – An Introduction", Cambridge" Cambridge Uni. Press.
3 Mukhalal Joseph (2006), "Linguistic for the Teacher", Delhi : Arora Offset Press.
4 Nunan, David (1993), "Designing Tasks for Communicative Classroom", Cambridge : Cambridge Uni. Press.
5 Paliwal, A.K. (1996), "Com.Lang.Teaching", Jaipur : Surbhi Prakasan.
6 William Littlewood (2004), "The Task Based Approach : Some Questions & Suggestions", Oxford : Oxford University Press.

Table – 1.2 Significance of Difference between mean score of Linguistic Competence with Groups

Group	Number N	Mean M	Stand.Devia:SD	M.D.	SED	't'Value
Exp.Group	30	17.96	4.00	0.33	0.53	0.62 NS
Cont.Group	30	17.63	4.00			

* 0.05 Significant Level 't' table value – 2.04
** 0.01 Significant Level 't' table value – 2.75
NS Non-Significant

Table – 1.3 Significance of Difference between the mean score of Post Test of Groups

Group	Number N	Mean M	Stand.Devia:SD	M.D.	SED	't'Value
Exp.GroupPre-test	30	29.13	13.56	9.63	1.04	9.21 **
Cont.GroupPost-test	30	19.05	19.2			

* 0.05 Significant Level 't' table value – 2.04
** 0.01 Significant Level 't' table value – 2.75
NS Non-Significant

Emotionally Intelligent Teachers 'Need Of An Hour'

Dr. M.P. Gupta * Mrs. Rashmi Dadhich **

Introduction - MICHAEL GOVE says "There are academically bright people who cannot teach for toffee and other people who may not have been the most gifted at university [but] who have the emotional intelligence and spark to really engage a classroom."

Whether your title is professor, instructor, lecturer, adjunct or other, your responsibility to your students is to teach. Your students look to you for the wisdomyou have gained from your research, your educational background or your practical experience and your overall intelligence. However, being an effective instructor does not solely depend on your intellectual quotient (IQ); it also depends on how well you can use your emotional intelligence (EI). From my experience teaching in higher education, I have observed that not every student learns through the same methods, is motivated in the same manner, or acts in the same way in a classroom (live or online). So, it seems apparent that recognizing differences in teaching and learning styles, as well as being able to connect with your students, is important to produce a beneficial outcome.

The term emotional intelligence gained popularity in 1990 when Salovey and Mayer explained their thoughts on the subject. Although there are many components to being emotionally intelligent, here are a few ideas of how to use emotional intelligence in the classroom.

1. Create an environment of respect. If you want your students to respect you and your classroom rules, you must respect each of them. As Ralph Waldo Emerson stated, "Men are respectable only as they respect. Do not get frustrated if some students are not learning the material as quickly as you expect. A major part of emotional intelligence is showing empathy. Try to put yourself in your student's shoes and remember what it was like when you were learning a new concept and how it made you feel.
2. Manage your emotions while taking responsibility. There will be situations that frustrate you, but not only should you obviously learn to hold back visible anger, you should also take responsibility for your emotions without placing blame on your students. Focus on using "I" instead of "You" when making a statement. For example, instead of saying, "You are not working hard enough to understand this concept," say, "I am confused about what is making this concept difficult to understand. Let's try together to understand what is not making sense." Avoiding putting the students on the defensive may help open their minds to learning.
3. Be honest and own up to your mistakes. If a student asks you a question and you do not know the answer, honesty can be the best policy. Tell the student that you will do some research and get back to them regarding the correct answer. Also, if you make a mistake, apologize and correct yourself and then move forward. By setting a good example of honesty in the classroom, you will hopefully be encouraging honesty from your students. Remember to not only walk the walk but also talk the talk!
4. Validate students. We as humans like to feel valued rather than dismissed. So, make an effort to understand what your students may be feeling and relay this to them while also helping them resolve their own issues. If a student says that they are so tired of doing hours of tedious homework every night, you could say, "I know you are feeling tired because the problems assigned do take a lot of energy to solve and I appreciate the hard work you are putting into the class. "

Becoming an emotionally intelligent teacher is a journey and process, not an arrival state or end result. Emotionally intelligent teachers are active in their orientation to students, work, and life. They are resilient in response to negative stress and less likely to overwhelm themselves with pessimism and strong, negative emotions. An emotionally intelligent teacher learns and applies emotional intelligence skills to improve:

Teachers who intentionally develop emotional skills and model emotionally intelligent behavior on a daily basis experience more success and satisfaction in their professional career and life. Emotionally intelligent teachers are more resilient and proactive in responding to stressors and less likely to react to stress. A current interest in

* Retd. Principal, Prashanti T.T. College, Kota (Raj.) INDIA
** Research Scholar, Career Point University, Kota, (Raj.) INDIA

education is the growing awareness that the development of social and emotional skills in children is critical for the foundation of academic knowledge in the classroom. The early childhood educator is in a position to be a powerful nurturer of the social emotional development in young children. It is important, therefore, to challenge early childhood teachers, particularly veteran teachers, to take a closer look at their own social and emotional skills and to systematically reassess these skills through an emotionally intelligent "lens". The field of emotional intelligence is a new and exciting area of academic research that
looks at emotional abilities

Teachers who model emotional intelligence are characterized by:

1. intentional reflective (not reactive) behavior,
2. more flexible (not resistant to change),
3. assertive communication (not aggressive or passive),
4. more optimistic and hopeful (not pessimistic and negative),
5. and relies on skills and positive habits (notreactive habits).

"As a general rule, the smarter an individual is in terms of IQ and EQ, the more opportunity , for that person to be a great teacher "

References-

1. Charles Darwin, "On the Origin of Species by Means of Natural Selection, or the Preservation of Favoured Races in the Struggle for Life," 1859.
2. Farooq, A. (2003), Effect of Emotional Intelligence on Academic Performance. Institute of Clinical Psychology/ University of Karachi.
3. Goleman, D. (1998). Working with Emotional intelligence, New York: Bantam.
4. Mayer, J.D. & Salovey, P. (1997). What is emotional intelligence? In P. Salovey & D. Sluyter (eds.): Emotional development and emotional intelligence: Implications for educators (pp. 3-31).
5. New York: Basic Books. Samuel O. Salami (2007) Emotional Intelligence and self efficacy to work attitudes among Secondary School teachers in south western Nigeria. Essays in Education, vol. 20.
6. Singaravelu S. (2007) Emotional Intelligence of student teachers (pre-service) at primary level in Puducherry region. M.Ed. Dissertation.
7. Todd L. Drew (2006) the relationship between emotional intelligence and student teacher performance. Ph. D.

****

बालक-अभिभावक सम्बन्धों का बालक के समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

दीपक पंचोली*

शोध सारांश – प्रस्तुत शोधकार्य राजस्थान राज्य के भीलवाड़ा जिले के जिला मुख्यालय पर सम्पन्न किया गया है। शोध का मुख्य उद्देश्य बालक के समायोजन पर, बालक-अभिभावक सम्बन्धों के प्रभाव का अध्न करना रहा है। न्यादर्श के रूप में माध्यमिक स्तर के 100 बालकों का चयन किया गया। आंकड़ें एकत्रित करने हेतु समायोजन के लिए डॉ. ए.के.पी. सिन्हा एवं डॉ. आर.पी. सिंह की समायोजन मापनी एवं डॉ. नलिनी राव का बालक-अभिभावक सम्बन्ध परीक्षण का प्रयोग किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, टी-टेस्ट एवं सहसम्बन्ध नामक सांख्यिकी का प्रयोग किया गया। शोध के निष्कर्ष के रूप में ज्ञात होता है कि बालक-अभिभावक सम्बन्धों का बालक के समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

विषय संकेत – बालक की प्रथम पाठशाला उसका परिवार है एवं प्रथम शिक्षक उसके माता-पिता। बालक के मानसिक विकास पर अभिभावकों के व्यवहार का सक्रिय प्रभाव होता है। (Ozeinar 2006) के अनुसार, अभिभावक बालक के लिए प्राथमिक सामाजिक वातावरण प्रदान करते हैं एवं बालक के विकास को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बालक अपने अभिभावकों के साथ मानसिक एवं भावनात्मक रूप में जुड़ा रहता है। यदि बालक-अभिभावक सम्बन्ध मजबूत एवं सकारात्मक है तो पूर्व अनुभव यह बताते हैं कि बालक में आत्मविश्वास, समायोजन एवं अपने लक्ष्य निर्धारित करने की क्षमता में वृद्धि होती है। (Jewell and Stark 2003)।

पूर्व में किये गये शोधों से इस बात के मजबूत प्रमाण मिलते हैं कि जिन बच्चो के अभिभावक तुलनात्मक रूप से अधिक उदार प्रकृति के होते हैं। उनके बच्चे भावी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में अधिक सफलतापूर्वक अपना समायोजन कर लेते हैं। वहीं दूसरी ओर तानाशाह प्रकृति के अभिभावकों के बच्चें न केवल अपने अभिभावकों के साथ बल्कि समाज में भी कुसमायोजन से ग्रसित रहते हैं।

बालकों के समायोजन की प्रवृत्ति न केवल उनके आस-पास के व्यक्तियों को बल्कि उनके स्वयं की शैक्षणिक उपलब्धि को भी प्रभावित करती है एवं उनको भविष्य में मिलने वाली सफलता और असफलता का भी निर्धारण करती है। अत: बालक के सम्पूर्ण विकास में समायोजन एक महत्वपूर्ण घटक की भूमिका अदा करता है। एक बच्चे के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके व अभिभावकों के मध्य सम्बन्ध अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। (Amato, P.R. 1994)।

उपरोक्त विवेचन के अनुसार बालक के सर्वांगीण विकास में समायोजन का महत्व एवं समायोजन को प्रभावित करने में अभिभावकों की भूमिका के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत शोध सम्पन्न किया गया है।

शोध के उद्देश्य – प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सफलता हेतु निम्नांकित उद्देश्यों को निर्धारित किया गया है –

1. बालक-अभिभावक सम्बन्ध को ज्ञात करना।
2. बालकों के सवेंगात्मक समायोजन का पता लगाना।
3. बालकों के सामाजिक समायोजन का पता लगाना।
4. बालकों के शैक्षिक समायोजन का पता लगाना।
5. बालक-अभिभावक सम्बन्धों का बालक के समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव को ज्ञात करना।

परिकल्पना – अनुसंधित्सु द्वारा प्रस्तुत अध्ययन के लिये निम्नार्कित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है –

1. बालक-अभिभावक संबंध बालको के संवेगात्मक समायोजन को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करते है।
2. बालक-अभिभावक संबंध बालको के सामाजिक समायोजन को प्रभावित नहीं करते है।
3. बालक-अभिभावक संबंध बालको के शैक्षिक समायोजन को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करते है।
4. बालक-अभिभावक सम्बन्धों का बालक के समायोजन पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं है।

पारिभाषिक शब्दावली –

1. **समायोजन –** बोरिंग लैगफैल्ड तथा वेलड के अनुसार, 'समयोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखता है।'
2. **अभिभावक –** प्रस्तुत शोध में अभिभावक के सन्दर्भ में माता और पिता को सम्मिलित किया गया है।

चर –

1. बालक-अभिभावक सम्बन्ध (स्वतन्त्र- चर)
2. समायोजन (आश्रित चर)

शोध समस्या का परिसीमन – अनुसंधित्सु द्वारा प्रस्तुत शोध का परिसीमन निम्न प्रकार से किया गया है –

1. इस लघु शोध के आंकड़े एकत्र करने हेतु भीलवाड़ा जिले के चार विद्यालयों को चुना गया है।

क्र. सं.	विद्यालय का नाम	बालकों की संख्या
1.	राजकीय माध्यमिक विद्यालय, सुभाषनगर, भीलवाड़ा	25
2.	राजकीय माध्यमिक विद्यालय, राजेन्द्र मार्ग, भीलवाड़ा	25
3.	वर्धमान माध्यमिक विद्यालय, भीलवाड़ा	25
4.	महेश शिक्षा सदन , भीलवाड़ा	25

*रिसर्च स्कॉलर, पी.जी. डिपार्टमेन्ट ऑफ स्टेडीज इन एज्युकेशन, पेसिफिक एकेडमी ऑफ हायर एज्युकेशन एण्ड रिसर्च युनिवर्सिटी, उदयपुर (राज.) भारत

चार माध्यमिक विद्यालयों में से प्रति विद्यालय 25 बालकों का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया है। इस प्रकार 25 (4 = 100 बालकों पर यह शोध किया गया है।

1. इस लघु शोध हेतु माध्यमिक स्तर के कक्षा 10 के विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।
2. इस लघु शोध में 100 बालकों को शामिल किया गया है।

शोध विधि – प्रस्तुत अनुसंधान कार्य हेतु अनुसंधित्सु द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण – शोधकर्त्ता द्वारा अपने शोधकार्य हेतु **डॉ**. नलिनी राव का 'बालक–अभिभावक सम्बन्ध परीक्षण', तथा समायोजन हेतु डॉ. ए. के. पी. सिन्हा एवं डॉ. आर. पी. सिंह की समायोजन मापनी को सम्मिलित किया गया है।

न्यादर्श – शोधार्थी द्वारा अपने लघु शोध हेतु यादृच्छिक प्रतिचयन न्यादर्श विधि की सहायता से भीलवाड़ा जिले के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत दसवीं कक्षा के कुल 100 बालकों का चयन किया गया है।

सांख्यिकी तकनीकी – प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता द्वारा निम्नलिखित सांख्यिकी तकनीकी का प्रयोग कर परिणाम प्राप्त किये गये हैं –

1. मध्यमान
2. प्रमाप विचलन
3. 'टी' – अनुपात
4. सहसंबंध

व्याख्या एवं विश्लेषण – तालिका –1 (देखे तालिका)

व्याख्या एवं विश्लेषण –

1. संवेगात्मक समायोजन – तालिका–1 में संवेगात्मक समायोजन स्तर क्षेत्र में माता का बालक के साथ अच्छे सम्बन्ध व बुरे सम्बन्ध के मध्यमान क्रमश : 5.43 व 4.64 प्राप्त हुए है तथा दोनों समूहों के मध्यमानों के लिए टी मान 3.57 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर के सारणी मान 2.62 से अधिक पाया गया। अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में भी सार्थक अन्तर है। इससे स्पष्ट होता है कि माता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के संवेगात्मक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

2. सामाजिक समायोजन –तालिका–1 में सामाजिक समायोजन स्तर क्षेत्र में माता का बालक के साथ अच्छे सम्बन्ध व बुरे सम्बन्ध के मध्यमान क्रमश : 8 व 6 प्राप्त हुए है तथा दोनों समूहों के मध्यमानों के लिए टी मान 3.33 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर के सारणी मान 2.62 से अधिक पाया गया। अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में भी सार्थक अन्तर है। इससे स्पष्ट होता है कि माता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के सामाजिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

3. शैक्षिक समायोजन – तालिका–1 में सामाजिक समायोजन स्तर क्षेत्र में माता का बालक के साथ अच्छे सम्बन्ध व बुरे सम्बन्ध के मध्यमान क्रमश : 6 व 4 प्राप्त हुए है तथा दोनों समूहों के मध्यमानों के लिए टी मान 4.34 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर के सारणी मान 2.62 से अधिक पाया गया। अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में भी सार्थक अन्तर है। इससे स्पष्ट होता है कि माता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के शैक्षिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

तालिका –2 (देखे तालिका)

व्याख्या एवं विश्लेषण –

1. **संवेगात्मक समायोजन –** तालिका–2 में संवेगात्मक समायोजन स्तर क्षेत्र में पिता का बालक के साथ अच्छे सम्बन्ध व बुरे सम्बन्ध के मध्यमान क्रमश : 6.22 व 5.44 प्राप्त हुए है तथा दोनो समूहों के मध्यमानों के लिए टी मान 3.51 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर के सारणी मान 2.62 से अधिक पाया गया। अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में भी सार्थक अन्तर है। इससे स्पष्ट होता है कि पिता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के संवेगात्मक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

2. **सामाजिक समायोजन –**तालिका–2 में सामाजिक समायोजन स्तर क्षेत्र में पिता का बालक के साथ अच्छे सम्बन्ध व बुरे सम्बन्ध के मध्यमान क्रमश : 8.20 व 5.25 प्राप्त हुए है तथा दोनों समूहों के मध्यमानों के लिए टी मान 4.83 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर के सारणी मान 2.62 से अधिक पाया गया। अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में भी सार्थक अन्तर है। इससे स्पष्ट होता है कि पिता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के सामाजिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

3. **शैक्षिक समायोजन –** तालिका–2 में सामाजिक समायोजन स्तर क्षेत्र में पिता का बालक के साथ अच्छे सम्बन्ध व बुरे सम्बन्ध के मध्यमान क्रमश : 4.49 व 6.86 प्राप्त हुए है तथा दोनों समूहों के मध्यमानों के लिए टी मान 3.12 प्राप्त हुआ जो कि 0.01 स्तर के सारणी मान 2.62 से अधिक पाया गया। अत: दोनों समूहों के मध्यमानों में भी सार्थक अन्तर है। इससे स्पष्ट होता है कि पिता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के शैक्षिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

तालिका – 3

बालक–अभिभावक संबंधों का बालक के समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का सहसंबंध गुणांक के आधार पर विश्लेषण

समूह	चर	सह संबंध गुणांक का मान	.01/.05 पर सार्थकता
बालक N= 100	बालक–अभिभावक संबंध (X चर)	0.998	0.01 सार्थक सहसंबंधं पाया गया।
	समायोजन (Y चर)		

स्वतन्त्रता के अंश (df=98) पर
0.05 स्तर पर मान – 0.760
0.01 स्तर पर मान – 0.973

उपरोक्त सारणी से निम्न परिणाम परिलक्षित होते है – बालक–अभिभावक संबंध तथा समायोजन दोनों चरो पर माध्यमिक स्तर के न्यादर्श बालकों (N= 100) के प्राप्तांकों के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक मान R= 0.998 प्राप्त हुआ। जो कि निम्नांकित सारणी से यह मान उच्च धनात्मक है।

सहसंबंध गुणांक

+ 1 व – 1	पूर्ण सहसंबंध
+ 0.81 व – 0.81 से + 0.90 व– 0.90	अति उच्च सहसंबंध
+ 0.61 व – 0.61 से + 0.80 व – 0.80	उच्च सहसंबंध
+ 0.41 व– 0.41 से + 0.60 व– 0.60	साधारण सहसंबंध
+ 0.21 व– 0.21 से + 0.40 व – 0.40	निम्न सहसंबंध
00 से + 0.20 व – 0.20	नगण्य सहसंबंध

यह मान .01 स्तर के सारणीमान 0.973 से अधिक पाया गया है अर्थात् दोनों चरों के मध्य उच्च सहसंबंध होकर सार्थक संबंध पाया गया है। इससे

कहा जा सकता है जब एक चर के मान में वृद्धि होती है तो दूसरा चर उसी दिशा में बढता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बालक–अभिभावक संबंध अच्छे होने पर उनके बालकों की समायोजन क्षमता भी उच्च स्तर की होगी।

शोध अध्ययन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष–

1. माता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के संवेगात्मक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
2. माता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के सामाजिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
3. माता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के शैक्षिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
4. पिता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के संवेगात्मक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
5. पिता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के सामाजिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
6. पिता के अच्छे व बुरे संबंधों का बालकों के शैक्षिक समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।
7. बालक–अभिभावक संबंध बालको के समायोजन को सार्थक रूप से प्रभावित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Amato, P.R. (1994). Life – Span Adjustment of Children to their Parents' Divorce. The Future of Children. 4, 143 – 164.
2. Breebacher John. S. (1969) Modern Philosophies of education New york-Mcgraw HillBook Company.
3. Jewell J.D., Stark K.D. (2003). Comparing the family environments of adolescents with conduct disorder or depression. Journal of Child and Family Studies, 12 : 77 – 89.
4. ओड़, लक्ष्मी लाल के., ' शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि ', राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर (राजस्थान)।
5. Ozcinar Z (2006) ' The Instructional Communicative Qualification of Parents with Students : Cypriot Journal of Educational Sciences ' 1 : 24 – 30.
6. पाण्डे, डॉ. रामशक्ल ' भारतीय शिक्षा दर्शन की रूपरेखा ', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
7. राय, पारसनाथ (2011), ' अनुसंधान परिचय ' लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
8. राव, डॉ. नलिनी, ' बालक–अभिभावक सम्बन्ध परीक्षण '।
9. सिन्हा, डॉ. बी.के. 'शैक्षिक एवं उदीयमान भारतीय समाज', पद्मा पब्लिकेशन, जयपुर।
10. Sinha, A.K.P. and Singh, R.P. (1971). Adjustment Inventory for School Students.Agra : National Psychological Corporation.
11. श्रीवास्तव, एस.एन. (2008), ' भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान ', लखनऊ, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका।

तालिका –1 माता के सम्बन्धों का बालकों के समायोजन स्तर पर प्रभाव का विश्लेषण

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.
क्षेत्र	समूह	संबंध संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर 0.05/0.01 पर
संवेगात्मक समायोजन	(अ) अच्छे संबंध	32	5.43	4.19	3.57	सार्थक अन्तर है।
	(ब) बुरे संबंध	10	4.64	3.16		
सामाजिक समायोजन	(अ) अच्छे संबंध	32	8	2.29	3.33	सार्थक अन्तर है।
	(ब) बुरे संबंध	10	6	1.26		
शैक्षिक समायोजन	(अ) अच्छे संबंध	32	6	3.65	4.34	सार्थक अन्तर है।
	(ब) बुरे संबंध	10	4	0.94		

df = 40

स्वतंत्रता के अंश 40 हेतु आवश्यक 'टी' का तालिका मान –

0.05 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान – 1.98

0.01 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान – 2.62

तालिका – 2 पिता के सम्बन्धों का बालकों के समायोजन स्तर पर प्रभाव का विश्लेषण

1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.
क्षेत्र	समूह	संबंध संख्या	मध्यमान	प्रमाप विचलन	टी–मूल्य	सार्थकता स्तर 0.05/0.01 पर
संवेगात्मक समायोजन	(अ) अच्छे संबंध	33	6.22	4.09	3.51	सार्थक अन्तर है।
	(ब) बुरे संबंध	11	5.44	2.99		
सामाजिक समायोजन	(अ) अच्छे संबंध	33	8.20	2.46	4.83	सार्थक अन्तर है।
	(ब) बुरे संबंध	11	5.25	1.20		
शैक्षिक समायोजन	(अ) अच्छे संबंध	33	4.49	1.82	3.12	सार्थक अन्तर है।
	(ब) बुरे संबंध	11	6.86	3.06		

df = 42

स्वतंत्रता के अंश 42 हेतु आवश्यक 'टी' का तालिका मान –

0.05 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान – 1.98

0.01 विश्वास स्तर पर सार्थकता के लिए आवश्यक मान – 2.62

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों तथा शैक्षिक उपलब्धि का एक अध्ययन

डॉ. बी.सी. शाह *

प्रस्तावना – विद्यार्थियों के अधिगम एवं उनके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन के लिए व्यवस्थित शिक्षा की परम आवश्यकता होती है। शिक्षा का प्रकाश विद्यार्थियों की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों के विकास में ऊर्जा का कार्य करता है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रेमाण्ट ने शिक्षा–अर्जन को विकास का नाम दिया जो बालकों की शैशवस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गतिशील रहता है। मनोविज्ञानी स्टेलने हॉल के अनुसार शिक्षा अर्जन में बालकों की किशोरावस्था महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए शैशवस्था तथा किशोरावस्था महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं अवस्थाओं में उच्चतर एवं श्रेष्ठतर मानव विशेषताओं के दर्शन होते हैं। किशोरावस्था में युवा मन अपनी कल्पना तथा चिन्तन को ही सही मानता है और अपनी रुचियों से काम करना चाहता है। इन्हीं रुचियों के अनुसार जो कार्य करता है उसकी पुनरावृत्ति जब बार–बार होने लगती है तो वह आदत के रूप में परिवर्तित होने लगती है। शिक्षा ग्रहण करना भी कार्य का एक स्वरूप है और बालक जब रुचिपूर्ण शिक्षा ग्रहण करने का कार्य करता है, तो यह क्रिया उसमें अध्ययन की आदत के रूप में स्थापित हो जाती है। इस प्रकार अध्ययन आदतों का अर्थ है, अध्ययन क्रिया को इच्छापूर्वक बार–बार दोहराना और इस प्रकार यह क्रिया कुछ समय पश्चात् स्वचालित होने लगती है जिसे अध्ययन आदत कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अध्ययन की आदत एक अर्जित व्यवहार है। सीखने की प्रक्रिया में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। एक बालक की अच्छी अध्ययन आदतें उसके अधिगम को प्रेरित करेगी जबकि बुरी अध्ययन आदतें उसके अधिगम में बाधा पहुंचायेंगी। बालक की आदतों पर बालक की रुचियों, अभिप्रेरणा, अभिवृत्तियों, व्यक्तित्व एवं आकांक्षा स्तर आदि का प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त कक्षा शिक्षण एवं शिक्षण सामग्री भी बालकों की अध्ययन की आदतों को प्रभावित करती है।

बालकों की शैक्षिक उन्नति एवं जीवन के उद्देश्यों की सफलता में स्कूली शिक्षा की अहम भूमिका होती है। इसीलिए बच्चों की स्कूली शिक्षा हेतु अच्छे से अच्छे स्कूल में प्रवेश पर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्कूलों में अध्ययन भाषा माध्यम पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। प्राय: अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में दाखिले को प्राथमिकता दी जाती है। बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में दाखिले की यह प्रवृत्ति पहले तो शहरों में ही थी किन्तु आज ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में दाखिले ले रहे हैं। इस प्रकार बच्चों को शिक्षा देने का कार्य अंग्रेजी व हिन्दी, दोनों प्रकार के माध्यम वाले स्कूलों में होता है। अध्ययन का माध्यम जो भी बच्चों की अध्ययन आदतें उनकी शैक्षिक उपलब्धि, उनके लिए क्रमश: शैक्षिक अनुशासन तथा शैक्षिक विकास का प्रतिरूप है।

शैक्षिक विकास पूरे विश्व के लिए एक बहस का मुद्दा है। इसलिए विकसित राष्ट्र स्वयं की शैक्षिक स्थितियों को प्रमुखता से विकसित कर रहे हैं। उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा किसी भी विद्यार्थी के लिए उसकी आगामी शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण है इसलिए शिक्षा के इस स्तर पर विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि तथा उनका समायोजन आदि का अध्ययन, शोध का विषय है। पूर्व में किये गये अध्ययन, वर्तमान शोध को नई दिशा देने के साथ–साथ वर्तमान अध्ययन को विस्तार देने का कार्य करता है। स्कूलों में बच्चों की शैक्षिक स्थिति अथवा शैक्षिक प्रदर्शन कैसा हो, इस पर सभी अभिभावकगणों का ध्यान भी केन्द्रित रहता है। इस प्रकार बच्चों की अच्छी शैक्षिक उपलब्धि हेतु उनके स्कूलों में प्रवेश से लेकर उनके भाषा–माध्यम, अध्ययन सामग्री, अध्ययन की आदतों एवं अध्ययन के वातावरण पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

काले (2011) ने माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन कर पाया कि माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है तथा इन्हीं स्तरों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सामान्य धनात्मक सह–संबंध है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में भिन्नता हो सकती है किन्तु आदतें उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है। एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम में अलग–अलग बच्चों की अलग–अलग शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त होने पर बच्चों की अध्ययन आदतों एवं अध्ययन सामग्री पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अध्ययन की आदतों व पाठ्य सामग्री के अच्छे अनुप्रयोग एवं विद्यालय तथा घर के वातावरण से बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है। ऐलेक्स (2009) ने अलगाँव युक्त परिवारों के, उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बच्चों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन कर स्पष्ट किया कि सामान्य परिवारों के बच्चों की अपेक्षा, अलगाँव युक्त परिवारों के बच्चों की अध्ययन आदतें एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि में न्यूनता है। उक्त अध्ययन बच्चों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के लिए उनकी लिंगीय स्थिति एवं क्षेत्रीयता के साथ–साथ उनके पारिवारिक वातावरण को भी प्रभावशाली मानता है। बच्चों की अध्ययन की आदतें एवं शैक्षिक उपलब्धि पर उनके पारिवारिक अनुशासन का भी प्रभाव होता है।

मेजरवैंक्स (1982) द्धारा बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि एवं घर के वातावरण से संबंधित कई कारकों पर अध्ययन किया गया और पाया कि बच्चों पर माता–पिता का कम दबाव एवं बच्चों के साथ उनका सहानुभूति पूर्वक उत्साहवर्धन, बच्चों की उपलब्धियों के लिए जिम्मेदार होता है। चिन्नियान, रेलविन एवं येंगर (1984) ने अंग्रेजी माध्यम के 12–16 वर्ष के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों पर उनके संज्ञानात्मक एवं गैर–संज्ञानात्मक कारकों के प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि उच्च शैक्षिक उपलब्धि के लिए संज्ञानात्मक कारकों की अपेक्षा गैर संज्ञानात्मक कारक ज्यादा प्रभावी होते हैं। अर्थात विद्यार्थियों के मूल्य, व्यक्तित्व तथा उसके वातावरण आदि

* सहायक प्राध्यापक (बी.एड. विभाग) राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर (उत्तराखण्ड) भारत

शैक्षिक विकास में सहायक होते हैं। विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों के कई सावयवी तत्व हैं। इनमें विद्यार्थियों की समझने की क्षमता, अभ्यास द्वारा सीखने में विश्वास एवं भाषागत सम्प्रेषण महत्वपूर्ण है। विद्यार्थियों के उन्नत शैक्षिक परिणाम के लिए उपरोक्त सावयवी तत्व पूर्व रूप से तभी प्रभावी होते हैं जब विद्यार्थीगण अध्ययन एवं चिन्तन के अनुशासन में स्वयं को समाहित रखें। अध्ययन एवं चिन्तन के अनुशासन में समाहित बालक सदैव अधिगम की बाधाओं को पार कर प्रगति के पथ पर अग्रसर रहते हैं।

अध्ययन की आवश्यकता – वैश्वीकरण के इस युग में जहां व्यक्ति की आकांक्षाएं, आवश्यकताएं एवं उपलब्धियां ध्रुवीकृत हो रही हैं वहीं ग्रामीण एवं शहरी परिवेश में अन्तर करना कठिन होता चला जा रहा है। भारत की हृदयस्थली इन्दौर (म.प्र.) शहर से जुड़ा ग्राम तिल्लौर खुर्द के उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बच्चे भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। मुख्यत: ग्रामीण एवं कृषि परिवेश का यह गांव इन्दौर शहर के नजदीक होने के कारण, आधुनिकता एवं ग्रामीण संस्कृति का मिला जुला प्रतिरूप है। गांव के कुछ विद्यार्थीगण अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ने हेतु शहर जाते हैं तो कुछ गांव में स्थित हिन्दी माध्यम के स्कूलों में भी पढ़ते हैं। प्राय: सभी विद्यार्थियों की महत्वाकांक्षा रहती है कि परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करें। हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषा युक्त पाठ्यक्रमों को आत्मसात करने के लिए विद्यार्थियों में अच्छी अध्ययन आदतों का होना आवश्यक है। विद्यालयों में होने वाले पठन–पाठन के साथ–साथ घर के वातावरण एवं आर्थिक स्थिति को दृष्टिगत रखकर विद्यार्थियों को उच्च शैक्षिक उपलब्धि के लिए विशिष्ट तैयारी करने की आवश्यकता होती है। तिल्लौर खुर्द गांव में हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के बारे में जानकारी प्राप्त कर उनकी शैक्षिक उन्नति में आने वाली बाधाओं को दूर करने संबंधी सूचना उक्त विद्यार्थियों को दी जानी आवश्यक समझी गई है। अत: कृषक पृष्ठभूमि एवं आधुनिकता प्रधान इस गांव के उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत बच्चों को नियमित एवं समयबद्ध अध्ययन की आवश्यकता, उत्तरोत्तर शैक्षिक प्रगति के लिए निर्देशन तथा अध्ययन में भाषा माध्यम में आने वाली कठिनाईयों का समाधान करने के लिए, शोधकर्ता द्वारा उक्त अध्ययन करना सुनिश्चित किया गया है, जिससे आधुनिकता एवं ग्रामीण संस्कृति के परिवेश से सन्तुलित इस गांव के किसी भी भाषा माध्यम से अध्ययनरत विद्यार्थी, उच्च शैक्षिक उपलब्धियां प्राप्त कर स्वयं का उन्नयन करने के साथ–साथ क्षेत्र का विकास भी कर सकें।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि का पता लगाना।
2. उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों का अध्ययन भाषा माध्यम एवं उनकी लैंगिक स्थिति को आधार बनाकर अध्ययन आदतों की तुलना करना।
3. उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अध्ययन भाषा माध्यम के आधार पर उनकी अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध का पता लगाना।

परिकल्पनाएं –

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक सह–सम्बन्ध नहीं है।

शोध प्रारूप –

निर्दशन – प्रस्तुत शोध, जनपद इन्दौर (म0प्र0)के ग्राम तिल्लौर खुर्द के उच्च माध्यमिक स्तर के हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम से अध्ययनरत विद्यार्थियों पर केन्द्रित है। ग्राम तिल्लौर खुर्द को शोध क्षेत्र के रूप में लिया गया है तथा यहां के उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत छात्र–छात्राओं को शोध की जनसंख्या के रूप में लिया गया है। इन्दौर शहर से नजदीक स्थित इस गांव के उच्च माध्यमिक स्तर के हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ने वाले यहां के बच्चों को शोध हेतु न्यादर्श के रूप में लिया गया है। अध्ययनरत क्षेत्र एवं माध्यमिक स्तर की 12वीं कक्षा का चयन सौद्देश्य निर्दशन विधि (Purposive Sampling Method) द्वारा किया गया है। शोध की जनसंख्या से हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम से अध्ययनरत, 50–50 विद्यार्थियों का चयन दैव निर्दशन विधि (Random Sampling Method) की क्रमांक सूची प्रणाली (Sequential List Technique) के द्वारा किया गया है। न्यादर्शों की संख्यात्मक स्थिति का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

तालिका–1

चयनित न्यादर्शों की संख्यात्मक स्थिति का विवरण

लिंगीय विवरण	विद्यालयों के अध्ययन भाषा माध्यम का विवरण		कुल
	अंग्रेजी माध्यम	हिन्दी माध्यम	
छात्र	22	33	55
छात्राएं	28	17	45
कुल संख्या	**50**	**50**	**100**

शोध उपकरण – प्रस्तुत शोध में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का पता लगाने के लिए एम. मुखोपाध्याय एवं डी0एन0 सनसनवाल द्वारा तैयार की गई अध्ययन आदत मापनी (Study Habit Inventory) का उपयोग किया है। विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उसके विभिन्न पक्षों के मापन हेतु उक्त उपकरण की विश्वसनीयता .91 है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के रूप में उनके द्वारा पिछली कक्षा में अर्जित अंकों को लिया गया है।

सांख्यिकीय विधियां – उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के अध्ययन से संबंधित इस शोध में संकलित आंकड़ों के विश्लेषण के लिए सामान्य विवरणात्मक सांख्यिकी में मध्यमान एवं मानक विचलन तथा तर्क मूलक सांख्यिकीय के अन्तर्गत टी–मूल्य परीक्षण (t-test) एवं सह–संबंध गुणांक गणना (Coefficient of correlation) का प्रयोग किया गया है। विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य तुलना करने के लिए टी–मूल्य परीक्षण एवं विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंध स्थापित करने के लिए सह–संबंध गुणांक गणना का प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या –

तालिका–2 (पीछे देखें)

तालिका–2 में t का मान 0.28 प्राप्त हुआ है जो कि 5% सार्थकता स्तर पर सारणी के मान से कम है। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ने वाले उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है, जिससे परिकल्पना संख्या एक स्वीकार की जाती है।

यद्यपि हिन्दी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों का मध्यमान, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में

अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों के मध्यमान से अधिक है जिससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें, अंग्रेजी माध्यम से अध्ययनरत विद्यार्थियों से बेहतर हैं किन्तु अन्तर सार्थक न होने के कारण यह अन्तर नगण्य माना गया है।

तालिका-3 (पीछे देखें)

तालिका-3 के अनुसार t का मान 1.19 प्राप्त हुआ है जो कि 5% सार्थकता स्तर पर सारणी के मान से कम है। इससे स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत, छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है, जिससे परिकल्पना संख्या-दो स्वीकार की जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम के उच्च माध्यमिक स्कूलों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतें एक जैसी ही हैं। यद्यपि छात्राओं की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों का मध्यमान, छात्रों से संबंधित आंकड़ों के मध्यमान थोड़ा अधिक है जो कि छात्राओं की अच्छी अध्ययन आदतों का द्योतक है, किन्तु सार्थक अन्तर न होने के कारण यह अन्तर नगण्य है।

तालिका-4 (पीछे देखें)

तालिका-4 में हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित अवयवों का विस्तृत तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। तालिका के अनुसार हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित कुछ अवयवों जैसे समझने की योग्यता, एकाग्रता, कार्य विन्यास, अन्तर्क्रिया एवं अभ्यास करना आदि से संबंधित आंकड़ों के तुलनात्मक विश्लेषण में का मान क्रमश: 0.44, 0.18, 0.39, 0.53 एवं 1.42 प्राप्त हुआ है जो कि 5% सार्थकता स्तर पर सारणी के मान से कम है, जबकि तालिका में अध्ययन आदतों से संबंधित शेष अवयवों जैसे अध्ययन सेट्स बनाना, सहारा देना, अभिलेखन एवं भाषा कला से संबंधित आंकड़ों के तुलनात्मक विश्लेषण में ीं का मान क्रमश: 2.10, 2.08, 2.05 एवं 2.15 प्राप्त हुआ है जो कि 5% सार्थकता स्तर पर सारणी के मान से अधिक है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के सन्दर्भ में समझने की योग्यता, एकाग्रता, कार्य अभिविन्यास, अन्तर्क्रिया एवं अभ्यास करने जैसी क्रिया में सार्थक अन्तर नहीं है जबकि अध्ययन सेट्स बनाना, सहारा देना, अभिलेखन तथा भाषा कला में सार्थक अन्तर है।

तालिका-5

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सह-संबंध गुणांक की गणना का विवरण

क्र.	सह-संबंध गणना के चर	कुल विद्यार्थियों की संख्या(N)	सह-संबंध गुणांक (r)	(t-value)	सार्थकता स्तर
1.	अध्ययन आदतें	100	+.56	6.69	5%
2.	शैक्षिक उपलब्धि				

तालिका-5 के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सह-संबंध गुणांक +.56 प्राप्त हुआ है। विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य उक्त सह-संबंध गुणांक की सार्थकता का परीक्षण करने पर t का मान 6.69 प्राप्त हुआ है जो कि 98वर्ष के लिए 5% सार्थकता स्तर पर सारणी के मान 1.96 से अधिक है। अत: विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक परिमित धनात्मक सह-सम्बन्ध (Moderate Positive Correlation) है जिसके आधार पर परिकल्पना संख्या-3 अस्वीकार की जाती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत उच्च माध्यमिक स्तर के सभी विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि के मध्य परिमित अथवा सामान्य से ऊपर धनात्मक सह-संबंध है।

निष्कर्ष - वर्तमान अध्ययन में हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि से संबंधित आंकड़ों के विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं।

1. हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। अत: अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में उनके अध्ययन के माध्यम का प्रभाव नगण्य पाया गया है।
2. हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।
3. हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के विभिन्न अवयवों जैसे समझने की योग्यता, एकाग्रता, कार्य अभिविन्यास, अन्तर्क्रिया एवं अभ्यास जैसी क्रियाओं में कोई भी सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है जबकि विद्यार्थियों द्वारा अध्ययन सेट्स बनाना, सहारा देना, अभिलेखन तथा भाषाकला जैसी क्रियाओं में सार्थक अन्तर है।
4. हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सामान्य से ऊपर धनात्मक सह-संबंध है। अर्थात अच्छी अध्ययन आदतों वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च है।

शैक्षिक उपादेयता -

1. हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का विश्लेषण कर, विद्यार्थियों के अधिगम में अध्ययन के माध्यम के प्रति उठी भ्रांतियों को दूर किया जा सकता है कि अध्ययन आदतें अच्छी होने पर किसी भी भाषा माध्यम के स्कूलों में अध्ययन करने से उच्च शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त हो सकती है।
2. अच्छी अध्ययन आदतें विद्यार्थियों को उनकी परीक्षाओं में उच्च शैक्षिक उपलब्धि के लिए प्रोत्साहित करती हैं। इसलिए अच्छी अध्ययन आदतों के अवयवों के प्रति विद्यार्थियों को निर्देशित किया जा सकता है।
3. विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की जानकारी प्राप्त कर शिक्षकगण, विद्यार्थियों की उच्च शैक्षिक उपलब्धियां प्राप्ति हेतु रणनीति अथवा कार्य योजना बना सकते हैं।
4. विद्यार्थियों के ग्रामीण एवं शहरी परिवेश संबंधी अन्तर को कम करने में शिक्षकों द्वारा, विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों को व्यक्तिगत ध्यान देकर उनमें स्व-अभिप्रेरणा का बोध किया जा सकता है।

अन्तत: उक्त शोध, विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों के अभिभावकों एवं माता-पिता में भी अपने बच्चों में अच्छी अध्ययन आदतों के संचार के साथ-साथ अच्छी अध्ययन आदतों के घटकों के क्रियान्वयन करने के भाव को संचारित कर सकता है तथा वे यह समझने का प्रयास कर सकते हैं कि

अच्छी अध्ययन आदतों से बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि भी उच्च होती है। यह अध्ययन विशेष रूप से ग्राम तिल्हौर खुर्द, इन्दौर (म0प्र0) के विद्यालयी शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों के अभिभावकों एवं उनके माता-पिता के लिए विशेष रूप से उपयोगी है कि वे अपने बच्चों की अध्ययन शैली एवं उनकी शैक्षिक उन्नति के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा अपने पाल्यों में अच्छी अध्ययन आदतों का संचार करने का प्रयास कर सकेंगे जिससे अलग-अलग भाषा माध्यमों के स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में उत्तरोत्तर वृद्धि हो तथा स्कूलों का भाषा-माध्यम रूपी द्वन्द स्वयं ही समाप्त हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ऐलेक्स, पी0 (2009). स्टडी हेविट्स एण्ड ऐकेडेमिक ऐचीवमेन्ट ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम ब्रोकन फेमिलीज विद स्पेशल रिफरेन्स टू हायर सेकेन्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स. जी0सी0टी0ई0 जर्नल ऑफ रिसर्च एण्ड एक्सटेंशन इन ऐजुकेशन, 4(1), 50-50,
2. चिन्नयान, रेवलिन एवं येंगर (1984). साइकोमैट्रिक कोरिलेट्स ऑफ स्क्रूनास्टिक परफारमेंस. इण्डियन जर्नल ऑफ क्लीनिकल साइकोलॉजी, 2(1), 34-35,
3. काले, बी0एन0 (2011). स्टडी हैविट्स ऑफ सेकेन्डरी एण्ड हायर सेकेन्डरी स्कूल स्टूडेन्ट्स. एडुट्रेक्स : ए मन्थली स्केनर ऑफ ट्रेन्ड्स इन ऐज्यूकेशन, 10(10), 37-38,
4. मेजरवैंक्स, के0 (1982). फेमिली इनवॉरनमेन्ट ऑफ चिल्ड्रन्स ऐकेडेमिक एचीवमेन्ट:सेक्स एण्ड सोशल ग्रुप डिफरेन्स साइकोलॉजिकल अबस्ट्रेक्ट्स, 68(1), 2096,
5. मुखोपाध्याय, एम0 एण्ड सनसनवॉल, डी0एन0 (2005). मैनुअल फॉर स्टडी हैविट इन्वेन्टरी, नेशनल साइकोलॉजिकल कारपोरेशन, आगरा,
6. वेस्ट, जे0 डब्ल्यू0 एण्ड कॉन, जे0वी0 (1985). रिसर्च इन एजुकेशन, सेवन्थ एडीशन, प्रिन्टिश हॉल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।

तालिका-2

हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों से संबंधित आंकड़ों का विवरण

क्र.स.	विद्यालयों के भाषा माध्यम का विवरण	विद्यार्थियों की संख्या(N)	मध्यमान(M)	मानक विचलन (S.D.)	टी-मूल्य(t-value)	सार्थकता स्तर
1.	हिन्दी	50	140.62	11.03	0.28	5%
2.	अंग्रेजी	50	139.98	11.64		

तालिका-3

अंग्रेजी एवं हिन्दी माध्यम में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों से संबंधितआंकड़ों का विवरण

क्र.स.	विद्यालयों के भाषा माध्यम का विवरण	विद्यार्थियों की संख्या(N)	मध्यमान(M)	मानक विचलन (S.D.)	टी-मूल्य(t-value)	सार्थकता स्तर
1.	हिन्दी	55	138.75	10.30	1.19	5%
2.	अंग्रेजी	45	141.51	12.24		

तालिका-4

विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों के विभिन्न अवयवों से संबंधित आंकड़ों का विवरण

क्र.सं.	अध्ययन आदतों के मुख्य अवयव (Components)	हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों से संबंधित आंकड़े			अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों से संबंधित आंकडे			टी-मूल्य (t-value)	सार्थकता स्तर
		N_1	M_1	S.D. $_1$	N_2	M_2	S.D. $_2$		
1.	समझने की योग्यता	50	35.76	4.22	50	36.14	4.37	0.44	5%
2.	एकाग्रता	50	26.20	6.11	50	25.98	5.79	0.18	
3.	कार्य अभिविन्यास	50	26.16	5.90	50	26.58	5.59	0.39	
4.	अध्ययन सेट्स	50	13.96	2.22	50	13.02	2.26	2.10	
5.	अन्तर्क्रिया	50	7.32	1.16	50	7.48	1.78	0.53	
6.	अभ्यास करना	50	8.82	1.76	50	8.32	1.78	1.42	
7.	सहारा देना	50	13.33	1.70	50	12.58	1.90	2.08	
8.	अभिलेखन	50	7.51	0.72	50	7.20	0.82	2.05	
9.	भाषाकला	50	2.88	1.12	50	2.35	1.35	2.15	

बी.एड. के प्रशिक्षार्थियों में मूल्यों का अध्ययन

डॉ. एल.एच. पटेल *

प्रस्तावना – किसी भी समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक प्रतिष्ठा उस समाज के शिक्षकों की सामाजिक प्रतिष्ठा में झलकती है, ऐसा कहा जाता है कि कोई समाज अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 1986

शिक्षक के उपर बालक के संपूर्ण विकास का दायित्व होता है तथा उसकी जिम्मेदारी होती है कि वह बालक को एक सभ्य नागरिक बनाये तथा उसमें प्रजातंत्र, धर्म–निरपेक्षता एवं सामाजिक तथा व्यक्तिगत मूल्यों का विकास करे।

शिक्षक प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रशिक्षणार्थी को एक जिम्मेदार शिक्षक तैयार करना है। दूसरे शब्दों में एक भविष्य के शिक्षक को अध्यापन एवं व्यवसायिक कौशलों के साथ–साथ मूल्यों एवं अभिवृत्तियों का विकास करना है। अत: यह शोधनीय प्रश्न उठता है कि माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षणार्थीयों में मूल्यों का स्तर क्या है ? तथा मूल्यों की मात्रा कितनी है ? जो कि भविष्य में शिक्षक बनकर बालक को एक सभ्य नागरिक बनायेगा।

शोध के उद्देश्य – प्रस्तुत शोधकार्य के उद्देश्य निम्नानुसार निर्धारित किये गये है –

- बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों के वैयक्तिक मूल्यों का पता लगाना।
- बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों में व्यावसायिक मूल्यों का पता लगाना।
- अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के वैयक्तिक मूल्यों की तुलना करना।
- अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थियों के व्यवासायिक मूल्यों की तुलना करना।
- मूल्य शिक्षा के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध की परिकल्पनाएँ – प्रस्तुत शोधकार्य की उत्कल्पनाएँ निम्नानुसार निर्धारित की गई है –

HO1: अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के व्यावसायिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं है।

HO2: अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के वैयक्तिक मूल्यों में सार्थक अंतर नहीं है।

न्यायदर्श एवं परिसमिन – प्रस्तुत शोधकार्य गुजरात के उत्तरी दिशा के साबरकांठा जिले में हेमचंद्रचार्य उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी, पाटण संलग्न शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों तक सीमित रखा गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य में हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात यूनिवर्सिटी, पाटण सलंग्न दो अनुदानित एवं दो स्ववित्तपोषित शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षणाथियों को शामिल किये गये है।

प्रस्तुत शोधकार्य में प्रशिक्षणार्थीयों में 9 व्यावसायिक तथा 6 वैयक्तिक मूल्य कुल 15 मूल्यों को अन्वेषण किया गया हैं।

अध्ययन विधि, प्रविधि एवं उपकरण –

- प्रस्तुत शोधकार्य में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है।
- प्रस्तुत शोधकार्य में मूल्यमापनी का प्रयोग कर तथ्यों का संकलन किया गया है।
- संकलित तथ्यों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानकविचलन एवं टी–मूल्य का प्रयोग किया गया।

दत्तों का विश्लेषण एंव व्याख्या – प्रस्तुत शोधकार्य में हेमचंद्राचार्य उत्तर गुजरात सूनिवर्सिटी, पाटण सलंग्न दो अनुदानित एवं दो स्ववित्तपोषित शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों को प्राप्त संमकों का विश्लेषण एंव व्याख्या निम्नलिखित है –

सारणी संख्या 1.1

शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के मूल्यों के परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों का विवरण

क्रं.	मूल्य	Mean	%
	व्यावसायिक मूल्य		
1	ईमानदारी	1.4	46.66667
2	कठोर परिश्रम	1.597	53.23333
3	निष्पक्षता	2.644	88.1333
4	सत्यप्रियता	1.36	45.3333
5	सहभागी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध	2.844	94.8
6	समयनिष्ठा	1.23	41
7	नियमितता	2.401	80.03333
	वैयक्तिक मूल्य		
8	धैर्य	2.639	87.96667
9	विनम्रता	2.459	91.96667
10	क्षमा	2.618	87.26667
11	संवेदना	2.658	88.6
12	स्वतंत्र विचारशीलता	1.3	43.33333
13	व्यक्तिगत स्वास्थकर	2.38	79.33333

विश्लेषण – बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों में व्यावसायिक मूल्यों में कठोर परिश्रम 53.23 प्रतिशत, निष्पक्षता 88.13 प्रतिशत, सहभागी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध 94.8 प्रतिशत एवं ईमानदारी 46.66 प्रतिशत पाये गये। अर्थात् बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों में व्यावसायिक मूल्यों में समयनिष्ठा, सत्यप्रियता एवं ईमानदारी जैसे व्यावसायिक मूल्य कम पाये गये।

बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों में वैयक्तिक मूल्यों में धैर्य 87.96 प्रतिशत, विनम्रता 91.96 प्रतिशत, क्षमा 87.26 प्रतिशत एवं संवेदना 88.6 प्रतिशत एवं व्यक्तिगत स्वास्थकर 79.33 प्रतिशत पाये गये जबकि स्वतंत्र

* सहायक प्राध्यापक विद्यानगरी एम.एड. कॉलेज, हिम्मतनगर, गुजरात (म.प्र.) भारत

विचारशीलता 43.33 प्रतिशत पाया गया।

सारणी संख्या 1.1 (देखे)

विश्लेषण –प्रस्तुत सारणी क्रंमाक 1.1 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक महाविद्यालयों के व्यवसायिक मूल्यों के परिक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों टी मान 1.27 प्रात हुआ जो कि 0.01 एवं 0.05 स्तर पर असार्थक है।

अर्थात् उत्कल्पना अनुदानित एवं HO_1 स्ववित्तापोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के व्यावसायिक मूल्यों के सार्थक अंतर नहीं है का स्वीकार होता है।

सारणी संख्या 1.2 (देखे)

विश्लेषण – प्रस्तुत सारणी क्रंमाक 1.2 का अवलोकन करने से ज्ञात होंता है कि स्ववित्तापोषित एवं अनुदानिक शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के वैयक्तिक मूल्यों के परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों टी मान 6.645 प्राप्त हुआ। जो कि 0.01 एवं 0.05 स्तर पर असार्थक है।

अर्थात् उत्कल्पना HO_2 अनुदानित एवं स्ववित्तापोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के वैयक्तिक मूल्यों के सार्थक अंतर नहीं है का अस्वीकार होता है।

स्ववित्तपोषित एवं अनुदानिक शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों के वैयक्तिक मूल्यों के परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों के मध्यमान 2.738 जो कि स्ववित्तापोषित शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयों मध्यमान से अधिक है आशय है कि अनुदानिक शिक्षक महाविद्यालयों के वैयक्तिक मूल्यों से अधिक पाये गये।

शोध के निष्कर्ष – प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए –

- बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों में धैर्य, विनम्रता, क्षमा एवं संवेदना जैसे वैयक्तिक मूल्य अधिक पाये गये जबकि स्वतंत्र विचारशीलता जैसे वैयक्तिक मूल्य कम पाये गये।
- बी.एड. के प्रशिक्षणार्थीयों में कठोर परिश्रम, निष्पक्षता, सहभागी के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध एवं नियमितता जैसे व्यावसायिक मूल्य अधिक पाये गये जबकि समयनिष्ठा, सत्यप्रियता एवं ईमानदारी जैसे व्यावसायिक मूल्य कम पाये गये जबकि समय निष्ठा, सत्यप्रियता एवं ईमानदारी जैसे व्यावसायिक मूल्य कम पाये गये।
- अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षणार्थीयो के वैयक्तिक मूल्यों का स्तर समान पाया गया।
- अनुदानित महाविद्यालय के शिक्षक प्रशिक्षण प्रशिक्षणार्थियों में व्यावसायिक मूल्य अधिक पाये गये।

मूल्योन्मुख प्रशिक्षण हेतु सुझाव –

- सामाजिक जीवन में उभरने वाली समस्याओं पर वाद–विवाद एवं तर्क करना चाहिये।
- शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के मध्य संगोष्ठियों एवं कार्यानुभवों का आयोजन करना चाहिये।
- मूल्य संकट प्रदर्शित करने वाले द्रश्य–श्राव्य साधनों का प्रयोग करना चाहिये।
- स्वीकृत गलतियों के लिये क्षमा कर देना चाहिये।
- शिक्षक प्रशिक्षकों को आवश्यकता अनुसार प्रशिक्षणार्थीयों की सहायतार्थ उपलब्ध करना चाहिये।
- समाजोपयोगी उत्पादन कार्य को अध्यापक शिक्षा में अधिक महत्व देना चाहिये।
- प्रशिक्षणार्थीयों के लिये शिक्षक प्रशिक्षक को एक आदर्श रुप होना चाहिये।

सारणी संख्या 1.1
स्ववित्तपोषित शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षकणार्थियों के व्यवसायिक मूल्यों के परिक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों का तुलनात्मक विवरण

क्रं. सं.	मूल्य	स्ववित्तपोषित		अनुदानित		मध्यमान अतंर	टी–मूल्य
		Mean	S.D.	Mean	S.D.		
1	व्यावसायिक मूल्य	2.30	0.397	2.38	0.354	0.0614	1.27

सारणी संख्या 1.2
स्ववित्तपोषित शिक्षक महाविद्यालयों के प्रशिक्षकणार्थियों के वैयक्तिक मूल्यों के परिक्षण से प्राप्तप्राप्तांकों का तुलनात्मक विवरण

क्रं. सं.	मूल्य	स्ववित्तपोषित		अनुदानित		मध्यमान अतंर	टी–मूल्य
		Mean	S.D.	Mean	S.D.		
1	व्यावसायिक मूल्य	2.30	0.397	2.38	0.354	0.0614	1.27

माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

पंकज के. उपाध्याय *

प्रस्तावना – राष्ट्र, समाज की उन्नति और समृद्धि देश के युवाओं पर निर्भर है युवा शक्ति शारीरिक, मानसिक और नैतिक रूप से स्वस्थ हो तो समाज एवं राष्ट्र सदैव उन्नति की ओर प्रगतिशील होते हैं। विद्यालय बालकों के सर्वांगीण विकास का कार्य सिद्ध करता है जिसमें शिक्षक उद्देश्य प्राप्ति का साधक होता है आज के किशोर अवस्था के विद्यार्थी भविष्य के नागरिक है। सर्वांगीण विकास हेतु विद्यार्थियों को स्वास्थ्य शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, शांति शिक्षा, नैतिक शिक्षा, कला शिक्षा एवं वर्तमान समय में नितान्त आवश्यक यौन शिक्षा जैसे विषयों का अध्यापन एवं ज्ञान देना परमावश्यक है आज के तकनीकी एवं वैज्ञानिक युग में किशोरावस्था के विद्यार्थी को मोबाइल, इंटरनेट आदि के माध्यम से अश्लील साहित्य सहजता से उपलब्ध हो जाता है, जिससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर इसका नकारात्मक प्रभाव देखा जा सकता है चूँकि विद्यालय विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास का पथ प्रदर्शक है जिसमें शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है अत: विद्यालय में यौन शिक्षा दी जानी चाहिए।

प्राय: यौन शिक्षा शैक्षिक जगत में अति विवादास्पद विषय रहा है। रूढ़िवादी समाज एवं आधुनिक प्रगतिशील समाज दोनों की इस विषय के प्रति मनोवृत्ति भिन्न-भिन्न रही है तथापि वर्तमान समय और परिस्थितियों को समझते हुए विद्यार्थियों को किशोरावस्था में यौन शिक्षा दिया जाना अपेक्षित है किशोरावस्था में जातीय बातों के बारे में जानने की ओर इस हेतु औपचारिक शिक्षा के लिए बालकों में उत्सुकता एवं जिज्ञासा होती है और आज के संदर्भ में यौन शिक्षा अत्यन्त जरूरी है उससे ही युवा पीढ़ी में उचित और उपकारक जातीय मनोवृत्ति विकसित की जा सकती है। इस स्थान पर जातीय शिक्षा व्यवस्था हेतु कई पहलु एवं प्रश्न विचारणीय है यथा-

1. यौन शिक्षा कब देनी चाहिए?
2. यौन शिक्षा किसके द्वारा दी जानी चाहिए?
3. यौन शिक्षा कहाँ दी जानी चाहिए?
4. यौन शिक्षा हेतु विषयवस्तु क्या होनी चाहिए?
5. यौन शिक्षा देते समय क्या-क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए?
6. क्या वास्तव में यौन शिक्षा की आवश्यकता है?
7. तरूणावस्था की जातीय, शारीरिक, मानसिक समस्याएँ कौन-कौन सी है?
8. तरूणावस्था में बालकों की आकांक्षाएँ एवं अपेक्षाएँ कौन-कौनसी है?

उपर्युक्त प्रश्नों पर गौर करने से ज्ञात होता है कि यौन शिक्षा हेतु सर्वप्रथम माता-पिता की जवाबदारी होती है, किन्तु बाल सहज तरूणावस्था के समस्त प्रश्नों व समस्याओं का समाधान विद्यालय में एक शिक्षक के द्वारा उचित विषयवस्तु के माध्यम से किया जाना यथोचित है माध्यमिक स्तर पर विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों के माध्यम से यौन शिक्षा को दिया जा सकता है, इस हेतु माध्यमिक विद्यालय स्तर के अध्यापक एवं अध्यापिकाएँ क्या अभिवृत्ति रखते हैं? क्योंकि अगर विद्यालय में यौन शिक्षा दी जानी है तो उसका मुख्य माध्यम वर्तमान शिक्षक है अत: शोधकर्ता ने प्रस्तुत लघुशोध करने का निर्णय लिया, जिसका शीर्षक निम्नानुसार है-

समस्या कथन – *'माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन'*

शोध उद्देश्य –

1) यौन शिक्षा के प्रति माध्यमिक स्तर के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति ज्ञात करना।
2) अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति की तुलना करना।
3) विद्यालय में यौन शिक्षा सम्बन्धी सुझाव प्रदान करना।

शोध परिकल्पना –

1) अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सकारात्मक है।
2) अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श – शोधकर्ता ने प्रस्तुत संशोधन हेतु राजस्थान राज्य के बाँसवाड़ा जिले के 20 माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों के माध्यमिक स्तर पर पढ़ा रहे 30 अध्यापकों एवं 30 अध्यापिकाओं का चयन सादे्देश्य न्यादर्श चयन विधि द्वारा किया।

शोध उपकरण – यौन शिक्षा के प्रति माध्यमिक स्तर के शिक्षकों की अभिवृत्ति का मापन करने हेतु स्वनिर्मित प्रश्नावली द्वारा 'यौन शिक्षा अभिवृत्ति मापनी' का निर्माण शोधकर्ता द्वारा किया गया। उक्त प्रश्नावली में 5 क्षेत्रों से सम्बन्धित 60 कथनों को समाविष्ट किया गया एवं प्रश्नावली में विशेषज्ञों की राय एवं पूर्व परीक्षण के पश्चात् उक्त पाँच क्षेत्रों से सम्बन्धित 52 कथनों (प्रश्नों) को सम्मिलित किया गया। प्रश्नावली की विश्वसनीयता अर्द्धविच्छेदन विधि द्वारा '86 ज्ञात की गई है। उक्त 'यौन शिक्षा अभिवृत्ति मापनी' के 5 क्षेत्र निम्नानुसार है-

1) यौन शिक्षा सम्बन्धी अधिगम उद्देश्य एवं समस्याएँ।
2) यौन शिक्षा हेतु उचित समय सम्बन्धी।
3) यौन शिक्षा के लिए उचित विषयवस्तु सम्बन्धी।
4) यौन शिक्षा देने हेतु शिक्षण पद्धति एवं शैक्षणिक साधन।
5) यौन शिक्षा देते समय ध्यान में रखने योग्य सावधानियाँ।

अभिवृत्ति मापनी का प्रशासन एवं प्रदत्तों का संकलन – यौन शिक्षा अभिवृत्ति मापनी के प्रशासन हेतु बाँसवाड़ा जिले के 20 माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों के माध्यमिक स्तर पर अध्यापन करवाने वाले उपलब्ध शिक्षकों पर प्रमापनी को प्रशासित किया गया। प्रत्येक शिक्षक के प्राप्तांकों को उत्तर पत्रक के अनुरूप दत्तों का संकलन कर गणना हेतु सारणीबद्ध किया गया।

* शोधार्थी, मोहनलाल सुखड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण – अध्यापक एवं अध्यापिकाओं से प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु प्रतिशतांक एवं 'टी'परीक्षण का उपयोग किया गया जो निम्नानुसार है–

सारणी संख्या–1 (देखे)

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अध्यापकों की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य धनात्मक है जबकि अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति सामान्य से अधिक धनात्मक है। अत: शोध परिकल्पना संख्या–1 को स्वीकृत किया जाता है एवं कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर अध्यापक एवं अध्यापिकाएँ यौन शिक्षा के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं।

सारणी संख्या–2 अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा अभिवृत्ति के तुलना का विश्लेषण

क्र.सं.	अध्यापक/ अध्यापिका समूह	मध्यमान	मानक विचलन	'टी' परीक्षण
1.	अध्यापक (30)	216.70	14.51	.947 (NS)
2.	अध्यापिकाएँ (30)	220.30	12.36	

NS=(Non-significant) 0.05 स्तर पर सार्थक (तालिका मूल्य .96)

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि टी परीक्षण का मान .05 स्तर पर तालिका के मान से कम है अत: कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के अध्यापक अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है अर्थात् शोध परिकल्पना संख्या 2 को स्वीकृत किया जाता है कि अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध निष्कर्ष –

1) सम्पूर्ण प्रदत्तों के विश्लेषण के आधार पर यौन शिक्षा के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति सामान्य सकारात्मक एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति सामान्य से अधिक सकारात्मक पाई गई है।
2) अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृति सकारात्मक है एवं इससे कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव –

1) शोध निष्कर्ष के अनुसार समस्त शिक्षकों की यौन शिक्षा के प्रति अभिवृति सकारात्मक है अत: यौन शिक्षा द्धारा तरूणावस्था के विद्यार्थियों की समस्याओं एवं उनके समाधान हेतु सकारात्मक अभिवृति विकसित करने में सफल हो सकेंगे।
2) भावी शिक्षकों हेतु यौन शिक्षा को माध्यमिक शिक्षण प्रशिक्षण में विशिष्ट स्थान अनिवार्य विषयवस्तु के रूप में दिया जाना चाहिए न कि केवल तरूणावस्था एवं उसकी समस्याओं तक सीमित रखना चाहिए।
3) सेवारत शिक्षा कार्यक्रम में यौन शिक्षा सम्बन्धी विषयवस्तु एवं इसके शिक्षण हेतु शिक्षण पद्धतियों एवं शैक्षिक साधनों सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
4) माध्यमिक स्तर पर यौन शिक्षा सम्बन्धी विषयवस्तु को पाठ्यक्रम में क्रमिक स्थान दिया जाना चाहिए यथा– वनस्पति के प्रजनन निम्न स्तर के प्राणियों में प्रजनन, समस्त प्राणियों में प्रजनन, मनुष्य के जनन अंग एवं प्रजनन, वैवाहिक जीवन परिवार नियोजन, गर्भावस्था, बाल परवरिश, गर्भधारण, रजोदर्शन, हस्तमैथुन, स्वप्नदोष, प्रजोत्पत्ति प्रक्रिया आदि।
5) यौन शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न पाठों का निर्माण अथवा फिल्मों का निर्माण किया जा सकता है– जीवन और विकास, जीवन की वास्तविकता एवं रहस्य, तरूणावस्था से पुख्तावस्था की ओर, मापन प्रजनन, मानव विकास आदि।
6) यौन शिक्षा हेतु स्लाइड्स, चार्ट्स, मॉडल्स, फिल्मस्टीप आदि का उपयोग कर तरूणावस्था सम्बन्धी 'समस्याएँ एवं समाधान' जैसे विषयों पर प्रोजेक्ट तैयार करवाए जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. ढ़ौढ़ीयाल, एस.एन. एवं पाठक ए, 1972, 'शिक्षा अनुसंधान विधि शास्त्र', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
2. पाठक, पी.डी. एवं त्यागी जी.एस.डी., 2005 'कोठारी कमीशन', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. सिंह, डॉ. मया शंकर, 'अध्यापक शिक्षा गुणात्मक विकास', 2004, अध्ययन पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
4. सिंह, डॉ. मया शंकर, 'अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ', 2006, अध्यापन पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. सक्सेना, एन.आरत्र एवं मिश्रा, बी.के. एवं मोहन्ती, आर.के., 'अध्यापक शिक्षा' (2007), आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
6. शर्मा, आर.ए., 2007, 'शिक्षा अनुसंधान', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
7. Best, J.W. and Kahun, V.J., 1986, "Research in Education", (5th Ed.), Prentice Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi.
8. Elahi, Nizam, (2006), "Teacher Education in India (INSET), New Delhi, APH, Publishing Corporation.
9. Ganihar, Noorjehan & Nayak, Shivanand V., 2007 "Human Resource Development and Tacher Educaiton", Discovery Publishign House, New Delhi.
10. Siddiqui, Mohd. Akhtar, 2005, "In-Service Teacher Education", Ashish Publishing House, New Delhi.

सारणी संख्या–1 अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की यौन शिक्षा अभिवृत्ति के दत्तों का विश्लेषण

क्र.सं.	अध्यापक संख्या	कुल प्रश्नों में प्राप्तांक	कट ऑफ बिन्दु संख्या	कट ऑफ बिन्दु से अन्तर	कट ऑफ बिन्दु से अधिक प्राप्तांका प्रतिशत	अभिवृत्ति स्तर
1.	अध्यापक (30)	6504	4680	1821	38.91	सामान्य धनात्मक
2.	अध्यापिकाएँ (30)	6601	4680	1929	41.21	सामान्य से अधिक धनात्मक

राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के संदर्भ में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ. कमलेश झा * पंकज के. उपाध्याय **

प्रस्तावना – प्राचीलकालीन में अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का कोई नियम नहीं था, परन्तु शिक्षा वही देता था जो विद्या अर्थात् विषयवस्तु की जानकारी के साथ उसे अपने जीवन में उतारा एवं वानप्रस्थ आश्रम में पहुँचा हो, क्योंकि उम्र के उस पड़ाव तक व्यक्ति को अपने अनुभवों के द्वारा जीवन के समस्त महत्वपूर्ण पहलुओं का ज्ञान हो जाता था। इस प्रकार प्राचीनकाल में अध्यापकों का यही वास्तविक प्रशिक्षण था। यह कहा गया है कि 'कोई भी राष्ट्र अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता। इसलिए शिक्षक को समाज में महान् दृष्टि से देखा गया है एवं देखा जा रहा है। शिक्षा के विकास हेतु उपयुक्त शिक्षक तैयार करने के लिए 1980 के दशक से अध्यापक प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाने लगा। सामान्यत: इसमें शिक्षाशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों, शिक्षण कौशलों तथा विशिष्ट विषयों की शिक्षण तकनीकी, विधियों और विशिष्ट शिक्षण कौशलों में पारंगत करने के लिए अवसर उपलब्ध किए जाते हैं, परन्तु अध्यापकों के तात्कालिक प्रशिक्षण एवं वर्तमान परिवर्तनशील समाज एवं वैश्विक परिस्थितियों में बहुत अन्तर है इसके लिए उन्हें सेवाकालीन प्रशिक्षण से समयानुरूप वैश्विक तकनीकी विकास एवं शैक्षिक नवाचारों से परिचित करवाया जाता है दक्ष बनाया जाता है।

'सेवारत अध्यापक शिक्षा एक क्रियाब; योजना है, जिसका उद्देश्य शिक्षक एवं शैक्षिक सेवा कर्मचारियों का निरन्तर विकास है।'**.... एम.बी. बुच**

बुड डिस्पेच (1854), भारतीय शिक्षा आयोग (1882-83), लॉर्ड कर्जन की शिक्षा नीति (1904), शिक्षा नीति (1913), सार्जेन्ट समिति (1944), विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1952-53), भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) एवं नई शिक्षा नीति (1986) आदि आयोगों एवं समितियों ने स्वीकार किया कि शिक्षा की गुणवत्ता एवं राष्ट्रीय विकास में योगदान देने वाले सभी कारकों में निस्संदेह शिक्षक की योग्यता, क्षमता और चरित्र सबसे महत्वपूर्ण है अत: सेवाकाल में भी शिक्षक को प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

उपरोक्त हेतु से राष्ट्रीय शिक्षा नीति के परिणामस्वरूप देश में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET), शिक्षक-शिक्षा महाविद्यालयों (CTE), उच्च अध्ययनशिक्षा संस्थान (IASE) आदि की स्थापना सेवाकालीन अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने हेतु की गई। जिसमें जिला शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थानों को प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षण का दायित्व सौंपा गया है। वर्तमान में राष्ट्र की शैक्षिक प्राथमिकताओं में बदलाव आया है। आज विश्व को शांति शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा एवं पर्यावरण तथा स्वास्थ्य शिक्षा जैसे नवीन विषयों की आवश्यकता है जिन्हें विद्यालयों में प्रदान करने हेतु वर्तमान सेवारत शिक्षकों को इनका प्रशिक्षण देना आवश्यक है। अत: प्रस्तुत शोधकार्य में राष्ट्रीय शैक्षिक प्राथमिकताओं के संदर्भ में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षणों का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

2. समस्या कथन – 'राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के संदर्भ में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समालोचनात्मक अध्ययन।'

3. शोध समस्या के उद्देश्य –

(i) जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के उद्देश्यों का पता लगाना।

(ii) राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के संदर्भ में डाइट के सेवाकालीन प्रशिक्षणों की भूमिका का अध्ययन करना।

(iii) डाइट, में कार्यरत शिक्षक प्रशिक्षकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता एवं क्रियान्वयन सम्बन्धी अभिमत ज्ञात करना।

(iv) डाइट द्वारा आयोजित सेवाकालीन कार्यक्रमों की गुणवत्ता एवं क्रियान्वयन के प्रति सेवारत प्राथमिक शिक्षकों का अभिमत ज्ञात करना।

4. शोध परिकल्पनाएँ –

(i) डाइट द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन विभिन्न आयोगों एवं शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप किया जाता है।

(ii) डाइट द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति शिक्षक प्रशिक्षकों का अभिमत सकारात्मक है।

(iii) डाइट द्वारा आयोजित सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति सेवारत शिक्षकों का प्राप्त प्रशिक्षण सम्बन्धी अभिमत सकारात्मक है।

5. न्यादर्श – प्रस्तुत शोधकार्य में न्यादर्श का चयन भिन्न-भिन्न पद्धतियों से निम्नानुसार किया-

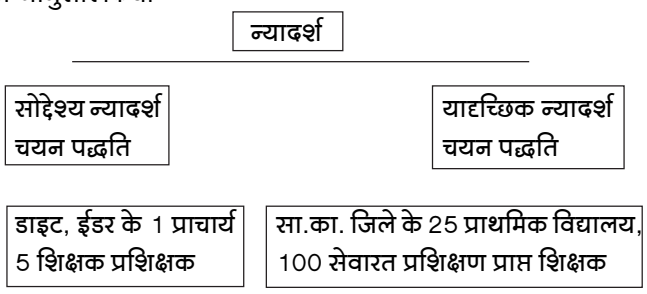

6. परिसीमन – प्रस्तुत शोधकार्य गुजरात राज्य के साबरकाठा जिले के ईडर तहसील मुख्यालय पर स्थित जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान तथा इससे सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त जिले के शिक्षकों तक सीमित रखा गया है।

7. शोध विधि – प्रस्तुत शोधकार्य की प्रकृति को देखते हुए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

* व्याख्यता, शिक्षा, राजकीय महाविद्यालय, खेरवाड़ा, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय,उदयपुर (राज.) भारत
** शोधार्थी मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

8. सांख्यिकीय तकनीक (प्रविधि) – प्रस्तुत शोधकार्य में प्राप्त दत्तों के विश्लेषण हेतु प्रतिशत एवं काई स्क्वायर का उपयोग किया गया।

9. शोध उपकरण – शोध में प्रामाणिक एवं तथ्यात्मक दत्ता एकत्रित करने हेतु निम्न उपकरणों का प्रयोग किया गया–

9.1 दस्तावेजों का अध्ययन – मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, विविध शिक्षा आयोगों, एनसीईआरटी, नई दिल्ली एवं जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा प्रकाशित विविध दस्तावेजों का अध्ययन सेवाकालीन प्रशिक्षण के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों की प्रकृति जानने हेतु किया गया।

9.2 साक्षात्कार अनुसूची – जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, ईडर के प्राचार्य एवं शिक्षक प्रशिक्षकों के अभिमत जानने हेतु साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया।

9.3 संरचित प्रश्नावली – सेवारत प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्राप्त प्रशिक्षण के प्रति अभिमत जानने हेतु प्रश्नावली का निर्माण किया गया।

10. दत्ता संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या

10.1 दस्तावेजों के अध्ययनसे प्राप्त निष्कर्ष – जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के उद्देश्य निम्नलिखित है–

(1) प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि एवं उससे जुड़े व्यक्तियों की कार्यशैली, गुणवत्ता, कार्यदक्षता तथा शैक्षिक विकास करना।

(2) CRC और BRC के संदर्भ व्यक्तियों को तैयार करना तथा मार्गदर्शन देना।

(3) प्राथमिक शिक्षकों हेतु अल्पावधिक एवं दीर्घावधि कार्यशिविरों का आयोजन कर प्रशिक्षण देना।

(4) प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं स्थगितता को दूर कर गुणात्मक सुधार करना।

10.2 प्राचार्य एवं शिक्षक प्रशिक्षकों से प्राप्त दत्तों के विश्लेषण सम्बन्धी निष्कर्ष

(1) मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा निर्धारित समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।

(2) सेवाकालीन प्रशिक्षण में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के विषय जैसे कि योग एवं प्राणायाम, स्वास्थ्य शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, चित्रकला, नैतिक एवं मूल्य शिक्षा, यौन शिक्षा आदि को स्थान दिया जाता है जबकि शांति शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा आदि को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता है।

(3) डाइट में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने सम्बन्धी कार्य होते हैं, परन्तु प्राथमिक शिक्षा के सावर्त्रीकरण एवं प्रचार प्रसार का कार्य नहीं होता है जो कि शिक्षा के अधिकार अधिनियम के तहत वर्तमान राष्ट्रीय प्राथमिकता है।

(4) प्रशिक्षण व्यवस्था, कार्यप्रणाली एवं पाठ्यक्रम में प्रवर्तमान समय के अनुरूप परिवर्तन होना चाहिए।

(5) भौतिक सुविधा के साधनों का उपयोग होता है किन्तु पुस्तकालय कम्प्यूटर लेब एवं प्रयोगशाला का सेवाकालीन प्रशिक्षण में कम उपयोग होता है।

(6) प्रशिक्षण हेतु आर्थिक सुविधा नियमानुसार उपलब्ध है तथा प्रशिक्षकों एवं शिक्षकों में आपसी सम्बन्ध सामान्य पाए गए।

10.3 सेवाकालीन प्रशिक्षण के प्रति सेवारत शिक्षकों के अभिमत

(1) सेवारत शिक्षकों के अनुसार प्रशिक्षण में नैतिक मूल्यों, स्वास्थ्य शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, ट्राफिक नियमन, यौन शिक्षा जैसे राष्ट्रीय प्राथमिकता के विषयों का समावेश होता है जबकि शांति शिक्षण, तकनीकी शिक्षा, आध्यात्मिक शिक्षा, डिजास्टर मेनेजमेन्ट, स्त्री शिक्षा आदि को प्रशिक्षण में जोड़ना चाहिए।

(2) सेवाकालीन प्रशिक्षण में मुक्त चर्चा, समूह कार्य, क्रियात्मक प्रायोगिक आदि कम होते हैं एवं व्याख्यान अधिक होते हैं।

(3) डाईट पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कम्प्यूटर लेब, भाषा प्रयोगशाला आदि उपलब्ध है परन्तु उनका उपयोग कम ही होता है।

(4) अधिकांशत: शिक्षक मानते हैं कि डाइट के सेवाकालीन प्रशिक्षण की गुणवत्ता एवं कार्य प्रणाली अच्छी है, परन्तु प्राप्त प्रशिक्षण का सम्पूर्ण उपयोग शिक्षक विद्यालय में नहीं करते हैं।

(5) शिक्षक मानते हैं कि सेवाकालीन प्रशिक्षण उपयोगी है एवं डाइट अपने निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Best, J.W. and Kahun, V.J., 198í, "Research in Education", (5th Ed.), Prentice Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi.
2. Elahi, Nizam, (200í), "Teacher Education in India (INSET), New Delhi, APH, Publishing Corporation.
3. Ganihar, Noorjehan & Nayak, Shivanand V., 2007 "Human Resource Development and Tacher Educaiton", Discovery Publishign House, New Delhi.
4. Siddiqui, Mohd. Akhtar, 2005, "In-Service Teacher Education", Ashish Publishing House, New Delhi.
5. ढ़ौढ़ीयाल, एस.एन. एवं पाठक ए, 1972, 'शिक्षा अनुसंधान विधि शास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
6. पाठक, पी.डी. एवं त्यागी जी.एस.डी., 2005 'कोठारी कमीशन', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
7. पाण्डेय, राशकल एवं किसलय, अनुपम, 2005, 'भारतीय शिक्षा आयोग, आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
8. सिंह, डॉ. मया शंकर, 'अध्यापक शिक्षा गुणात्मक विकास', 2004, अध्ययनपब्लिशर्स, नई दिल्ली।
9. सिंह, डॉ. मया शंकर, 'अध्यापक शिक्षा की चुनौतियाँ', 200१, अध्यापन पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
10. सक्सेना, एन.आरत्र एवं मिश्रा, बी.के. एवं मोहन्ती, आर.के., 'अध्यापक शिक्षा' (2007), आर लाल बुक डिपो, मेरठ।
11. सक्सेना, ए.के., 2005, 'शिक्षा में अनुसंधान', पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर। शर्मा, आर.ए., 2007, 'शिक्षा अनुसंधान', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ

पाठ्य-पुस्तक निर्धारण: विषय अध्यापकों की प्रतिक्रिया

रश्मि पाण्ड्या *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध अध्ययन पाठ्य-पुस्तक निर्धारण में अध्यापकों की प्रतिक्रिया से सम्बधित है। इसके लिए इंदौर शहर के निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों जो CBSE से सम्बद्ध हैं का चयन किया गया। इसके अन्तर्गत कुल 77 अध्यापकों जो गणित, विज्ञान व सामाजिक विज्ञान विषय से सम्बद्ध थे को सम्मिलित किया गया जिनमें कक्षा VI के 26 कक्षा VII 26 व कक्षा VIII के 25 अध्यापक शामिल किए गए। इसमें गणित के 25 विज्ञान के 25 व सामाजिक विज्ञान के 27 अध्यापक सम्मिलित थे।

प्रस्तुत अध्ययन हेतु प्रथम उपकरण के रुप में लिकर्ट प्रकार की प्रतिक्रिया मापनी विकसित की गई जिसमें 40 कथनों को सम्मिलित किया गया प्रत्येक कथन पर 5 विकल्प दिए गए जिसमें से एक पर सही (✓) का चिन्ह लगाकर अध्यापकों को अपनी राय दर्शानी थी। कथनों में से लगभग आधे कथन धनात्मक व अन्य ऋणात्मक रखे गऐ। द्वितीय उपकरण के रुप में पाठ्य-पुस्तक निर्धारण मूल्यांकन प्रश्नावली बनाई गई जिसमें कुल 10 प्रश्नों का समावेश है। प्रत्येक प्रश्न के दो भाग है। भाग 'अ' व भाग 'ब'। प्रत्येक प्रश्न के 'अ' भाग में निश्चित उत्तर विकल्प दिए गए जिनमें से एक से अधिक पर सही का चिन्ह लगाकर उत्तर दाताओं को अपनी राय देनी है। प्रत्येक प्रश्न का भाग 'ब' मुक्त उत्तर प्रश्न है और पाठ्य-पुस्तक निर्माण प्रक्रिया किस प्रकार होनी चाहिए ? इससे सम्बधित है। प्रतिक्रिया मापनी व प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों के अंकों का योग कर जो प्राप्तांक प्राप्त हुए उनका विश्लेषण असमान आकार के एक मार्गीय एनोवा द्वारा किया गया। प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राप्त परिणाम ये प्रदर्शित करते हैं कि गणित, विज्ञान व सामा.विज्ञान के अध्यापकों की पाठ्य-पुस्तकों की प्रतिक्रिया प्राप्ताकों के माध्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। प्राप्त परिणामों को विस्तार से शोध-पत्र में प्रतिशत: उल्लेखित किया गया है।

प्रस्तावना – पाठ्य-पुस्तकें शिक्षा प्रणाली की रीढ़ हैं। अध्यापक एवं विद्यार्थियों के बीच सम्पूर्ण कक्षा कक्षीय व्यवहार पाठ्य-पुस्तक के इर्द-गिर्द घूमता है। एक ओर जहाँ पाठ्य-पुस्तक शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिये 'बाईबिल' और 'कुरान' हैं तो परीक्षा के लिहाज से लक्ष्मण-रेखा है जिसका अतिक्रमण किसी के लिये भी वांछनीय नहीं है। पाठ्य-पुस्तक समस्त अर्जित ज्ञान में धुरी का काम करती है। पाठ्य-पुस्तक 'मुद्रित-शिक्षक' हैं। सम्यक प्रकार से लिखी और सम्पादित पाठ्य-पुस्तकें एक औसत अध्यापक से भी बढ़कर सिद्ध होती हैं। शिक्षण अनुदेशन का प्रमुख साधन पुस्तकें ही होती हैं। पाठ्य-पुस्तके परोक्ष अनुभवों की एक बड़ी मात्रा इस प्रकार सुसंगठित रुप से प्रस्तुत करती हैं कि ये अनुभव भावी चिंतन व पड़ताल का पोषण कर सके। अत: पाठ्य-पुस्तकें विषय-वस्तु का एक ऐसा रुप हैं जो शोध शिक्षण और सृजनात्मक चिंतन की त्रिआयामी कर्मभूमि है। यही कारण है कि पाठ्य-पुस्तकें शिक्षा के क्षेत्र के लिये अपरिहार्य हैं।

स्वाध्याय और आत्मविश्वास की वृद्धि इन पाठ्य-पुस्तकों द्वारा ही की जा सकती है। त्रिपाठी (1970) ने अपने अध्ययन में दर्शाया है कि पाठ्य-पुस्तकों को 75% अध्यापक शिक्षा का आधार मानते हैं। शिक्षा का इतिहास इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि पाठ्य-पुस्तकें शिक्षा को प्रभावित करती हैं और शैक्षिक परिवर्तन से प्रभावित होती हैं। कॉमेनियस और पेस्टॉलाजी ने क्रमश: 17वीं, 18वीं और 19वीं शती में प्राय: शिक्षा सुधारों को पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से ही प्रसारित किया था।

शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी स्वीकार किया है कि शिक्षा के नवीन सिद्धातों के प्रचार, पाठ्यचर्या के उन्नयन और प्रगतिशील अध्यापन विधियों के प्रसार हेतु पाठ्य-पुस्तकें अपने अंदर समेटी विशेषताओं के कारण विश्व-भर में ज्ञान और चिंतन का विश्वसनीय साधन बनी हुई हैं। इसी कारण इनकी महत्ता वर्तमान में बढ़ गई है।

शासकीय विद्यालयों में NCERT, SCERT व पाठ्य-पुस्तक निगम द्वारा संचलित व चयनित पुस्तकें ही चयन की जा सकती हैं। इसके विपरीत अशासकीय विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों का चयन विषय-विशेषज्ञ व समिति द्वारा मिलकर किया जाता है। पाठ्य-पुस्तकों के चयन के संबंध में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर ने कहा है कि –

पाठ्य-पुस्तको की विषय-वस्तु
प्रस्तुतीकरण आदि बालकों की
अभिरुचियों व आवश्यकताओं के
अनुरुप होना चाहिए।

कोठारी आयोग के अनुसार- 'पाठ्य-पुस्तकों के चयन में उचित ध्यान नहीं दिया जाता है। परिणाम स्वरूप निम्नकोटि की पाठ्य-पुस्तकों का व्यवसाय बहुत ही लाभदायक था इसी कारण इस प्रकार की पुस्तके निर्धारित होती थी। अत: कोठारी आयोग के अनुसार पाठ्य-पुस्तकों का चयन राज्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। अनेक स्थितियों में पुस्तको की गुणवत्ता में सुधार आया है परन्तु फिर भी सामान्य स्तर पर इनका चयन अभी भी शोचनीय है।

औचित्य – यद्यपि पाठ्य-पुस्तके सर्वत्र हैं तथापि उनकी दशा पर विचार करने से विदित होता है कि उनसे अक्सर न तो पढ़ाने वाले अध्यापक संतुष्ट हैं, न पढ़ने वाले छात्र। शिक्षा-विभाग के अधिकारीगण भी इन पाठ्य-पुस्तकों के अल्पगुणों की प्राय: शिकायत करते देखे गए हैं।

हालांकि शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। अत: पाठ्य-पुस्तक निर्धारण में अध्यापकों की प्रतिक्रियाएं ही इस अध्ययन को सही मार्गदर्शन प्रदान कर सकती है।

उद्देश्य – निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में गणित,विज्ञान,और सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों की पाठ्य-पुस्तक पर प्रतिक्रिया की तुलना करना।

परिकल्पना – गणित, विज्ञान,और सामाजिक विज्ञान की माध्यमिक अवस्था पर पाठ्य-पुस्तकों पर विषय अध्यापकों की प्रतिक्रिया के माध्य प्राप्तांकों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

न्यादर्श – इंदौर शहर के सी.बी.एस.ई. विद्यालयों के माध्यमिक स्तर के कुल 77 अध्यापकों को सम्मिलित किया गया जिन में कक्षा VI के 26, VII के 26 व VIII के 25 अध्यापक शामिल किये गए। निम्न तालिका द्वारा न्यादर्श का स्वरूप स्पष्ट किया गया है-

* शोधार्थी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

तालिका क्रं.-1 अध्यापकों का कक्षावार व विषयवार विवरण

क्र.	कक्षा स्तर/ विषय अध्यापक	गणित	विज्ञान	सामाजिक विज्ञान	योग
1.	VI	8	9	9	26
2.	VII	9	8	9	26
3.	VIII	8	8	9	25
	कुल	25	25	27	27

उपकरण - प्रस्तुत अध्ययन हेतु लिकर्ट प्रकार की प्रतिक्रिया मापनी विकसित की गई जिसमें 40 कथनों को सम्मिलित किया गया। प्रत्येक कथन पर पाँच विकल्प पूर्णत: सहमत (पू.स.), सहमत (स.), अनिश्चित (अनि.), असहमत (अस.), पूर्णत: असहमत (पू.अस.) दिये गए हैं जिसमें से किसी एक पर सही (✓) का चिन्ह लगाकर अध्यापको को अपनी राय दर्शानी थी। कथनों में से लगभग आधे कथन धनात्मक तथा अन्य ऋणात्मक रखे गये। धनात्मक कथनों पर क्रमानुसार 5,4,3,2,1 तथा ऋणात्मक कथनों पर 1,2,3,4,5, अंक प्रदान किये गये। इस प्रकार प्रत्येक कथन पर प्राप्त अंकों का योग कर सम्पूर्ण प्रतिक्रिया मापनी का प्राप्तांक प्राप्त किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण व परिणाम :- प्राप्तांकों का विश्लेषण असमान आकार के एक मार्गीय एनोवा द्वारा किया गया। प्रत्येक समूह के संदर्भ में प्रतिक्रिया के माध्य प्राप्तांक, प्रामाणिक विचलन, प्रामाणिक त्रुटि एवं जनसंख्या मापन हेतु 95% विश्वस्तता अंतराल की निम्न और उच्च सीमाएं निम्नानुसार हैं -

तालिका क्रं.-2 (देखे) उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि संपूर्ण समूह के संदर्भ में प्रतिक्रिया प्राप्तांकों का माध्य 134.61 है एवं जिसकी प्रा.त्रुटि 1.81 है। माध्य हेतु 95% विश्वस्तता अंतराल 131.01 से 138.21 है। ये काफी छोटा अंतराल है और विश्वस्तता दर्शाता है। माध्य का 120 से 160 के मध्य होना दर्शाता है कि शिक्षकों की पाठ्य-पुस्तकों पर प्रतिक्रिया कुछ हद तक धनात्मक है। तीनों विषय समूह के अध्यापकों के प्राप्तांकों का एक मार्गीय एनोवा द्वारा विश्लेषण के परिणाम निम्न तालिका द्वारा प्रस्तुत है-

तालिका क्र.-3 एक मार्गीय एनोवा सारांश

Sources	Sum of Squares	df	Mean Squares	F	Sig.
Between Group	1109.965	2	554.983	2.276	0.110
Within group	18046.35	74	243.870		
Total	19156.31	76			

तालिका से स्पष्ट है कि F का मान 2.276 है जो कि सार्थकता के 0.110 स्तर पर सार्थक है क्योंकि सार्थकता का 0.110 स्तर 0.05 स्तर से निम्न है। अत: F का मान सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: हम कह सकते हैं कि गणित,विज्ञान और सामा.विज्ञान समूह के अध्यापकों की प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

निष्कर्ष - उपरोक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि गणित, विज्ञान और सामा.विज्ञान समूह के अध्यापकों की प्रतिक्रिया में कोई सार्थक अंतर नहीं है। विभिन्न कक्षा स्तरों के समस्त अध्यापकों की पाठ्य-पुस्तकों पर प्रतिक्रिया कुछ हद तक धनात्मक रही।

लगभग सभी अध्यापक पाठ्य-पुस्तक निर्धारण प्रणाली में परिवर्तन के पक्षधर हैं। विद्यार्थियों के ज्ञान को आज के युग में प्रगत बनाने के लिए परिवर्तन अति आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि पुस्तक बेहतर उपलब्धि प्रदान करती हो। किसी भी पुस्तक का सही मूल्यांकन विषय शिक्षक द्वारा ही संभव है। अत: शिक्षक प्रतिक्रिया को भी पुस्तक निर्धारण में शामिल किया जाना शिक्षा की गुणवत्ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण कदम है।

प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षकों ने पाठ्य-पुस्तक की सरल भाषा विषय-वस्तु का कक्षा-स्तर के अनरूप होना, विद्यार्थियों के पर्यावरण से संबंधित होना, नवीन विषय-वस्तु का पूर्व ज्ञान पर आधारित होना, उद्देश्यों की प्राप्ति में सक्षमता, शिक्षण विधियों के अनुरूप चित्रांकन अभ्यास प्रश्नों का सम्मिलित होना जैसे पक्षों के प्रति धनात्मक प्रतिक्रिया दी जो कि अध्ययन को सार्थकता प्रदान करती है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है पाठ्य-पुस्तक निर्धारण में शिक्षकों की प्रतिक्रिया शमिल करना शिक्षा की गुणवत्ता के लिए आवश्यक है।

References -

1. Chaudhari, I.S : A Critical Evaluation Of School Text Book Improvement Programmes In India. Unpublished Ph.D. Thesis, Punjab University , (1977).
2. Chaudhari, U.S. : An Evaluation Of Nationalized Hindi Text Books (Classes I Through VIII) Of Madhya Pradesh, Unpublished Ph.D. , D.A.V.V, Indore, (1976).
3. Gagneja , S.C. : The Treatment Of America, England, Russia, Japan, Chaina And Pakistan In Social Studies, History And Geography Text Books For High/ Higher Secondary Schools. D.A.V. College Of Education. Abohar , (1974).
4. जैन, नीलिमा : पाठ्य पुस्तक प्रश्न और चिंतन प्रक्रियाएँ, ब्लूम टेक्सोनॉमी पर आधारित विश्लेषण.अप्रकाशित एमएड.शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय , इंदौर , (1972).
5. प्रो.जैन, बी.एम : रिसर्च मेथोडोलॉजी.रिसर्च पब्लिकेशन इन सोशियल सांइसेज, नई दिल्ली , (1981-82) पृ.81,05, 154, 161, 166.
6. Nair, K.S. : A Study Of The Concept Of Standards In English Through An Analysis Of The Text Books Prepared For Secondary School Pupils In Kerala State. Unpublished Ph.D. , Kerala University, (1976).
7. Pattabiram, G. : An Evaluation Of Nationalished Text Books For Higher Classes In Social Studies In Secondary School Of Andhra Pradesh. Unpublished Ph.D. , MSU , (1973).
8. पाटीदार, भरतलाल : सामाजिक अध्ययन कक्षा 8 वीं के दो विभिन्न पाठ्य- पुस्तकों में वर्णित सामाजिक पूर्वाग्रहों का पाठ्यक्रम विकास हेतु विश्लेषण एवं मूल्यांकन.देवी अहिल्या विश्वविद्यालय , इदौंर , (1993).

तालिका क्रं.-2 प्रतिक्रिया के माध्य प्राप्तांक, प्रामाणिक विचलन, प्रामाणिक त्रुटि तथा माध्य हेतु 95% विश्वस्तता अंतराल का विवरण

क्र.	प्रतिक्रिया समूह	संख्या	माध्य	प्रा.विचलन	प्रा.त्रुटि	माध्य हेतु 95%विश्वस्तता अंतराल	
						निम्न सीमा	उच्च सीमा
1.	गणित	25	137.48	15.82	3.16	130.95	144.01
2.	विज्ञान	25	137.32	19.31	3.86	129.35	145.29
3.	सा.विज्ञान	27	129.44	10.90	2.10	125.13	133.76
	योग	77	134.61	15.88	1.81	131.01	138.21

Impact Of Handball Training On Strength Of Handball Players

Dr. B.K. Choudhary * Paranveer Singh Chouhan **

Abstract - Handball is a game which is actually requires body strength for stopping attackers from approaching the goal and along with that it is also have a need of high impact intermitted exercise with many lateral movements like jumps and throws and these all can be improved by physical training.The objective of this paper is study the impact of handball training on strength of handball players. It is evaluated the pre and post effect on grip strength of LH, RH and strength of back muscles.The present study is selected 14 male players who are having handball specialization from pacific university. Random sampling method is used for collection of samples.It is concluded that after training strength and endurance of handball players are improved.

Keywords - handball players, dynamometer test, resistance, strength.

Introduction - Handball is a running sport and it can provide a large involvement to muscular endurance framing in the required skills common to other sports such as running, jumping, throwing and catching the rules are simple and the activity level is high. It is a game which is actually requires body strength for stopping attackers from approaching the goal.

Available research suggests that well successful players have well developed aerobic and anaerobic fitness. This game requires high impact intermitted exercise with many lateral movements like jumps and throws and these all can be improved by physical training. For this resistance programs are designs to enhance strength and power in both the upper and lower limbs.

The present study have immense importance of physical education teachers and coaches in accepting the nature handball training in regard with strength and it may assist physical teacher and coaches in grading and classifying players according to their strength level. By the study of handball training instructor can design the training program according to the requirement of the position and duration of training.

Objective-

The objective of this paper is to study the impact of handball training on the strength and power like grip strength of LH, grip strength of RH, and strength of back muscles of handball players.

Material And Methods -

For this study 14 male handball specialized players are selected from Pacific University. They all are selected by random sampling method and it is applied to the age group of 18-25 years. For the measurement of grip strength of LH, grip strength of RH and strength of back muscles, dynamometer is used.

Results And Findings:

Table-1 (See in next page)

Mean value and T- value of grip strength of LH, grip strength of RH, strength of back muscles of handballers

It shows that grip strength of RH improved with mean differences of 2.92 Kg, grip strength of LH improved significantly with mean differences of 2.26 kg, and strength of back muscles improved with mean differences of 2.57 kg. It is concluded here that strength of handball players are improved by giving them physical training. It may also helpful to increased strength and endurance of players as well.

References -

1. "Hardayal Singh: "SCIENCE OF SPORTS TRAINING", D.V.S. Publications, Delhi."Hoff, Jan & others: "The Effects of Maximum Strength Training on Throwing Velocity and Muscle Strength in Female Team-Handball Players", Journal of Strength & Conditioning Research, November 1995- Volume 9 - Issue 4 - p 255-589.
2. H. Harrison Clarke and David H. Clarke, Advanced Statistics (New Jersey: Prentice Hall, Inc., 1984), P. 84.
3. Rannou, F, Prioux, J, Zouhal, H, Gratas-Delamarche, A, and Delamarche, P. Physiological profile of handball players. J Sports Med Phys Fitness 41: 349–353, 2001.
4. Sale, D. Neural adaptation to strength training. In: Strength and Power in Sport. P.V. Komi, ed. London, United Kingdom: Blackwell, 1992. pp. 249–265.
5. Schmidtbleicher, D. Training for power events. In: Strength and Power in Sport. P.V. Komi, ed. London, United Kingdom: Blackwell, 1992. pp. 381–395.
6. Van den Tillaar, R. Effect of different training programs on the velocity of overarm throwing: A brief review. J Strength Cond Res 18: 388–396, 2004.
7. Van den Tillaar, R and Ettema, G. Effect of body size and gender in overarm throwing performance. Eur J Appl Physiol 91: 413–418, 2004

* Sports Officer, PIE, Pacific University **Research Scholar, Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA

Table No. 1

No of variables	Pre test mean	Post test mean	Mean deviation	s	t- ratio
Grip strength of RH	43.76	46.68	2.92	2.81	3.45
Grip strength of LH	41.97	44.51	2.53	2.26	3.72
Strength of back muscles	129.09	133.68	4.59	2.57	5.93

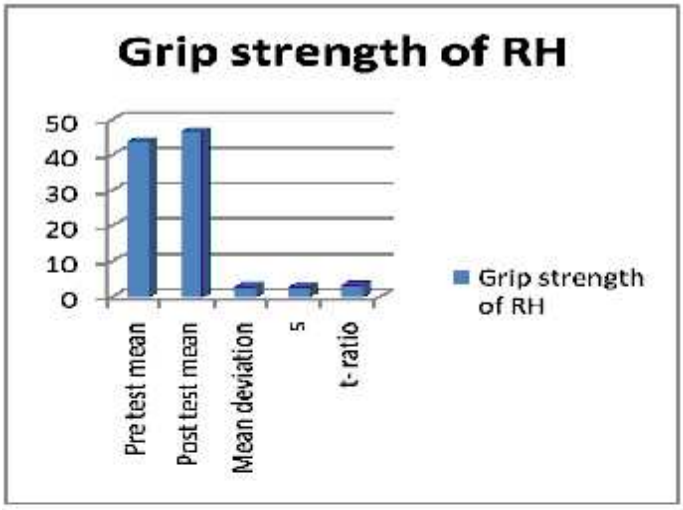

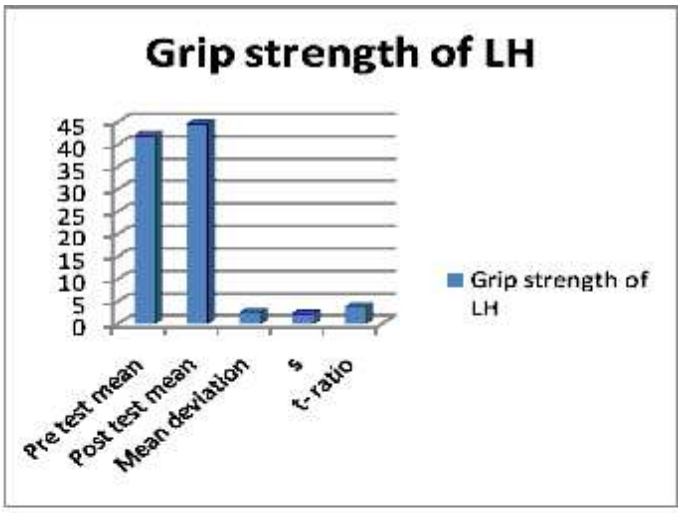

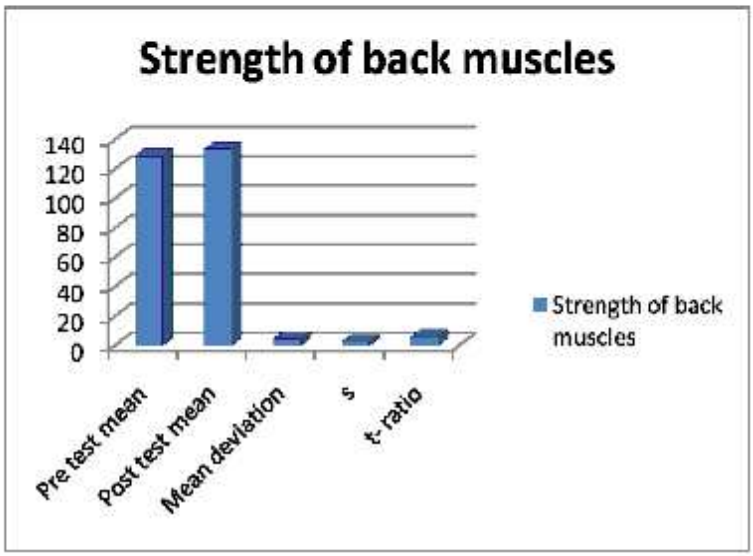

****

Comparing Fitness Level of Boys From Higher And Lower Altitude Places

Dr. Um Singh Rathore * Ramneek Jain * *

Abstract - Perhaps the most important one of areas to physical education is the psychomotor domain because it is the medium through which the cognitive and affective domains are achieved through their work. However, it must be pointed out once again that before the student is empirically divided into segments or domains, recognition must be given to the unity, or whole-person concept. All willed purposive movement is an integration of all 3 of these domains. The domains do not exist as separate entities, but they are inexorably related and interrelated. Sometimes it is difficult to tell where one leaves off and the others begin.

The present paper is written on the basis of the findings of components of physical fitness collected from a sample of 60 boys of 14 to 15 years of age. Out of these 60 boys, 30 belongs from high altitude area and rest of 30 were inhabitated in low altitude area. The AAPHER Youth Fitness Test is administered on this randomly selected sample. The results indicate that there is significant difference in physical fitness among boys from high and low altitude area.

Introduction - Total fitness can then be analyzed into several aspects including physical, mental, social, and emotional. Physical fitness is further reduced to the still narrower concept of motor fitness. Proliferation is carried still further when motor fitness is analyzed into the components of endurance, strength, power, agility, flexibility, and the like. Virtually all of these identified elements involve measurement of specifics. However, when all of these specific elements are measured and the results are placed in a profile, the parts do not add up to the whole. Something of this "wholeness" is not measured. In the process of synthesis, some of the parts of the fitness mosaic are inevitably missing. The total concept of the individual is exemplified by the term "total fitness." Total fitness can then be analyzed into several aspects including physical, mental, social, and emotional. Physical fitness is further reduced to the still narrower concept of motor fitness. Proliferation is carried still further when motor fitness is analyzed into the components of endurance, strength, power, agility, flexibility, and the like.

Virtually all of these identified elements involve measurement of specifics. However, when all of these specific elements are measured and the results are placed in a profile, the parts do not add up to the whole. Something of this "wholeness" is not measured. In the process of synthesis, some of the parts of the fitness mosaic are inevitably missing. When dealing with this product, the physical educator does measure specific aspects in most instances. Before starting the process of analysis and before dividing the students into parts, philosophically it might be well first to view them as a whole. It is equally important to look at the parts in relation to the whole after measurements. These separate components do not operate independently entities in themselves. They are not separate and diverse items, but are inextricably related. Most are not readily isolated and identified as unique, distinct factors. They really have meaning only when viewed in this context, which is one of synthesis rather than analysis. Eventually, they must be viewed in relation to the whole student. These qualities and factors that are associated with them can generally be measured by one means or another.

The tem "fitness" is perhaps one of the most nebulous in the area of measurement in physical education. It is an elusive quality until delineated and frequently has been defined in rather abstract terms. The American Alliance for Health, Physical Education and Recreation arrived at the following definition:

Fitness is that state which characterizes the degree to which the person is able to function. Fitness is an individual matter. It implies the ability of each person to live most effectively with his potential. Ability to function depends upon the physical, mental, emotional, social, and spiritual components of fitness, all of which are related to each other and are mutually interdependent.

The locale of the present study is confined to 60 school level boys of Rajasthan. They were selected through random selection technique.The boys were selected from Jodhpur district of Rajasthan.Out of these 60 boys 30 boys were from high altitude area and rest of 30 boys were from low altitude area. The age of the sample were control and it ranges between 14 years to 15 years. All the boys are in studying in a school as a regular candidate. They belong from middle socio-economic status. The selection of sample for the present study is through random technique of sampling.

Variables -

Independent variable

- **Inhabitance (Lower and Higher altitude Places)**

*** Asst. Prof., B.N. College of Physical Education, Udaipur (Raj.) INDIA * * Research Scholar Mohan Lal Sukhadia University, Udaipur (Raj.) INDIA**

Dependent variable

The physical fitness that consists of

- **Pull ups,**
- **Sit ups,**
- **Shuttle Run,**
- **Standing Broad Jump,**
- **50 yards Dash, and**
- **600 yards Run**

Test & Tools - Aahper Youth Fitness test is used for measuring fitness.

Methodology - The subjects were consulted personally and their sincere cooperation was solicited. Respondents were called to field where testing is being held. Necessary instructions were given to the subjects before the administration of each test. No time limit for was set, but the subjects were made to respond as quickly as possible. After scoring on all the selected fitness tests all the scores were forwarded for statistical analysis.

Statistical Analysis - The independent group 't' test was calculated with the help of SPSS (Statistical Package for Social Sciences, Version 20.0)

Results and Discussion (See the last page)

Comparison of Fitness level of Boys from High and Low Altitude area - The above table shows the t value is found 3.16 which is significant at 0.01 level. It infers that mean pull ups of boys from high altitude area and boys from low altitude area significantly differ from each other. The mean scores shows that the mean pull ups of boys from high altitude area are significantly more in comparison to boys from low altitude area. This may be due to boys from high altitude area have to take use of their hand muscles more in comparison to boys from low altitude area.

The above table shows the t value is found 5.34 which is significant at 0.01 level. It infers that mean sit ups of boys from high altitude area and boys from low altitude area significantly differ from each other. The mean scores shows that the mean sit ups of boys from high altitude area are significantly more in comparison to boys from low altitude area. This may be due to boys from high altitude area have to take use of their muscles more in comparison to boys from low altitude area so they become more stronger and able to take weight.

The above table shows the t value is found 14.85 which is insignificant. It infers that mean Standing Long Jump of boys from high altitude area and boys from low altitude area significantly differ from each other. The mean scores shows that the mean Standing Long Jump of boys from high altitude area are longer to boys from low altitude area as they area more fit.

The above table shows the t value is found 4.68 which is significant at 0.01 level. It infers that mean Shuttle Run of boys from high altitude area and Boys from low altitude area significantly differ from each other. The mean scores shows that the mean Shuttle Run time taken by boys from high altitude area is significantly less in comparison to boys from low altitude area. This may be due to boys from high altitude area have more exposure of running and walking in comparison to boys from low altitude area so they become more fitness in terms of running.

The above table shows the t value is found 3.87 which is significant at 0.01 level. It infers that mean time taken in 50 Yard Dash of boys from high altitude area and Boys from low altitude area significantly differ from each other. The mean scores show that the mean time in 50 Yard Dash of boys from high altitude area is significantly less in comparison to boys from low altitude area. This may be due to boys from high altitude area have more exposure of running like activities and they have more physical fitness.

The above table shows the t value is found 9.87 which is significant at 0.01 level. It infers that mean time taken in 600 Yard Run Walk of boys from high altitude area and Boys from low altitude area significantly differ from each other. The mean scores show that the mean time in 600 Yard Run Walk of boys from high altitude area is significantly less in comparison to boys from low altitude area. This may be due to boys from high altitude area have more exposure of running like activities and they have more physical fitness.

Conclusion - Therefore the hypothesis "There is no significant differences between physical fitness of boys from high and low altitude area" is **rejected.**

Recommendation - The present research work recommend that the training related to physical fitness should be given at high altitude area.

References -

1. AAHPER : Fitness for Youth, Statement Prepared and Approved by the 100 Delegates to the AAHPER Fitness Conference, Washington, D. C., 1956.
2. AAHPER : Youth Fitness Test Manual, Washington, D. C. AAHPER, 1976 (Revised).
3. Barrow, H. M. :"Man and Movement ; Principles of Physical Education", Philadelphia, Lea & Febiger, 2007.
4. Harrow, A. J. : "A Taxonomy of the Psychomotor domain", New York, David McKay Company, Inc. 2002.
5. Henry, F. M. and D. E. Rogers : "Increased Response for Complicated Movements and a "Memory Drum" Theory of Motor Reaction", Research Quarterly, 31 : 448-458, 2010.
6. Jewett, A. E., et. al. : "Educational Change Through a Taxonomy for Writing Physical Education Objectives, Quest, 15: 32-38, January, 2011.
7. Krathwohl, D. R., B. S. Bloom, and B. B. Masia : Taxonomy of Educational Objectives : The Philosophy, 70 (18) : 631-632, October, 2003.
8. Larson, L. A., and R. D. Yocum : "Measurement and Evaluation in Physical Education, Health and Recreation Education, St. Louis, The C. V. Mosby Co., 2011.

9. McCall, W. A. : "Measurement", New York, The Macmillan Co., 2009.
10. Mc Cloy, C. H. and N. D. Young : "Tests and Measurement in Health and Physical Education, 3rd Ed., New York, Appleton-Century-Crofts, Inc., 2004, p.114.
11. Simpson, E. J. : The Classification of Educational Objectives : Psychomotor Domain, Vocational and Technical Educational Grant, Contract No. OE-5-85-104. Washington, D. C., Department of Health, Education and Welfare, 2006.

Results and Discussion

Comparison of Fitness level of Boys from High and Low Altitude area

	Inhabitance	Mean	S.D.	N	Mean Diff	t	Significance
Pull ups	High Altitude	6.57	1.35	30	1.16	3.16	0.01
	Low Altitude	7.73	1.49	30			
Sit Ups	High Altitude	38.53	1.89	30	5.34	11.24	0.01
	Low Altitude	33.19	1.79	30			
Standing Long Jump	High Altitude	172.84	2.11	30	7.61	14.85	0.01
	Low Altitude	165.23	1.85	30			
Shuttle Run	High Altitude	10.24	0.83	30	0.87	4.68	0.01
	Low Altitude	11.11	0.59	30			
50 Yard Run	High Altitude	7.11	0.26	30	0.27	3.87	0.01
	Low Altitude	7.38	0.28	30			
600 yard Run & Walk	High Altitude	138.26	5.64	30	14.72	9.87	0.01
	Low Altitude	123.54	5.91	30			

****

Swimming Physiology And Coaching Practice: Bridging The Gap Between Theory And Practice

Gagan Vyas * Dr. Seema Gurjar * *

Abstract - The aim of the present paper was to survey on swimming physiology as related to coaching practice in order to help bridging the gap between theory and practice. Systematic literature searches were performed through the years 1990 – 2006 utilizing EBSCO host Research Databases and Sport Discus. Ovid Medline was used to scan materials for randomized controlled trials. The searches were done in three steps using both key words and thesaurus decodes. In the first phase, "Swimming" without limitations was fed to the system and repeated with animals excluded, second, "Swimming" and "Physiology" were used and third, some subdivisions were connected to the precedents. One may conclude that the body of knowledge for the improvement of sports coaching and fitness training in Swimming is large and well represented in the subdivisions of Swimming Physiology.

Key Words - Swimming, physiology, literature review.

Introduction - The description of the art of swimming dates back to 5000 y BC by Egyptian hieroglyphs and paintings. Kahein papyrus 3000 y BC mentioned medical findings related to protection against Schistosomiasis while swimming. (1) The modern history of Swimming Physiology dates back to early 1900's where we recall pioneering work of e.g. Du Bois-Reymond (7) and Liljenstrand & Stenström (14) in cardiovascular and metabolic aspects of swimming as well as Hill (9) who explored the basic relationships between the maximal performance and maximal oxygen consumption describing also the role of lactic acid in the muscle after exercise. Holmer & Astrand laid the basics for physiological testing of swimmers in 1970's (10). Since then the literature has accumulated rapidly.

The aim of the present paper was to survey on swimming physiology as related to coaching practice in order to help bridging the gap between theory and practice.

Methods - Systematic literature searches were performed through the years 1990 – 2006 utilizing EBSCOhost Research Databases and Sport Discus. Ovid Medline was used to scan materials for randomized controlled trials (RCT). The searches were done in three steps using both key words and thesaurus decodes. In the first phase, "Swimming" without limitations was fed to the system and repeated with animals excluded, second, "Swimming" and "Physiology" were used and third, some subdivisions were connected to the precedents. Table 1 presents the studied subcategories which were further scanned for content analysis.

Table 1

Scientific papers on Swimming Physiology as divided into subcategories. The frequencies have been obtained by key words and (thesaurus decodes).

Sub-categories	All papers	1990–2006	Advanced	Intermediate
Cardiovascular system	448	228(180)	188(146)	23(22)
Metabolism	531	142	112	14
Training	395(187)	179(74)	88(21)	26(16)
Exercise	111(28)	50(11)	37(3)	6(4)
Coaching	62(47)	37(29)	1(1)	8(4)
Testing	147(70)	62(33)	37(13)	8(5)
Lactate		362	149	27
VO2, VO2max, CO2		189	162	21
Heart Rate		120	83 (46)	13 (12)
Respiratory / Ventilatory response		58	32	4
Oxygen Consumption		92	86	5
VO2max		57	57	0

Results - When the time line was kept unlimited a total of 22.192 hits by key words (16.362 by thesaurus decode) were observed with Swimming. When animal experiments were excluded 21.882 (16.067) hits were found. During the 1990 – 2006 there were 9.778 (7092) papers in English including 2.212 (1451) in advanced and 688 (507) in intermediate category. When Swimming and Physiology (no animals) were connected 1975 hits were found, out of which 833 (557 advanced, 110 intermediate) appeared during 1990 – 2006. When the subdivisions were added to the searches the number of papers remained at reasonably low levels to enable content analysis (table 1). RCT was found in 61 papers, none with population based sampling. Materials concerning data to be utilised by practitioners in sports coaching and fitness training were well represented in all subdivisions.

Discussion -The major finding of the study was that the subdivisions of swimming physiology included approaches that may be considered valid for sports coaching and fitness training. Previously Keskinen (11) reported 539 items (peer reviewed, books chapters and books) on Swimming

* Research Scholar, Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA * * Assistant Professor, Department of Physical Education Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA

Physiology through the years 1893 – 1990. Clarys (1) reported that by the mid 1990's there were 685 peer reviewed papers on Swimming out of which 18 % were on Swimming Physiology. When these data connect to the present one, an expansion of scientific approaches in swimming literature may be observed.

RCT has become the golden standard to obtain empirical evidence on the effectiveness of comparable treatments. In Medical and Nutritional sciences RCT has become established as the primary and in many instances, the only acceptable source of evidence for the efficacy of new treatments (16). The present data showed that in Swimming Physiology 61 papers used RCT during the years 1990 – 2006. Nearly half of the papers studied the effects of nutritional supplements, mostly creatine phosphate, on the performance. One third of the papers concentrated on making comparisons between concurrent protocols for training. The studies seemed to have adopted the commonly accepted policy in statistics that an active control group be used (3). A mere handful of papers, with competitive swimmers as the study group, concentrated on studies of some kind of training effects or swimming conditions (e.g. wet suit) affecting the performance. All studies, however, used relatively small number of subjects so that only weak evidence on the efficacy of treatments could be obtained. It is promising that RCT has been adopted by swimming scientists as a method of choice in training studies.

There are several testing protocols available for regular testing of swimmers with lactates. Commonly most used protocol seems to be the two speed test (15) even though incremental series of e.g. 7 x 200 m have increased popularity. There are studies pointing out the differences between concurrent methods to interpret the results into practice (12). Analyses of the thresholds to observe points of aerobic to anaerobic metabolism, has been based either on fixed blood lactate concentrations (2-4 mmol_l-1) or on visual inspection.

A replacement has been proposed by Cheng et al (4). Development of portable miniaturised technology, have helped both practitioners and scientists to use lactate measurements after mid 1990's. Since then several approaches have utilised quick analyses in both diagnosing individual lactate profiles to define training zones as well as to collect data for research purposes. Basic physiological approaches seldom use portable analysers but instead prefer analysing lactates by the traditional method of reference, i.e. enzymatically from samples originally stored in percloric acid. During the latest years these have become more and more popular in the laboratories world wide and being used for lactate determination. Even though not well documented, competitive swimming teams use primarily portable technology for immediate feedback during training and competitions.

Open indirect calorimetric methods have been progressively preferred to the classical Douglas bag technique by some investigators for the measurement of expiratory gases to assess oxygen consumption and energy expenditure in athletes involved in endurance sports, mostly due to its more advantageous sampling capability and practicality. Requisite machinery to explore human aerobic energetics during field conditions have become available with the improvement of miniaturized metabolic measurement systems within an acceptable level of accuracy. However, environmental factors have hindered measurements in swimming. A respiratory snorkel and valve system as described by Toussaint et al. (18) was originally developed to collect respiratory gases in Douglas bags during swimming, although the collection procedure is not easily handled in field testing conditions and require relatively long steady-state sampling if accuracy has to be guaranteed.

Accordingly, this piece of equipment has been modified for BxB gas analysis to be used in connection with the K4 b2 portable metabolic cart in swimming pool conditions, and biologically validated in the laboratory with human subjects (13). First findings of using BxB technology in swimming was reported by Rodriguez et al. (17) describing oxygen uptake on-kinetics responses to maximum 100-m and 400-m swims. The determination of VO2 by post-exercise measurements (5) is still in active use. Attempts have been made to explore the slow component of the VO2kinetics (6) as well as an interesting new concept of time limit has been presented (2, 8) to diagnose effects of swimming training and performance. It is the time duration a swimmer can perform at lowest speed corresponding to maximal oxygen uptake. Since its validation (19), the Critical Speed concept has been a topic or a co-topic in some 37 studies. This concept is easily available for coaches to follow the conditioning of the athletes. However, there is no information available about the popularity of the method among practitioners. The same yields for the measurement of HR which can be easily measured by swimmers themselves either manually or by HR monitors.

Concusions - The body of knowledge for the improvement of sports coaching and fitness training in Swimming is large and well represented in the subdivisions of Swimming Physiology.

References :-

1. Clarys JP (1996). The historical perspective of swimming science. Foreword to Biomechanics and Medicine in Swimming VII. London: E & FN SPON, xi-xxiv.
2. Billat V, Koralsztein JP (1996). Significance of the velocity at VO2max and time to exhaustion at this velocity. Sports Med. 22 (2): 90-108.
3. Booth FW, Lees SJ (2006). Physically active subjects should be the control group. Med Sci Sports Exerc, 38: 405 – 406.
4. Cheng B, Kuipers H, Snyder AC, Keizer HA, Jeukendrup A, Hesselink M (1992). A new approach for the determination of ventilatory and lactate threshold. International Journal of Sports Medicine, 13: 518-522.
5. Costill DL, Kovaleski J, Porter D, Kirwan J, Fielding R, King D (1985). Energy expenditure during front crawl

swimming and predicting success in middle-distance events. Int J Sports Med, 6(5): 266 – 270.
6. Demarie S, Sardella F, Billat V, Magini W, Faina M (2001). The VO2 slow component in swimming. Eur J Appl Physiol. 84: 95-99.
7. Du Bois-Reymond R (1905). Zur Physiologie des Schwimmens. Arch Anat Physiol abt Physiol, 29: 252 – 278.
8. Fernandes RJ, Cardoso CS, Soares SM, Ascensão AA, Colaço PJ, Vilas-Boas JP (2003). Time limit and VO2 slow component at intensities corresponding to VO2max in swimmers. Int J Sports Med, 24: 576-581.
9. Hill AV, Lupton H (1923). Muscular exercise, lactic acid, and the supply and utilization of oxygen. Q J Med, 16: 135 – 171.
10. Holmér I (1974). Physiology of Swimming Man. Acta Physiol Scand, Suppl 407.
11. Keskinen KL (1991). Bibliography on Aquatic Sports. Reports of Physical Culture and Health, vol. 74. Jyväskylä: Foundation for Promotion of Physical Culture and Health.
12. Keskinen, K.L., Komi, P.V., Rusko, H. (1989). A Comparative Study of Blood Lactate Tests in Swimming. International Journal of Sports Medicine, 10 (3): 197-201.
13. Keskinen KL, Rodríguez FA, Keskinen OP (2003). Respiratory snorkel and valve system for breath-by-breath gas analysis in swimming. Scand J Med Sci Sports, 13: 322 – 329.
14. Liljenstrand G, Stenstrom N (1919). Studien uber die Physiologie des Schwimmens. Scand Arch Physiol, 39:1 – 63.
15. Mader A, Heck H, Hollmann W (1976). Evaluation of lactic acid anaerobic energy contribution by determination of post exercise lactic acid concentration of ear capillary blood in middle distance runners and swimmers. In: Proceedings of the International Congress on Physical Activity Sciences, vol. 4, 187 – 200.
16. Matthews JNS (2000). An introduction to randomized controlled clinical trials. London: Arnold publishers.
17. Rodríguez FA, Keskinen KL, Keskinen OP, Malvela MT (2003). Oxygen uptake kinetics during free swimming: a pilot study. In: Chatard J-C (ed.), Biomechanics and Medicine in Swimming IX. Saint-Étienne: Publications de l'Université de Saint-Étienne, 379 – 384.
18. Toussaint HM, Meulemans A, de Groot G, Hollander AP, Schreurs AW, VerVoorn K (1987). Respiratory valve for oxygen uptake measurements during swimming. Eur J Appl Physiol, 56: 363 – 366.
19. Wakayoshi K, Ikuta K, Yoshida T, Udo M, Moritani T, Mutoh Y, Miyashita M (1992). Determination and validity of critical velocity as an index of swimming performance in the competitive swimmer Eur J Appl Physiol Occup Physiol, 64 (2): 153-157.

****

Stress and Health Management

Dr. Vimmi Behal * Dr. O.P. Sharma**

Abstract - Stress is seen in every corner of the world and which occurs to everyone , people used the term stress to describe the feeling they have when it all seems too much , when they are overloaded and don't feel that they are able to meet all the demands placed upon them. A child burden with heavy bag right from school to the manager of the corporate world. Stress has become a new lifestyle diseases. It has become predominant and people have came up with balanced monitored concepts to minimized stress. This paper proceed to explain stress the causes and the ways to minimise stress.
Keywords - Stress , performance , support , work psychology , work place satisfaction .

Overview - For many , the idea of impulse buying, over eating and burning the candle at both ends is the perfect day but for those of us who just want to put our head under the pillow and scream ……. help is at hand. In this age of run first, walk later stress has crept into just about every profession. When day to day living is wearing you out, your body mind and spirit are negatively affected and your performance in the workplace is the thwarted

What happens when you are stressed ?

Stress is what you feel when you have to handle more than you are used to when you are stressed, your body responds as though you are in danger. It makes hormones that speed up your heart, make you breathe faster, and give you a burst of energy. This is called the fight or flight stress response.

Some Stress is normal and even useful . Stress can help if you need to work hard or react quickly. For eg. it can help you win a race or finish an important job on time.

But if stress happens too often or lasts too long, it can have bad effects . It can be linked to headaches, an upset stomach, back pain , and trouble sleeping. It can weaken your immune system, making it harder to fight off disease. If you already have a health problem, stress may make it worse. If can make you moody, tense or depressed. Your relationship may suffer, and you may not do well at work or school.

What can you do about stress ?

The good news is that you can learn ways to manage stress. To get stress under control –

- Find out what is causing stress in your life.
- Look for ways to reduce the amount of stress in your life.
- Learn healthy ways to relieve stress or reduce its harmful effects.

How do you measure your stress level ?

Sometimes it is clear where stress is coming from . You can count on stress during a major life change., such as the death of a loved one , getting married, or having a baby. But other times it may not be so clear why you feel stressed.

It is important to figure out what causes stress for you. Every one feels and responds to stress differently. Keeping a stress journal may help. Get a notebook, and write down when something makes you feel stressed. Then write how you reacted and what you did to deal with the stress. Keeping a stress journal can help you find out what is causing your stress and how much s tress you feel. Then you can take steps to reduce the stress or handle if better.

How can you relieve stress ?You will feel better if you can find ways to get stress out of your system. The best ways to relive stress are different for each person. Try some of these ideas to see which ones work for you :

Exercise -Regular exercise is one of the best ways to manage stress. Walking is a great way to get started.

Write - It can help to write about the things that are bothering you.

Let you feeling out - Talk, laugh, cry and express anger when you need to with some you trust.

Do something you enjoy - A hobby can help you relax. Volunteer work or work that helps others can be a great stress reliever.

Learn ways to relax your body - This can include breathing exercise, muscle relaxation exercises, massage yoga aromatherapy or relaxing exercises.

Focus on the present – Try meditation imagery exercises, or self hypnosis. Listen to relaxing music try to look for the humor in life. Laughter really can be the best medicine.

Conclusion - Managing stress can help you have less pain and feel healthier. By following these suggestions, you may be able to get stress to work for you instead of against you.

To identify those situations you can do something about and those you can't. Work at reducing the cause of your stress by communicating better, and respecting your limits of energy and pain. Simplify your life, "look on the bright side," and develop and keep a sense of humor. Prepare for stressful events by getting extra rest.Remember that you can't change others. Practice relaxation methods to overcome the effects of stress that you can't avoid. Engage in hobbies and simple pleasures that give you joy.

Finally, remember that managing stress is your job. With stress under control, it'll be easier to keep your disease under control.

References -

1. Greenberg E.S(1986) workplace Democracy.
2. Cohen and A.P. smith (1991) Psychological stress and suspectibility to the common cold.
3. UNICEF : The learning wed/managing stress .
4. Cox T. Sudbury: Health and Safety Executive; 2001. Health and Safety Executive, Tackling Work-Related Stress: A Manager's Guide to Improving and Maintaining Employee Health and Well-being.
5. Joshi B.K. New Delhi: Pointer Publication; 2007. Stress Management
6. Pestonjee D.M. New Delhi: Sage publication; 1999. Stress and coping the Indian experience.
7. Ram U. Pune: Deep Publication; 1998. Suffering and Stress Management: West versus east.
8. htpp//.www.byestress.com/bye stress articles/stress at work.htm

* Asst. Prof., Govt. College, Kala Pepal (M.P) INDIA ** H.O.D. , Govt. College, Kala Pepal (M.P) INDIA

अलीराजपुर जिले के जनजातिय समाज पर दूरदर्शन का प्रभाव : एक अध्ययन

सबल सिंह ओहरिया *

प्रस्तावना – मानव जीवन के विकास, जागरूकता एवं सक्रियता के लिए मीडिया एवं संचार के योगदान से हम इंकार नहीं कर सकते है। परिवर्तन समाज का आवश्यक घटक है। संपूर्ण विकास प्रक्रिया के लिए वे अति आवश्यक है। परिवर्तन की प्रक्रिया को सतत् आगे बढ़ाने में संचार एवं मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान है। नये–नये आविष्कारों को जानने तथा अपने ज्ञान बुद्धि के लिए मीडिया एक आवश्यकता बन गयी है। मानवीय जीवन में मीडिया का अभाव विकास मार्ग का एक बड़ा अवरोधक है। एक सर्वे के आधार पर श्री लक्ष्मण राव ने बताया है कि– विकास के तत्व के रूप में संचार साधनों का प्रभाव महत्वपूर्ण है। मीडिया एवं संचार साधनों में रेडियो, टी.वी., समाचार–पत्र पत्रिकाएँ, विडियो गेम्स, इंटरनेट, फोन आदि आते हैं। इनमें सबसे ज्यादा प्रभाव रेडियो एवं टी.वी. का है। ये संचार एवं मीडिया के सबसे प्रचलित एवं सस्ते साधन है और इसमें दूरदार्श्न सर्वाधिक प्रभावित करने वाला साधन है। दूरदर्शन दृश्य एवं श्रव्य दोनों कार्य करता हैं,समाज के प्रत्येक पहलू पर मीडिया एवं संचार का प्रभाव देखा जा सकता है। शहरी एवं ग्रामीण सभ्यता पर ये प्रभाव स्पष्ट दिखाई देताहै। किंतु जनजाति समुदाय पर ये प्रभाव किस सीमा तक पड़ा हैं ? ये जानने के लिए मैंने अलीराजपुर जिले के जनजातीय समाज को शोध का विषय बनाया।

अलीराजपुर जिले का भौगोलिक एवं सामाजिक परिवेश – मध्यप्रदेश का आदिवासी बहुल जिला है। यह म.प्र. के दक्षिण पश्चिम भाग में स्थित है। जिले की कुल जनसंख्या का 89.8 प्रतिशत भाग जनजातियों का है। सम्पूर्ण जिले में 91.3 प्रतिशत आबादी ग्रामीण तथा 10.2 प्रतिशत आबादी नगरीय है। शिक्षा के क्षेत्र में यह जिला अन्य जिलों की तुलना में बहुत पिछड़ा है जिसमे साक्षारता का प्रतिशत 37.2 है। जनसंख्या की दृष्टि से देखा जाए तो संपूर्ण भारत की जनजाति जनसंख्या का 14.51 प्रतिशत म. प्र. राज्य में निवास करता है, म.प्र. की कुल आदिवासी जनसंख्या का 93.5 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में और 6.5 प्रतिशत नगर में निवास करती है। म.प्र. के लगभग सभी क्षेत्रों में जनजाति निवास करते है। इसमें अलीराजपुर में 88.85 प्रतिशत आदिवासी निवासरत् है। ये दूर जंगलों, पर्वतों, घाटियों तथा दूर्गम स्थानों में रहते हैं। ये आदिवासी या वनवासी कहलाते है। यहाँ भी समुदाय के लोग बहुसंख्यंक है, जो राज्य में गौड के बाद सर्वाधिक है। ये आज की स्थिति में शिक्षा और विकास की दिशा में आगे बढ़ रहे है। इस जनजाति समुदाय पर दूरदर्शन के प्रभाव का अध्ययन एक सर्वे के रूप में किया। इसमें पाया कि इनके रहन–सहन, वेशभूषा, खान–पान आदि पर दूरदर्शन के प्रभाव को देखा जा सकता है। दूरदर्शन का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार का प्रभाव देखा जा सकता है।

जनजाति समाज पर प्रभाव – जनजाति समाज के बीच मीडिया के रूप में दूरदर्शन ने आज महत्वपूर्ण जगह बना ली है। इस साधन ने इनके जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। निश्चित रूप से ये विकास कार्य में एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में आदिवासी जीवन को संवार रहा है। जनजातीय समाज में शिक्षा के महत्व को बढ़ावा मिला है। व्यक्तिगत जीवन को टी.वी. ने अत्यन्त प्रभावित किया है। इसी के प्रभाव के परिणाम स्वरूप आदिवासी समुदाय के रहन–सहन, भाषा शैली में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। अत्यन्त पिछड़े क्षेत्र में रहने वाला आदिवासी भी अब अपनी बोली के साथ स्पष्ट हिन्दी एवं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग इतने सामान्य तरीके से रहा है कि विश्वास ही नहीं होता कि ये ठेठ बीहड में रहता होगा। राजनीतिक जागरूकता के संबंध में सबसे अधिक पत्र पत्रिकाओं के साथ टी.वी. एवं रेडियों ने अपना प्रभाव डाला है। अब इसे राजनीतिक दल भी दूरदर्शन के माध्यम से प्रचार–प्रसार को महत्व देने लगे हैं। विशेषकर मतदाताओं को रिझाने का प्रयास इनके द्वारा किया जाता है।

सरकार द्वारा अपनी योजनाओं की जानकारी दी जाती है, मतदाताओं को उनके अधिकारों के बारे में बताया जाता है और अब ये किवदंती बन चुकी है कि आदिवासी मतदाताओं को बहलाया–फुसलाया जा सकता है। इस जागरूकता के लिए दूरदर्शन के योगदान से इंकार नहीं किया जा सकता। आर्थिक जीवन में भी इसका प्रभाव पड़ा है। आर्थिक योजनाएँ जो कि सरकार द्वारा संचालित की जा रही हैं, वे भी ये जानकारी लेते हैं और उसमें सहभागिता करते है। जिसके कारण इनकी क्रय शक्ति में भी वृद्धि हुई है। स्वास्थ्य एवं मनोरंजन के संबंध में भी दूरदर्शन का प्रभाव है। जनजातीय समाज को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने में दूरदर्शन मील का पत्थर साबित हुआ है।

हर सिक्के के दो पहलू होते हैं। जहाँ एक और दूरदर्शन का सकारात्मक प्रभाव है वही सर्वे अध्ययन से दूसरा पक्ष भी समाने आया है। जनजाति समुदाय पर इसका नकारात्मक प्रभाव भी सामने आया हैं दूरदर्शन ने किशोर बालकों में अपराधी भावनाओं को जगाया है। किशोरवय बालकों में साधारण से लेकर संगीन अपराधों में लिप्तता बढ़ी है। ये बालक अपराध करने के तरीके एवं छुपाने के तरीके इन चैनलों से ही सीखते है। रातो–रात स्टार बनने की चाहत में शार्टकट रास्ता अपनाने पर बल देते हैं। टी.वी. के बढ़ते प्रभाव ने मानवीय संवेदनाओं का ह्रास किया है। नैतिक मूल्यों का तेजी से विघटन हुआ है। आदिवासी जो कड़ी मेहनत के लिए जाना जाता है, इसकी युवा पीढ़ी रंगीन और विलासी होने लगी है। आज यह जाति आलसी होती जा रही है। ये जो अपने प्रत्येक कार्य में एक–दूसरे का हाथ बँटाते थे। आज एकांकी जीवन जीना पसंद करने लगे हैं। अश्लीलता इनके उन्मुक्त जीवन को भी प्रभावित कर रही है। बढ़ते बाजारवाद ने आदिवासी उपभोक्ता को भी अपनी चकाचौंध में जकड़ लिया है।

दूरदर्शन पर विज्ञापनों के माध्यम से जो भी कुछ दिखाया जाता है, ये वनवासी उससे स्वयं को मुक्त नहीं कर पाते हैं। कर्मठ आदिवासी को इस दूरदर्शन ने विलासी, आलसी उपभोक्तावादी बना दिया है। नैतिक मूल्यों के पतन में भी ये संचार माध्यम जिम्मेदार हैं। आज जिस तेजी से मूल्यों का

* शोधार्थी राजीव गांधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

विघटन हुआ हैं, उससे वे समुदाय भी अछुता नहीं रहा है। स्वच्छंद जीवन शैली जीने वाले इस आदिवासी समाज पर इसका दुष्प्रभाव यह हुआ है कि बढ़ते बाजारवाद ने इनकी संस्कृति को ही विलोपित करना प्रारम्भ कर दिया है। सर्वे के अन्तर्गत मैंने अपने आसपास के लोगों से जानकारी एकत्रित की। इनमें कुछ शिक्षित एवं कुछ अल्प या अशिक्षित थे। ये सभी दूरदर्शन देखते हैं। 100 लोगों से प्रश्न पूछे गये।

चयनित उत्तरदाताओ की दूरदर्शन देखने की स्थिति –

उत्तरदाता	दूरदर्शन देखते हैं	दूरदर्शन नियमित रूप से नहीं देखते
शिक्षित	76 प्रतिशत	24 प्रतिशत
अल्प शिक्षित	49 प्रतिशत	51 प्रतिशत
अशिक्षित	48 प्रतिशत	52 प्रतिशत

उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि दूरदर्शन ने उन्हें विभिन्न प्रकार की जानकारी उपलब्ध कराने में भी अपना योगदान दिया है। इनके कारण उन्हें विकास में भी योगदान मिला है। हम इसके द्वारा समाज का विकास और अधिक कर सकते है।

दूरदर्शन द्वारा प्राप्त जानकारियाँ	उत्तरदाताओं का मत
राजनीतिक अधिकार संबंधी जानकारी	10 प्रतिशत
महिलाओं कानूनों से संबंधी जानकारी	12 प्रतिशत
मताधिकार संबंधी जानकारी	28 प्रतिशत
सरकारी योजनाओं से संबंधी जानकारी	32 प्रतिशत

सभी उत्तरदाताओं ने यही कहा कि दूरदर्शन से सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इस सर्वे में 80.8 प्रतिशत लोगों ने टी.वी. के प्रभाव को स्वीकार किया। इनका मानना था कि उनके व्यक्तिगत जीवन पर दूरदर्शन का प्रभाव पड़ा है। इनका मानना है कि टी.वी. जीवन के विभिन्न आयामों को प्रभावित करता है।

व्यक्तिगत	82.8 प्रतिशत
आर्थिक जीवन	52 प्रतिशत
रहन–सहन	82 प्रतिशत
खान–पान	32 प्रतिशत

वस्तुत: परिवर्तन के इस दौर में जनजाति समुदाय भी अछूता नहीं रहा है। समाज के अन्य वर्गो की तरह ये भी ज्ञान वृद्धि के लिए संचार के इस साधन का उपयोग कर रहे हैं। यह स्पष्ट है कि जनजातीय समाज के प्रत्येक पहलू को मीडिया एवं अन्य संचार साधनों के अन्तर्गत टी.वी. ने भी प्रभावित किया है। इस समाज की संस्कृति पर दूरदर्शन के जहाँ सकारात्मक प्रभाव हुए हैं, वहीं ये समाज उसके नकारात्मक प्रभाव से स्वयं को बचा नहीं सका है। इनकी संस्कृति एवं परम्पराओं पर आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। ये लोग अपनी परम्पराओं से दूर होते जा रहे है। अंत में ये कहा जा सकता है कि दूरदर्शन ने इस समाज की परम्पराओं एवं संस्कृति में हस्तक्षेप किया है। रहन–सहन, वेशभूषा, बोलचाल पर भी इसका प्रभाव पड़ा है और आगे भी प्रभाव देखने को मिलेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Chandra, Sushil, Sociology of deviation in India.
2. Lashman Rao, Communication & Deployment A study of two indian villages.
3. Subramanyam, V & Ram Mohan, Mass Media & Tribal Life.
4. Hartmann, pout, patil & others, The mass Media & Village.
5. Mann, K. Tribal Women in a changing Society.
6. Felsion, Rechird B.Mass Media Effactics on violent Behaviour Enual Review of Sociology .
7. चौहान, राकेश कुमार, शिक्षित जनजाति बालिकाओं पर मीडिया एवं संचार साधनों का प्रभाव एक शोध पत्र से साभार।
8. मीणा अजय कुमार, व्यास दिनेश, मीडिया की भूमिका एवं बालकों में बढ़ती अपराध प्रवृति एक शोध पत्र से साभार।
9. राजपूत उदयसिंह, जनजाति समुदाय पर रचित शोध पत्र से साभार।

****

पर्यावरणीय समस्या : लोगों का विस्थापन एवं पुनर्वास

कविता ठाकुर *

प्रस्तावना –मानव ने प्रकृति की गोद में जन्म लिया है। मनुष्य के चारों ओर का वातावरण उसका पर्यावरण कहलाता है। मानव एवं पर्यावरण के बीच गहरा संबंध होता है। मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्यावरण पर निर्भर रहता है। किन्तु विगत शताब्दी से मानव ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण किया है, इसका एक सबसे बडा कारण मानव जनसंख्या का तेजी से बढना है। इसका परिणाम है कि आज पर्यावरण कि क्षति अपूरणीय है। मानव की संस्कृति, समाज, सभ्यता, जीवन शैली सभी पक्ष पर्यावरणीय क्षति से प्रभावित हुए है। पर्यावरण के तत्वों में ह्रास होने से पर्यावरण में कई समस्याएं उत्पन्न होती हैं। पर्यावरणीय समस्या में एक प्रमुख समस्या 'लोगों का विस्थापन एवं पुनर्वास' भी है।

'किसी भी देश में लोगों को एक स्थान से हटाकर किसी दूसरे स्थान पर बसाने की स्थिति विभिन्न कारणों से बनती हैं, जिनमें प्राकृतिक आपदायें एवं बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएं प्रमुख है, इसे ही 'विस्थापन एवं पुनर्वास' कहते हैं।

बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं में बडे-बडे बांधों के निर्माण के लिये डूब क्षेत्र में आने वाली वहां की जनसंख्या को परियोजना स्थान से हटाकर कहीं दूसरे स्थान पर बसाया जाता है। प्राकृतिक आपदाओं में जैसे – भूकंप, चक्रवात, ज्वाला-मुखी, बाढ, महामारी इत्यादि के बाद बडी संख्या में लोगों को विस्थापित किया जाता हैं। जैसे ही आपदा गुजरती है उसके बाद अधिकांश परिवार पुन: अपने स्थान पर आकर रहने लगते हैं। उदाहरण- भोपाल गैस त्रासदी। इन लोगों के प्रवास के दौरान इनमें से कुछ लोग अस्थायी रूप से वहीं बस जाते हैं। जैसे – 2001 में गुजरात में भूकंप के दौरान एवं चक्रवात के दौरान 1999 में उड़ीसा में बहुत अधिक संख्या में लोगों ने दूसरे स्थान पर प्रवास किया था। राजनीति के कारण, लोगों में धर्म के नाम पर सांप्रदायिक दंगे व जातिय हिंसा होने पर अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों का पलायन वहां से सुरक्षित स्थानों की ओर होता है। धर्म के नाम पर युद्ध होने अथवा हालात, युद्ध जैसे बनते हैं तब सीमावर्ती भागों की बस्तियों के लोगों को विस्थापित कर कहीं दूसरे स्थान पर बसाया जाता है। भूगर्भ के खनिज भण्डारों के दौहन के लिये धरती पर बसे लोगों को वहां से दूसरे स्थान पर भेजा जाता है। बडे-बडे उद्योगों व औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना के लिये योजना स्थल पर बसे लोगों को भी विस्थापित किया जाता है। यह विस्थापन सीमित होता है, जैसे औद्योगिक क्षेत्र पीथमपुर, इंदौर आदि।

राष्ट्रीय राजमार्ग, एक्सप्रेस हाईवे, रेलमार्ग व स्वर्णिम चतुर्भुज जैसी बडी-बडी योजनाओं के लिये मार्ग में आने वाली बस्तियों को हटाकर लोगों को दूसरे स्थानों पर बसाया जाता है।

लोगों के विस्थापन एवं पुनर्वास की समस्याएं – विस्थापन एवं पुनर्वास की समस्या मुख्य रूप से प्राकृतिक आपदाएं एवं बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएं हैं। जितना लाभ बांध बनाकर सिंचाई से होता है, उसकी तुलना में कहीं अधिक नुकसान पर्यावरण, अर्थतंत्र एवं समाज को होता है। क्योंकि जब एक स्थान से लोगों को विस्थापित कर दूसरे स्थान पर पुनर्वासित किया जाता है, तो उस नए स्थान का पर्यावरण पूरी तरह से नष्ट किया जाता हैं जिनमें वन क्षेत्रों की कटाई की जाती है ऐसे स्थानों पर विभिन्न प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समायोजन की समस्याएं उत्पन्न होने लगती है। जिसके कारण पर्यावरण पर दबाव बढने लगता है और अनेक परिस्थितिकीय समस्याएं पैदा होती है। बांधों के बनने के दौरान जो पुनर्वास की समस्या आई हैं, जब उसका विश्लेषण करते हुए स्वेकेल ने लेटिन अमेरिका बाँधों के संदर्भ में कहा है कि वे केवल पर्यावरणीय शरणार्थी बन जाते हैं।

लोगों के विस्थापन एवं पुनर्वास का प्रभाव – विस्थापन एवं पुनर्वास का प्रभाव, पर्यावरण एवं विस्थापित परिवारों पर कई प्रकार से पडता है। जैसे – जिस जमीन पर वे रहते हैं, उसके प्रति लगाव होने के कारण वहां से विस्थापन होने पर लोगों को भावनात्मक आघात पहुँचता है। अपनी उस धरती जिस पर खेत, खलिहान, नदी, तालाब से बिछडने का दर्द उन्हें जिंदगी भर चुभता रहता है। विस्थापन के बदले दी जाने वाली जो मुआवजा राशि होती है, उसका भुगतान भी समय पर नहीं होने से तथा अत्यधिक औपचारिकताओं के कारण लोगों को काफी कठिनाई का सामना करना पडता है।

प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में बड़वानी जिला एवं धरमपुरी तहसील, हरसूद डूब क्षेत्रों में देखने को मिलता है। बडी योजनाएं न केवल व्यक्तियों के घरों को प्रभावित करती है वरन कुछ ऐसे कुटीर उद्योगों को भी समूल नष्ट कर देती है जिनके कच्चे माल के क्षेत्र जलाशय में डूब गये हैं। केरल के इदुक्की जिले में पोयम कुट्टी परियोजना से सरकण्डों पर आधारित कुटीर उद्योग में लगे हुए 3 लाख मजदूर बेरोजगार होंगे। अर्थात बडे पैमाने पर विस्थापन से उत्पन्न समस्यायें तो अलग है ही किन्तु उसका प्रभाव दूर तक व्यक्तियों के जीविकोपार्जन के साधनों पर पड़ रहा है।

जो परिवार विस्थापित होते हैं, उनके परंपरागत व्यवसाय जैसे – खेती करना, पशुचारण, वनोपज संग्रहण, मत्स्याखेट जैसे व्यवसाय पुनर्वास स्थानों पर उपलब्ध न होने से उनके लिए सबसे बडी समस्या, रोजगार को लेकर उत्पन्न होती है। परियोजना क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली वनस्पतियां प्राणी संपदा व मृदा का तो विनाशा होता ही है साथ ही विस्थापित होने वाले परिवारों को जहाँ बसाया जाता है, उन क्षेत्रों के पर्यावरण को भी हानि पहुँचती है, क्योंकि नए वन क्षेत्रों को साफ किया जाता है।

* सहायक प्राध्यापक (रसायनशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय , झाबुआ (म.प्र.) भारत

विस्थापित जनसंख्या में से जो जमीन के मालिक होते हैं, उन्हें तो जमीन आवंटित कर दी जाती है, लेकिन जो कृषि श्रमिक भूमिहीन होते हैं और वनों पर निर्भर रहते हैं, जैसे – आदिवासी समाज, प्राकृतिक चरागाहों के पशुचारण करने वाले परिवारों को कोई मुआवजा या क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती है, जिसके कारण ऐसे वर्ग पर तो परेशाानियों का पहाड़ टूट पडता है। उनके सामने अब एक समस्या है, कि आज गुजारा कैसे करें। जब बस्तियों में रहने वाले लोगों को विस्थापित कर नई जगह पर बसाया जाता हे, तो उससे उनका सामाजिक व सांस्कृतिक तानाबाना छिन्न–भिन्न हो जाता है। विस्थापन या पुनर्वास के अनेक लाभ भी होते हैं, जैसे – उस क्षेत्र का आर्थिक विकास तीव्र गति से होता है तथा रोजगार के अवसर बढते हैं।

आर्थिक विकास के लिए परियोजनाओं का निर्माण आवश्यक है, किन्तु विस्थापित लोगों को संतोषप्रद पुनर्वास भी आवशयक होता है इसके अभाव में टिहरी व हरसूद जैसे जन आंदोलन होते हैं।

भारत में स्वतंत्रता के बाद बहुद्देशीय नदी परियोजनाओं के निर्माण को महत्व दिया गया है। जैसे – उत्तरांचल में भागीरथी नदी पर टिहरी बांध एवं नर्मदा घाटी पर 30 बडे एवं 135 मध्यम बांधों सहित कुल 3200 बाँध बनाने की रूपरेखा तैयार की गई है। सरकारी आंकडों के अनुसार इस परियोजना में बनने वाले जलाशयों में जलमग्न क्षेत्र से 253 गाँव के 85000 लोग विस्थापित होंगें सरदार सरोवर क्षेत्र से 50,000 लोग विस्थापित हुए हैं। नर्मदा परियोजनाओं से विस्थापित लोग दो लाख से अधिक हैं। इनमें भील, बेंगा, गोंड जनजाति के लोग हैं। इसमें समस्या लोगों के संतोषप्रद पुनर्वास की है। मेधा पाटकर, एवं अरूंधती राय आदि इसी कारण नर्मदा परियोजना का विरोध कर रहे हैं। इनका कहना है कि स्पष्ट पुनर्वास नीति होनी चाहिए जो नहीं है।

सुझाव – विस्थापितों को दी जाने वाली मुआवजा राशि का भुगतान सही समय पर बिना परेशाानी के दिया जाना चाहिए।

1. जहाँ तक हो, नीजि स्वार्थ के लिए लोगों का विस्थापन नहीं होना चाहिए। और यदि विस्थापन होता है तो उनकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए कोशिश करनी चाहिए कि पुनर्वास में सबकुछ विस्थापित स्थान जैसा होना चाहिए।
2. विस्थापित लोगों को जीविका चलाने के लिए समुचित रोजगार की व्यवस्था होनी चाहिए।
3. कृषिहीन श्रमिकों को भी समुचित रोजगार उपलब्ध करवाना चाहिए।
4. नवीन क्षेत्रों में भी उन्हें एक साथ बसाना चाहिए, ताकि सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य बना रहे।
5. विस्थापित लोगों को अपने आसपास अधिक से अधिक वृक्ष लगाना चाहिए और पर्यावरण को बनाये रखना चाहिए।
6. शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विद्यार्थियों को पर्यावरण जागरूकता तथा प्रशिाक्षण देना चाहिए।

निष्कर्ष – आशियाना छोडकर अनुकूलन हेतु पुनर्वास एक असहनीय पीडा है। किन्तु प्रकृति का नियम है, परिवर्तन चाहे प्राकृतिक आपदा हो या निजहित, पुनर्वास साधारण प्रक्रिया नहीं है। इससे जुडी है, प्राकृतिक, मानवीय, भावनात्मक एवं सामाजिक समस्याएं। इसे हम एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या कह सकते हैं। पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण कई वर्षो में होता है और विस्थापन एवं पुनर्वास से पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित होता है। अत: उसका मूल्य चुकाना होगा चाहे वह नर्मदा घाटी समस्या, पुनासा परियोजना, हरसूद पुनर्वास, या टिहरी घाटी क्यों न हो। पूर्ण विकसित तंत्र का प्रतिस्थापन साधारण नहीं है और कीमत के रूप में उससे जुडे प्रत्येक व्यक्ति उनमें समाजसेवी प्रमुख है। विस्थापन एवं पुनर्वास की इस गंभीर समस्या को प्रत्येक व्यक्ति समझे और यथासंभव समाधान का प्रयास करें। विस्थापित स्थान से पुनर्वासित स्थान पर अधिक से अधिक पेड पौधे लगाकर पर्यावरण को बनाये रखें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. जोशी, रतन (2004), पर्यावरण अध्ययन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा उप्र.पृष्ठ 187
2. वर्मा धनंजय (2004) पर्यावरण चेतना, म0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल म0प्र0
3. गुर्जर, रामकुमार एवं जाट, बीसी. (2004) पर्यावरण अध्ययन, पंचशील प्रकाशान जयपुर (राजस्थान)
4. झा, ए. के.पर्यावरण अध्ययन, आनंद पब्लिशर्स, ग्वालियर म0प्र0

****

वैदिक धर्म और दार्शनिक चिंतन

डॉ. जगमोहन सिंह पूषाम *

शोध सारांश – वैदिक धर्म विश्व में अपनी मान्यताओं ,परम्पराओं आस्थाओं और विश्वास के कारण प्राचीन काल से आज तक अक्षुष्ण बना हुआ है। सम्पूर्ण देश और समाज में धर्म के विशाल आयाम क्रियाशील रहा है। ऋग्वैदिक काल से ही भारतीयों का जीवन आस्तिक विचारों और धार्मिक चेतना से प्रभावित रहा है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मुख्य प्रेरक तत्व वैदिक धर्म ही था , जिसमें नैतिकता ,आस्तिकता ,सदाचारिता ,ज्ञान और बौद्धिकता थी। इस शोध आलेख में वैदिक धर्म और दार्शनिक चिंतन के साथ उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ,धर्म का स्वरूप , वैदिक देव मण्डल ,मानव में देवत्व की अभिव्यक्ति ,देवताओं का मानवीकरण आदि विभिन्न आयामों का उल्लेख किया गया हैं।

धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – भारतीयों का जीवन प्राचीन काल से धर्मगत उत्कण्ठा से अनुप्राणित रहा है। संपूर्ण देश और समाज धर्म के विशाल आयामों में क्रियाशील रहा है। ' धर्म का व्यावहारिक महत्व कर्त्तव्य का समुचित पालन था ,जिसके माध्यम से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष करता था। उसके समस्त कर्त्तव्य और कर्म ज्ञान– समन्वित और श्रद्धा –सिक्त होकर धर्म से ही उत्प्रेरित और गतिमान होते थे, जो उसके परिवार और समाज को गठित करने में अभूतपूर्व योग प्रदान करते थे।[1] ऋग्वेद काल से ही भारतीयों का जीवन आस्तिक विचारों और धार्मिक चेतना से प्रभावित रहा है ।सम्पूर्ण समाज का वर्ण के आधार पर समुचित और सुनिश्चित विभाजन नैतिक मूल्यों और धर्म से प्रभावित होकर किया गया था तथा विभिन्न वर्गो के कर्मो का निरूपण भी सदाचार और धर्म से प्रेरित तथा अनुप्राणित था। समाज में यही व्यवस्था आश्रम धर्म के नाम से अभिहित की गयी। इस प्रकार प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था का मुख्य प्रेरक तत्व धर्म ही था जिसमें नैतिकता, आस्तिकता, सदाचारिता, ज्ञानता और बौद्धिकता थी। इसके माध्यम से लौकिक व्यवस्था के अतिरिक्त दार्शनिक चेतना का भी उन्नयन हुआ , जो मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करने में मार्गदर्शक बना। दार्शनिक चिंतन का प्रारम्भ ऋग्वेद के काल से ही प्रारम्भ हो गया था।[2] किन्तु इसका सही विकास उत्तर वैदिक काल में ही हुआ जब उपनिषदों की रचना प्रारंभ हुई। परवर्ती काल में आकर जीवन का आध्यात्मिक उत्कर्ष भी हुआ तथा 'न्याय' जैसे तर्क का भी विकास हुआ।[3] यह सही है कि इस प्रकार की सारी चिंतना ब्राह्मण नामक वर्ग समूह में ही पनपी और बढ़ी।[4]

अत: उसी वर्ग ने समस्त धार्मिक आचार विचारों और सिद्धांतों की व्यवस्था की। समाज में श्रेष्ठ और उन्नत स्थान ग्रहण करने के कारण ब्राहाणों ने अनेक धार्मिक सुविधाएँ ही प्राप्त नहीं की बल्कि उन्होंने उन सुविधाओं को विशेषाधिकार के रूप में केवल अपने लिए ही स्थिर कर रखा और उसके माध्यम से उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त सुदृढ़ कर ली। धार्मिक कृत्य पूजा –पाठ ,यज्ञ आदि सम्पन्न कराने के उपलक्ष्य में उन्हें अनेक बहुमूल्य वस्तुओं के साथ–साथ विस्तृत भूमि भी दान में प्राप्त होती थी ,जो बहुधा करमुक्त रहा करती थीं अर्थात समाज में किसी प्रकार का धार्मिक कार्य केवल ब्राह्मण ही करा सकता था। इस प्रकार विभिन्न धार्मिक कृत्य कराना और दान –दक्षिणा के रूप में प्रचुर धन प्राप्त करना ब्राह्मणों का एकाधिकार बन गया , जो बारहवीं सदी के बाद तक भी अनवरत चलता रहा। यह अवश्य है कि जैन और बौद्ध धर्म के विकास के कारण ब्राह्मणों के धार्मिक एकाधिकार को आघात लगा किन्तु वह स्थायी नहीं था। कालान्तर में ब्राह्मणों ने समाज में अपना महत्व पुन: प्रतिष्ठित कर लिया तथा समाज पर उनका प्रभाव पुन: यथावत हो गया।

वेदों के आधार और नियम पर आचरित और अनुसरित धर्म वैदिक धर्म था। मंत्र द्दष्टा ऋषियों के द्वारा अनुभूत आध्यात्मिक तत्वों की विशाल राशि ही वेद कहीं गई तथा उन तत्वों का अनुगमन करना ही वैदिक धर्म माना गया। तैत्तिरीय संहिता के उल्लेखानुसार ' वेद का वेदत्व यही है कि वह प्रत्यक्ष अथवा अनुमान द्वारा अगम्य या अबोध्य तत्वों का सुगमतापूर्वक बोध करता है।'[5] यही उसका प्रमाण भी है। जिस प्रकार लौकिक वस्तुओ के साक्षात्कार के लिए चक्षु की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य को जानने के लिए वेद की अपेक्षा होती है। इसीलिए मनु ने वेद के लिए कहा है कि ' वह पितृगण ,देवताओं और मनुष्यों का सनातन और सर्वदा विद्यमान रहने वाला चक्षु है। उसने यह भी कहा है कि पृथक –पृथक,चारों वर्ण ,चारों आश्रम तथा भूत,भविष्य और वर्तमान वेद से ही प्रसिद्ध होते हैं ।वेद में विश्वास और आस्था रखना तथा उसकी प्रामाणिकता को मानना आस्तिकता थी तथा वेद का विरोध और निन्दा नास्तिकता थी।[6] अत:विद्धान के लिए 'वेद के अध्ययन अथवा स्वाध्याय की महत्ता का रहस्य भी यही था।'[7] स्पष्ट है कि वैदिक धर्म में दिव्य और अलौकिक सत्ता की व्यंजना है ,जिससे प्रकृति और सृष्टि भी सम्पृक्त है।

धर्म का स्वरूप –प्रकृति –प्रकृति की अलौकिकता और अभिरामता के प्रति आर्यो का प्रारम्भ से आकर्षण था। वे प्राकृतिक वस्तुओं को आश्चर्यचकित होकर अत्यन्त स्नेह और आनन्दपूर्वक देखते थे ।प्राची में उदित होने वाले प्रात:कालीन सूर्य की अभिराम किरणों तथा रात्रि में सोम की सुधायुक्त शीतल रश्मियों को देखकर वे प्रफुल्ल हो उठते थे। उन्होंने प्रकृति की इन विविधताओं में अनेकानेक देवताओं की कल्पना करके विवृत किया तथा उनके अनुग्रह से संसार के संचालन की बात स्वीकार की।उन्होंने यह भी माना कि प्रकृति की शक्ति को देवता ही नियन्त्रित करते हैं। अत: उन देवताओं को प्राकृतिक दृश्यों के अधिष्ठाता के रूप में माना गया एवं भौतिक जगत् की उत्पत्ति के लिए ही उनकी कल्पना की गई।[8]

मानव में देवत्व की अभिव्यक्ति–वैदिक चिन्तन में मानव की श्रेष्ठता और महत्ता स्वीकार की गई है तथा उसे विश्वात्मा के अत्यधिक समीप माना गया

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.) भारत

है। इसलिए ऋग्वेद [9] में यह कहा गया है, 'महादेवो मर्त्यानाविवेश 'अर्थात् महादेव मर्त्यो में प्रविष्ट हुआ। ऐसी स्थिति में मानव देवत्व के रूप में अभिव्यक्त किया गया तथा उसमें देवत्व के तत्व निहित माने गये। इस संबंध में ऋषि वामदेव की घोषणा हैं कि ' मैं मनु हूँ ,ऋषि हूँ ,प्रज्ञासम्पन्न ऋषि कक्षीवान् हूँ उशना कवि हूँ ,मेरी ओर देखो, मैंने आर्यो को पृथ्वीलोक प्रदान किया है।यज्ञ सम्पन्न करने वाले को मैं वर्षादान करता हूँ , मैं तुमुल निनाद के साथ जल गिराता हूँ ,सभी देवता मेरे आदेश का अनुपालन करते हैं '।[10] इस प्रकार मानव में देवत्व की भावना का बीजारोपण हुआ और वह प्रकृति की असीम शक्ति का अनुभव अपने में करने लगा। स्पष्ट है कि मानव की प्रतिष्ठा और सम्मान देवतुल्य था तथा मानववाद का स्थान उच्च और गौरवमय था।

वैदिक देवमण्डल–वैदिक देवमण्डल के देवताओं के तीन वर्ग दर्शित होते हैं।एक द्युस्थानीय (आकाशवाणी),दूसरे अन्तरिक्ष स्थानीय और तीसरे पृथिवीस्थानीय ।द्युस्थानीय देवताओं में सूर्य ,सविता ,विष्णु, वरूण,मित्र,अश्विन और उषा प्रधान हैं,अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में इन्द्र,अपानपात् था पर्जन्य और रूद्र मुख्य हैं और पृथिवीस्थानीय देवताओं में अग्नि ,वृहस्पति और सोम विख्यात हैं। किन्तु देवताओं के इस वर्गीकरण में मूर्त प्रकृति और अमूर्त

अन्तस् प्रकृति का भी योगदान रहा है। (1) प्रकृति के प्रमुख कार्यो की अभिव्यक्ति करने वाले देवताओं का एक वर्ग हो गया था ,जिसमें द्यौ (आकाश) पृथ्वी ,वरूण ,इन्द्र ,सूर्य ,(पांच रूप – सवित,मित्र ,पूषन और विष्णु) रूद्र,अश्विन मरूत ,वायु वात ,पर्जन्य ,उषा आदि सम्मिलित थे ।(2) ऐसे भी देवताओं का वर्ग था जिनका गृहस्थ जीवन से संबंध था ,जैसे अग्नि और सोम। (3) अमूर्त देवताओं का भी एक वर्ग था जिसमें श्रद्धा और मन्यु प्रधान थे। इन्द्र अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी देवता था ,वह आर्यो का सर्वश्रेष्ठ देवता था। जो उनके शुत्रओं को युद्ध में पराजित करता था। वह मेघों को अवरूद्ध कर और असुरों को वज्र से मारकर जल बरसाता था। वह पृथ्वी ,अन्तरिक्ष और आकाश से भी विशाल था। उसके लिए कहा गया है , हे इन्द्र ,तुमने ही शुष्ण दैत्य के युद्धों से कुत्स की रक्षा की ,तुमने शबर दैत्य को मारा , तुमने बड़े अर्बुद दैत्य को इसलिए पैर से रौंद दिया कि तुम अतिथि संभवत: किसी दल का नाम के साथियों की रक्षा कर सको। तुम हमारे शत्रुओं दस्युओं को बड़े बलपूर्वक मार रहे हो।[11] 'वस्तुत: वह भू–लोक का प्रधान देवता था। उसका उल्लेख देवताओं के शासक के रूप में भी हुआ है। यज्ञों में भी इन्द्र की प्रमुखता थी। वह वीरता और शौर्य का प्रतीक था। बंधन से छुड़ाने के लिए गृत्समद द्वारा की गई इन्द्र की स्तुति में इन्द्र की वीरता का संकेत किया गया है [12] तथा उसे विश्व में प्रतिमान स्थापित करने वाले अच्युत रूप में स्वीकार किया गया है।

'वरूण'का उल्लेख देवताओं के पोषक और ऋतु के अधिपति के रूप में हुआ है ,जिसका स्वरूप विश्वजनीत नियमों की संज्ञा के साथ अत्यन्त उदात्त और उन्नत था। वह आकाश ,पृथ्वी और सूर्य का निर्माता था। वायु उसका श्वास था तथा ऋतुऐं उससे नियमित थी। माया रूप में वह सर्वत्र विद्यमान रहता था। इसीलिए उसे विश्वचक्षु : (सर्वत्र दृष्टि रखनेवाला) ,सुव्रतु (अच्छे कार्यो को करने वाला)। धृतव्रत (नियमों को धारण करने वाला) और सम्राट (समान रूप से प्रकाशनशील और शासक) कहा गया है तथा पक्षियों और नावों के मार्ग को जानने वाला सर्वज्ञ माना गया है। वह स्पर्शो (सूर्य की किरणों और गुप्तचरों) से सर्वदा घिरा रहता था , जो उसे जीवों के हृदय में सोचे गए कार्यो की सूचना प्रदान करने वाला माना जाता था। ऋग्वेद में ऋषि उसकी स्मृति में कहता है कि हमारे पितरों को पाप से मुक्त करो तथा हमे पाप से बचाओं।[13] वह जल का अधिपति था तथा उसका निवास भी जल में ही था। उसने मातृत्व –भावना के वशीभूत होकर जल को अपना आवास बनाया था।[14]

'सूय' के प्रति आर्यो की स्वाभाविक आस्था थी ,जो अपने प्रकाश और तेज से समस्त जगत और जीवों को आलोकित करता था। वह सात हरित अश्व के रथ पर बैठकर गतिमान होता था। उसे द्यौस ,मित्र और वरूण का चक्षु माना गया है। दीर्घदर्शी के रूप में वह समस्त विश्व का द्रष्टा बनकर मनु जाति के कार्मो का निरीक्षण करता था और उन्हें सत्कर्मो की ओर प्रवृत्त करता था। उसकी उपासना पांच रूपों में की जाती थी – (1) सूर्य ,जिसका पूजन प्राकृतिक और स्वाभाविक रूप में होता था (2) सविंत जो सूर्य की प्रेरक शक्ति को अभिव्यक्त करता था तथा जिसकी प्रार्थना में गायत्री मंत्र का उच्चारण किया जाता था। (3) मित्र,सूर्य का ही एक अंश था ,जिसकी आराधना अधिक की जाती थी।(4) पूषन,सूर्य की ही शक्ति का परिचायक था जो औषधि और वनस्पति जगत के संवर्द्धन में योगदान करता था। (5) विष्णु जो ऋग्वेद में आकाश में विचरण करने वाला सूर्य का रूप था।[15] विशाल डगों को भरने के कारण ,इसके लिए उपक्रम और उरूगाय शब्दों का व्यवहार किया जाता था। उसने अपने तीन डगों में समस्त जगत को माप डाला था।[16] विष्णु के तीन डगों से अर्थ संभवत: तीनों लोकों से हैं। अत: विष्णु के उच्चतम लोक विष्णु लोक में तीव्रगामिनी भूरिश्रृंग गायो किरणों का निवास है जहां मधु का उत्स निर्झर उपासकों की मन: कामना को परिपूर्ण करता हुआ दिखाई देता है।[17]

'रूद्र' , उग्र देवता था तथा घने काले मेघों के साथ उसकी कल्पना की गई थी। उग्र रूप में वह रूद्र था तथा सौम्य रूप में शिव। सही अर्थो में जगत् का मंगल करने के कारण वह शिव था। अत:रूद्र और शिव अभिन्नता ऋग्वेद में दर्शित होती है,[18] जो उसके आर्य देवता होने का परिचायक है। वह कृष्णोदर ,लाल पीठवाला ,धनुर्धारी ,नीले केशवाला और सहस्त्राक्ष था।[19]

देवताओं का मानवीकरण –वैदिक साहित्य से विदित होता है कि आर्यो ने देवताओं को मानवीय आधार पर कल्पित किया तथा मानव के रूप में उन्हें स्वीकार करके उनके मानवीकरण की संयोजना की। यहीं नहीं ,प्रत्येक देवता की अपनी देवी–पत्नी की भी उद्भावना मानवीकरण के आधार पर की गई। उन्होंने देवताओं में उन सभी गुणों और आचारों का दिग्दर्शन किया जो मनुष्य में दृष्टिगत होते हैं। वे गुण ,आदर्श और सदाचार सम्पन्न थे। नैतिकता के वे प्रतिपूर्ति माने गये थे।

पूजन का आधार बौद्धिकता – आर्य अपने देवताओं का पूजन विभिन्न प्रकार से करते थे। उनकी पूजा पद्धति में जीवन के प्रति आस्था ,निष्ठा और अनुराग होता था। जैसा ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, वे कल्याणमय जीवन के प्रति जागरूक रहते थे तथा देवताओं से वे सौ वर्ष का जीवन , पुत्र ,धन–धान्य और विजय की कामना करते थे।वस्तुत: ऋग्वैदिक आर्यो का जीवन के प्रति विराग नहीं था और न वे निवृत्तिमार्गी ही थे। प्रवृत्तिमार्गी होने के कारण वे अपने देवता की उपासना में वृद्धावस्था तक मंगलमय जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा व्यक्त करते थे। उस समय देवता से ,संबंधित मंदिर और मूर्तिपूजा का सर्वथा अभाव था। प्राकृतिक और अध्यात्मिक शक्तियों का अनुभव और दर्शन करने के कारण आर्यो को मंदिरों और मूर्तियों जैसे प्रतीकों की उपेक्षा नहीं थी।

स्तुति अथवा प्रार्थना –देवताओं की पूजन –प्रणाली में स्तुति अथवा प्रार्थना सबसे सरल ,सुबोध और सुविधाजनक पद्धति थी। वेदों की ऋचाएँ और सूक्त प्राय: स्तुतियाँ ही है ,जिनमें देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थनाएँ की गई है। स्तुति ,स्तवन ,आशंसा आदि से देवताओं को प्रसन्न किया जाता था तथा लौकिक सुखों की प्राप्ति की कामना की जाती थी।

यज्ञ – वैदिक युग में यज्ञ की सर्वाधिक महत्ता थी जो व्यक्ति को पावन,पवित्र और कर्मठ बनाता था। यज्ञ की सम्पन्नता अग्नि से होती थी। अग्नि की प्रत्यक्ष शक्ति से वे परिचित थे। अत: वे अग्नि के उपासक थे। अग्नि के दो प्रकार थे ,(1)स्मार्ताग्नि जिससे प्रत्येक गृहस्थ अथवा विवाहित व्यक्ति गृहाग्नि में क्रिसमाण यज्ञ (अथवा पाकयज्ञ) सम्पन्न करता था (2) श्रोताग्नि ,जिसमें श्रौत यज्ञों की संयोजना की गई थी।ऋग्वेद से स्पष्ट होता है कि विश्व की प्रक्रिया यज्ञ से संचालित होती है ,जिसमें निरन्तर पांच अग्नियां प्रज्वलित हैं और उसमें आहुतियाँ डाली जा रही हैं। सर्वाधिक बड़ी अग्नि द्युलोक है ,जिसमें श्रद्धा की आहुति पड़ रही है। चन्द्रलोक का उद्भव इसी से हुआ है, जिसे पितृलोक भी कहते हैं। दूसरी अग्नि इन्द्र है जिसमें चन्द्रमा आहुति है। इससे वर्षा होती है। तीसरी अग्नि है जिसमें वर्षा आहुति बनती है,अन्न की उत्पत्ति इसी से होती है। मनुष्य चौथी अग्नि है जिसमें अन्न आहुति का काम करता है। इससे बीज रेतस् उत्पन्न होता है। पांचवी अग्नि पत्नी हैं , जिसमें बीज आहुति रूप में पहुँचता ,जिससे सन्तान उत्पन्न होती है।यही सृष्टि का कम है , जो पंचाग्नि विद्या के अन्तर्गत है।

देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ एक प्रधान साधन था। यज्ञ सृष्टि का मूल था तथा देवता तक उससे शक्ति ग्रहण करते थे।[20] कालान्तर में राजन्य वर्ग ने साम्राज्य विस्तार के लिए यज्ञ सम्पन्न करना प्रारम्भ किया जिससे पुरोहित वर्ग का भी विकास हुआ है। यज्ञ सम्पादन में बलिदान,पितृपूजा ,उर्वरता –प्रदायक ,अनुष्ठान् ,देवता से सामीप्य स्थापना तथा पापों से मुक्ति आदि प्रमुख आधार तत्व थे।[21] यज्ञों में इन तत्वों का होना अत्यन्त स्वाभाविक था।मनुष्य के सभी कर्मों में याज्ञिक क्रिया ही श्रेष्ठ थी।[22] ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में उल्लिखित है कि यज्ञ से ही सृष्टि हुई थी।कालान्तर में भी यह स्वीकार की गई।[23] यज्ञ सम्पन्न करने से समस्त पाप धुल जाते थे।[24] यहीं नहीं यज्ञ के माध्यम से देवता वश में हो जाते थे तथा बाध्य होकर वे मनुष्य को मनोकूल वर प्रदान करते थे।[25] अगर सही अर्थों में देखा जाय तो देवताओं और मनुष्यों के बीच संबंध –स्थापना में यज्ञों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

'अग्निहोत्र' यज्ञ प्रात: और सायं अग्नि की उपासना के साथ सम्पन्न किया जाता था , जिसमें दूध यवागु तंडुल ,दधि और घृत की आहुति दी जाती थी। पापों के क्षय और स्वर्ग की ओर से जाने वाला यह सर्वोत्तम नाव के रूप में स्वीकार किया गया था।[26] इस यज्ञ को सम्पन्न करने वाले ब्राहाण और क्षत्रिय दोनों वर्ण के लोग होते थे।[27] इसके निमित्त सहस्त्र गायें और घोड़े देकर ब्राहाण और क्षत्रिय को क्रय किया जाता था।[28] क्रय से कोई व्यक्ति नहीं मिल पाता था तो किसी शत्रु को विजित कर इस यज्ञ में बलि चढ़ा दी जाती थी।[29]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

4. मैक्स वेबर ,रिलिजन्स अव इण्डिया ,पृष्ठ 161
5. तैत्तिरीय संहिता ,भाष्योपोद्घात, पृष्ठ 2, प्रत्यक्षेणानुमित्या वा वास्तुपायो न बुध्यते। एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदम्य वेदता।
6. मनु 12.94 पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षु: सनातनम्।
आशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रामिति स्थिति : ॥
वही,12.97,चातुर्वर्ण्य वयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा:पृथक।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्व वेदात्प्रसिध्यति॥
वही ,2.11 योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विज :।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दक : ॥
7. शतपथ ब्राहण,11.5.6.1 ,यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णा ददत लोकं जयति ,त्रिभिस्तावन्स जयति भूयांस च अक्षं च य एवं विद्वानहरह:। स्वाध्यायमधीते। तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्य:।
8. हापकिन्स द रिलिजन्स अव इण्डिया पृष्ठ 11–17
9. ऋग्वेद 4.58.3
10. ऋग्वेद 4.261 –2
11. वही 1.151.6,त्व कुत्सं शुण्णहन्येष्वाविधा रन्धयो तिथिग्वाय शम्बरम्। महान्तं चिदर्बुदं नि कर्मा: पदा सना देव दस्युहत्याय जज्ञिपे ॥
12. वही 2.1.9.यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते। यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत स जनास इन्द्र:।
13. वही ,7.86.5,तवद्रुग्धानि पित्र्या सृजान:ऽव या वयं चकृमा तनूभि :।
14. अर्थर्ववेद 4.3.3 :7.33 वाजसनेयी संहिता 10.7
15. ऋग्वेद 3.62.10
16. वही,1.154.3 ,एको विमने त्रिभिरित् पदनोभि :।
17. वही 1.154.6,ता वां वास्तून्युश्मति गांभध्यै।
यत्र गावों भूरिश्रृंगा अयास : ॥
18. वही ,2.33.7
19. अथर्ववेद 11.1.7–8,11.2.2–7
20. पञ्चविंश ब्राह्मण ,1.8.4.1
21. रिलिजन ऐण्ड फिलासफी अव द ऐण्ड उपनिषद्स. 1.पृष्ठ 253–78
22. शतपथ ब्राह्मण ,1.7.3.5 यज्ञौ वै श्रेष्ठतम कर्म।
23. ताण्ड्य ब्राह्मण ,6.1
24. शतपथ ब्राह्मण 2.3.1.6
25. पञ्चविंश ब्राह्मण ,1.8.4.1
26. शतपथ ब्राह्मण ,अच्युत ग्रंथमाला,1,पृ.191
27. सत्यासाढ श्रौतसूत्र 14.6.1.राजा ब्राह्मणों वा। आपस्तम्ब , 20.24.2. ब्राह्मणो राजन्यो वा यजेत्।
28. शांखायन श्रौतसूत्र 16.10.9. ब्राह्मण वा क्षत्रियं सहस्त्रेण शताश्वेनावक्रीय।
29. वैतान श्रौतसूत्र 7.37.16,सपत्नं विजित्य तेन यजेत्।

****

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम

डॉ. अशोक कुमार* डॉ. पुष्पांजलि आर्य **

शोध सारांश – खाद्य सुरक्षा से अभिप्राय सभी लोगों के लिए सदैव भोजन की उपलब्धता हो उपलब्ध भोजन लोगों की पहुँच में भी हो साथ ही लोगों के पास इस भोजन को प्राप्त करने की सामर्थ्य हो, इसी अधिकार को प्रदान करने के लिए भारत की संसद ने 2013 में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 पारित किया इस खाद्य अधिकार कानून भी कहां जाता है। इस अधिनियम के तहत भारत की 1.2 अरब की आबादी लगभग दो तिहाई लोगों को कम दाम पर अनाज प्रदान करने का प्रावधान है।

शब्द कुंजी – खाद्य सुरक्षा, अधिकार, अधिनियम, गरीबी कुपोषण, भुखमरी।

प्रस्तावना – सबके लिए खाद्य सुरक्षा प्राप्त करना स्वतंत्रता से ही राष्ट्रीय लक्ष्य रहा है। खाद्य सुरक्षा अब आर्थिक और सामाजिक रूप से संतुलित आहार प्राप्त करना पेयजल की उपलब्धता, पर्यावरण की सफाई और प्रारंभिक स्वास्थ्य उपलब्धता के रूप में परिभाषित की जाती है। देश में अनेक सरकारी योजनाओं के बावजूद हमारे देश में व्यापक रूप से कुपोषण फैला है। आर्थिक विकास दर के मामले में जितनी भी प्रगति कर ली हो लेकिन भूख मिटाने और कुपोषण के मामले में हमारी ख्याति अच्छी नहीं है। खाद्य उत्पादन के लिए दिनों-दिन भूमि घटती जा रही है। जनसंख्या में हो रही जबर्दस्त वृद्धि के कारण प्रत्येक वर्ष 2.5 मिलियन टन अतिरिक्त खाद्यानों की मांग उत्पन्न हो रही है। आधुनिक व्यवस्थायें, मसलन बाजार और पूंजीवाद तथा उससे जुड़ी मान्यतायें खूब फली-फूली लेकिन इसने आम आदमी को भूख, कुपोषण और गरीबी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिया। अगर ऐसा न होता तो संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव वान की मून स्वयं यह स्वीकार नहीं करते कि दुनिया में प्रत्येक 5 सेंकेन्ड में एक बच्चा भूख से दम तोड़ देता है। करोड़ से भी अधिक लोगो के लिए भोजन उपलब्ध नहीं है। आज भोजन का अधिकार सम्बन्धी कानून की मांग दुनिया भर में हो रही है। भारत में भूखमरी और कुपोषण का संकट दक्षिण अफ्रीका के देशों की तुलना में कहीं ज्यादा है। यूनीसेफ की रिपोर्ट के अनुसार भारत का हर दूसरा बच्चा और हर दूसरी महिला खून की कमी से पीड़ित है।

भूख पर वैश्विक स्थितिदेश/क्षेत्र	संख्या
विकासशील देश	832 लाख
विकसित देश	16 लाख
भारत	213 लाख
लैटिन अमेरीका और कैरोवियाई देश	45 लाख
उत्तरी अफ्रीका	33 लाख
चीन	123 लाख
एशिया और प्रशांत (भारत और चीन छोड़कर)	189 लाख
सबसाहरा अफ्रीका	212 लाख

स्रोत खाद्य एवं कृषि संगठन की रिपोर्ट, 2009

सतत् खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए-भोजन की उपलब्धता, जो उत्पादन का काम है। जब बिल्कुल जरूरी हो जाए, आयात किया जाय।

1. भोजन तक पहुच, जो क्रय शक्ति और रोजगार का काम है।
2. शरीर भोजन को पचा सके, इसके लिए स्वच्छ पेयजल, साफ-सफाई और स्वस्थ्य की सुविधांए जुटानी होगी।

इस प्रकार से खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए खाद्य और गैर खाद्य कारकों को ध्यान में रखते हुए समन्वित दृष्टिकोण अपनाना होगा हमारे देश में अनेक योजनाएं चल रही है, जो इन 3 उद्देश्यों का समाधान जुटाती है। राजीव गाँधी पेयजल मिशन, समग्र सफाई कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन ऐसी योजना है जो सुनिश्चित कर सकती है कि जो भी भोजन खाया जाए, वह शरीर को शक्ति दे। अनेक रोजगार जुटाने वाली योजनाएं चल रही है। जिसमें महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्याक्रम जो गरीबों को न्यूनतम जरूरी क्रय शक्ति उपलब्ध करती है। इसके बावजूद भारत में जनसंख्या के काफी बड़े हिस्से की अनाजों को खरीदनें की सामर्थ्य में समानुपातिक वृद्धि नहीं हो पायी है। यह एक ऐसी स्थिति है। जिसका त्वरित निदान जरूरी है। देश में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2003 बन चुका है, जो भोजन से वंचित देश के 67 प्रतिशत लोगों की भोजन की गांरटी प्रदान करता है। निश्चय यह एक बहुत बड़ी छलांग है जिसका प्रभाव बहुआयामी और बहुस्तरीय होने वाला है। लोगों, विशेषकर गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को भोजन उपलब्ध कराने की गांरटी का उनकी आमदनी पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ेगा वंचित और निर्धन वर्गो को भरपूर भोजन मिलने से उनका पोषण बेहतर ढ़ंग से हो सकेगा, जिससे उनके स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार हो सकेगा। हम प्राय: यह भूल जाते है कि भारत की जनसंख्या का दो-तिहाई हिस्सा आज भी गरीब है उसके मासिक बजट का एक बड़ा हिस्सा भोजन सामग्री पर व्यय होता है। देश के लोगों को बुनियादी खाद्य आवश्यकताएं प्रदान करने के लिए भारत में एक लम्बें समय से सार्वजनिक वितरण प्रणाली कायम है। जिसने भूख को दूर करने में उल्लेखनीय भूमिका अदा की है। और गरीबी में कमी लाने में गहरा प्रभाव छोड़ा है। परन्तु भारत में बहुत से लोग खाद्य असुरक्षा और कुपोषण से ग्रसित है। भविष्य में

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (अर्थशस्त्र) राजकीय महाविद्यालय, देवप्रयाग (उत्तराखण्ड) भारत
** असिस्टेन्ट प्रोफेसर (अर्थशास्त्र) राजकीय पी0जी0 कालेज, कोटद्वारा (उत्तराखण्ड) भारत

खाद्ययाङ्न समस्या अधिक गंभीर हो सकती है। आज भारत विकास के पथ पर है मगर सभी लोगों को भरपेट भोजन न मिले तो विकास का महत्व घट जाता है। करोड़ों लोगों को खाद्ययाङ्न उपलब्ध कराने का भार देश के किसानों के कंधो पर है। कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, मगर कृषि ही पिछड़ी हुई हो और किसान की माली हालत खस्ता हो, ऐसी स्थिति में खाद्य सुरक्षा चुनौती से कम नहीं है। गाँवो में गरीबी मुखर है। बिना किसानों की खुशहाली के विना भारत की खुशहाली मुमकिन नहीं है। खाद्य सुरक्षा किसानों की खुशहाली पर निर्भर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था-ए0एन0 अग्रवाल, दिल्ली, 35 वॉ संस्करण।
2. योजना प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
3. भारत का आर्थिक सर्वेक्षण 2002-03, 2003-04, 2004-05
4. 2014 अमर उजाला 11 जनवरी
5. सक्सेना, एन0सी0, 2004, ऐनेरजाइजिंग गवर्मेंट एफर्ट फॉर फूड सिक्युरिटी

****

अपराध के बदलते परिदृश्य

डॉ. मंजू गुप्ता*

प्रस्तावना – अपराध एक सार्वभौमिक घटना है जो किसी न किसी रूप मे प्रत्येक समाज मे पाई जाती है यद्यपि इसके स्वरुप भिन्न भिन्न हो सकते है। अपराध की अवधारणा समय और स्थान के आधार पर भी भिन्न भिन्न हो सकती है। सामान्यत: समाज के द्वारा निर्मित नियम और राज्य के द्वारा निर्मित कानून का उल्लंघन ही अपराध कहलाता है और इन्ही दो आधारों पर विभिन्न विद्वानों ने अपराध को परिभषित किया है। जहाँ इलियट और मैरिल अपराध को कानून द्वारा वर्जित कार्य मानते है जिसके लिए दंड की व्यवस्था होती है। वहीं मैंनहीम का कहना है कि अपराध सिर्फ कानून से ही सम्बंधित नहीं होते। अत: स्पष्ट है कि समाज के नियमो के विरुद्ध की गई कोई भी गतिविधि अपराध की श्रेणी मे आएगी। प्रत्येक दृष्टि से अपराध सार्वजानिक हित के लिए हानिकारक होता है तथा व्यक्ति और समाज को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाता है।

अपराध शब्द के हिंदी मे अनेक पर्यायवाची शब्द है जैसे दोष, जुर्म, पाप, गुनाह, अपकृत्य, कुसूर इत्यादि तथा अंग्रेजी मे इसके लिए क्राइम शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्राइम (Crime) शब्द लैटिन भाषा के क्रिमेन (Crimen) शब्द से बना है जिसका अर्थ निर्णय देने से सम्बंधित है। ग्रीक भाषा मे इसका अर्थ अलगाव से लगाया जाता है।

अपराध के प्रमुख तत्व : अपराध की प्रकृति या अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए अपराध के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

1. अपराध का सम्बन्ध उस कार्य से है जिसे समाज या कानून ने दण्डनीय घोषित किया हुआ हो क्योंकि उस से किसी व्यक्ति या समाज को हानि पहुँचती है।
2. किसी भी कार्य या गतिविधि को रब आपराधिक कहेंगे जब कर्ता का इरादा आपराधिक हो।
3. समाज के लोग अपराध और अपराधी के प्रति आक्रोशित प्रतिक्रिया देते है और विभिन्न प्रकार से उसका विरोध करते है।
4. अपराध के लिए क्रिया करना आवश्यक है, मात्र सोचने या कहने से ही वह अपराधी नहीं हो जाता ।
5. अपराध के लिए दंड की व्यवस्था अनिवार्य रूप से होती है।

देश और काल के आधार पर किसी कृत्य को अपराध माना भी जा सकता है और नहीं भी माना जा सकता है। सेथना के अनुसार अपराध कोई भी वह कार्य है जो किसी समय विशेष मे राज्य द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार दंडनीय है चाहे उसका सम्बन्ध पाप से हो या नहीं।

अपराध से मिलती जुलती कुछ अवधारणाये भी है जैसे दुष्कृति (Tort), दुराचार (vice), अनैतिकता (Immorality), पाप (Sin), जघन्य अपराध (Felony) इत्यादि। इन सभी का सम्बन्ध सामाजिक या कानूनी नियमो का उल्लंघन और अन्य लोगो को कष्ट देने या नुकसान पहुंचाने से है। अत: ये भी अपराध की श्रेणी मे आते है बस केवल तीव्रता और गंभीरता का अंतर होता है। इसी के आधार पर विभिन्न अपराधशास्त्रीयों ने अपराध और अपराधियों का वर्गीकरण किया है। अपराध के वर्गीकरण मे आयु और लिंग भी महत्वपूर्ण आधार है। बाल अपराध, महिला अपराध की अवधारणा यही से उत्पन्न हुई है।

अपराध यद्यपि सार्वभौमिक घटनाऐं है। फिर भी प्रत्येक समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और वैधानिक परिपेक्ष्य मे इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा देना एक जटिल कार्य है। क्योंकिअपराध का पैमाना समय और स्थान के साथ साथ बदल जाता है। अर्थात जो कार्य पहले अच्छा माना जाता था वो अब अपराध माना जा सकता है,जैसे – सती प्रथा। इसी प्रकार जो कार्य एक स्थान पर अच्छा माना जाता हो वो दूसरे स्थान पर अपराध माना जा सकता है,जैसे –मदिरा पान। अत: स्पष्ट है कि अपराध की अवधारणा मे काफी गत्यातमकता है। साथ ही समय समय पर नये नये अपराध विकसित होने लगते है. निम्नलिखित बिन्दुओ पर हम अपराध के बदलते हुए परिदृश्य की विवेचना कर सकते है –

1. पहले अपराध का व्यावसायिक या पेशेवर रूप नहीं था किन्तु आज अपराध संगठित रूप मे एक पेशे के रूप मे किया जाने लगा है। इसके लिए अपराधी अपराध के लिए सचेत रूप मे संगठित हो कर योजना बनाता है और अपराध करता है।
2. पहले अपराध व्यक्तिगत लाभ के लिए किये जाते थे किन्तु अब व्यक्तिगत सुख और मनोरंजन के लिए भी अपराध होते है। नशा, जुआ खेलना, बलात्कार इसी कारण अधिक होने लगे है। इलियट और मेरिल का मानना है कि कुछ संकोची लोग मधपान को एक विकल्प के रूप मे भी लेते है।
3. पहले श्वेतवसन अपराध न के बराबर होते थे किन्तु अब समाज मे ऐसे अपराधों मे तीव्र गति से वृद्धि हुई है। बड़े अधिकारी और धर्म गुरु से पहले किसी छल या अपराध की बात कोई सोच नहीं सकता था किन्तु आज इन पर लोग विश्वास करने से डरते है।
4. वर्तमान मे अनैतिकता से सम्बंधित अपराध अधिक होने लगे है जैसी अवैध सम्बन्ध, बलात्कार, भ्रष्टाचार इत्यादि, जो पहले बहुत कम देखने को मिलते थे।
5. पहले कमजोर वर्ग जैसे – बच्चों और महिलाओ को सुरक्षित रखने की भावना होती थी। किन्तुवर्तमान मे इन्ही के प्रति अपराध अधिक हो रहे है।

* सह आचार्य (समाजशास्त्र) राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.) भारत

6. अपराधियों की प्रकृति मे भी परिवर्तन देखने को मिलता है। पहले अपराधी जन्मजात माने जाते थे किन्तु आधुनिक युग मे अपराधी प्रवृति के पीछे सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक परिवेश को उत्तारदायी समझा जाता है।
7. वर्तमान परिदृश्य मे राजनीती और अपराध का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ है जबकि परंपरागत रुप मे राजनीति और राजा पवित्र और ईश्वर तुल्य माने जाते थे उन पर कोई शक या शंका भी नहीं कर सकता था।
8. धर्म कि आड़ मे होने वाले अपराधों मे वृद्धि हुई है। कई धर्म स्थान अय्याशी और आर्थिक अपराधों के अड्डे बन जाते है जिनका पता बहुत बाद मे पता चलता है।
9. चिकित्सक को भी ईश्वर तुल्य मां कर पूजा जाता है किन्तु वर्तमान मे चिकित्सा के क्षेत्र मे स्वयं चिकित्सक ही अपराध मे लिप्त रहते है। इन अपराधों मे कन्या भ्रुण हत्या, शरीर के अंगों का व्यापार, अनावश्यक इलाज और दवाइया चला कर भ्रमित करना इत्यादि प्रमुख है।
10. बालको से अपराध की अपेक्षा नहीं की जाती थी किन्तु आज बाल अपराधों मे निरंतर वृद्धि हो रही है।
11. इसी प्रकार महिला अपराधियों मे भी वृद्धि हुई है जबकि उनको पहले ममता की मूर्ति और घरेलु सदस्य माना जाता था।
12. पहले बलात्कार और यौन अपराध अनजाने व्यक्तियों या आदतन अपराधियों के द्वारा ही किया जाता था किन्तु प्रो.राम आहूजा के अनुसार बलात्कार पूर्णतया अजनबी लोगो के द्वारा नहीं होता आधे मामलो मे स्त्रियां बलात्कारी से परिचित होती है।
13. पहले अतिथियों को देवता तुल्य माना जाता था किन्तु वर्तमान मे देसी और विदेशी पर्यटको के साथ भी आर्थिक और यौन अपराध कि घटनाये बढ़ रही है।
14. कुछ नये अपराध विकसित हुए है जिनका पहले कोई अस्तित्व ही नहीं था जैसे साइबर अपराध। आधुनिक समय मे इंटरनेट का दुरूपयोग का यह उदाहरण है।

निष्कर्ष - उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि वर्तमान समय मे अपराध और अपराधियों के रूप मे भी परिवर्तन आ चुका है। प्रत्येक स्तर पर स्थितिऔर भयावह होती जा रही है। अपराध के ये बदलते परिदृश्य समाज और व्यक्ति के लिए और अधिक कष्टदायी है। ऐसे अपराध महानगरो तक ही सीमित नहीं है बल्कि छोटे नगरो, कस्बे और ग्रामीण मे भी आये दिन देखने को मिल रहे है। इसके कारण आम व्यक्ति मे असुरक्षा की भावना आती है जो समाज और राष्ट्र के उत्थान मे बाधक है। यदि विचार किया जाये तो इन बदलते हुए आपराधिक परिदृश्य के पीछे मुख्य कारण नैतिक मूल्यों की कमी है। नैतिकता के आभाव मे ही इन अपराधों की भयावह और घृणितता मे बढ़ोतरी हुई है। अत: इनपर रोक लगाने के लिए नैतिकता शिक्षा पर अधिक बल देना चाहिए। क्योंकि नैतिक समाज मे इस प्रकार के घृणित अपराध होने कि सम्भावना अपेक्षाकृत कम होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. M.J. Sethna, Society and the Criminal
2. Elliott and Merrill, Social Disorganization
3. Ram Ahuja, Social Problems In India, Rawat Publication Jaipur
4. Abrahamsen,David ."Psychology of Crime".
5. BAGULIA, A M. "Child and crime", SBS

****

आधुनिक समाज और मूल्यहीनता

डॉ. चारुलाता तिवारी*

प्रस्तावना – किसी भी व्यक्ति या समाज का परिचय उसके नाम से नहीं प्रारंभ होता है मानव को सामाजिक प्राणी के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपनी आवश्यकताओं के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं और यह ही प्रयत्न अनेक व्यवस्थाओं का विकास करते हैं इन व्यवस्थाओं में विज्ञान, कला, धर्म, प्रथा, परंपरा, जनरीति, रूढ़ि, रीति–रिवाज, मूल्य सभी सम्मिलित होते हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्मित यही व्यवस्थाएं मोटे तौर पर समाज में संगठन स्थापित करती हैं संस्कृति को जन्म देती हैं संस्कृति पाने हमारा सीखाहुआ व्यवहार संस्कृति सीखे हुए व्यवहार की वह समग्रता है जिसमें एक बच्चे का व्यक्तित्व पलता और पनपता है।

हमारे वर्षों के अभिसरण और एकीकरण के परिणाम स्वरूप भारत में एक संयुक्त संस्कृति का विकास हुआ है यह वह संस्कृति है जो समकालीन भारत में मुख्य रूप से देखी जा सकती है। भारतीय समाज में जाति पंचायतें, पडौस, प्रथाएं, रूढ़ियां, जनरीतियाँ, धर्म, विश्वास और जनमत मूल्य सामाजिक नियंत्रण और संगठन के प्रमुख अनौपचारिक साधन है।

सामाजिक संगठन संपूर्ण समाज में सुव्यवस्था का परिचायक होता है जिसके अभाव में समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है वास्तव में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगठन और मूल्य का महत्वपूर्ण स्थान है और इसलिए संगठन के बिना सामाजिक जीवन की कल्पना करना असंभव है।

जब तक समाज में सामाजिक नियंत्रण रहता है मूल्यों को महत्व दिया जाता है और समाज में संगठन बना रहता है किंतु जब सामाजिक नियंत्रण ढीला हो जाता है जब सामाजिक संबंध बिगड़ जाते हैं और वे धीरे–धीरे पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं इन कारणों से समाज विघटितहोने लगता है।आज औद्योगिकरण पश्चिमीकरण नगरीकरण ने संयुक्त परिवार की संरचनाकोकाफी हद तक प्रभावित किया है, संयुक्त परिवार का स्थान एकाकी परिवार लेते जा रहे हैं।

परिवार प्रणाली का विघटन होने से परिवार का सम्मिलित रूप अव्यवस्थित हो गया है अब वह बूढ़ों, विधवाओं, अनाथ, बच्चों को आचरण नहीं दे पा रहे हैं। संयुक्त परिवार में रहते हुए पहले बच्चों उदारता धर्म प्रेम, समाजिकता, सद्भाव, आज्ञाकारीता और हिलमिल की कला का पाठ पढ़ाते थे और परिवार के हित में अपना सब कुछ समर्पित करते थे। अब इस परिवार प्रणाली का जैसे–जैसे विघटन होता जा रहा है वैसे वैसे व्यक्ति भाजपा का विकास होता जा रहा है और परिवार का नियंत्रण ढीला पड़ता जा रहा है।ऐसे में व्यक्ति समाज और सामाजिक परिस्थितियोंकी परवाह नहीं करते विधि–विधानों के प्रति लापरवाह होते जा रहे हैं और अपने हितों को सर्वोपरि समझने लगे हैं। जब समाज में 'हम' के स्थान पर 'मैं' की भावना आने लगती है औरतब इसी व्यक्तिवादी विचारधारा के कारण व्यक्ति मनमाना व्यवहार करने लगता है और विघटनकारी शक्तियां समाज में पनपने लगती हैं।

समाज में कुछ इसी तरह की स्थिति सामाजिक मूल्यों की भी है समाज के नैतिकता के मूल्यों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है मूल्य समाज संगठन का आधार होते हैं मूल्यों के पारस्परिक आदान–प्रदान से ही व्यक्ति पूर्ण बनता है प्रत्येक समाज के आदर्श होते हैं उसे वहीं आदेशों के आधार पर समाज की प्रगति का आकलन किया जाता है इन्हीं मूल्यों के आधार पर या निर्धारित होता है कि समाज में उचित क्या है अनुचित क्या है।मूल्यसमाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे लक्ष्य है।जिसके आधार पर किसी वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है।

आजहमसांस्कृतिक संकट के दौर से गुजर रहे हैं भूमंडलीकरण के इस युग में अपना कहने को कुछ भी नहीं है। संस्कृति को आज आवरण की तरह समझा जा रहा है संस्कृति को बताने में उद्योग कल कारखाने, सिनेमाघर, अखबार, टीवी, फैशन शो, विज्ञापन सभी हैं।पहले विज्ञापनों में उल्टी–सीधी पैदा की जाती है और फिर उत्पादों से बाजार भर दिए जाते हैं पूंजी बटोरने की लालसा में आवश्यकता ऐसा वातावरण पैदा कर दिया है कि हम बीच बाजार में आ गए हैं पैसा फेंको और मजा लोआज का नारा बन गया है यह मजा लोग बच्चों से लेकर व्यक्तियों में देखने लगे इसके केंद्र में आ गया है सबसे बड़ा अभिशाप महिलाओं को भोगना पड़ रहा है भारत में हम एक पिता सहित अन्य सगे संबंधियों का शिकार बनती लड़कियों की बारे में समाचार पढ़ते रहते हैं कन्यादान को सबसे बड़ा दान मारने वाली हमारी संस्कृति में नारी को ममता और देवी का दर्जा प्राप्त है इससे शर्मनाक और क्या होगा इससे भी बड़ी बात यह है कि पुरुष पात्रों की मन में अपने कर्मों दुष्कर्म को लेकर ना कोई अपराध बोध है ना ही पश्चाताप और ना ही आध्यात्मिक नैतिकता।

बालिकाओं के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा कर दिया है नैतिकता ना कोई की कोई जगह नही और ना कोई उसूल है।जीवन के केंद्र में पदार्थ आ गया है मनुष्य स्वार्थीहो गया है छोटोंद्वारा बड़ों को सम्मान देना उनके द्वारा कई बातों को मानना इतिहास की बातें बनती जा रही है विकास के पश्चिमी मॉडल पर चलते हुए पश्चिम के रंग में इस कदर रंग गए हैं कि मात्र उपभोग को जीवन शैली मानने लगे जीवन पद्धति में हमारे सामाजिक संस्कृति नैतिकता भाईचारे और एकता की नहीं जिससे समाज बिखर रहा है और धर्म की आज वह जगह नहीं जो सामाजिक संगठन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे समानता का जो अर्थ आज समाज में प्रचलित हो रहा है वह चिंता का विषय है गुणवत्ता को पात्र अपात्र की समस्त शक्तियोंको ताक पर रखते

* सह आचार्य (समाजशास्त्र) राजकीय कन्या महाविद्यालय, झालावाड़ (राज.) भारत

हुए गरीबी पीड़ित मानवता के लिए हमारे पास वक्त नहीं है।

इससे भी आगे एक बड़ी विडंबना यह है की आत्म सम्मान की भावना खत्म हो गई है हम दूसरों को सम्मान और स्नेह देखने की तुलना में उपयोगिता की दृष्टि से देखते हैं.हृदय की गहराइयों तक पहुंचने का सवाल ही नहीं होता आज संरचनात्मक विकास हो रहा है वही समाजका सांस्कृतिक स्तर अवनति की ओर अग्रसर है।

हमें समाज में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश की इस मूल्यहीनता की स्थिति से उबरने के लिए किसी बाहरी प्रेरणा स्रोत की और ना जाकर अपना ही आत्म मंथन करना होगा सामाजिक सांस्कृतिक धाराओं के विषम हुए रेशों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मकविश्लेषण करना होगा धार्मिक आर्थिक राजनीतिक मानक यदि हमारे समाज में विघटन उत्पन्न कर रहे हैं तो उन्हें अस्वीकार करना होगाभ्रष्ट हुई भावभूमि कोआज हमें सिर्फ जोतना और उसमें मूल्यों का बीज बोना है। हम उन संस्कारोंके बीच जिये जो,यह तोहमारे देश में वर्षों से चर्चित और प्रमाणित है नैतिकता संस्कृति की आंतरिक शक्ति है उसे जगाने के लिए सामाजिक चेतना को जगाने का अंकन होना चाहिए सपनों की जड़े मिट्टी में होती है बिना मिट्टी का सहारा लिए बढ़ने वाला वृक्ष थोड़ी देर का बढ़ते हुए दिखाई दे सकते हैं लेकिन उनकी मूल्य विकृतियां के विस्तार की कोई सीमा नहीं निरंतर सामाजिक रिश्तों और मूल्यों में विघटन की घटनाएं इन्हीं विकृतियों का प्रमाण है। भारतीय सिनिज पर कब स्पष्ट और यथार्थ सत्य का पौधा जन्मेगा इसकी भविष्यवाणी करना अति कठिन है परंतु यदि प्रबुद्ध समाज अपने चिंतन संसार में सत्य की प्रतिबद्धता बैठा ले तो नया संसार बनाया जा सकता है।

आज सामाजिक संगठन और सामाजिक मूल्यों को बनाए रखना प्रत्येक समाज का मुख्य लक्ष्य है,ताकि तेज सामाजिक परिवर्तनों के दुरपरिणाम से बचा जा सके और परिवर्तन सामाजिक व्यवस्था के लिए किसी भी प्रकार का खतरा पैदा न कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यक्तिगत शोध के आधार पर।

****

Microwave-heat assisted pectin extraction and its advantages

Dr. Mahendra Singh Panwar *

Abstract - Pectin is an important constituent of cell wall and middle lamellae of plants, it is a complex polysaccharide. The majority of structure of pectin contains a backbone of á (1-4) linked D-galacturonic acid units which can be often esterified with methyl group. Pectin obtained from different sources have different properties and thus different applications. Its extraction is a critical unit operation in recovering this compound from its natural state in the cell walls. The conventional extraction (CE) process includes hydrolysis of pectin using a strong mineral acid at high temperature and produces pectin of an inconsistent quality, due to this reason CE is not worth the energy and economic demands associated with it. Therefore several novel approaches have been evolved with some prominent outcomes. The microwave assisted pectin extraction (MAE) is a recognized green technology. The transfer of energy in MAE follows two mechanisms: dipole rotation and ionic conduction which produces a solvent having higher dielectric loss capable of being rapidly heated to break fewer covalent bonds in order to obtain pectin with higher molar mass, thereby qualitative and quantitative characteristics of Microwave assisted extracted pectin have shown improvements over conventional extraction method. Furthermore, optimization of process parameters in MAE can be done to enhance the efficiency of extraction process.

Introduction - It is a challenge for the food industry to achieve the maximum usage of natural resources to develop a value-added food products using environmentally friendly techniques. Pectin is naturally present in the middle lamella of the leaf and in the peels of fruits, which assists in providing structure to the plant. Himalayan belt is habitat of many citrus fruit verities and during processing the peels of such fruits often get unattended, though this agricultural waste is valuable source for the production of functional food ingredients using 'green' and sustainable manufacturing process like the microwave assisted pectin extraction. Pectin also possesses a wide spectrum of functional properties of value to both food and pharmaceutical industries (Willats*et al*., 2006). The quality of pectin extracted depends on the source and extraction method and the typical sources for the industrial extraction of pectin are agricultural raw materials such as citrus peels.

Conventional technique of pectin extraction - Conventional industrial techniques for pectin extraction involves combination of high temperature and dilute mineral acid, i.e., nitric or hydrochloric acid (Panouillé*et al*., 2006). Pectin extraction involves multiple-stages which are the physical–chemical processes and encompasses hydrolysis and extraction of pectin macromolecules from plant tissue and their solubilisation is influenced by the temperature, pH and the chemicals invoved(Kertesz 1951).However, the conventional method of pectin extraction involves sever disadvantages, like poor quality as well as shorter strands of pectin. The strong acid solution could lead to smaller pectin particles owing to partial hydrolysis and at times strong acid invariably increases the solubility of the pectin which reduces the extend of precipitation and it thereby reduces the pectin yield. The another factor which influences the yield is the temperature subjected during the process, high temperature causes the decomposition of the glycosidic bonds and that may increase the extend of solubilisation of pectin and may also lead to poor yield.

Microwave assisted pectin extraction - The microwave assisted pectin extraction works on two important factors that are invariably rapid rotation of water molecules along with the ionic conductance provided by the solvents like HCl. This process provide a solvent that has the capacity to get heated very fast contrary to the conventional method. This enables the heated acid to quickly solubilise the pectin from the cell walls and it causes only few covalent bonds to break which thereby aids in extracting a pectin with higher molar mass and viscosity.The advantages that are provided by the MAE of pectin includes rapid heating time (localized super heating), control of temperature and pressure, higher temperatures, higher pressures and negligible volatility of solvents contrary to the conventional extraction of pectin. Most important factors that are Ionic conduction and dipole rotation are the essential mechanisms for producing dielectric loss. Thus, the speed of heating increases with increasing rapidity of dipole rotation and ionic conduction provided by the microwave assisted extraction of pectin (Ness & Collins 1988).

Conclusion - Pectin being a natural additive is intensively used in the foodindustry. Extensive studies regarding microwave assisted extraction ofpectin from different sources is being done in order to yield good quality of pectin over the conventional methods. In addition, the pectin extracted under

* **Department of Chemistry, Govt. Post Graduate College, Agastyamuni, Rudraprayag (Uttarakhand) INDIA**

optimalextraction conditions using MAE had a suitable purity, high stability levels of the emulsions thereby the MAE pectin from different sources can be a potential source to provide different technological functions in the food and pharmaceutical application.

References :-

1. Fishman, M. L., Chau, H. K., Kolpak, F., & Brady, J. (2001). Solvent effects on the molecular properties of pectins. Journal of Agricultural and Food Chemistry, 49, 4494–4501.
2. Kertez, Z. I. (1951). Quantitative determination of pectic substances. *The Pectic Substances*, 213.
3. Monsoor, M. A., Kalapathy, U., & Proctor, A. (2001). Determination of polygalacturonic acid content in pectin extracts by diffuse reflectance Fourier transform infrared spectroscopy. *Food Chemistry*, *74*(2), 233-238.
4. Ness, E. D., & Collins, M. J. (1988). Microwave heating, theoretical concepts and equipment design. In H. M. Kingston, & L. B. Jassie (Eds.), Introduction to microwave sample preparation (pp. 10–32). Washington, DC: American Chemical Society
5. Panouillé, M., Thibault, J. F., &Bonnin, E. (2006). Cellulase and protease preparationsCan extract pectins from various plant byproducts. Journal of Agricultural and Food Chemistry, 54, 8926–8935
6. Willats, W. G. T., Knox, J. P., &Mikkelsen, J. D. (2006). Pectin: New insights into anOld polymer are starting to gel. Trends in Food Science & Technology, 17, 97–104.

****

Grid - Economic Optimized Resource Management: An Overview

Priyanka Shaktawat* Dr. Manish Shrimali **

Introduction - Economic Optimized Resource Management - The Grid Resource Management of Grid - Oriented Applications in the form of scheduling, Resource Allocation as well as Management is always economy-oriented. It is executed as the Grid infrastructure that has the objective of Resource maximum utilization, effective execution, and financial economy. The entire task offered to the System for implementation is planned for the Resources. The System desires to offer particular information on the status of the Resources that are further executed by scheduling utilizing load balancing. The approach is preferred to offer an economical pathway of the conclusion of tasks concerning a set of tasks considerately running tasks on manifold associated sites of System with harmonized data swap over among processes.

The challenge that faced-out are reviewed are continuous performance contentment through manifold domains, Computational Resources accessibility, Fault-tolerance functionalities, Quality of Service assurance, speedy and cost effectual access to Grid Resources, and many more.

Security Approach - The phase of shielding of assets is expressed as Computer Security. The shielding is captivating actions to avoid assets from being smashed, identifying when an asset has been smashed, and taking actions that allocate one to recover assets from damage. The perception of Computer Security encircles around main features that are, Confidentiality-avoidance of the unauthorized revelation of information, Integrity- avoidance of unauthorized alteration of information, Resources Unauthorized preservation is even considered.

Executing Security for an organization desires insightful Security policies. A Security Policy is a declaration of intention to guard recognized Resource from unauthorized use. Organizational Security Policy is a set of protocols, laws, rules, and performances that normalizes the method by which an organization manages, protects, and distributes Resources to accomplish specified Security Policy objectives. To frame a Security Policy, related entities must be illustrated mentioning the protocols comprise the Policy. Hence, Security Models represents a vital entity while planning and executing the Security Systems. The design process of such Systems starts from a formal specification of the Policy which the Security model-based System must be enforced.

A Security Model is a computational or logical expression of a set of Security protocols. A System can be made secure only if its Security model is based on logically sound with Security features built into Security components of the operating Systems, database Systems, applications. Every Information Security Models avails the terms: Subject - an entity like a person, process, or device that access or avails information from the System and an Object – that is the information or a piece of a bigger body of information, that is accessed by a Subject, henceforth an Object can be considered as Subject in an instance or vice versa.

The important types of Information Security Models are Access Control models, Integrity models, State machine models, Information flow models, Non-interference models. Different types of Information Security Models use different philosophies to address subjects and objects, group and classify them and control their interactions. A specific model, which may be a well-known model or a model designed for a particular organizational environment, usually has features from different types of information models. Among the earlier models, BLP is a state machine model that represents the confidentiality aspect of Computer Security. Few of the Security Models are previewed as related Access Control Models.

Access Control Approach - Access control activity in the process is started by agents called subjects that are typically users or programs executing on behalf of users. Every user may sign on as a different subject on different occasions where an additional subject is generated to achieve the target. The approaches that are used to achieve access control have different modeling and implementation.

Logic approach to Access Control is at the core of

* Research Scholar (Computer Science) JRN Rajasthan Vidhyapeeth(D) University, Udaipur (Raj.) INDIA
** Deptt. of Computer Science, JRN Rajasthan Vidhyapeeth (D) University, Udaipur (Raj.) INDIA

Security in Computer Systems both from the hardware and from the software point of view. It may appear with a set of features and some flaws also in many like firewalls, virtual machines, Operating Systems, etc. The reliance is on logical thoughts and tools to improve access control. The application of logic in access control has been found to be substantial and beneficial. The issues relevant to access control are Decidability results for problems related to access control, Logical approaches for authorizing code execution, and formal verification of security properties.

The logic of access control is obtained by using an access control matrix which is a ternary relation say using predicate symbols. The predicate symbol then allows performing read operation on objects. The logic comprises of primitives related to groups, roles, object containment, rights and privilege ordering, etc.

A language-based approach to Access Control aims to support the expression and enforcement of access control policies. The languages are general and flexible. The languages are designed for access control relying on logic.

Access Control based on the execution history mechanism used the basic concept of the access control matrix. The association of a subject with an object is defined by the right which is nothing but an operation performed by the subject on the object. The association of rights with the code is an issue of dedication in Systems that rely on access control for Security. In some cases, the run-time rights are allocated in respect to execution.

Access Control in the presence of mobility draws new attention to the need for coordination among the networked components. The groups communicates with unknown and such communications are cannot be judged. It is unreasonable to be completely dependent on centralized servers to validate agents for ascertaining access policies as Wireless Networks are decoupled from any well defined Network Infrastructure.

Access Control Environment- Access Control in Collaborative Environments requires mechanisms that can integrate diverse policies. The issues in finalizing access control mechanisms for collaborative environments are stated as - Resources needs to be protected in collaborative Systems, Access control languages and policies, need of ad-hoc languages for specifying access control policies with the most relevant features of these languages particularly for hosts.

Different hosts may provide different levels of Security. A user can specify one's Security requirements when running the Grid application and to what extent the assurance meets the requirements.

Collaborative Systems usually encompass a very large number of nodes quite dynamic with hosts. The clients are dynamically joining and leaving the hosts that requirement puts a need to design and implement a scalable access System which is able to cope up with the dynamism.

Access Control Structures has a value in a model. It must implement so as to effectively control access to objects. An access control matrix has limitations. When the subjects and objects attain numbers the access control matrix consumes a significant amount of storage. Further, the creation and deletion of subjects and objects require the matrix to manage its storage carefully. Several optimization strategies enable Systems to use a more improved version of the access control matrix including - Access control lists, Capability lists, Layered access control and Propagated access control lists.

Access Control Functions- An access control function takes five parameters: the tuple of attributes, the requesting agent's credentials, the operation, the pattern used in the request, and the owner's profile. On getting requests for operations, an agent sends a portion of its profile with its ID, authentication information as to its credentials. The type of identification is necessary as applications are open and dynamic where the coordinating agents appear and disappear. A group of testimonials might be considered as attribute Tuple. The second parameter is the operation. The probable function is representing as a set O which encloses string demonstration of the dissimilar function. The third parameter is the Requested Tuple. The access control function operates over the tuple. As all the access privileges are oriented on particular data items hence the Tuples offer fine-grained access. The fourth parameter is the pattern. The parameter is important for content-based operation. The fifth parameter of the access control function is the owner's profile. It considers the owner's current state. It is equally important as access Policy is determined for dynamic environments.

Access Control Models- Access denotes Recourse permission, an approach, right, or privilege in a Grid. The mechanism to secure the unauthorized usage of Resources is known as Access Control. It restricts the actions of user as well as of the executing program. Access control models use a set of rules, which permit or deny access for a subject to an object. The ensuring of the information does not fall into wrong hands. The process involves a subject requesting an object. The permission or denial of access to the object depends on the rights that the subject possesses. The access control models namely are: Discretionary Access Control (DAC), Mandatory Access Control(MAC), Harrison Ruzzo & Ullman (HRU) and Originator Controlled Access control.

The DAC Model comprises of Objects (O) Set, Subjects (S) set, and an Access Matrix (A). Access Control List (ACL) – Column-oriented matrix and Capability List (CL) - Row-oriented matrix. The DAC model makes Objects to depend on their owners to permit access to other users.

The MAC Model consists of subjects and objects that have a certain classification. In Reading Operations - Subject's integrity level is subjugated by the read object while in Writing Operation - Subject's integrity level is subjugated by the integrity level of the writing object.

In the HRU Model, the security System incorporates a fixed set of codes as well as rights. The model uses the

DAC access matrix and has few primitive commands to create subjects and objects, delete subjects and objects. Originator Controlled Access Control (ORCON) is beneficial over Mandatory and Discretionary Access Control Models, that does not handle scenarios where the control is retained with the originators even though when such control is dissolved. In ORCON, a subject can give another subject rights to an object only with the approval of the creator of that object with characteristics:

1. Object Access Control cannot be updated by the object owner.
2. Once the object is copied, the access control privileges, as well as restrictions, are even carrying forwarded.
3. Individual subject access control restrictions alteration can be executed by the originator.

In ORCON, the originator manages the Object Access Control instead of the Owner. The access rights dealt with by the Object owner while the originator permits the access. The owner might not take precedence over the originator.

Alternative Access Control Approach- The next period suggested alternative models are the Chinese Wall Model, Task-Based Authorization, and Role-Based Access Control. The Chinese Wall Model deals with devising protocols such that no person can ever access data on the wrong side of the wall. The Modal Policy is laid on the foundation that the user is permitted to access information that is not interfering with the information they are possessing. The access rule states that a subject S can access an object O only if object O is in the same company data set as some object previously read by the subject S. The Task-Based Authorization deals with authorization of tasks rather than subjects and objects. These tasks may involve other tasks. The authorization is transient and it models the authorization structure.

The Role-Based Access Control is for controlling access to Computer Resources . In the model, the access decisions are based on the roles. A role is the standard unit of access control in the model and reflects the responsibilities of a user in an organization. Users take on assigned roles that are allocated based on organization requirements and working procedures. The Role name groups the Access rights and Resource availing rights are giving based on the associated role of the authorized individuals .

The Core Role-Based Access Control abbreviated as RBAC sets guidelines for the basic RBAC functionalities. The model involves sets of users, roles, and operations, and objects together with privileges.

The core RBAC model is made effective by developing and enforcing enterprise-specific Security policies for streamlining the Security Management process. Under the approach, users are granted membership mapped into roles based on their responsibilities in the organization . The operations that a user is permitted to perform are based on the specified role. User membership mapped roles are liable to be revoked when needed and new memberships mapped roles are established as the job assignments dictate. Whenever new or updated operations are established Role-based association is executed as well as previous operations are removed as organizational functions.

Updations of Role privileges can be executed directly without individual updations that is implies the efficiency of Resource Management. Based on Employee Role the privilege can be granted to execute the task. Least privilege needs recognizing the employee's task, identify the least package of privileges for executing a task with common restrictions. Since many of the responsibilities overlap between job categories, a maximum privilege for each job category can lead to uncontrolled access.

Sometimes, to perform any operations there might be chances of contradicting Roles having various responsibilities and privileges. There may be more consideration that there are some common operations that all employees are executing. In the situation, it would be inefficient and cumbersome to have efficient access control. Role hierarchies are set naturally as per the organizing roles. The role in which the user is assigned membership is not mutually exclusive with another role for which the user already possesses membership. When operations overlap, the hierarchy of roles can be established. Without instituting additional auditing to monitor access, organizations can put constraints on access.

The Role-based access control approach specifies the constraint oriented Role allotment on the basis of operation. The approach provides controllers the power to regulate who can perform what actions, when, from where, in what order, and under what circumstances. Only those operations that need to be performed by members of a role are granted to the limited role. Sometimes the roles are granted to a specific employee for a specific time period. At a single time, there can be a single manager, same for rights even where at a time a single manager will have a manager role at any given time. The original roles and inherited roles assigned to users are categorized namely enabled and activated roles. An enabled role is the one that is assigned to a user and ready for activation whereas an activated role is the one which the user has already activated it.

A well-administered Role-based Access Control System enables users to carry out a broad range of authorized operations and provides flexibility. The Access is controlled by the System administrators at the conceptual level by dynamically allocating Roles, Hierarchy, Relationships, privileges, restrictions, constraints. In an established approach for an organization, the principal administrative actions grant and revoke into and out of the roles of users.

After the RBAC model, variants came up after the RBAC model is the Generalized Temporal model, Partial Outsourcing model, Tees Confidentiality model. The GT model has a separate notion of role enabling and role activation. To enable and activate Role it offers restrictions, constraints, and operation. The PO model deals with Single Administration-Internal and Single Administration-External with paradigm shifts to partial outsourcing.

Conclusion - The access control is decentralized to be jointly

handled by different parties involved for the purpose. In the TC model permissions are assigned to users irrespective of the roles. It assigns override specifications for roles and permissions. The permissions can also be inherited in the model.

The comparative evaluation of Access control models is based on factors such as Inheritance of privileges, Delegation of roles, Constraints, Static and Dynamic Security levels, Scalability, Ease of configuration, and security assurance.

The comparison of the RBAC model with other models with respect to user privileges, time and cost of access, efficiency, RBAC has proven to be an efficient model to represent and implement the organizational Security policies.

References: -

1. Kfatheen, S.Vaaheedha, MiM-MaM, 2015, "A new task scheduling algorithm for grid environment", *Computer Engineering and Applications* (ICACEA), Ghaziabad, India, pp. 695 –699.
2. FeiXu, iAware, 2013, "Making Live Migration of Virtual Machines Interference-Aware inthe Cloud",*Computers, IEEE Transactions* on (Volume: 63, Issue: 12), pp. 3012-3025.
3. Miguel L. Bote-Lorenzo, et al., 2004, "Grid Characteristics and Uses: a Grid Definition", Postproc. Of the *First European across Grids Conference (ACGf03), Springer- Verlag*LNCS 2970, Santiago de Compostela, Spain, pp. 291-298.
4. ThiloKielmann, et al., 2006, "Scalability in Grid. PPT Core GRID", Bridging *Global Computing with Grid (BIGG)*, Sophia Antipolis,France.
5. David De Roure, et al., 2005, "The Semantic Grid: Past, Present and Future", *Proceedings of the 2nd Annual European Semantic Web Conference (ESWC2005)*, Volume 93, Issue3.
6. Qin Zheng, 2013, "On the Design of Mutually Aware OptimalPricing and Load Balancing Strategiesfor Grid Computing Systems", Computers, *IEEE Transactions* on (Volume: 63, Issue: 7), pp. 1802- 1811.
7. Zhu Y., 2003, "A survey on grid scheduling systems", Technical report, Department of Computer Science, *Hong Kong University of science and Technology*.
8. Scale Grid Computing Down to Size, URL- https:// www.networkworld.com/article/2339444/soft ware/scale-grid-computing-down-to-size.html, (Accessed on November 2018)
9. Seyyed Mohsen Hashemi, 2Amid Khatibi Bardsiri" Cloud Computing Vs. GridComputing" Dean of the Software Engineering and Artificial Intelligence Department , Science and Research Branch, Islamic Azad University, Tehran, IRAN.
10. David Munoz Sanchez "Comparison between security solutions in *Cloud and Grid Computing*" Helsinki University ofTechnology.

****

Determinethe Anxitey Level at School and College Handball Players

Dr. D.C. Maurya*

Abstract - The rational for this study was designed to examine the level of competitive trait anxiety that were experienced prior to a handball competition and to ascertain whether there were any differences between these two age groups. Anxiety was measured using the sport competition Anxiety Test (SCAT) (Martens, Vealey and Burton, 1990). The sample size consisted of two intermediate school handball players with the age ranging from 15 to 19 years and 20 college handball players players of age ranging between 21-25 years Analysis of trait anxiety showed at significance difference of 0.05 as college handball players were found to be less anxious than school handball players. But both the age group players presuppose an average degree of suggestions for future research and practical consideration which are listed in the conclusion.

Introduction - As a gymnast prepares to mount the balance beam, she says to herself, " My heart is pounding a thousand miles an hours, I can feel my hands trembling and I know I'm to fall," Such statements are quite common among gymnasts and other athlete's perception of the body but also the interpretation they have placed on these changes (Mathenson &Mathes, 1991)

Most player enter a competition with some concern about their chance of wining. " When an player performance suffers in an important event, he is often too much worried about the outcome… being solely concerned with winning and it causes an increase in anxiety" (Orlick & Partington, 1988).

Anxiety has been defined as the negative aspects of experiencing stress. It is the worry the is experienced due to the fear of failure.

Researcher have distinguished between two types of anxiety: state anxiety & trait anxiety. The state anxiety is " characterized by subjective, associated with activation of arousal of the autonomic nervous system" (Speikberfer,1996) for example, a player's level of state anxiety would change from moment to moment during a handball match. They Might have a slightly elevated level of state anxiety (feeling somewhat nervous and notching their heart pounding) prior to Attack off, then the lower level is achieved once they settle down into the match; and once again an extremely high level of state anxiety is attained in the point of a very close game.

Trait Anxiety is, " a motive or acquired behavioral disposition that predisposes an individual to perceive a wide range of objectively non-dangerous circumstances as threatening, and to respond to these with state anxiety reaction disproportionate in intensity and magnitude of the objective danger." (Speliberge, 1996).

For example, two handball players, who normally attacking penalties with equal physical skill , may be placed under the identical pressure of having to attacking the last point to win a match, and yet have entirely different state anxiety reactions to the situation because of their personalities, that is their levels of trait anxiety.

Methods and Procedures

Participants & Design - 20 Intermediate school handball players of 11th and 12th standards and 10 college handball players respectively from different schools & colleges of Meerut (U.P.) were selected for the study. All players had minimum of two year experience, and had competed once or twice in a week during the peak season, The test was completed prior to the start of the competition.

Measures - Anxiety can be measured through different means and specific tools. In this study, the sports competition anxiety test (SCAT) was used to measure the competitive trait anxiety (A-Trait). This tool is a self-report psychometric inventory of A-Trait consisting of 15 items, 5 of them being spurious items (Matens et al, 1990, Hinbery &Gould 1999).

Procedure - Each player was approached separately and the researcher explained that the research inventory would only take a few minutes and asked them to be honest as possible. Confidentiality was guaranteed and no names were taken revealed.

Analysis & Result Of Data - To analyze the collected data, paired t-test was utilized by using the SPSS program.

Result

	N	M	SP	SED	T
College	20	18.70	2.78	1.16	3.5
School	20	22.85	3.81		

Significant at 0.05 level.

The SCAT values were analyzed by using paired t-test. The result shows through the paired t-test that there exists

*Associate Professor & HOD (Physical Education and Sports) D.J. (P.G.) College, Baraut (U.P.) INDIA

a significant difference between two means (SCAT- School 22.85 and SCAT College 18.70) at 0.05 level of significance. The result also shows that the college handball players have less anxiety level then the school handball players. However both age groups have an average degree of competition anxiety.

Discussion and Conclusion - The main aim of the study was to describe the anxiety differences before the competitions in the different age groups players. From this investigation, the results obtained were very significant (t> 0.05) and the college handball players were found less anxious than school handball players.

In this study the result failed to prove the hypothesis that trait anxiety would be grater prior to a competition (both age group players have an average degree of anxiety level). As presented by Mckay et a (1997), trait anxiety has been found to be higher in competition than in practice. However, the reason for our results disclaiming these examined outcomes can be held responsible for several reasons. Firstly increasing the sample size and thePeriod of testing would benefit the validity of our result. This testing should occur four and five times prior to different competitions. By testing a multiple amount of time, will reduce the possibility of situational bias. This means that feelings and emotions that may affect anxiety of the subject on the day of testing can be eliminated by mean of multifaceted testing protocol. However, due to time restraints, one period of testing was all, the was practical, and lead to error in results (according) to other literature (Mckay et all 1997, Martens et al 1990). the contributions of this study is to lay way to further investigation of anxiety levels during practice and competition in different games.

Limitations:

1. Results based on only one game of handball
2. Small sample size
3. Only male handball players were taken in the sample.
4. Participation levels of the players were not recorder.

References:-

1. **Marten, R., Vealey, R.S. and Burton,d (1990)** competitive anxiety in sports. Humans kinetics.
2. **Matheson, I and Mathes, S. (1991)** Influence of performance setting, experience and difficulty of routing on precipitation anxiety and self-confidence of high school Gymnasts perceptual and motor skills. 72. 1099-1105.
3. **Mckay, J.M., Selig, S.E. Corlson, J.S., and mortis, (1997)** Psychological stress in elite golfer during practice and competition.
4. **Orlicky, T. & Partingtio, J., "Mental Links to excellence" The sports Psychologist, 1998,** PP. 2, 105-130. The Australian Journal of science and Medicine in sports 29(2):55-61.
5. **Weinbery, R.S and Gould, D. (1999)** Foundation of sports and exercise psychology, Human Kinetics

****

Swadeshi vs Globalisation

Dr. Amit Mehta*

Introduction - The twentieth century was a strange and contradictory century. It is bloodiest century in history with two world wars and a number of bitter and endless conflicts. The last decades have put the world on the path of globalization where phenomena of tolerance, terrorism and war are inherent.

Globalization is a tricky game of the West. Though the days of formal colonial rule are now a matter of past history, western domination and control continues to have an impact on the vast majority of the non-western world in ways which are more subtle and sophisticated but no less desvastingly exploiting. The newly Independent nations, after freeing themselves from their colonial masters, asked for development aids from the same colonisers. The donor comes with a new agenda of neocolonialism. As a result, even though formally independent, the dominant west controls global politics and economies of the newly emerged independent nations in one way or the other.

Globalization is not a simple but a complex set of process that operates at multiple levels of politics, economics, culture and ideology. It is a social process in which the constraints of geography on social and cultural arrangements recede and this is actually happening.

Globalization has generated widespread social, economic and cultural insecurity. It is not the cross-cultural interaction of diverse societies but and imposition of a particular culture on all others. It is the predation of one class, one race, one nation and often one gender. In 'global' the dominant 'local' seeks global control. The global is not universal human interest, it represent a particular interest and culture which has been globalized through its reach and control.[1]

The liberalization of trade has led the way to enslavement of people. The world is "composed as it is of autonomous individuals, market and states, is not the world that anyone lives in-not even the free enterprises or welfare liberal ideologies. This world is a world without families. It is also a world without neighbourhoods, ethnic communities, churches, cities and towns, even nations (as opposed to States)."[2]

Swadeshi is an anti-colonial concept. It refers to the structures of power which colonies both externally and internally. It is a search for our own identities.[3]Like individuals, communities and nations too have their own identity. Global economy has no concern for the local identities, the continuality, the ecology, style of life, experience and indigenous skills. Swadeshi is the key concept in Gandhi's philosophy. In Swadeshi, Gandhi not only envisaged economic salvation of India but also found and answer to psychological and political problems of the country.

Swadeshi is the search for our nation's identity. Gandhi says, "My nationalism is as broad as my Swadeshi. I want India's rise so that the whole world may benefit. I do not want India to rise on the run of other nations.[4] He says further. "No nation on earth has risen without adopting Swadeshi as the principle of life.[5] For Gandhi, Swadeshi was a positive concept based on building what a community has in terms of resources, institutions and structures. Swadeshi for Gandhi was central to the creation of peace, freedom and sustainable development. Swadeshi or self - organization in economic affairs is the basis of economic freedom, without which there can be no political freedom or self - rule. Swadeshi is Swaraj. For Gandhi, Swaraj and Swadeshi are complementary. For true Swaraj, Swadeshi was an important imperative to be followed.

Swaraj is the birth right of man, it is the birth right of all people. Gandhi's Swaraj does not imply governance by a centralized state but decentralized self-governance by local communities. Gandhi realized this and stated in his Hind Swaraj. "As long as the superstition that people should obey unjust laws that exist, so long will slavery exist.[6]Only a non-violent resistance movement by people can remove such a superstition. The word 'Swadeshi, however, was not coined by Gandhi himself.Gandhi's respect for the individual arises from his faith in God. God is impartial and selfless. So by following the path of God we follow the path of truth and non-violence. Empowering individual opens the way to socio-economic justice.[7]

Swadeshi extends to all aspects of institutionalized life: economic, political, religious and cultural. Ramashray Roy discusses Gandhi's concept of Swadeshi in terms of Gandhi's General Sociological Theory of self and society.[8] Basically Gandhi was opposed to excessively rapid capitalist

*Lecturer (History) Shree Kalyan Govt. College, Sikar (Raj.) INDIA

development and disruption of local communities. He anticipated the modern notion of appropriate technology.[9] He emphasized the importance of local people's knowledge to solve local problems.

Spinning wheel and wearing khadi are symbolic idioms and expressions of Swadeshi.The idea of Swadeshi is as old as national consciousness.[10] Arising spontaneously and mostly in an unorganized and isolated manner, the Swadeshi movement in the early phase gathered widespread support from the vernacular press and the local efforts of innumerable faceless men. It created a patriotic sentiment which served as moral force to boycott foreign goods. He encouraged men and women to ply charkha, spin khadi and boycott foreign goods. It promoted a deep sense of love for goods manufactured in India and their use generated the spirit of selfless sacrifice amongst the masses. [11]

Swadeshi is not obsolete in today's context. It is the creative alternative to the rule of centralized nation state as well as the rule of global corporations and institutions such as WTO. Economic freedom requires reduced control by the World Bank, IMF, WTO the G7 and global corporations. It is freedom for the people to have secure livelihoods, to have control over the policies and resources that make their livelihoods.

Swadeshi as conceived by Gandhi was not against either internationalism or universal brotherhood. He wanted India to be a self-dependent unit as only a self dependent India could support the world. According to him, the main aim of Swadeshi was the protection of the home industry. Gandhi did not favour isolation of India from the world. In his opinion Swadeshi which excluded the use of everything foreign, no matter how beneficient it may be, was narrow interpretation of Swadeshi.[12]

Few years back, the idea of Swadeshi was considered outdated. To the economist it was anti-economic, to the intellectual it was anti-modern, to the industrialist it was anti-technology, to the media it was amusement and to the policy maker it was an embarrassment. The combined calumny of all these powerful interest groups, created deep prejudice against the idea of Swadeshi in India and outside.[13]

Today many intellectuals admit that Swadeshi is not a reactionary idea. Many industrialists agree that Swadeshi is an important concept of strengthening Indian Industry and creating India multinationalist. Swadeshi means trusting our own genious to handle our own problems that are unique to ourselves.The Swadeshi ideology is not redundant or outmoded. It has scientific value. In fact, no country has risen to heights without paying proper attention to its indigenous institutions and resources. We should put more emphasis on social policies, education, poverty and raising standards of living of our people. This can be achieved only by reformulating India's development policy. We have to place greater emphasis on labour intensive sector than on capital and technology. This type of economic policy would be real Swadeshi.

Gandhi's policies are revolutionary in nature. His philosophy involves strengthening the individual, family, community and society which in turn by its very nature weakens, fundamentally the hold of the existing market and state framework. The major appeal of Gandhian economic is to the masses to which he belonged. Despite all such human characteristics of the Swadeshi how surprising it is that no government has promulgated Gandhian policies.[14]

The need today is to resuscitate a positive, an inclusive, a generous Swadeshi, to build and renew confidence in own abilities and skills in our people and put the system in practice. Above all, let us be willing to learn, to change, to adapt, to keep our doors and windows open and not be swept off our feet.

References :-

1. Vandana shiva," Arthic sawaraj or Economic slavery?" the observer Februrary3, 1998
2. Robert N. bellah "Community Properly Understood" The Essential Commnitrarian Reader p. 17
3. Erik Erikson, Gandhi's truth: On the origine of militant Non-violence, w.E. Morrion, New York 1993
4. M.K. Gandhi: An Autobiography: the story of My experiment with truth, 1940
5. Collected woeks of Mahatama Gandhi, publication Division Govt. of India, New Delhi, 1958, vol. 25, p.379
6. M.K. Gandhi: Hind sawaraj 1934 p.38
7. G.S. Herbert, "Gandhiji on poverity", sarvodaya,Vol. 22, feb. 1973
8. Ramashray Roy, self and Society: A study with Gandhian Thought.
9. Robert J.Mitchell, Experience in Appropriate technology, 1980
10. S.K. Bakshi, Gandhi and ideology of Sawadeshi, 1987
11. Young India, 17 june, 1926, p.218
12. K.P.karunakaran, Gandhi: Interpretations, 1998
13. Gurumurthy, "Sawadeshi and Nationalism," Seminar, No. 469, 1998
14. Ramesh Diwan, "Mahatama Gandhi, ''Amartya Sen and Poverty'' Vol. 20, No. 4, Jan-march 1999

****